तुलसीकृत

(द्वितीय सोपानः)

अर्थात्

अयोध्याकाण्ड

(सटीक)
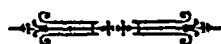
टीकाकार—

ला० भगवानदीन (दीन)

[ले]क्चरर, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ।

प्रकाशक—

नंदकिशोर ऐंड ब्रदर्स,

चौक, बनारस सिटी ।

[...]ार } गंगा दशहरा
सं० १९८३

(अयोध्याकांड)

श्लोकाः

छन्द—शार्दूल विक्रीड़ित (म स ज स त त ग)

यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके ।
भाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ॥
सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा ।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्री शंकरः पातु माम् ॥१॥

भावार्थ—(तुलसीदास जी शिव वन्दना करते हैं) जिसकी गोद में पार्वती, मस्तक पर गङ्गा, ललाट पर बाल चन्द्र, कंठ में हलाहल एवं वक्षः-स्थल पर सर्पराज सुशोभित हैं, वे ही भस्म से विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ, सब के स्वामी, कल्याण-स्वरूप, सब में व्याप्त, कल्याण करने वाले और चन्द्र की सी (शुक्ल) आभा वाले श्री महादेव जी सदा मेरी रक्षा करें ॥१॥

छन्द—वंशस्थविलम् (ज त ज र)

प्रसन्नतां या न गता भिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः ।
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुल मङ्गलप्रदा ॥२॥

भावार्थ—(रामचन्द्रजी की मुखश्री की विशेषता) श्री रामचन्द्र जी के मुख-कमल की शोभा, जो राज्याभिषेक से न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दुःख से मलीन ही हुई, वही मुखश्री मेरे लिए सदा सुन्दर-मंगल की देनेवाली हो ॥ २ ॥

छन्द—इन्द्रवज्रा (त त ज ग ग)

नीलाम्बुजश्यामल कोमलाङ्गं सीता समारोपित वाम भागम् ।
पाणौ महासायक चारु चापं नमामि रामं रघुवंश नाथम् ॥३॥

भावार्थ—(रामचन्द्र जी की वन्दना) नील कमल के सदृश जिनके श्याम और कोमल अंग हैं, जिनके बाँयें भाग में श्री सीता जी सुशोभित हैं और जिनके दोनों हाथों में श्रेष्ठबाण और सुन्दर धनुष है, उन रघुवंशियों के नाथ श्री रामचन्द्र जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

दो०—श्री गुरु चरन-सरोज-रज, निज मन-मुकुरु सुधारि ।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जसु, जो दायकु फल चारि ॥ १ ॥

शब्दार्थ—रज=(पराग) धूलि। मुकुरु=शीशा, ऐना। सुधारि=स्वच्छ करके। बरनउँ=(सं०) वर्णन करता हूँ। रघुबर=(रघुवंश में श्रेष्ठ भरत। फलचारि=चारो फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष)।

भावार्थ—(तुलसी दास जी गुरु चरणों की धूलि की वन्दना करते हैं श्री गुरुजी के चरण-कमलों की धूलि से अपना (मलिन) मन रूपी शीशा साफ करके (मैं) भरत का निर्मल यश वर्णन करता हूँ जो चारो फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) का देनेवाला है ॥ १ ॥

(नोट)—इस कांड में भरत चरित्र की ही प्रधानता है, अतः मेरी सम्मति में यहाँ 'रघुबर' शब्द का अर्थ 'भरत' ही होना चाहिये।

अलंकार—रूपक (सम अभेद)

जब तें राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये ॥

शब्दार्थ=ब्याहि=विवाहित होकर। नित=(नित्य) प्रतिदिन। मोद आनन्द। बधाये=उत्सव।

भावार्थ—जब से श्री रामचन्द्र जी विवाहित होकर घर आये, तब अयोध्या में प्रतिदिन नये नये मंगल, आनन्द और उत्सव होते हैं।

(नोट)—दोहा—पहले केवल फल रहे अवधपुरी के मांहि ।
अब भे चारिउ कियन युत जब ते आये ब्याहि ॥

भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत-मेघ बरषहिं सुख-वारी ॥
रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध-अंबुधि कहुँ आई ॥
मनिगन पुर नर-नारि सुजाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती ॥

शब्दार्थ—भुवन चारि दस=चौदहो लोक (भू, भुव, स्व, जन, तप, मह, सत्य, तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल रसातल, पाताल)। भूधर=पर्वत। सुकृत-मेघ=पुण्य रूपी बादल। सुख-वारी=सुख रूपी जल। रिधि सिधि=(ऋधि और सिद्धि)। सुहाई=(सुभाई) सुन्दर। अवध-अंबुधि=अयोध्या रूपी समुद्र। कहुं=(को) के लिए, में। सुजाती=अच्छे वर्णवाले। सुचि=पवित्र। अमोल=(अमूल्य) वेशकीमत।

भावार्थ—चौदहो लोक भारी पर्वत हैं (जिनपर) पुण्य रूपी बादल सुख रूपी जल बरसते हैं। (इस वर्षा के द्वारा) ऋधि, सिद्धि और संपति रूप नदियाँ बढ़कर अयोध्या रूपी समुद्र में (मिलने के लिये) आयी हैं। नगर (अयोध्या) के स्त्री पुरुष ही (इस समुद्र के) अच्छे वर्णवाले मणि हैं (मणियों में भी वर्ण भेद होता है) जो सब प्रकार से सुन्दर, पवित्र और अमूल्य हैं। (अर्थात् उस समय चौदहो लोक में सब लोग पुण्य करते थे जिससे सुख प्राप्त होता था और सब लोग ऋधि, सिद्धि तथा संपत्ति से भरे-पूरे थे। सबसे अधिक पुण्य अयोध्या में होता था इस कारण वह नगर सब विभूतियों से संपन्न था। नगर निवासी भी अच्छे स्वभाव के पवित्राचरणी और कर्तव्य-परायण थे।

अलंकार—रूपक (सांग)। उदात्त (सम्पति की अत्युक्ति को कोविद कहत उदात)।

कहि न जाय कछु नगर विभूती। जनु एतनिअ विरंचि करतूती ॥
सब विधि सब पुर लोग सुखारी। रामचन्द्र-मुख-चन्द निहारी ॥

शब्दार्थ—विभूती=ऐश्वर्य। एतनिअ=इतनी ही। विरंचि=ब्रह्मा। करतूती=(कर्तृत्व)। सुखारी=सुखी। निहारी=देख कर।

भावार्थ—नगर (अयोध्या) का ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता। जान

पड़ता है कि ब्रह्मा की करतूत इतनी ही है। (अर्थात् ब्रह्मा इससे बढ़कर बनाने में असमर्थ हैं)। नगर के सब लोग श्री रामचन्द्र जी का चन्द्ररूपी मुख देखकर सब प्रकार से सुखी हैं। (चन्द्रमा में आह्लादक शक्ति होती है। ऊपर नगर को समुद्र कहा है, और समुद्र चन्द्रमा को देख कर तरंगित होता है)।

अलंकार=रूपक—(रामचन्द्र मुख चन्द्र)

मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ॥

शब्दार्थ—मुदित=प्रसन्न। सखी=समवयस्क और समवैभव साथिनी। सहेली=समवयस्क साथिनी। फलित=फूली हुई। बिलोकि=देखकर। बेली=(वेलि) लता। सील=शिष्टाचार। राऊ=राजा।

भावार्थ—सब माताएँ सखी सहेलियों सहित (अपनी) मनोरथ रूपी लता को फूली हुई देखकर प्रसन्न हैं। (अर्थात् माताओं का मनोर्थ जो बच्चों के बड़े होने, विवाह होने और उनके पुत्र होने का था उसमें विवाह होगया, पतोहुएं घर आ गईं। यही मनोर्थ-बेलि का फूलना है) श्री रामचन्द्र जी के रूप, गुण, शिष्टाचार और स्वभाव को देख और सुन कर राजा दशरथ (भी) अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

अलंकार—रूपक (मनोरथ बेलि)

दो०—सबके उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुबराज-पद, रामहिं देउ नरेसु॥२॥

शब्दार्थ—अभिलाषु=(पुल्लिंग) इच्छा। मनाइ=मनाकर, विनती करके। आपु=अपने। अछत=(अस्ति) रहते, जीतेजी। देउ=दे दें।

भावार्थ—सबके हृदय में यह इच्छा है और महादेव जी से विनती करके (यही कहते हैं कि राजा अपने जीते जी श्री रामचन्द्र जी को युवराज-पद (अधिकार) दे दें (तो बहुत अच्छा हो)।

एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराज बिराजा॥

सकल-सुकृत-मूरति नर नाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥

शब्दार्थ—राजसभा=राज दरबार। रघुराजु=दशरथ जी। विराजा=बैठे थे। सुकृत=पुण्य। नरनाहू=(नरनाथ) राजा। उछाहू=(उत्साह) आनन्द।

भावार्थ—एक समय अपनी सब समाज सहित राजा दशरथ जी दरबार में बैठे थे। एकतो राजा सब पुण्यों की मूर्ति ही थे अतः आनंदित रहा करते थे, इसपर राम का सुन्दर यश सुन कर (उन्हें) अति आनन्द होता था।

अलंकार—दूसरी निदर्शना (सुकृति मूरति में) और चौथे चरण में अनुगुन अलंकार है।

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप रहहिं प्रीतिरुख राखे॥
तिभुवन तीनिकाल जंगमाहीं। भूरि भाग दशरथ सम नाहीं॥

शब्दार्थ—तिभुवन=त्रैलोक्य (आकाश, पाताल और मर्त्य)। तीनिकाल=तीनों काल (भूत, भविष्य और वर्त्तमान)। रुख=(फा०) मुख, चेहरा। जगमाहीं=जंगम में, चैतन्यों में। भूरि-भाग=अत्यन्त भाग्यवान्।

भावार्थ—(दशरथ जी की महत्ता कहते हैं) सब राजा दशरथ जी की कृपा के इच्छुक रहते हैं। लोकपाल भी उनका प्रीति-पूर्ण चेहरा देखना चाहते हैं। ('रुख रखना' मुहावरा है, प्रीति की इच्छा रखनी)। त्रैलोक्य में और तीनों काल में, चैतन्य जीवों में दशरथ के समान अत्यन्त भाग्यवान् (कोई भी) नहीं है।

अलंकार—सार (समस्त में), उपमान लुप्ता (चौथे चरण में)

मंगल मूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥

शब्दार्थ—मूल=जड़, जासू=जिसके, तासू=उसके लिए।

भावार्थ—मंगल की जड़ रामचन्द्र जी ही जिसके पुत्र हैं, उसके लिए जो कुछ कहा जाय सब थोड़ा है।

अलंकार—सर्वाङ्गलुप्तोपमा।

राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा ॥
स्रवन समीप भये सित केसा। मनहुं चौथपनु अस उपदेसा ॥
नृप जुवराजु राम कहुँ देहू। जीवन-जनम लाहु किन लेहू ॥

शब्दार्थ—राय=राजा। सुभाय=सहज ही। कर=हाथ। बदनु=मुख। सम=सीधा। स्रवन=(श्रवण) कान। सित=उज्वल, सफेद। केसा=(केश) बाल। चौथपनु=(पुल्लिंग) बुढ़ापा। उपदेसा=उपदेश दिया। कहुं=को। लाहु=(लाभ)। किन=क्यों नहीं।

भावार्थ—राजा ने सहज ही शीशा हाथ में लिया और मुख देख कर मुकुट सीधा किया। (जो तनक टेढ़ा हो गया था)। देखा कि कानों के पास कुछ बाल सफेद होगये हैं। (कवि कल्पना करता है) मानों बुढ़ापा ऐसा उपदेश दे रहा है कि राजन्! रामचन्द्र जी को युवराज पद देकर अपने जीवन तथा जन्म का लाभ क्यों नहीं लेते?

दो०—यह बिचारु उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन, मुदित मन, गुरहिं सुनायेउ जाइ ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—उर आनि=हृदय में लाकर, निश्चित करके। सु अवसरु=अच्छा मौका।

भावार्थ—यह विचार (रामचन्द्र जी को युवराज-पद देने का) निश्चित करके राजा ने अच्छे दिन अच्छा मौका पाकर, प्रेम से पुलकित शरीर हो, प्रसन्न-मन से जाकर गुरु वशिष्ट जी को सुनाया।

कहइ भुआल सुनिय मुनि नायक। भये राम सब बिधि सब लायक
सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी
सबहिं राम प्रिय जेहि बिधि मोहीं। प्रभु असीस जनु तनु धरिसोही
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रउरेहि नाईं

शब्दार्थ—भुआल=(भूपाल) राजा। लायक=(फारसी) योग्य। उदासी=जो न मित्र हैं न शत्रु, मध्यस्थ। असीस=आशीर्वाद। गोसाईं=

(गोस्वामी) गुरु जी ! छोहु=प्रेम रउरेहि=आपके ही । नाईं=(सं० न्याय) समान।

भावार्थ—राजा दशरथ कहने लगे—हे मुनिनायक ! सुनिये। राम सब प्रकार से सब योग्य हो गये। सब सेवक सचिव [मंत्री] और नगर निवासी लोगों को (और) जो हमारे मित्र हैं, शत्रु हैं और उदासीन हैं अर्थात् सभी लोगों को राम वैसे ही प्रिय हैं जैसे हमें (प्रिय हैं)। मानों आपका आशीर्वाद ही शरीर धारण करके शोभा पा रहा है। (यही नहीं, जो हमसे ऊँचे दर्जे के ब्राह्मण हैं उनकी दशा यह है कि) हे गुरु जी, ब्राह्मण भी अपने परिवार सहित आप के ही समान (राम पर) प्रेम करते हैं।

जे गुरु-चरन-रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल विभव बस करहीं॥
मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजे। सबु पायेउँ रज-पायनि पूजे॥

शब्दार्थ—रेनु=धूलि। विभव=ऐश्वर्य। अनुभयेउ=अनुभव किया। दूजे=दूसरे ने। रज पायनि=चरणों की धूलि। पूजे=पूजने से।

भावार्थ—(इसलिये) "जो गुरु के चरणों की धूलि को मस्तक पर धारण करते हैं वे मानो सब ऐश्वर्यों को (अपने) वश में कर लेते हैं" इस (सिद्धान्त) का अनुभव मेरे समान किसी दूसरे ने नहीं किया (क्योंकि) यह सब कुछ जो मैंने पाया है वह आपकी (वशिष्ठ जी की) चरण-धूलि को पूजने से ही (पाया है)।

अब अभिलाषु एकु मन मोरे। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे।
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेसु रजायसु देहू॥

शब्दार्थ—अभिलाषु=(पुल्लिंग) अभिलाषा, इच्छा। पूजिहि=पूर्ण होगी। अनुग्रह=कृपा। सहज=स्वाभाविक। रजायसु=(राज+आयसु) राजाज्ञा, राजादेश।

भावार्थ—हे नाथ ! अब एक अभिलाषा मेरे मन में (और) बाकी है। वह आप की ही कृपा से पूर्ण होगी। (तब) वशिष्ठ जी राजा का

स्वाभाविक स्नेह देखकर प्रसन्न हो गये (और) कहा—"हे नरेश! आप अपनी अभिलाषा कहिये—(जो कुछ तुम कहो सो करने को मैं तैयार हूँ)

दो०—राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मनि, मन अभिलाषु तुम्हार ॥४॥

शब्दार्थ—राजन = (सम्बोधन) हे राजा। राउर = आप का। अभिमत दातार = मनोवांछित देने वाला। अनुगामी = (अभिलाषु का विशेषण) अनुगमन करने वाला, पीछे पीछे चलने वाला।

भावार्थ—(क्योंकि) हे राजन्! आपका नाम और यश ही सब मनोवांछित देनेवाले हैं। हे महिप मणि, आप की अभिलाषा (का क्या पूछना है वह तो) फल की अनुगामिनी (पीछे पीछे चलने वाली) है। (अर्थात् आप जो अभिलाषा करते हैं उसका फल पहले ही हो जाता है अभिलाषा पीछे से होती है)

अलंकार—अत्यंतातिशयोक्ति (जहाँ हेतु ते प्रथम ही प्रगट होत है काज)

नोट—जिन जिन टीकाकारों ने उक्त 'अत्यंतातिशयोक्ति' के बिना समझे इस दोहे का अर्थ किया है वे चूक गये हैं।

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहसि मृदु बानी॥
नाथ राम करिअहि जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥

शब्दार्थ—जिय जानी = हृदय में जान कर, समझ कर। रहसि = (सं० हर्ष) 'हरषि' का वर्ण-विपर्यय से 'रहसि' हो गया है, हर्षित होकर। करिअहि = करिये। समाजू = तैयारी, साज सामान। समाजू करिअ = सामग्री एकत्र करूं।

भावार्थ—सब प्रकार से गुरु जी को प्रसन्न समझकर राजा हर्षित होकर मीठी वाणी बोले—"हे नाथ! आप कृपाकर (मुझ से) कहें कि "राम को युवराज करिये" तो फिर (मैं) सब साज सामान एकत्र करूं।

मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥
प्रभु प्रसाद, सिव सबुइ निबाही। यह लालसा एक मन माहीं॥

शब्दार्थ—मोहि अछंत = मेरे रहते, मेरे जीते जी। उछाहू = उत्सव। लहहिं = पावें। लोचन लाहू = नेत्रों का लाभ (नेत्रों का लाभ उत्तम से उत्तम सुन्दरता या उत्सव आदि देखना ही है) निवाही = निर्वाह किया। लालसा = अभिलाषा।

भावार्थ—(क्योंकि हम चाहते हैं कि) हमारे जीते जी यह उत्सव हो, (जिससे) सब लोग अपने नेत्र का लाभ उठावें (पावें) आप के प्रसाद (प्रसन्नता, प्रेम) और शिव जी ने सब कुछ निवाह दिया है, यही एक अभिलाषा मन में (शेष) है।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछे पछिताऊ॥
सुनि मुनि दशरथ वचन सुहाये। मंगल-मोद-मूल मन भाये॥

शब्दार्थ—तनु = शरीर। रहउ = रहे। जाऊ = जाये। पछिताऊ = पश्चात्ताप, पछतावा। सुहाये = सुन्दर।

भावार्थ—फिर मुझे सोच नहीं, चाहे शरीर रहे या जाये (न रहे), पीछे हमें जिससे पछतावा न हो (कि हमने राम को युवराज पद नहीं दिया)। दशरथ जी के सुन्दर वचन सुनकर मुनि वशिष्ठ जी को मंगल और आनन्द-मूल होने से मन में अच्छे लगे।

सुनु नृप जासु विमुख पछिताई। जासु भजन बिनु जरनि न जाई॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। राम पुनीत प्रेम-अनुगामी॥

शब्दार्थ—विमुख = विरोधी। भजन = सेवा। जरनि = जलन, दाह। पुनीत = पवित्र, निष्कपट।

भावार्थ—(वशिष्ठ जी बोले) हे राजन्! सुनो जिसके विरोधी होने से लोग पछताते हैं, और जिसकी सेवा बिना हृदय का दाह नहीं मिटता वही स्वामी आप के तनय हुए हैं (भरत)। (और जो आप प्रतिज्ञा बद्ध होकर भी भरत को युवराज-पद न देकर राम को देने का विचार कर रहे हैं उसके लिए इस बात को स्मरण कर लीजिये कि) राम पवित्र (निष्कपट) प्रेम के अनुगामी हैं (कपट-प्रेम के नहीं)

(नोट)—इस चौपाई का गूढ़ संदर्भ यह है कि यह तुम्हारा विचार रामभक्त भरत के विरुद्ध है। तुम्हारे पूर्व वचनों के अनुसार भरत ही राज्य के अधिकारी हैं। सो उनका हक मार कर राम को देना चाहते हो, यह अच्छा नहीं करते। राम जी तो पुनीत प्रेम के अनुगामी हैं, और तुम्हारा यह प्रेम अधर्म मूलक है, अतः राम जी राज नहीं ग्रहण करेंगे। इन चौपाइयों को कुछ लोग रामचन्द्र जी के पक्ष में लगाते हैं, पर हमें भरत-पक्ष का ही अर्थ अधिक सुसंगत जान पड़ता है, क्योंकि दशरथ जी रामचन्द्र के विमुख नहीं हुए, उनका भजन भी नहीं त्याग किया फिर भी उन्हें पछताना पड़ा है। यथाः—

"तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ"

(पुनः)—

"अजहुँ हृदय जरत तेहि आंचा। रिस परिहास कि सांचहु सांचा"॥

दो०—बेगि विलंब न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिनु, सुमंगलु तबहिं जबु, राम होहिं जुवराजु॥

शब्दार्थ—बेगि = शीघ्र। साजिअ सबुइ समाजु = सब समाज सजाओ।

भावार्थ—हे राजन्! (तो भी) विलम्ब मत करो, शीघ्र सब साज सजाओ (सब पदार्थ इकट्ठे करो) तभी सुदिन और सुमंगल हैं जब राम युवराज हों। (व्यंग से भाव यह है कि रामचन्द्र जी युवराज न होंगे, और हुआ भी ऐसा ही)।

मुदित महीपति मंदिर आये। सेवक सचिव सुमंतु बोलाये॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाये। भूप सुमङ्गल वचन सुनाये॥

शब्दार्थ—सुमंतु = दशरथ जी के मुख्य मंत्री। जय जीव = यह आशीर्वादात्मक शब्द ब्राह्मण मंत्री राजा के सम्मुख उपस्थित होने पर कहते हैं।

भावार्थ—राजा दशरथ जी हर्षित होकर राजभवन को आये और सेवकों द्वारा मंत्रियों सहित सुमंत जी को बुलवाया। उन लोगों ने 'जय जीव' कह

कर (राजा को) सिर नवाया तब दशरथ जी ने सुन्दर मंगल दायक बात सुनायी।

प्रमुदित मोहिं कहेउ गुरु आजू। रामहिं राय देहु जुवराजू॥
जौं पंचहिं मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥

शब्दार्थ—राय = राजा (यहाँ पर राजन्)। पंचहिं = पंच को (राजा जिनकी राय से राज्य का कार्य करता है उन्हें पंच कहते हैं)। मत = (मंत्र) राय। नीका = भला। टीका = तिलक, राज्याभिषेक।

भावार्थ—(दशरथ जी बोले) आज गुरु जी ने प्रसंन्न होकर मुझ से कहा है कि 'हे राजन्! राम को युवराज-पद दो। (इसलिए) जो पंचों को यह राय भली लगे तो प्रसन्न हृदय से राम को राज्याभिषेक करें।

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअउ जगत पति बरिस करोरी॥

शब्दार्थ—अभिमत = (संज्ञा) वांछा। बिरव = (सं० वीरुध) पौधा। बरिस = (वर्ष) साल। करोरी = करोड़, कोटि।

भावार्थ—इस प्रिय वाणी के सुनते ही मंत्री गण हर्षित होगये मानों अभिमत रूपी पौधे में पानी पड़ गया। (अर्थात् मन्त्रियों की यही इच्छा थी कि रामचन्द्र जी युवराज हों इसलिए राजा दशरथ जी के मुख से गुरु जी का वही आदेश सुनकर उनकी इच्छा फिर जाग उठी (क्योंकि इच्छा होते हुएभी मंत्री गण भरत जी के राज्याभिषेक के प्रतिज्ञा पत्र की बात को जान कर रामचन्द्र जी के अभिषेक की बात कह नहीं सकते थे)। मंत्री हाथ जोड़ विनय करने लगे, हे संसार के स्वामी आप करोड़ों वर्ष जियें' (अर्थात् आप की आयु बड़ी हो; करोड़ वर्ष लाख वर्ष जिओ यह मुहावरा है)।

जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिय नाथ न लाइअ बारा॥
नृपहिं मोदु सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥

शब्दार्थ—बेगिय = शीघ्र कीजिये। न लाइअ बारा = (मुहावरा) देर न

कीजिये, सुभाषा=सुन्दर वचन, बौंड़=बेलि, लता। लही=(सं० लब्ध) पा गई। सुसाखा=सुन्दर डाल।

भावार्थ—हे नाथ ! (आपने) संसार को मंगल प्रद सुन्दर काम सोचा है, (इसे) शीघ्र कीजिये, देर न करें। मंत्रियों के सुन्दर वचन सुनकर राजा दशरथ जी को आनन्द हुआ मानों बढ़ती हुई लता सुन्दर डाल (का आश्रय) पा गई। (लताएँ वृक्षों की शाखाओं का आश्रय पाकर खूब बढ़ती हैं)

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित, बेगि करहु सोइ सोइ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—कर=का। जोइ जोइ=जो जो। आयसु=(आज्ञा रजायसु उस आज्ञा को कहते हैं जो पूछने पर मिलती है)। हित=लिए, निमित्त।

भावार्थ—राजा दशरथ जी ने कहा—'मुनिराज वशिष्ठ जी की जो जो आज्ञा हो वह सब राम के राज्याभिषेक के लिए शीघ्र करो।

हरषि मुनीस कहेउ मृदुबानी। आनहु सकल सुतीरथ-पानी ॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना ॥

शब्दार्थ—सुतीरथ=सुन्दर तीर्थ। औषध=अकौआ, गूलर, पीपल, शमी, दूब, काँस आदि। मूल=जड़ (नागर मोथा आदि)। फूल=पुष्प (सामयिक ऋतु-पुष्प)। फल=(ऋतु फल और नारियल, केला, सुपारी आदि) पाना=पत्र, पत्ते (आम, केला, तुलसीपत्र आदि)

भावार्थ—(दशरथ जी की आज्ञा पाकर सेवक वशिष्ट जी के पास गये तब) मुनिराज वशिष्ठ जी ने प्रसन्न होकर मीठी वाणी से कहा—सब उत्तम तीर्थों का जल ले आओ। औषध, जड़, पुष्प, फल, पत्र आदि के अनेक नाम जो मंगल प्रद थे गिनकर बतलाये (कि इन्हें एकत्र करो)

चामर चरम बसन बहु भांती। रोम पाट-पट अगनित जाती ॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका ॥
बेद बिहित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥

शब्दार्थ—चामर=चँवर, मुरछल (यह सुरागाय की पूँछ के बालों और

चन्दन की लकड़ी से बनती है)। चरम=(चर्म) मृग छाला, बाघम्बर आदि। बसन=वस्त्र (सूती)। रोम-पट=रोयें के वस्त्र (दुशाला कम्बल आदि)। पाट-पट=रेशमी वस्त्र ('पीताम्बर, सिल्क अंडी आदि)। विहित= कथित, कही हुई, अनुसार। विधान=विधि, प्रकार, रीति। रचहु=बनाओ, सजाओ। विविध=कई प्रकार के। बितान=चँदवा, मण्डप।

भावार्थ—चँवर, मृगछाला आदि और बहुत प्रकार के (सूती) वस्त्र और बहुत जाति के रोयें के तथा रेशमी वस्त्र, रत्न आदि जो संसार में राज्याभिषेक के लिये अनेक मांगलिक वस्तुएं हैं (वशिष्टजी ने) बतलायीं, वेद के अनुसार सब रीतियाँ कहीं, और नगर में कई प्रकार के मण्डप सजाने के लिए कहा।

पनस रसाल पूँगफल केरा। रोपहु वीथिन्ह पुर चहुं फेरा॥
रचहु मंजु मनि चौकइँ चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति, गुरु, कुलदेवा। सब विधि करहु भूमिसुर सेवा॥

शब्दार्थ—पनस=कटहल। रसाल=आम। पूँगफल=सुपारी। केरा= केला। रोपहु=(सं० आरोपण) लगाओ। वीथिन्ह=गलियों में। चहुंफेरा=चारो ओर। चौकइँ=चौकें (पूजा की सामग्री रखने आदि के लिये या देवताओं को आवाहन करने के लिये पिसान, अबीर, गुलाल आदि से जो चौकोण, त्रिकोण आदि चित्र रचनाएँ मङ्गल कार्यों में की जाती हैं उन्हें चौक कहते हैं और उस कार्य को "चौक पूरना" बोलते हैं।) चारु= सुन्दर। बजारू=(फा०) हाट, बाज़ार। भूमिसुर=ब्राह्मण।

भावार्थ—(वशिष्ठ जी ने और कहा कि) कटहल, आम, सुपारी और केले के वृक्ष नगर में चारों ओर गलियों में लगाओ। उत्तम मणियों से सुन्दर चौकें पूरो और (नगर के लोगों से) शीघ्रही बाज़ार बनाने (सजाने) के लिये कह दो। गणेश जी, गुरु और कुलदेव (शंकर) की पूजा करो और ब्राह्मणों की सब प्रकार से सेवा करो।

दो०—ध्वज पताक तोरन, कलस, सजहु तुरंग रथ नाग।
सिर धरि मुनिवर बचन सबु, निज निज काजहिं लाग॥७॥

शब्दार्थ—ध्वज=ध्वजा, बड़े ऊँचे ऊँचे झंडे। पताका=छोटी छोटी झंडियाँ। तोरन=फाटक, (राज्याभिषेक के समय राजा की सवारी जाने के मार्ग में जो थोड़ी थोड़ी दूरी पर फाटक बनाये जाते हैं 'तोरण' कहाते हैं) कलस=जल पूर्ण घड़े। तुरँग=घोड़ा। नाग=हाथी। सिर धरि=मानकर (ऐसाबोलने का मुहावरा है)

भावार्थ—झंडे, झंडी, फाटक, कलश, घोड़े, रथ और हाथियों को सजाओ। सब लोग मुनिवर वशिष्ठ जी के वचनों को मानकर अपने अपने काम में लग गये।

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
विप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा॥

भावार्थ—मुनीश वशिष्ठ जी ने जिसको जो आज्ञा दी (वह उस काम को इतनी शीघ्रता से कर डालता है) मानों वह काज वह (मनुष्य) पहले ही कर चुका है। राजा दशरथ जी ब्राह्मणों, साधुओं और देवताओं को पूजते हैं और राम के लिये मङ्गल कार्यों को (भी) करते हैं।

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय-तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥

शब्दार्थ—गहागह=अत्यंत जोर से। बधावा बाज=बाजे बजे (बधावा बजना या बधाई बजना मुहावरा है। किसी मङ्गल कार्य के उपलक्ष में जब बाजे बजते हैं, गान होता हैं तो उसे बधावा बजना कहते हैं)। फरकहिं=फड़कते हैं। मङ्गल अंग=शुभ अङ्ग (पुरुष के दाहिने और स्त्री के बायें अंगों का फड़कना सामुद्रिक शास्त्रानुसार शुभ है)। सुहाए=अच्छा लगा।

भावार्थ—रामचन्द्र जी के आनंदप्रद राज्य-तिलक का समाचार सुनते ही अयोध्या में जोरों के साथ बधावा बजने लगा। राम और सीता जी के शरीर में सगुण बतला कर (कोई अच्छा कार्य होने वाला है) शुभ अंग रामचन्द्र जी के दाहिने और सीता जी के बायें अंग फड़कते हैं, (यह फड़कना दम्पति को) अच्छा लगा।

पुलकि सप्रेम परस्पर कहहीं। भरत-आगमन-सूचक अहहीं॥
भये बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥

शब्दार्थ—अवसेरी=प्रतीक्षा, इन्तजार। प्रतीति=विश्वास। केरी=की।

भावार्थ—पुलकित होकर प्रेम सहित (रामचन्द्र जी और सीता जी) परस्पर कहते हैं (कि ये सगुन) भरत के आगमन के सूचक हैं। बहुत दिन हो गये, बड़ी प्रतीक्षा की (अब) सगुण विश्वास दिलाते हैं कि प्रिय की भेंट होगी।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥
रामहिं बन्धु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती॥

शब्दार्थ—सरिस=(सदृश) समान। को=कौन। अंडन्हि=अंडों का। कमठ=कच्छप, कछुवा।

भावार्थ—भरत के समान संसार में कौन हमारा प्यारा है। सगुण फल यही है (कि भरत आते हैं) दूसरा कुछ नहीं। (कवि कहता है) रामचन्द्र जी को भाई का सोच रातो दिन उसी प्रकार है जिस प्रकार कछुए के हृदय में अपने अंडों का रहता है (कछुवा अपने अंडों को जल के भीतर किसी स्थान में नहीं रखता वह उन्हें नदी किनारे रेत में गाड़ आता है इस कारण उसे हर वक्त यह आशंका रहती है कि कोई उनका अनिष्ट तो नहीं कर रहा है? रामचन्द्र जी भी इसी प्रकार आशंकित रहते हैं और मनाते हैं कि भरत जी सकुशल घर लौट आवें)।

दो०—एहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु, बारिधि बीचि बिलासु॥८॥

शब्दार्थ—रहसेउ=हर्षित हुआ। रनिवासु=(रानी+आवास) राज महल। बीचि-बिलासु=लहरों की अठखेलियाँ।

भावार्थ—इसी समय यह अति मङ्गल कार्य (राम राज्याभिषेक) का समाचार सुनकर राज महल हर्षित हो गया (वह ऐसा जान पड़ता है)

मानो चन्द्रमा को बढ़ता देख कर समुद्र की लहरों की अठखेलियाँ शोभा देती हैं।

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाये। भूपन बसन भूरि तिन्ह पाये॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। मंगल साज सजन सब लागीं॥

शब्दार्थ—भूपन=आभूषण, गहना। बसन=वस्त्र। भूरि=अधिक, यथेष्ट। मङ्गल-साज=उत्सव की तैयारी।

भावार्थ—(रनिवास में) जिन जिन लोगों ने जाकर यह समाचार सुनाया उन्होंने बहुत से गहने और वस्त्र पाये। रानियों का शरीर प्रेम से पुलकित हो गया और मन में अनुराग (स्नेह) हुआ। तब सब रानियाँ मङ्गल साज सजने लगीं (उत्सव की तैयारी करने लगीं)

चौकइँ चारु सुमित्रा पूरीं। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरीं॥
आनँद मगन राम महतारी। दिये दान बहु बिप्र हँकारी॥

शब्दार्थ—चौकइँ=चौकें। चारु=सुन्दर। अतिरूरीं=बड़ी रम्य। राम महतारी=कौशल्या जी। हँकारी=बुलवा कर।

भावार्थ—सुमित्रा जी ने सुन्दर चौकें पूरीं जो रत्नमय, कई प्रकार की और बड़ी रम्य थीं। कौशल्या जी भी आनन्द में मग्न थीं उन्होंने ब्राह्मणों को बुलवाकर बहुत से दान दिये।

पूजेउ ग्राम देव सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥

शब्दार्थ—सुरनागा=नागेश्वर महादेव जो प्रधान ग्राम . देव थे। इनका मन्दिर अब भी अयोध्या में है। बहोरि=पुनः। बलिभागा=नैवेद्य

भावार्थ—(कौशिल्या जी ने) ग्रामदेव नागेश्वर महादेव जी की पूजा की और पुनः बलि भाग देने के लिये कहा। (फिर वरदान मांगा कि) जिस प्रकार से राम का कल्याण हो। (हे ईश) वही वरदान दया करके दीजिये।

गावहिं मंगल कोकिल बयनी। बिधु बदनी मृग-सावक नयनी॥

शब्दार्थ—कोकिल-बयनी=कोयल की सी मीठी वाणी वाली। मृग-सावक-नयनी=मृगा के बच्चों की सी आँखों वाली।

भावार्थ—चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली, मृगा के बच्चों की सी सुन्दर आँखों वाली और कोयल की सी मीठी वाणी वाली (स्त्रियाँ) मङ्गल (गीत) गाती हैं।

अलंकार—वाचक धर्म लुप्तोपमा (विधु वदनी, मृग सावक नयनी)

दो०—राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नरनारि।
लगे सुमंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि॥ ६॥

शब्दार्थ—हिय=हृदय। बिधि=विधाता, ब्रह्मा। अनुकूल=दहिना, सहायक।

भावार्थ—रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक सुनकर नगर के स्त्री-पुरुष के हृदय हर्षित हो गये। वे सब लोग विधाता को अनुकूल समझ कर मङ्गल-साज सजाने लगे।

तब नरनाहू बसिष्ठु बुलाये। राम धाम सिख देन पठाये॥
गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा॥

शब्दार्थ—नरनाह=(नरनाथ) राजा। सिख=शिक्षा। पठाये=भेजा। रघुनाथा=रामचन्द्र जी। नायेउ माथा=मस्तक नवाया, प्रणाम किया।

भावार्थ—तब राजा दशरथ जी ने वशिष्ठ जी को बुलवाया और रामचन्द्र जी के महल में शिक्षा देने को भेजा। रामचन्द्र जी ने गुरु जी का आगमन सुनतेही दरवाजे पर आकर उन्हें प्रणाम किया।

सादर अरघु देइ घर आने। सोरह भांति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल-कर जोरी॥

शब्दार्थ—अरघ=(अर्घ्य) जल-दान। आने=ले आये। सोलह भाँति=सोलह प्रकार से, षोड़शोपचार (आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, पुनः आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य,

प्रार्थना)। सनमाने=संमान किया। गहे चरन=पैर पकड़े, साष्टांग दंडवत की।

भावार्थ—श्री रामचन्द्र जी आदर-पूर्वक अर्घ्य देकर गुरु वशिष्ट जी को महल में ले आये और षोड़सोपचार से उनका पूजन कर सम्मान किया। फिर सीता जी के साथ साष्टांग दंडवत की और कमलवत् हाथों को जोड़ कर बोले;—

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइय काज नाथ असि नीति॥

शब्दार्थ—सदन=घर। दमनू=दमन करने वाला, दबाने वाला। जनु=दास। बोलि पठइय=बुलवा भेजते। काज=काम के लिये।

भावार्थ—यद्यपि सेवक के घर स्वामी का आना मंगल का देने वाला और अमङ्गल का दमन करने वाला है, तौ भी हे नाथ! यह उचित था और ऐसी ही नीति (नियम) भी है कि दास को काम के लिये बुलवा भेजते (स्वयं आप ने यहाँ तक पधारने का कष्ट क्यों उठाया)

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयेउ पुनीत आजु मम गेहू॥
आयसु होइ सो करउँ गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई॥

शब्दार्थ=पुनीत=पवित्र। गेहू=(गृह) घर। आयसु=आज्ञा। लहइ=शोभा पाता है। सेवकाई=सेवा, ख़िदमत।

भावार्थ—हे प्रभो! आपने अपना प्रभुत्व छोड़ कर (भूल कर) मेरे ऊपर स्नेह किया। आज मेरा घर पवित्र हो गया। हे स्वामी! अब जो आज्ञा हो सो करूँ। क्योंकि सेवक स्वामी की सेवा करने से ही शोभा पाता है।

दो०—सुनि सनेह साने वचन, मुनि रघुवरहिं प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, हंस-वंस-अवतंस॥ १०॥

शब्दार्थ—सनेह साने=स्नेह से सने हुए, प्रेम-पूर्ण। रघुवरहिं=(रघु वंश में श्रेष्ठ) रामचन्द्र जी को। कस=क्यों। अस=ऐसा। हंस-वंस-अवतंस (हंस=सूर्य+वंश=कुल+अवतंस=भूषण) सूर्य-कुल-भूषण।

भावार्थ—(रामचन्द्र जी के) प्रेम-पूर्ण वचन सुनकर मुनि वशिष्ठ जी रामचन्द्र जी की प्रशंसा करने लगे। कहा—'हे राम! तुम ऐसा क्यों न कहो, तुम तो सूर्य-कुल के भूषण हो'।

बरनि राम गुन सील सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत तुम्हहिं देन जुवराजू॥

शब्दार्थ—बरनि=प्रशंसा करके। सील=शिष्टाचार। समाजू सजेउ=तैयारी की है।

भावार्थ—रामचन्द्र जी के गुण, शिष्टाचार और स्वभाव की प्रशंसा करके मुनि राज वशिष्ठ जी प्रेम से पुलकित हो कर बोले:—"(हे राम) राजा ने तिलक की तैयारी की है, वे तुम्हें युवराज-पद देना चाहते हैं"।

राम करहु सब संजम आजू। जौ विधि कुसल निवाहइ काजू॥
गुरु सिख देइ राम पहिं गयऊ। राम हृदय अस बिसमय भयऊ॥

शब्दार्थ—संजम=(संयम) व्रत (मंगल कार्य के पहले कुछ संयम करने होते हैं)। विधि=विधाता। निबाहइ=निर्वाह करे। राय=(राज) राजा। पहिं=पास। बिसमय=आश्चर्य।

भावार्थ—हे राम! आज सब संयम करो यदि विधाता कुशल पूर्वक कार्य निबाहे। गुरु वशिष्ठ जी इस प्रकार शिक्षा देकर राजा दशरथ जी के पास गये। इधर रामचन्द्र जी के हृदय में ऐसा आश्चर्य हुआ॥

(नोट)—'जौ विधि······काजू' से स्पष्ट यह व्यंजित है कि "यह काम होगा नहीं"।

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करन-बेध उपवीत बिआहा। संग संग सब भयेउ उछाहा॥

शब्दार्थ—जनमे=पैदा हुए, जन्म लिया। सयन=(शयन) सोना। केलि=खेल। लरिकाई=लड़कपन के कृत्य। करन-बेध=(कर्णवेध) कन्छेदन। उपवीत=यज्ञोपवीत, जनेऊ। बिआहा=(विवाह) शादी। उछाहा=उत्सव।

भावार्थ—हम सब भाई एक साथ पैदा हुए लड़कपन में खाना, सोना और खेल भी साथ ही साथ हुआ; कन्छेदन, यज्ञोपवीत, शादी आदि सब उत्सव भी साथ ही साथ हुए।

विमल वंस यहु अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥

शब्दार्थ—विमल=निर्मल, उत्तम। बंधु=भाई। बिहाइ=(सं० विहाय) छोड़ कर। पछितानि=पछतावा, पश्चात्ताप। सुहाई=सुन्दर। हरउ=हरे।

भावार्थ—परन्तु उत्तम कुल में यह एक बात अनुचित हो रही है कि भाइयों को छोड़ कर बड़े (ज्येष्ट) को राज्य तिलक होता है। (कवि कहता है) प्रभु रामचन्द्र जी का यह सुन्दर पछितावा भक्तों के मन की कुटिलता को हरे। (अर्थात् भक्त जन जो आपस में उपासनादि के विषय में लड़ते हैं वे इस बात का उदाहरण लेकर सब को एक समझें और परस्पर का वाद विवाद छोड़ दें)।

दो०—तेहि अवसर आये लषन, मगन प्रेम आनन्द।
सनमाने प्रिय वचन कहि, रघुकुल-कैरव-चन्द॥ ११॥

शब्दार्थ—लषन=(लक्ष्मण जी)। कैरव=कुमुद, कोंई।

भावार्थ—(जिस समय रामचन्द्र जी उक्त विचार कर रहे थे) उसी समय लक्ष्मण जी प्रेम के आनंद में मग्न होते हुए आये। रघुकुल रूपी कुमुदों के लिए चन्द्रवत् रामचन्द्र जी ने प्रिय वचन कह कर उनका आदर किया (कुमुद, चन्द्रमा को देखकर प्रफुल्लित होता है, रघुकुल रामचन्द्र जी को देख कर आनन्दित होता है)

अलंकार—परंपरित रूपक (रघुकुल-कैरव-चन्द)

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। पुर प्रमोद नहिं जाइ बखाना॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहिं बेगि नयन फल पावहिं॥

भावार्थ—अनेक प्रकार के बाजे बजते हैं। नगर का आनन्द वर्णन नहीं

किया जा सकता। सेब लोग मनाते हैं कि भरत जी शीघ्र आ जायँ और नेत्रों का फल पावें (अर्थात् राज्याभिषेक का उत्सव देखें)।

हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परसपर लोग लोगाई॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥

शब्दार्थ—हाट=(सं० हट्ट) बाज़ार। बाट=रास्ता, मार्ग। गली= छोटे छोटे और सँकरे रास्ते। अथाई=(अस्थाई) बैठक। (यह शब्द ठेठ बुन्देलखण्डी है)। लोगाई=स्त्रियाँ। कालि=कल। लगन=लग्न, मुहूर्त्त, साइत। भलि=भली,सुन्दर। केतिक बारा=किस समय, कब। पूजिहि= पूजेगा, पूर्ण करेगा।

भावार्थ—बाज़ार में, रास्ते में, घर में गली में और बैठक में (सभी जगह) स्त्री और पुरुष सब लोग परस्पर यही कहते हैं कि अब कुछ देर नहीं है, कि कल्ह ही विधाता हमारी इच्छा पूर्ण कर देगा।

कनक सिंघासन सीय समेता। बैठिहिं राम होइ चित चेता॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली॥

शब्दार्थ—कनक=सुवर्ण, सोना। समेता=सहित। चित-चेता=चित्त का सोचा हुआ। कुचाली=बदचलन।

भावार्थ—अयोध्या निवासी सब लोग कहते हैं कि कल कब होगा! जब सोने के सिंहासन पर सीता-सहित राम चन्द्रजी बैठेंगे और हम लोगों की मन भाई बात होगी। परन्तु बदचलन देवता विघ्न मनाते हैं। (अर्थात् कोई ऐसा विघ्न पड़े जिससे राम चन्द्र जी युवराज न हो सकें और जाकर रावण का वध करें)।

तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चाँदिनि राति कि भावा॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाँय लै परहीं॥

शब्दार्थ—सुहाइ न=अच्छा नहीं लगता। कि=क्या। सारद=शारदा, सरस्वती। पाँय लै परहीं=पैरों पड़ते हैं।

भावार्थ—उन देवताओं को अयोध्या का यह उत्सव अच्छा नहीं लगता,

क्या चोर को चाँदनी रात भाती है ? नहीं भाती (अर्थात् जिस प्रकार चोर को चाँदनी रात नहीं भाती उसी प्रकार देवताओं को अयोध्या का उत्सव नहीं सुहाता) वे देवता सरस्वती जी का आवाहन करके प्रार्थना करते हैं और बारम्बार पैरों पड़ते हैं।

अलंकार—प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, काकु वक्रोक्ति।

दो०—विपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राज तजि, होइ सकल सुर काजु॥ १२॥

भावार्थ—(देवता कहते हैं) हे माता ! हमारी बड़ी विपत्ति देख कर आप वही (यत्न) करें जिससे रामचन्द्र जी राज्य छोड़ कर वन चले जायँ और सब देवताओं का कार्य (पूर्ण) हो। (अर्थात् राम चन्द्र जी वन में जाकर राक्षसों को मारें जिससे उन के द्वारा जो देवताओं को कष्ट होता है उसका अन्त हो जाय)।

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज बिपिन हिमराती॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोरि नहिं थोरिउ खोरी॥

शब्दार्थ—सरोज बिपिन=कमल वन। हिम राती=हेमंत ऋतु की रात्रि। निहोरी=विनय करके। थोरेउ=थोड़ी भी। खोरी=दोष।

भावार्थ— देवताओं की प्रार्थना सुन कर सरस्वती खड़ी खड़ी पछताने लगी। मन में सोचा—मैं कमल वन के लिए हेमन्त ऋतु की रात्रि के समान हुई (हेमन्त की बरफ़ से कमल सूख जाते हैं, सरस्वती सोचती हैं कि राम चन्द्र जी के निर्वासित होने से अयोध्या निवासियों को दुःख होगा) देवता यह पछतावा देख पुनः विनय करके कहने लगे, हे माता ! तुम्हें इसमें कुछ भी दोष नहीं लगेगा।

बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानउ रघुबीर सुभाऊ॥
जीव करम बस सुख-दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी॥

शब्दार्थ—बिसमय=दुःख, खेद। रघुराऊ=रामचन्द्र जी। जीव=प्राणी, जीवात्मा।

भावार्थ—(क्योंकि) एक तो रामचन्द्र जी खेद और हर्ष से रहित (अर्थात् न तो उन्हें किसी कार्य से हर्ष ही होता है न खेद ही) तुम तो रघुवीर (रामचन्द्र जी) के स्वभाव को जानती ही हो। दूसरे जीवात्मा ही कर्मवश दुःख और सुख का भागी होता है परमात्मा नहीं (रामचन्द्र जी साक्षात् पर ब्रह्म परमात्मा हैं उन्हें किस बात का हर्ष और किस बात का विषाद ?) अतएव देवताओं की भलाई के लिए आप अयोध्या जायें।

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुधमति पोची॥
ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥

शब्दार्थ—सँकोची=सँकोच कराया। बिबुध मति=देवताओं की बुद्धि। पोची=नीच, तुच्छ। निवास=रहन। करतूती=(कर्तृत्व) कर्तव्य। पराइ=दूसरे की।

भावार्थ—देवताओं ने बारम्बार चरण पकड़ कर सरस्वती को संकोचित किया। तब सरस्वती देवताओं की बुद्धि को नीच समझ कर चली। (कवि कहता है) देवताओं का निवास तो उच्च है (अर्थात् ये लोग स्वर्ग में निवास करते हैं पर) कर्तव्य नीच हैं। ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते।

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरखि हृदय दशरथ पुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुख दाई॥

शब्दार्थ—आगिल=आगे का। दशरथ पुर=अयोध्या। ग्रह दसा=ग्रह का फेर। दुसह=कठिनता से सही जानेवाली।

भावार्थ—किन्तु पुनः सरस्वती आगे का कार्य बिचार कर (बुद्धि फेरने का कार्य जिससे कि) कुशल-कवि मेरी चाह करेंगे वह हरषित हृदय से दशरथ जी के पुर में (अयोध्या में) आयी। मानों दुस्सह्य और दुःखदायी ग्रहदशा ही आयी हो।

दो०—नामु मंथरा मंद मति, चेरी कैकेइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥ १२॥

शब्दार्थ—चेरी=दासी। पेटारी=(पेटिका) संदूकची, टेपारी। गिरा=सरस्वती।

भावार्थ—मन्द बुद्धि मन्थरा नाम्नी कैकेई की दासी को अपयश की पेटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि फेर कर चली गई।

दीख मन्थरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाजु बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलक सुनि भा उरदाहू॥

शब्दार्थ—बनावा=सजावट, बनावट। काह=क्या। उछाहू=उत्सव।

भावार्थ—मंथरा ने नगर की सजावट देखी, सुन्दर, मांगलिक बाजे बज रहे थे। लोगों से पूछा-"कौन उत्सव है" (लोगों ने उत्तर दिया) "राम तिलक"। यह सुनकर उसके हृदय में दाह हुआ।

करइ विचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि विधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकइ लेउँ केहि भाती॥

शब्दार्थ—कुजाती=नीच जाति वाली (मंथरा नाउन थी)। अकाजु होइ=विघ्न पड़े, काम बिगड़े। कवनि=किस। मधु=शहद। किराती=जंगल की एक विशेष जाति। गवँ तकइ=मौका देखती है, घात लगाती है।

भावार्थ—वह कुबुद्धि, कुजाती मंथरा विचार करती है कि रात में किस प्रकार इस काम में विघ्न पड़े। (उसका यह सोचना ठीक उसी प्रकार है) जिस प्रकार कोई कुटिल किरातिनी, मधु लगी देख कर, यह घात लगावे कि इसे किस प्रकार ले लूँ।

अलंकार—उदाहरण

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि हँसि कह रानी॥
उतरु न देइ सो लेइ उसाँसू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥

शब्दार्थ—भरत मातु=कैकेई। पहिं=पास। बिलखानी=(सं० वैलक्षण्य) उदास। अनमनि=(अन्य मनस्क) मलीन-मन। हसि=है। उसाँसू=(उच्छ्वास) ऊँची सांस, आह भरी साँस। ढारइ=गिराती है। आँसू=(अश्रु)

भावार्थ—मंथरा उदास होकर कैकेयी के पास गई। रानी हँस कर कहने लगी—'तू आज मलिन मन क्यों है ?'। मंथरा उत्तर नहीं देती, आह भरी साँस लेती है और स्त्री चरित्र करके आँसू गिराती है।

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरे। दीन्ह लषन सिख अस मन मोरे॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाँड़इ स्वांस कारि जनु सांपिनि॥

शब्दार्थ—गालु बड़ तोरे=बड़े गाल हैं (गाल बड़े होना मुहावरा है) गर्व हो गया है। सिख दीन्ह=शिक्षा दी है (यह भी मुहावरा है) पीटा है। न बोल=नहीं बोली। कारि सांपिनि=काली नागिन।

भावार्थ—रानी (कैकेयी) हँस कर कहने लगी—"तुझे बड़ा गर्व हो गया है, मेरे मन में ऐसा आता है कि लक्ष्मण ने तुझे पीटा है।" इतने पर भी बड़ी पापिनि दासी मंथरा नहीं बोली। (वह ऐसी सांस छोड़ती है) मानों काली नागिन सांस छोड़ती हो अर्थात् मंथरा उर्ध्वश्वांस लेती है कुछ बोलती नहीं।

दो०—सभय रानि कह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु।
भरतु लषनु रिपुदमनु सुनि, भा कुबरी उर सालु॥ १४॥

शब्दार्थ—कहसि किन=क्यों नहीं कहती, जल्दी बता। महिपालु=राजा (दशरथ जी) रिपु दमनु=शत्रुघ्न। सालु=शूल, पीड़ा, दुःख।

भावार्थ—रानी (कैकेई) भयभीत होकर कहने लगी-'राम, राजा, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुशल से तो हैं? यह सुन कर कुबड़ी मंथरा के हृदय में पीड़ा हुई।

(नोट) पीड़ा होने का कारण यह है कि कुशल पूछने में कैकेई ने सब से पहले रामचन्द्र जी का ही नाम लिया।

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥
रामहिं छाड़ि कुशल केहि आजू। जिन्हहिं जनेसु देत जुबराजू॥

शब्दार्थ—कत=क्या। कोउ=कोई। गालु करब=गाल करूँगी, गर्व

करूंगी (गाल करना मुहावरा है) केहिकर=किसका। रामहिं छाँड़ि= राम को छोड़ कर, राम के सिवाय। जनेसु=(जन+ईश) राजा।

भावार्थ—मंथरा कहने लगी—हे माता ! मुझे कोई क्या शिक्षा देगा ? (हमने क्या बिगाड़ा है जो हमें कोई पीटेगा) और मैं किसका बल पाकर गर्व करूँगी (हमारा हिमायती भी तो कोई नहीं है)। (रामचन्द्र जी की कुशल जो तुमने पूछी सो सुनो) रामचन्द्र जी के सिवाय आज किसकी कुशल है जिन्हें स्वयं राजा युवराज पद दे रहे हैं।

भयउ कौसिलहिं विधि अति दाहिन। देखत गर्व रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ पुर शोभा। जो अवलोकि मोर मन क्षोभा॥

शब्दार्थ—विधि दाहिन भयऊ=ब्रह्मा दाहिना हो गया (यह भी मुहावरा है जब किसी के अच्छे दिन हो जाते हैं तो लोग कहते हैं कि ब्रह्मा इनके दाहिने हैं)। देखत=देखकर (राम राज्याभिषेक देखकर)। क्षोभा= क्षुब्ध हुआ, दुखित हुआ।

भावार्थ—अब कौशिल्या जी को ब्रह्मा दाहिना हो गया है। राम राज्या-भिषेक की तैयारी देखकर गर्व उनके हृदय में नहीं समाता अर्थात् वे अत्यन्त गर्वित हो रही हैं। आप जाकर नगर की सजावट क्यों नहीं देखतीं जिसे देखकर मेरा मन क्षुब्ध हुआ है।

पूतु विदेस न सोचु तुम्हारे। जानति हहु बस नाह हमारे॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥

शब्दार्थ—पूतु=(पुत्र) लड़का। हहु=हो। नाह=(नाथ) राजा। सेज=(सं० शैया) पलंग, खाट। तुराई=(तूल+आई) तूलाई, दुलाई, रजाई।

भावार्थ—लड़का (भरत) विदेश में है, तुम्हें किसी बात का सोच नहीं है, जानती हो राजा साहब हमारे वश में हैं। तुम्हें तो पलँग पर गुलगुले बिछौनों पर सोना बहुत प्रिय है, तुम राजा की कपट भरी चतुराई नहीं लख पाती हो।

सुनि प्रिय वचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि, अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तौ धरि जीह कढ़ावउँ तोरी॥

शब्दार्थ—झुकी=अप्रसन्न हुई, खीझ गई। अरगानी=(अलगानी) अलग, दूर। घर फोरी=घर फोड़ने वाली, घर बिगाड़ने वाली। जीह=(जीभ) जिह्वा। कढ़ावउँ=खिंचवा लूँगी।

भावार्थ—रानी कैकेई ने प्रिय मंथरा के ये वचन सुनकर उसे मलिन मन समझा, रानी खीझ गई और डांट कर कहा, अब दूर ही रह, ऐ घर-फोड़नी अगर फिर ऐसा कहेगी तो तेरी जीभ खिंचवा लूँगी।

दो०—काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि॥१५॥

शब्दार्थ—काने=(एकाक्ष)। खोरे=(खोटे) अंग भंग। कूबरे=(कुब्ज)। जानि=जानो।

भावार्थ—काने, अंग हीन तथा कुबड़े को कुटिल और बदचलन जानो। यदि ये स्त्री हुए तो ये अवगुण और अधिक समझना चाहिए, फिर स्त्री होने पर वह दासी हुई तो उसका कहना ही क्या? (अर्थात् काने, विकलांग और कुबड़े यों ही कुटिल और बदचलन होते हैं, उसपर यदि स्त्री कानी, हीनांगी, कुबड़ी हुई तो यह कुटिलता और अधिक हो जाती) ऐसा कह कर कैकेई मुसक्याई (कैकेई का पूर्ण लक्ष्य मंथरा की ओर था, मंथरा कुबड़ी थी)

अलंकार—समुच्चय (दूसरा)

प्रिय वादिनि सिख दीन्हिउँ तोहीं। सपनेहु तो पर कोप न मोहीं॥
सुदिनु सुमंगलु-दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥

शब्दार्थ—सिख=शिक्षा। मोहीं=मुझे। फुर=(सं० स्फुरण) सत्य।

भावार्थ—कैकेई ने आश्वासन देते हुए कहा हे प्रियवादिनी! मैंने तुझे शिक्षा दी है, तेरे ऊपर मुझे स्वप्न में भी क्रोध नहीं है। जिस दिन तेरा

कहा सत्य होगा (राम का राज्याभिषेक) वही दिन सुदिन और सुन्दर मंगलों का देने वाला है।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यहु दिनकर कुल रीति सदाई॥
राम तिलकु जौ साँचहु काली। माँगु देउँ मन-भावत आली॥

शब्दार्थ—जेठ=(ज्येष्ठ) बड़ा। दिनकर कुल=सूर्यवंश। आली=सखी।

भावार्थ—बड़ा भाई मालिक और छोटा सेवक हो यही सूर्य वंश की सदा से रीति है। यदि सच मुच कल 'राम का तिलक' है तो हे सखी! (आनन्द के उन्मेष में दासी को सखी कह दिया, मंथरा ने ही कैकेई को जन्म से पाला था इस लिए बड़ी होने से भी मान्य थी) अपनी मनभाती वस्तु माँग, मैं दूँ।

कौसिल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाय पिआरी॥
मोपर करहिं सनेहु बिसेखी। मैं करि प्रीति परीक्षा देखी॥

शब्दार्थ—महतारी=माताएँ। सहज सुभाय=सहज स्वभाव से ही। पिआरी=प्यारी।

भावार्थ—कौशिल्या के ही समान राम को सब माताएँ सहज स्वभाव से ही प्यारी हैं। मेरे ऊपर वे विशेष (अधिक) प्रेम करते हैं। मैंने प्रीति की परीक्षा करके इस बात को अजमाया है।

जौ बिधि जनम देइ करि छोहू। होहु राम सिय पूत पतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्ह के तिलकु छोभु कस तोरे॥

शब्दार्थ—छोहू=मोह, प्रेम, कृपा। पतोहू=(पुत्र वधू) लड़के की स्त्री। छोभु=क्षोभ, दुःख।

भावार्थ—यदि ब्रह्मा कृपा करके पुनः (मनुष्य) जन्म दे, तो राम और सीता मेरे पुत्र और पुत्रवधू हों। राम मुझे प्राण से भी अधिक प्यारे हैं, उनके राज्यतिलक से तुझे क्यों दुःख होता है?

दो०—भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परि हरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमय करसि, कारन मोहि सुनाउ॥१६॥

शब्दार्थ—सपथ=(शपथ) क़सम, सौगंद । परिहरि=छोड़कर । दुराउ=छिपाव, गुप्त बात (ठेठ अवधी) । विसमय=दुःख, खेद ।

भावार्थ—तुझे भरत की शपथ, तू सत्य कह, कपट और दुराव को छोड़ दे । तू इस हर्ष के समय खेद क्यों कर रही है; मुझे इसका कारण सुना (बता) ।

एकहि बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीह करि दूजी ॥
फोरइ जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रउरेहिं लागा ॥

शब्दार्थ—दूजी=दूसरी । कपारु=सिर ।

भावार्थ—(भरत की शपथ दिलाने पर मंथरा बोली) हमारी आशा तो एकही बार में पूर्ण हो गयी अब कुछ कहना होगा तो दूसरी जीभ लगाकर कहूँगी (क्योंकि एक जिह्वा तो तुम खिचवा ही लोगी "तौ धरि जीह कढ़ावउँ तोरी") हमारा यह अभागा सिर ही फोड़ने योग्य है, क्योंकि अच्छा कहते भी आप को बुरा लगा ।

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई । ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहब अब ठकुरसोहाती । नाहिं त मौन रहब दिनराती ॥

शब्दार्थ—झूठि फुरि=झूठी, सच्ची । करुइ=कड़वी, बुरी । ठकुर सोहाती=स्वामी को अच्छी लगने वाली बात, जी हजूरी । मौन=चुप ।

हे माता ! जो झूठी-सच्ची बातें बना बना कर कहते हैं वे तुम्हें प्रिय हैं और मैं कड़वी (बुरी) हूँ । इस लिए अब मैं भी 'ठकुर सोहाती' बातें कहूँगी । नहीं तो रातो दिन चुप रहूँगी ।

करि कुरूप विधि वरबस कीन्हा । बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होइ हमहिं का हानी । चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी ॥

शब्दार्थ—कुरूप=बदसूरत । बवा=(वपन) बोया है । लुनिय=(लूणन) काटती हूँ । लहिय=(लब्ध) पाती हूँ । होब कि=क्या होऊँगी (बँगला प्रयोग " कि होइबे ") रानी=(संबोधन में है)

भावार्थ—ब्रह्मा ने बदसूरत बनाकर परवश कर दिया। क्या करूँ जो बोया है सो काटती हूं, जो दिया है सो पाती हूँ। कोई भी राजा हो मुझे क्या हानि है, हे सखी! अब दासी छोड़ कर मैं क्या होऊँगी? (अर्थात् दासी सबसे नीचा पद है, इससे कोई नीचा पद है ही नहीं जो मैं डरूँ कि राम जी राजा होंगे तो मुझे पद से नीचा कर देंगे)

जारइ जोगु स्वभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
ताते कछुक बात अनुसारी। छमिय देवि बड़ि चूक हमारी॥

शब्दार्थ—जारइ जोगु=जलाने लायक (यह मुहावरा है अर्थात् मैं बुरे स्वभाव की हूं)। अनभल=बुरा। तातें=तिससे, इस लिए। अनुसारी=कही। छमिअ=(क्षमा) माफ़ कीजिये। देवि=हे देवी! (राजमहिषी रानियों का ही सम्बोधन देवी होता है)। चूक=भूल।

भावार्थ—मेरा स्वभाव ही जलाने लायक है (मेरा स्वभाव बड़ा बुरा है) क्योंकि आप का बुरा मुझसे देखा नहीं जाता। इसलिये मैंने कुछ बात कही थी। हे देवी! माफ़ करो, मुझसे बड़ी भूल हुई॥

दो०—गूढ़-कपट-प्रिय वचन सुनि, तीय, अधर बुधि, रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतियानि॥ १७॥

शब्दार्थ—गूढ़-कपट=कपट जिसमें छिपा हुआ है। तीय=(स्त्री)। अधर=न इधर न उधर, बीच में, दुविधा युक्त। बुधि=(बुद्धि) अक़्ल। बैरिनिहिं=शत्रुनी, बैरिन। सुहृद=मित्र। पतियानि=(सं० प्रत्ययन) विश्वास किया।

भावार्थ—कैकेई ने, स्त्री होने, दुविधायुक्त बुद्धि वाली होने, रानी होने और देवताओं की माया के वश में होने के कारण, कपट-मय प्यारी दासी के वचनों को सुन कर मंथरा बैरिन को मित्र समझ कर उस पर विश्वास किया।

(अलंकार)—समुच्चय (दूसरा)।

सादर पुनि पुनि पूछति ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥

शब्दार्थ—ओही = उससे। सवरी = एक जंगली जाति की स्त्री जिसे 'शबर' कहते हैं। मोही = मोहित हो गयी। भावी = होनी। रहसी = हर्षित होगई। फावी = फलित हो गयी। घात फावी = घात लग गयी।

भावार्थ—कैकेई बारम्बार आदर पूर्वक मंथरा से पूछती है। मानों हरिनी शबरी के गान से मोहित हो गयी। (कवि कहता है) जैसी 'होनी' थी वैसी बुद्धि भी फिर गयी। घात लग गयी जान कर दासी हर्षित हुई।

तुम पूछहु मैं कहत डेराऊं। धरेउ मोर घर-फोरी नाऊं॥
सजि प्रतीति वहु विधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती जनु बोली॥

शब्दार्थ—डेराऊं = डरती हूं। नाऊं = नाम। सजि प्रतीति = विश्वास करा के। गढ़ि छोली = तराश कर, ठीक किया, अपने अनुकूल बनाकर। साढ़ साती = शनिश्चर की वह दशा जो साढ़ेसात वर्ष तक रहती है।

भावार्थ—(मंथरा कहने लगी) आप पूंछती हैं पर मैं कहते डरती हूं क्योंकि आपने मेरा नाम 'घरफोरी' रख दिया है। इस प्रकार कई प्रकार से अपना विश्वास दिला के और अपने अनुकूल करके अयोध्या की 'साढ़े साती' स्वरूपा मंथरा बोली॥

प्रिय सियरामु कहा तुम्ह रानी। रामहिं तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहे प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते॥

शब्दार्थ—फुरि = सत्य। बानी = (वाणी) बात। बीते = बीतने पर (व्यतीत होने पर)। समउ फिरे = समय पलटने पर। रिपु = शत्रु। पिरीते = प्यारे, मित्र।

भावार्थ—हे रानी! आप ने कहा कि 'हमें सीता राम प्यारे हैं और राम जी को आप प्यारी हैं' यह बात सत्य है, पर यह बात पहले थी अब वे दिन व्यतीत हो गये। क्योंकि समय पलट जाने पर प्यारे (मित्र) भी शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमल कुल पोषनिहारा। विनु जर जारि करइ तेहि छारा॥
जर तुम्हारि चह सवति उपारी। रूंधहु करि उपाउ बर-बारी॥

शब्दार्थ—भानु=सूर्य। पोषनिहारा=पोषण करने वाला। जर=(जड़) मूल। छारा=(क्षार) राख, भस्म। सवति=सपत्नी, सौत। उपारी=(उत्पाटन) उखाड़ना। रूंधना=(अवरोध) रक्षा करो, बचाओ। बारी काँटेदार झाड़ों की रोक।

भावार्थ—(क्योंकि) सूर्य कमलों के कुल का पोषण करने वाला है, परन्तु बिना जड़ के वह भी उसे (कमल को) जलाकर राख कर देता है॥ सौत आपकी जड़ उखाड़ना चाहती है इसलिए तुम उस जड़ के चारों ओर उपाय रूपी श्रेष्ठ बारी लगाकर उसकी रक्षा करो।

दो०—तुम्हहिं न सोच सोहाग बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुहुं मीठ नृप, राउर सरल सुभाउ॥ १८॥

शब्दार्थ—सोहाग=(सं० सौभाग्य) अच्छा भाग्य, अहिवात। मुंहु मीठ=चिकनी चुपड़ी बातें करने वाला, मिठबोला।

भावार्थ—आप को अपने सौभाग्य बल से किसी प्रकार का सोच नहीं है, आप राजा को अपने वश में समझी हैं पर राजा तो मन के कपटी और मुंह के मिठबोले हैं। आप का स्वभाव सरल है (आप उनकी कपटपूर्ण किन्तु मीठी बातों पर विश्वास कर लेती हैं)।

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सवाँरी॥
पठए भरत भूप ननिअउरे। राम-मातु मत जानव रउरे॥

शब्दार्थ=राम महतारी=कौशिल्या जी। बीचु पाइ=मौका पाकर। ननिअउरे=(नानालय) ननिहाल। रउरे=आप।

भावार्थ—चतुर किन्तु गम्भीर राम जी की माता (कौशिल्या ने) मौका पाकर अपनी बात सँवार ली। राजा साहब ने जो भरत जी को ननिहाल भेजा है इस में भी आप कौशिल्या जी की सम्मति समझें।

सेवहिं सकल सवति मोहिं नीके। गरबित भरत मातु बल पी के॥
सालु तुम्हार कौसिलहिं माई। चतुर कपट नहिं परइ लखाई॥

शब्दार्थ—नीके=भली भांति, अच्छी तरह। पी=(प्रिय) पति। सालु=दुःख, पीड़ा। नहिं परइ लखाइ=लख नहीं पड़ता।

भावार्थ—(कौशल्या जी चाहती हैं कि) सब सौतें मुझे अच्छी तरह से सेवें अर्थात् हमारी सेवा करें, भरत की माता (आप) पति के बल पर बहुत गर्वित हो रही हैं हे माता आप कौशल्या जी के हृदय में शालती हैं (खटकती हैं)। वे चतुर हैं उनका कपट लख नहीं पड़ता।

राजहिं तुम पर प्रीति बिसेखी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥
रचि प्रपंचु भूपहिं अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई॥

शब्दार्थ—सकइ नहिं देखी=देख नहीं सकती (मुहावरा) बुरा लगता है। रचि प्रपंचु=माया फ़ैला कर। लगन धराइ=(लग्न धराना मुहावरा है) मुहूर्त निश्चित कराया है।

भावार्थ—राजा साहब आप के ऊपर अधिक प्रेम करते हैं, कौशल्या सौत स्वभाव से उसे देख नहीं सकती (सिहाती है) इसलिए माया फैलाकर और राजा को अपना कर कौशल्या ने राम के राज्याभिषेक के लिए मुहूर्त निश्चित करवाया है।

यह कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहिं सुहाइ मोहिं सुठि नीका।
आगिलि बात समुझि उर मोहीं। देउ दैउ फिरि सो फल ओही॥

शब्दार्थ—सुठि नीका=बहुत अच्छा। आगिलि=अगली, आगे की। दैउ=हे दैव। फिरि=उलट कर। ओही=उसेही।

भावार्थ—इस कुल में राम को तिलक होना उचित है, सबको भला लगता है और मुझे तो बहुतही अच्छा है, परन्तु अगली बात विचार कर मुझे डर लगता है। हे दैव! यह फल उलट कर उसेही (कौशल्या को) दे।

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिल पन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहेसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु॥१६॥

शब्दार्थ—रचि पचि=(रचि=बनाकर+पचि=पकाकर) भली

भाँति बैठाकर। कोटिक=कितनेही। सत सवति=सौ सपत्नियों की कथा*
वाढ़=बढ़े। विरोधु=वैर भाव।

भावार्थ—मंथरा ने कितनेही कुटिलपने की बातें कैकेई के हृदय में बैठाकर कपट द्वारा प्रबोध किया (समझाया) सौ सौतों* की कथा भी कही जिससे वैर और बढ़े।

भावी बस प्रतीति उर आई। पूंछ रानि निज सपथ देवाई।
का पूंछहु तुम अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना॥

शब्दार्थ—भावी=होनी, होनहार।

भावार्थ—होनहार के कारण कैकई के हृदय में मंथरा पर विश्वास हो गया। तब रानी अपनी शपथ दिलाकर पूछने लगी। मंथरा बोली—क्या पूछती हैं? आपने अब भी नहीं समझा? अपना भला और बुरा तो जानवर भी पहचान लेते हैं।

भयउ पाखु दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोसन आजू।
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे। सत्य कहे नहिं दोषु हमारे॥

शब्दार्थ—पाख=(पक्ष) दो। समाजू सजत=तैयारी होते।

भावार्थ—तिलक की तैयारी होते दो दिन हो गये। आप आज मुझसे इसकी खबर पा रही हैं। मैं आप के राज्य में खाती पहनती हूं, मेरे सत्य कहने से कुछ दोष नहीं।

जौ असत्य कछु कहब बनाई। तौ विधि देइहि हमहिं सजाई।
रामहिं तिलक कालि जौ भयेऊ। तुम्ह कहुँ विपति-बीजु विधिबयेऊ

शब्दार्थ—सजाई=(फा० सजा) दण्ड। बयेऊ=बो दिया।

भावार्थ—यदि मैं कुछ असत्य बनाकर कहूं (झूठ बोलूं) तो मुझे

---

* चित्रकेतु नामक राजा के १०० रानियां थीं। उनमें से किसी एक को एक पुत्र हुआ। शेष रानियों ने सौतियाडाह से मिलकर उस बच्चे को विष देकर मार डाला। यह कथा भागवत में है।

ब्रह्मा इसका दण्ड देगा। कदाचित् कल राम को राज्याभिषेक हो गया तो समझ रखिये कि ब्रह्मा ने आपके लिए विपत्ति का बीज ही बो दिया।

रेख खँचाइ कहउँ बल भाखी। भामिनि भइउ दूध कै माखी।
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

शब्दार्थ—रेख खँचाइ कहउँ=रेखा खींचकर कहती हूं। (यह मुहावरा है इसका अर्थ है जोर देकर कहना) भामिनि=(भाने वाली) हे भामिनि। दूध कै माखी=दूध में गिरी हुई मक्खी, तुच्छ (दूध में गिरी हुई मक्खी निकाल कर फेंक दी जाती है)। आन=दूसरा।

भावार्थ—मैं रेखा खींचकर बल पूर्वक कहती हूं कि हे भामिनी! आप दूध में गिरी हुई मक्खी के समान तुच्छ हो जायेंगी। उस समय यदि पुत्र सहित सेवा करेंगी तो घर में रह सकेंगी अन्यथा नहीं।

दो०—कद्रू बिनतहिं*दीन्ह दुखु, तुम्हहिं कौसिला देव।
भरतु बंदि-गृह सेइहहिं, लषनु राम कर नेब॥ २०॥

शब्दार्थ—कद्रू विनता=कश्यप की स्त्रियां। देव=देगी। बंदिगृह=कारागार, जेलखाना। नेब=(अरबी नायब) मददगार, सहायक। मंत्री।

भावार्थ—कद्रू ने जिस प्रकार विनता को दुख दिया था उसी प्रकार कौशल्या तुम्हें दुःख देगी। भरत जी जेलखाने में पड़े रहेंगे और लक्ष्मण राम के मंत्री होंगे।

कैकयसुता सुनत कटुबानी। कहि न सकइ कछु सहमिसुखानी।
तन पसेउ कदली जनु काँपी। कुबरी दसन जीह तब चाँपी॥

शब्दार्थ—कैकय सुता=कैकई। सहमि=(फारसी) डरकर। पसेउ=(प्रस्वेद) पसीना। कदली=केला। चांपी=दबायी।

भावार्थ—कैकेई यह कटुवाणी सुनतेही डरकर सूख गयी, कुछ कह नहीं सकती (घिग्घी बँध गयी) शरीर में पसीना हो आया और केले की तरह

---

* परिशिष्ट में देखो।

काँपने लगी। यह देख कर मंथरा ने अपने दांतों के नीचे जीभ दबायी (अरे! गजब हो गया)

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरज धरहु प्रबोधेसि रानी॥
कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवइ फिरि उकठि कुकाठू॥

शब्दार्थ—प्रबोधेसि=समझाया। कुपाठ=बुरी बातें (पाठ पढ़ाना मुहावरा है)। उकठि कुकाठू=सूखा हुआ काठ, जो वृक्ष खड़े खड़े सूख जाता है उसकी लकड़ी को उकठा काठ कहते हैं।

भावार्थ—(तब मंथरा ने) बहुत सी कपट की कहाँनियाँ कह कर रानी को समझाया, कि धीरज धरिए। उसने कैकेई को बुरी बातें समझा कर ऐसा कठिन कर दिया जैसे उकठा हुआ काठ फिर नहीं नवता।

फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहिं सराहइ मानि मराली॥
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥

शब्दार्थ—बकिहिं=बगुली को। मानि=समझ कर। मराली=हंसिनी। फुरि=सत्य। फरकइ=फड़कती है।

भावार्थ—कैकेई का भाग्य पलट गया, और कुचाल उसे प्यारी लगने लगी। वह बगुली को हंसनी समझ कर सराहने लगी। (कैकेई ने कहा) ऐ मंथरा सुन, तेरी बात सच है, मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़कती है (स्त्रियों की दाहिनी आँख का फड़कना अशुभ है)।

दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥
काह करउँ सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥

शब्दार्थ—मोह बस=ग़लती से। सूध=सीधा। काऊ=कभी।

भावार्थ—मैं प्रति दिन रात में बुरे स्वप्न देखती हूँ, किन्तु अपनी ग़लती से तुमसे नहीं कहती। ऐ सखी, मैं क्या करूँ? मेरा सीधा स्वभाव है, मैंने कभी दाहिना बाँया नहीं जाना।

दो०—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहिं, दैव दुसह दुख दीन्ह॥२१॥

शब्दार्थ—अपने चलत=अपने अधिकार के समय (मुहावरा)। अनभल=बुराई। क=का (मैथिल प्रयोग)। अघ=पाप।

भावार्थ—मैंने अपने अधिकार भर में (भरसक) आज तक किसी की बुराई नहीं की। न जाने किस पाप के कारण दैव ने मुझे सहसा यह असह्य दुख दिया।

नैहर जनम भरब बरु जाई। जियत न करब सवति सेवकाई॥
अरि बस दैव जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जिअनु न चाही॥

शब्दार्थ—नैहर=स्त्री के पिता का घर, मैका। जनम भरब=जीवन के दिन बिताऊँगी। बरु=(बरंच) बल्कि। करब=करूँगी। जियनु=जीना।

भावार्थ—मैं बल्कि मैके में जाकर दिन बिताऊँगी, (परन्तु) जीते जी सौत की सेवा न करूँगी। दैव जिसे शत्रु के अधीन रखकर जिलाता है, उसका मरना ही अच्छा है, उसे जीना न चाहिए।

दीन वचन कह बहु विधि रानी। सुनि कुबरी तिय-माया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम कहँ दिन दूना॥

शब्दार्थ—तिय माया=त्रिया-चरित्र। मन ऊना मानि=मन में बुरा मान कर (दुखित होकर) सोहागु=(सौभाग्य) अहिवात।

भावार्थ—रानी ने अनेक प्रकार के दीन वचन कहे, (जिन्हें) सुनकर कुबड़ी ने त्रिया चरित्र ठाना (फैलाया)। (और कहने लगी कि आप) अपने मन में दुखित होकर ऐसा क्यों कहती हैं, आप का सुख और अहिवात दिन दिन दूना है।

(नोट)—कोई २ कहते हैं कि ऐसा हुआ नहीं। तब यों अर्थ करना होगा कि 'दिन' का अर्थ ७ और 'दू' का अर्थ २। अर्थात्—तुमको सुख

सौभाग्य (७–२)=५ दिन ही मिलैगा अधिक नहीं। वास्तव में ऐसाही हुआ। आज से छठें दिन राजा का देहान्त हो गया।

जेइ राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका॥
जबते कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न वासर नींद न जामिनि॥

शब्दार्थ—फलु परिपाका=अन्तिम परिणाम। कुमत=(कुमंत्र) बुरी सलाह। वासर=दिन। जामिनि=(यामिनि) रात।

भावार्थ—जिसने आप की बड़ी बुराई सोची है, वही इसका अंतिम परिणाम भोगेगा। ऐ स्वामिनी! जब से मैंने यह बुरी सलाह सुनी, तब से न तो दिन में भूख लगती है, न रात में नींद ही आती है।

पूँछेउ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यहु साँची॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ। हैं तुम्हरी सेवा बस राऊ॥

शब्दार्थ=रेख तिन्ह खाँची=उन्होंने बलपूर्वक कहा. (रेख खँचाकर कहना मुहावरा है)। त=तो। (मैथिल)।

भावार्थ—मैंने गुणियों से (ज्योतिषियों से) पूछा, तो उन्होंने बल पूर्वक कहा, कि भरत राजा होंगे, यह बात ठीक है। (इसलिये) हे भामिनी, आप करिये तो मैं उपाय बताऊँ, राजा जी तुम्हारी सेवा से तुम्हारे वश में हैं ही (वे तुम्हारी बात मानही लेंगे)।

(नोट)—लोग शंका करते हैं कि भरत तो राजा नहीं हुए। गुणियों का कथन झूठा हुआ। तब 'भुआल' का अर्थ "भू+आलय" करना होगा, अर्थात् भूमि के नीचे घर बनाकर रहनेवाले। भरत जी नंदीग्राम में भूमि के नीचे कंदरा में रहते रहे हैं।

दो०—परौं कूप तव वचन लगि, सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़, कस न करब हित लागि॥२२॥

शब्दार्थ—तव वचन लगि=तेरे कहने से। हित लागि=भलाई के लिये।

भावार्थ—मैं तेरे कहने से कुएँ में गिर सकती हूं; और अपने पुत्र तथा पति को भी छोड़ सकती हूं। तू मेरा बड़ा दुख देखकर कहती है, मैं उसे अपनी भलाई के लिये क्यों न करूंगी ? (अवश्य करूँगी)।

चौ०—कुबरी करी कुबलि कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई।
लखइ न रानि निकट दुख कैसे। चरइ हरित तृन बलिपशु जैसे॥

शब्दार्थ—करी=कसाइन (वररुचि कोश में यह शब्द देखो) कुबलि=बुरी बलि (बलि 'नर' जीव की दी जाती है 'स्त्री' जीव होनेके कारण केकई कुबलि है)। पाहन=(पाषाण) पत्थर, सिल्ली। टेई=धरी, तेज किया। हरित तृन=हरी घास।

भावार्थ—कुबड़ी रूपी कसाइन ने कपट रूपी छूरी को हृदय रूपी पत्थर पर तेज करके कैकेयी को कुबलि बनाया (अर्थात जैसे कसाइन छूरी को पत्थर पर तेज करके पशु का बलिदान करती है उसी प्रकार कुबड़ी ने अपने हृदय के कपट से कैकयी को अपने वश में कर लिया)। रानी अपने पास के दुख को इस प्रकार नहीं देखती, जैसे बलिदान किया जाने वाला पशु हरी घास चरता है (पर अपने बलिदान की बात नहीं जानता)।

अलंकार=रूपक।

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी।
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहेउ कथा मोहिं पाहीं

शब्दार्थ—माहुर=विष, जहर। पाहीं=से।

भावार्थ—(मंथरा की) बातें सुनने में तो मधुर हैं लेकिन उनका परिणाम कठोर है, मानों वह शहद में विष घोल कर दे रही है। मंथरा कहने लगी हे स्वामिनी ! आप ने मुझसे एक कथा कही थी उसकी सुधि है य नहीं ?

दुइ बरदान भूप सन थाती। माँगहु आज जुड़ावहु छाती।
सुतहि राज रामहिं बनवासू। देहु, लेहु सब सवति हुलासू॥

शब्दार्थ—सन=से (पास)। थाती=(स्थिति) धरोहर, बंधक।

छाती जुड़ावहु=छाती ठंडी करो, प्रसन्न हो (मुहावरा है)। हुलासू=आनन्द।

भावार्थ—आप के दो वरदान राजा के पास धरोहर हैं, उन्हें माँगकर आज अपनी छाती ठंडी कीजिए। (एक वरदान से) पुत्र को राज (दीजिए) और (दूसरे वरदान से) राम जी को वनवास दीजिए और सब सौतों का आनन्द ले लीजिए (नष्ट कर दीजिए)।

अलंकार=परिवृत्त।

भूपति राम सपथ जब करई। तब माँगेहु जेहि बचनु न टरई।
होइ अकाजु आजु निशि बीते। बचनु मोर प्रिय मानहु जी ते॥

शब्दार्थ—सपथ=सौगन्ध। अकाजु होइ=काम बिगड़ेगा, हर्ज होगा।

भावार्थ—जब राजा राम की सौगन्ध खायें, तब वर माँगना, जिससे बात न टले। आज रात बीत जाने से काम बिगड़ जायगा, मेरी बात हृदय से प्रिय समझो।

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु॥२३॥

शब्दार्थ—कोप गृह=क्रोध घर (राज महलों में रानियाँ जब राजा से रूठ जाती थीं तो उनके लिए एक अलग घर रहता था जिसे 'कोपगृह' कहते थे) सजग=चैतन्यता से, होशियारी से। जनि=मत, नहीं। पतियाहु (सं० प्रत्ययन) विश्वास करो।

भावार्थ—उस पापिन (मंथरा) ने कैकेई के ऊपर बड़ी बुरी घात लगा कर कहा कि 'कोप गृह' को जाओ। सब काम होशियारी के साथ करना, जल्दी (राजा पर) विश्वास मत करना।

कुबरिहिं रानि प्रान प्रियजानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि सहारा॥

शब्दार्थ—हितु=हितुवा, भलाई चाहने वाला। सहारा=आधार।

भावार्थ—कुबरी (मंथरा) को रानी कैकई प्राणों प्रिय समझ कर बारम्बार उसे बड़ी बुद्धि वाली कह कर उसकी बड़ाई करने लगी और कहा—हे मंथरा ! तेरे समान संसार में मेरा (दूसरा कोई) हितुआ नहीं है। तू मुझ (जल में) बही जाती हुई को आधार स्वरूप मिल गयी। (अर्थात् जल में बहते हुए को यदि कोई लकड़ी या स्थान आदि उसके बचाव के लिए मिल जाता है तो वह बच जाता है उसी प्रकार तेरे कहने से अब मैं सौतों द्वारा ढायी जाने वाली आपत्ति या दुःख से बच जाऊँगी।)

जौं विधि पुरव मनोरथु काली । करउँ तोहि चखुपूतरि आली ।
बहु विधि चेरिहिं आदरु देई । कोप भवन गवनी कैकेई ॥

शब्दार्थ—पुरव=(पूर्ण) पूरा करे। चखु पूतरि करउँ=आँख की पुतली बना लूंगी अर्थात् जैसे आँख की पुतली की रक्षा लोग बड़ी सावधानी से करते हैं वैसेही मैं तुझे अधिक प्रिय बनाकर रखूँगी।

भावार्थ—यदि मेरा मनोर्थ कल विधाता पूरा कर दे (राम जी अभिषिक्त न हो सकें) तो हे सखी मैं तुझे आँखों की पुतली बना लूं (अधिक प्यार करूँगी)। इसी प्रकार तरह तरह से दासी मंथरा का आदर करके कैकेयी कोपगृह को गयी।

विपति बीजु बरषारितु चेरी । भुइँ भइ कुमति कैकई केरी ॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा । बर दोउ दल, दुख फल परिनामा ॥

शब्दार्थ—बीजु=बीजा, बीया। भुइँ=भूमि। अंकुर जामा=अँकुआ निकला। दोउ दल=दोनों पत्ते (बीज बोने पर जो पहले पहल अँकुआ फूटने के बाद दो पत्ते पौधे में लगते हैं)।

भावार्थ—(कवि कहता है) विपत्ति ही बिया है, दासी मंथरा वर्षा ऋतु है, कैकेयी की दुर्बुद्धि ही भूमि है (जिसमें) कपट रूपी जल पाकर अंकुर निकला है। दोनों वर उस अंकुर के नव जात दो पत्ते हैं और अन्त में जो दुःख होगा वही इस पौधे का फल है। (अर्थात् बरसात में बीज जिस प्रकार भूमि में जल पाकर अंकुरित होता है और उसमें दो दल

निकलते हैं, फिर अन्त में उसी बीज से उत्पन्न पौधे में फल लगते हैं, ठीक उसी प्रकार मंथरा ने अपने कपट से कैकेयी की दुर्बुद्धि के सहारे विपत्ति का साज-सामान ठीक कर दिया। दोनों वरदान उस विपत्ति के पूर्वरूप हैं, जिनके कारण अन्त में दुःख पैदा होगा)।

अलंकार—रूपक (सम अभेद)।

कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि किछु जान न कोई॥

शब्दार्थ—कोप समाजु साजि=क्रोध के सामान सजकर, (भूषण त्याग कर, फटी पुरानी धोती पहन, केश आदि छितरा कर)। बिगोई= बिगड़ गई, नष्ट हो गई। राउर=रनिवास। कोलाहलु=जन समूह के बोलने से उत्पन्न हुआ शब्द, तुमुल ध्वनि।

भावार्थ—कैकेयी क्रोध के सब सामान सजकर (पृथ्वी पर) लेट गयी। इसकी दुर्बुद्धि ने इसे राज्य करते हुए नष्ट कर डाला। रनिवास और नगर भर में कोलाहल हो रहा है (राम जी का कल राज्य तिलक होगा इस आनन्द में लोग मस्त है) पर इस कुचाल की खबर किसी को भी नहीं है (कि कैकेयी इस तिलक में बाधक होने जा रही है)।

दो०—प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहिं सुमंगलचार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार॥ २४॥

शब्दार्थ—सुमंगलचार सजहिं=मंगलाचार सजते हैं, मांगलिक साज सामान सजा रहे हैं। निर्गमहिं=निकलते हैं। दरबार=(दर=द्वार+ बार=पल्ला, पक्ष) पल्लाओं के बीच, द्वारे, दरवाजे।

भावार्थ—नगर के सब स्त्री-पुरुष आनन्दित हैं और मांगलिक साज-सामान सजा रहे हैं। कुछ लोग प्रविष्ट होते (घुसते) हैं, कुछ लोग (भीतर से) निकलते हैं, इस प्रकार राजा दशरथ जी के दरवाजे पर भीड़ लगी है।

बालसखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दसपांच रामपहिं जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूंछहिं कुशलखेम मृदु बानी॥

शब्दार्थ—कुसल=(कुशल) चतुराई पूर्वक दुनिया में व्यवहार करते हुए धन कमाना। षेम=(क्षेम) जो कमाया है उसे भोगना और सुरक्षित रखना। कुसल षेम पूछहिं=(कैसे रहे, आनन्द से जीवन वहन होता है न ? लड़के—बाले अच्छे हैं आदि पूछना यही कुशल क्षेम पूछना है)

भावार्थ—रामचन्द्र जी के लड़कपन के साथी (उनका राज्य तिलक सुन कर) हृदय में आनन्दित होते हैं, दस, पाँच मिलकर राम जी के पास जाते हैं। रामचन्द्र जी उनका प्रेम पहचान कर (देखकर) उनका आदर सत्कार करते हैं और मीठी बातों से कुशल तथा क्षेम पूंछते हैं।

फिरहिं भवन प्रभु आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई॥
को रघुवीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा॥

शब्दार्थ—प्रभु=रामजी। परसपर=आपस में। सरिस=(सदृश) समान।

भावार्थ—(वे बाल सखा) रामचन्द्रजी से आज्ञा पाकर लौटते हैं, (लौटते समय) आपस में रामजी की बड़ाई करते हैं और कहते हैं—'रामचन्द्र जी के समान संसार में शील और स्नेह का निबाहनेवाला कौन है ? (कोई नहीं है)।

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यहु हमहीं।
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात एहु ओर निबाहू॥

शब्दार्थ—ईसु=हे विधाता। सियनाहू=(सीतानाथ) रामचन्द्रजी। नात=नाता, सम्बन्ध। ओर निबाहू=अन्त तक निर्वाह।

भावार्थ—हे विधाता ! हम कर्मवश जिस जिस योनि में जन्में, उस उस योनि में हमें यह अवस्था दो कि 'हम तो सेवक हों और रामचन्द्र जी हमारे स्वामी हों (यही नहीं) इस सम्बंध का अन्त तक निर्वाह भी हो।

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकय-सुता हृदय अति दाहू।
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ कि नीच मतें चतुराई॥

शब्दार्थ—दाहू=जलन। नीच मते=नीच बुद्धि वाले के मत में आने से, नीच का कहना मानने से। गरुआई=बड़प्पन।

भावार्थ—नगर में सबको ऐसी इच्छा है, परन्तु कैकेयी के हृदय में बड़ी जलन हो रही है। बुरी संगति पाकर (बुरी संगति में रहनेवाला) कौन नष्ट नहीं होता? (किसका पतन नहीं होता? सबका पतन हो जाता है) क्या नीच के कहने में आने से बड़प्पन रह सकता है? (कभी नहीं)।

दो०—साँझ समय सानंद नृपु, गयेउ कैकई गेहु।
गवनु निठुरता निकट किय, जनु धरि देहु सनेहु ॥२५॥

शब्दार्थ—साँझ=(संध्या) शाम। निठुरता=निष्ठुरता, हृदय की कठोरता।

भावार्थ—संध्या समय राजा दशरथ सानंद कैकयी के भवन में गये। मानों निष्ठुरता के पास (साक्षात्) स्नेह ही शरीर धारण करके गया। (अर्थात् कैकयी इस समय निष्ठुर हो रही है और राजा उससे सप्रेम मिलने जा रहे हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयवस अगहुँड़ परइ न पाऊ॥
सुरपति बसइ बाहँ बल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताके॥
सो सुनि तिय रिस गयेउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे॥

शब्दार्थ—अगहुँड़=अगाड़ी, आगे। रिस=कोप, गुस्सा। सूल=त्रिशूल। कुलिस=वज्र, अस्त्र विशेष। असि=तलवार। अँगवनिहारे=(अंग प्रहार) सहनेवाले। रतिनाथ=कामदेव।

भावार्थ—राजा दशरथ जी (दासियों से कैकेयी के) कोप गृह में जाने की बात सुनकर सकुच गये। भय के कारण आगे पैर ही नहीं पड़ता। (दशरथ जी के सकुचने का कारण यही था कि वे कैकेयी के इकरारनामे

के खिलाफ़ राम जी को राज्य तिलक कर रहे थे, कोप गृह में कैकेयी गयी है यह सुनते ही वे भाँप गये, और सकुच गये) इन्द्र भी जिनकी भुजाओं के सहारे बसता है (देवासुर-संग्राम में दशरथ जी ने इन्द्र की बड़ी सहायता की थी) सब राजे जिसका रुख देखा करते हैं, वे ही राजा दशरथ जी का क्रोध सुनते ही सूख गये (कवि दिखलाता है कि कामदेव का प्रताप और बड़प्पन तो देखिये)। जो राजा त्रिशूल, कुलिश, तलवार, आदि की चोट सहनेवाले थे वे ही कामदेव के पुष्प के बाणों से आहत हो गये।

अलंकार—विकस्वर, निदर्शना, विभावना (दूसरी)।

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयेऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयेऊ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना॥

शब्दार्थ—पटु=वस्त्र। डारि दिए=फेंक दिये। भूषन=गहना।

भावार्थ—डरते डरते राजा कैकेयी के पास गये। उसकी दशा देखकर हृदय में भारी दुःख हुआ। (देखते हैं) कैकेई भूमि में लेटी है, वस्त्र मोटा और पुराना है, शरीर के नाना प्रकार के गहने उतार कर बिखरा दिये हैं।

कुमतिहिं कसि कुवेषता फाबी। अनअहिवात सूच जनु भावी।
जाइ निकट नृपु कह मृदुबानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी॥

शब्दार्थ—कसि=कैसी। फाबी=फब रही है, उचित जान पड़ती है। अनअहिवात=असौभाग्य, विधवापन। भावी=होनहार। केहि हेतु=किस बात के लिए। रिसानी=क्रोधित हुई।

भावार्थ—उस दुर्बुद्धि कैकयी को वह कुवेष कैसा ठीक फब रहा है मानो (अभी से) होनहार असौभाग्य की सूचना दे रहा है। राजा उसके पास जाकर मीठी वाणी से बोले—'हे प्राण प्रिये! किस बात के लिए रिसाय गयी हो?'

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

छन्द—केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहिं निवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग-भामिनि बिषम भाँति निहारई॥

दोउ वासना रसना, दसन वर, मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भावतव्यता बस काम कौतुक लेखई॥

शब्दार्थ—पानि=हाथ। निवारई=निवारण करती, झटक देती है। भुअंग-भामिनि=साँपिन, नागिन। वासना=अभिलाषा। रसना=जिह्वा, जीभ। वर=वरदान। मरम ठाहरु=मर्मस्थल, नाजुक जगह। काम-कौतुक=काम-क्रीड़ा। लेखई=समझता है।

भावार्थ—राजा दशरथ जी "किस बात के लिए क्रोध किया है," कह कर कैकेयी को (दुलार से) हाथों द्वारा स्पर्श करते हैं, पर वह उन्हें झटक देती है और ऐसे देखती है मानों साँपिन क्रोधित हो कर तीखी नजरों से देखती हो। केकयी की दोनों अभिलाषाएँ (भरत राजा हों, राम वन जायँ) ही उस साँपिन की दो जीभें हैं। दोनों वरदान (भरत अभिषिक्त हों, राम चौदह वर्ष वनवास करें) ही दो दाँत हैं। वह कैकयी साँपिन के समान मर्म-स्थल देख रही है। तुलसीदास जी कहते हैं, परन्तु राजा होनहार के वश में होने के कारण (इन हस्त निवारण आदि चेष्टाओं को) काम-क्रीड़ा ही समझते हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और रूपक।

सो०—बार बार कह राउ, सुमुखि, सुलोचनि, पिकवचनि।
कारन मोहिं सुनाउ, गज गामिनि निज-कोप कर॥२६॥

भावार्थ—बारम्बार राजा कहते हैं हे सुमुखि! हे सुलोचनि!! हे कोकिल वचनि!!! हे गज गामिनि!!! तू अपने कोप का कारण मुझे बता अर्थात् तेरा सुन्दर मुख है, नेत्र भी सुन्दर, बोली भी सुन्दर है, चाल भी अच्छी है फिर भी तू कोप कर रही है क्या कारण है? शीघ्र कह। राजा इन विशेषणों द्वारा प्रेम दिखा कैकयी का मान भंग करना चाहते हैं।

अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा॥
कहु केहि रंकहिं करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू॥

शब्दार्थ—अनहित=अनभल, बुरा। रंकहिं=दरिद्र को।

भावार्थ—(दशरथ जी कहते हैं) ऐ प्रिये! तेरा अनभल किसने किया है? किसे दो सिर (मस्तक) हो गये हैं? किसे यम लेना चाहते हैं (अर्थात् जिसने तुम्हारा अनभल किया है उसको यदि दो शिर होंगे तो शायद वह बच जाय क्योंकि एक सिर तो हम उसका काट ही लेंगे। कौन मरना चाहता है) बता किस दरिद्र को राजा बना दूँ और किस राजा को देश निकाला दे दूँ? (संयोग से दशरथ जी वही बात करने को तैयार हो रहे हैं जो कैकेयी चाहती है अर्थात् भरत (रंकहि) को राजा बनाना, राम (नृपति) को देशनिकाला देना)

सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर-नारी॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मन तव आनन चन्द चकोरू॥

शब्दार्थ—काह=क्या, किस गिनती में। कीट=कीड़े। बपुरे=बेचारे। बरोरू=(बर+उरु) सुन्दर जंघे वाली।

भावार्थ—मैं तेरा अमर शत्रु भी मार सकता हूँ। बेचारे कीड़ों के समान संसारी स्त्री-पुरुष किस गिनती में है। हे बरोरु! तू मेरा स्वभाव जानती है कि मेरा मन तेरे मुख-चन्द्र का चकोर है। (जैसे चकोर सदा चन्द्रमा को देखा करता है उसी प्रकार मैं भी तेरा मुख नित्य देखा करता हूँ)।

अलंकार—परंपरित रूपक।

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरे। परिजन प्रजा सकल बस तोरे॥
जौ किछु कहउँ कपटु करि तोहीं। भामिनि राम सपथ सत मोहीं॥

भावार्थ—हे प्रिये! मेरा प्राण, चारो लड़के, परिजन, प्रजा सब तेरे वश में हैं। इसमें यदि मैं तुझसे कुछ कपट करके कहूँ तो हे भामिनि! मुझे राम की सौ कसमें हैं। (अर्थात् मैं राम की सौ बार सौगन्ध खाकर कहता हूं कि सब कुछ तेरे वश में है)

विहँसि माँगु मन भावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता॥
घरी कुघरी समुझि जिअ देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू॥

शब्दार्थ—घरी कुघरी=मौका बे मौका, समय कुसमय।

भावार्थ—हे प्रिये हँसकर मन को भाने वाली बात मुझ से माँगो और गहनों को अपने सुन्दर शरीर में सजाओ। मौका बेमौका अपने हृदय में विचार लो, और इस कुवेष को शीघ्र ही त्यागो।

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, विहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु, मनहुँ किरातिनि फंद॥२७॥

भावार्थ—यह बात सुनकर और हृदय में बड़ी (राम की) सौगन्ध समझकर निर्बुद्धि कैकयी हँसने लगी। तत्पश्चात् शरीर में आभूषण भी सजाने लगी। (कैकयी का आभूषण सजाना ऐसा था) मानो मृग को देखकर कोई किरातिनी जाल रच रही हो। (अर्थात् कैकयी का हँसना और आभूषण पहनना राजा दशरथ जी को धोखे में डालने के लिए था)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी॥
भामिनि भयउ तोर मन भावा। घर घर नगर अनंद बधावा॥

शब्दार्थ—सुहृद=मित्र, हितुआ। मंजुल=सुन्दर। मन भावा=मन को भाने वाला, मन को भला लगने वाला। बधावा=उत्सव।

भावार्थ—राजा दशरथ जी हृदय में, कैकयी को अपनी हितुआ समझ कर पुनः प्रेम से पुलकित हो सुन्दर और मीठी वाणी से बोले—हे भामिनि! तेरे मन को भाने वाली बात हुई। नगर के प्रत्येक घर में आनन्दोत्सव हो रहा है।

रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥

शब्दार्थ—दलकि उठेउ=टपकने लगा, पीड़ा हुई। छुइ गयउ=छू गया, किसी ने स्पर्श कर लिया। पाक=(पक्व) पका हुआ। बरतोरू=बाल

तोड़ (रगड़ आदि से जब बाल टूट जाते हैं तो प्रायः उस स्थान पर फुंसी निकल आती है, जो बड़ा कष्ट देती है, यदि उसे किसी ने छू दिया तो असह्य पीड़ा होती है, उसे ही 'बरतोड़ कहते हैं)

भावार्थ—"कल राम को युवराज पद दूँगा, हे सुनयनी ! मंगल साज सजो।" (दशरथ जी के इन वचनों को सुनते ही) कैकयी के कठोर हृदय में असह्य ठेस लगी (यह पीड़ा उसे ठीक वैसी ही हुई) जिस प्रकार पका हुआ बरतोड़ छू जाय और टपकने लगे ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

ऐसिउ पीर विहँसि तेइँ गोई । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ।
लखी न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल-मनि गुरू पढ़ाई ॥

शब्दार्थ—गोई=(गोपन) छिपायी । चोर नारि=चोरी से व्यभि-चार करने वाली स्त्री, परकीया नायिका । मनि=मणि, यहाँ पर श्रेष्ठ ।

भावार्थ—ऐसी (असह्य) पीड़ा भी उस कैकयी ने हँस कर छिपाई । जैसे परकीया प्रत्यक्ष नहीं रोती (परकीया का उपनायक यदि क्षतिग्रस्त हो या मर जाय तो वह व्यभिचार के खुल जाने के डर से सब के सामने नहीं रोती) राजा ने उसका कपट पूर्ण चातुर्य न समझ पाया क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों में श्रेष्ठ गुरु (मंथरा) की सिखायी पढ़ायी थी ।

अलंकार—उदाहरण (पूर्वार्द्ध में) । काव्य लिंग (उत्तरार्द्ध में)

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू । नारि चरित जलनिधि अवगाहू ।
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी । बोली बिहँसि नयन मुहुँ मोरी ॥

शब्दार्थ—जलनिधि=समुद्र । अवगाहू =अगाध, अथाह, गहरा । मोरी=मोड़ कर, टेढ़ा करके (नखरे से) ।

भावार्थ—(यदि कोई कहे कि राजा दशरथ जी इतने नीतिज्ञ थे, पर कैकयी की चाल क्यों न समझ सके ? इसके लिये तुलसीदास जी लिखते हैं) यद्यपि राजा दशरथ जी नीति में निपुण थे पर, स्त्री-चरित्रों का

४

समुद्र अथाह है (उसे राजा दशरथ भी नहीं नाप सकते थे) कैकयी कपटपूर्ण प्रेम बढ़ाकर, नेत्र और मुख टेढ़े करके हँसती हुई पुनः बोली।

दो०—माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ देहु न लेहु।
देन कहेउ बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—देहु न लेहु=देते लेते नहीं (मुहावरा है)।

भावार्थ—हे प्रिय ! आप माँग माँग तो बराबर ही कहा करते हैं, पर कुछ देते लेते नहीं। आपने दो वरदान देने के लिये कहे थे, सो मुझे तो इनके पाने में भी संदेह जान पड़ता है (कि वे मिलेंगे या नहीं)

जानेउँ मरम राउ हँसि कहई। तुम्हहिं कोहाव परम प्रिय अहई।
थाती राखि न माँगेउ काऊ। बिसरि गयेउ मोहिं भोर सुभाऊ॥

शब्दार्थ—मरम जानेउँ=मतलब समझ गया। कोहाब=कुपित होना। थाती=(स्थित) धरोहर, अमानत। काऊ=कभी। भोर=भोला, सीधा।

भावार्थ—राजा हँस कर कहने लगे—मैं तुम्हारा मतलब समझ गया, तुम्हें कुपित होना ही अधिक प्यारा है। मेरे पास थाती रखकर तुमने उसे कभी माँगा नहीं, सीधे स्वभाव के कारण मुझे वह भूल गया (याद न रहा)।

झूँठेहु हमहिं दोष जनि देहू। दुइ के चारि माँगि मकु लेहू।
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाउ बरु बचनु न जाई॥

शब्दार्थ—झूँठेहु=झूठ मूठ। जनि=मत। के=बदले। मकु=चाहे। जाउ=चला जाय। बरु=(बरंच) बल्कि, चाहे।

भावार्थ—दो क्या तुम चाहे चार वरदान मुझसे माँग लो, पर मुझे झूंठमूठ दोष मत दो। क्योंकि रघुकुल में सदा से यही रीति चली आती है कि प्रान चाहे चला जाय पर दिये हुये वचन का त्याग नहीं किया जाता।

नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥

शब्दार्थ—पातक-पुंजा=पापों का समूह । गिरि=पर्वत । कोटिक=करोड़ों। गुन्जा =घुंघुची । सत्यमूल=सत्य ही है मूल जिनका। मनु गाए=मनु जी कह गये हैं ।

भावार्थ=क्योंकि असत्य के समान पापों का समूह भी नहीं है । क्या करोड़ों गुंजे मिलकर भी पर्वत के समान ऊँचे हो सकते हैं ? (नहीं, अर्थात् असत्य सब पापों से बढ़ कर हैं) जो पुण्य सत्यमूल होते हैं वेही अच्छे कहे जाते हैं यह बात वेद और पुराणों में विदित है (वर्णित है) और मनुजी ने भी (निज स्मृति में) ऐसा ही कहा है ।

तेहि पर राम सपथ करि आई । सुकृत सनेह अवधि रघुराई ।
बात दृढ़ाय कुमति हँसि बोली । कुमत कुविहँग कुलह जनु खोली ॥

शब्दार्थ—सपथ करि आई=सौगंद कर चुके । अवधि=सीमा । रघुराई=रामचन्द्र । बात दृढ़ाइ=बात पक्की कराके । कुमत=कुविचार, बुरा मंतव्य । कुविहँग=बुरा पक्षी,बाज । कुलह=चमड़े की टोपी जो शिकारी बाज को पहिनाई रहती है ।

भावार्थ—तिस पर मैं राम की सौगंद कर चुका हूं जो रामचन्द्र पुण्य और प्रेम की सीमा हैं (इनसे आगे पुण्य प्रेम है ही नहीं) इस प्रकार बात पक्की कराके दुर्बुद्धि कैकयी हँसकर बोली (उसका यह बोलना ऐसा है) मानो कुविचार रूपी बाज की कुलह (टोपी) खोल दी गयी हो (अर्थात् जब शिकारी बाज की टोपी खोल दी जाती है तो वह शिकार ही करता हैं, ठीक उसी प्रकार कैकयी जो बचन बोलना चाहती है उससे दशरथ जी आहत होंगे) ।

अलंकार—रूपक से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

दो०—भूप मनोरथ सुभग बनु, सुख सुबिहंग समाजु ।
भिल्लिनि जनु छाड़नि चहति, बचनु भयंकर बाजु ॥२९॥

शब्दार्थ—मनोरथ=अभिलाषा, इच्छा । सुभग=सुन्दर ।

भावार्थ—(कवि फिर कहता है) राजा का मनोर्थ ही सुन्दर वन है

और नाना प्रकार के सुख ही सुन्दर पक्षियों का समूह है (जिनका शिकार करने के लिये) कैकयी रूपी भिल्लिनी मानों वचन रूपी भयंकर शिकारी बाज छोड़ना चाहती है (अर्थात् जिस प्रकार भिल्लिनियाँ वन में पालतू शिकारी बाजों को छोड़ छोड़ कर अच्छे २ पक्षियों का शिकार करती हैं उसी प्रकार कैकयी जो वचन बोलनेवाली है उन वचनों से राजा दशरथ जी की भावी सुखपूर्ण अभिलाषा का अन्त हो जायगा, राजा की राम राज्याभिषेक की आशा पूर्ण न होगी)

अलंकार—रूपक से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

सुनहु प्रान प्रिय भावत जी का। देहु एक वर भरतहिं टीका।
माँगउँ दूसर वर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥

शब्दार्थ—जी = हृदय। टीका = राज्य तिलक। पुरवहु = पूर्ण करो। मनोरथ मोरी = मेरी अभिलाषा। (इस स्थान पर तुलसीदास जी ने 'मोरी मनोरथ' लिखा है जो व्याकरण के अनुसार अशुद्ध है, इसका क्या कारण है, उन्होंने ऐसा क्यों लिखा यह निश्चयात्मक रूप से मैं नहीं कह सकता। शायद स्त्री होने के कारण कैकयी ने मनोरथ को स्त्रीलिंग कह दिया हो, इस दोष के निवारणार्थ कुछ लोगों ने 'जोरे' 'मोरे' पाठ रखा है, पर प्राचीन प्रतियों में 'जोरी' 'मोरी' ही पाठ मिलता है)

भावार्थ—हे प्राण प्यारे। मेरे मनको भानेवाली बात सुनो। एक वर में भरत को राज्यतिलक दीजिये। दूसरा वर मैं आपसे हाथ जोड़ कर माँगती हूं, हे नाथ! आप मेरी अभिलाषा पूर्ण करें।

तापस वेष बिसेष उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी।
सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू। ससिकर छुवत बिकल जिमि कोकू॥

शब्दार्थ—तापस वेष = तपस्वियों के बानें से। उदासी = उदासीन वे साधु जो बस्ती में नहीं रहते। ससिकर = चन्द्र किरणें। बिकल = व्याकुल, दुखी। कोकू = चकवाक, चकवा-चकई।

भावार्थ—'तपस्वियों के बाने में' विशेष उदासी पंथ के मतानुसार राम चौदह वर्ष तक वन में निवास करें। कैकयी के ये मीठे वचन सुनकर राजा के हृदय में (वैसे ही) शोक हुआ जैसे चन्द्र किरणों के स्पर्श होने (सूर्य डूबने के पश्चात) से चकवा और चकई को होता है।

अलंकार—उदाहरण।

गयेउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान वन झपटेउ लावा
विवरन भयेउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥

शब्दार्थ—सहमि गयेउ = डर गये (सहम अरबी शब्द है)। कहि आवा = कहते बना। सचान = बाज। झपटेउ = आक्रमण किया। लावा = पक्षी विशेष, बटेर। विवरनभयेउ = रंग फक्क हो गया (पीला पड़ना, सफेद पड़ना, स्याह पड़ना, विवरण होना है)

भावार्थ—राजा डर गये, उनसे कुछ कहते न बना (उनकी दशा ऐसी थी) जैसे बाज द्वारा वन में बटेर झपटा गया हो। राजा का रंग फक्क हो गया और उनकी दशा ऐसी हो गई जैसी बिजली के गिरने से ताड़ वृक्ष की होती है।

माथे हाथ मूंदि दोउ लोचन। तनु धरि सोच लाग जनु सोचन।
मोर मनोरथ सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥

शब्दार्थ—मूँदि = बन्द करके। सुरतरु = कल्पवृक्ष। करिनि = हथिनी।

भावार्थ—मस्तक पर हाथ रख और दोनों नेत्र बन्द करके राजा दशरथ जी इस प्रकार सोचने लगे मानों स्वयं सोचही शरीर धारण करके सोच रहा हो। (राजा मन में सोचते हैं) मेरा मनोर्थ रूपी कल्पवृक्ष अभी फूला ही था, फलने के समय हथिनी ने उसे जड़ सहित उखाड़ कर नष्ट कर दिया। (अर्थात् दशरथ जी की अभिलाषा राम जी के युवराज होने, पुत्रवान होने की थी; उसमें अभी विवाह ही हुआ है, रामजी अभिषिक्त हो ही रहे थे कि कैकयी ने उन्हें वनवास दे दिया)

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक, उदाहरण।

अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हेसि अचल विपति कै नेई॥

शब्दार्थ—नेई=नींव।

भावार्थ=अयोध्या केकयी ने उजाड़ दी और उसमें विपत्ति की दृढ़ नींव दे दी (अर्थात् राम के वन जाने से सब लोग उनके साथ चले जायँगे तो अयोध्या उजाड़ हो जायगी और नित्य विपतियाँ खड़ी हूँगी)

दो०—कवने अवसर का भयेउ, गयेउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहिं अविद्या नास॥३०

शब्दार्थ—गयेउँ=मैं विनष्ट हो गया। जतिहिं=यति को, तपस्वी को। अविद्या=माया।

भावार्थ—हाय! किस मौके पर क्या हो गया। मैं स्त्री पर विश्वास करने के कारण विनष्ट हो गया (मेरी दशा वैसी ही हुई जैसे) योग के सिद्ध हो जाने पर फल मिलने के समय तपस्वी को अविद्या माया नष्ट कर दे (उसका नियम भंग करा दे)

अलंकार—उदाहरण।

यहि विधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा॥
भरत कि राउर पूत न होहीं। आनेहु मोल वेसाहि कि मोहीं॥

शब्दार्थ—झाँखा=झंखने लगे। माखा=कुपित हुआ। पूत=पुत्र। मोल वेसाहि=मोल खरीद कर।

भावार्थ—इस प्रकार राजा मन ही मन झँखने लगे। राजा का रुख बुरा देख कर दुर्बुद्धि केकयी का मन कुपित हो गया। वह कहने लगी—क्या भरत आप का पुत्र नहीं है? क्या आप मुझे मोल खरीद कर लाये हैं (कि वरदान सुनते ही सूख गये—तात्पर्य यह कि खरीदी हुई स्त्री 'दासी' कहलाती है, और दासीपुत्र राजगद्दी का अधिकारी नहीं हो सकता)

जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलेउ वचन सँभारे॥
देहु उतरु अनु कहहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम रघुकुल माहीं॥

शब्दार्थ—सर धस=बाण सा। संभारे=संभालकर, सोच विचार कर। अनु=नहीं तो। सत्यसंध=सत्य के साधनेवाले, सत्यवादी।

भावार्थ—जो सुन कर आप को बाण सा (तीखा) लगा। पहले ही सोच विचार कर आपने क्यों नहीं कहा? अब या तो उत्तर दीजिये नहीं तो कह दीजिये कि 'नहीं'। आप तो रघुबंश में बड़े सत्यवादी हैं।

देन कहेउ अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू।
सत्य सराहि कहेउ बरु देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना॥

भावार्थ—देने कहा था अब चाहे मत दीजिये। सत्य त्यागिये और संसार में अपयश लीजिए। आपने सत्य की बड़ाई करके बरदान देने कहा था (जान पड़ता है) आपने समझा था कि यह चबेना (अर्थात् कोई तुच्छ वस्तु) माँग लेगी।

सिवि दधीचि बलि जो किछु भाषा। तनु धनु तजेउ सत्य पन राखा।
अति कटु वचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई॥

शब्दार्थ—सिवि=काशिराज शिवि। पन=प्रण। जरे पर देई=जले स्थान पर लगा रही है।

भावार्थ—काशिराज शिवि, महर्षि दधीचि और राजा बलि ने जो कुछ कहा (जो प्रतिज्ञा की) उसके लिये शरीर और धन का त्याग कर दिया पर अपने प्रण को सत्य ही रखा (उससे विमुख नहीं हुए) केकयी अत्यन्त कड़ुवे वचन बोल रही है, मानो जले स्थान पर नमक लगा रही हो (जले स्थान पर यदि नमक लग जाय तो असह्य वेदना होती है, केकयी की बातों से राजा को भी असह्य वेदना हो रही है)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दो:—धरम-धुरंधर धीर धरि, नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्हि उसासि असि, मारेसि मोहि कुठाय॥३१॥

शब्दार्थ—धरम-धुरन्धर=धर्म की धुरा धारण करनेवाले, धर्मिष्ठ। उघारे=(उद्घाटन) खोले। राय=(राज) राजा। उसासि लीन्ह=आह भरी। कुठाय=बुरे स्थल में।

भावार्थ—धर्मिष्ठ राजा दशरथ जी ने धैर्य धारण करके आँखें खोलीं। मस्तक धुन कर (माथे पर हाथ मार कर) ऊंची सांस ली और कहा—इसने तो मुझे बुरे ठौर में मारा (अर्थात ऐसे मर्मस्थान में आघात किया है कि इस चोट से बचना कठिन है)

आगे दीखि जरति रिसि भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी।
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी-सान बनाई॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा।
बोलेउ राउ कठिन करि छाती। बानी सविनय तासु सोहाती॥

शब्दार्थ—रिसि=(रोष) क्रोध से। उघारी (उद्घाटन) खुली हुई। मूठि=मुठिया, जिस स्थान पर हाथ से तलवार को पकड़ते हैं। धरी=तेज की गयी। सान=धार तेज़ करने का पत्थर। कराल=भयंकर।

भावार्थ—दशरथ जी ने देखा कि आगे खड़ी हुई केकयी क्रोध से जल रही है (उसका भाव ऐसा है) मानो वह क्रोध की खुली हुई तलवार हो। (इस तलवार की) मूठ कुबुद्धि और निष्ठुरता धार है, यह कूबरी रूपी शान पर भली भाँति तेज़ की गयी है। राजा ने इसे कराल और कठोर देखा (और मन में सोचा कि) यातो यह मेरा सत्य लेगी या प्राण (दो में से एक अवश्य लेगी)। तब राजा छाती कड़ी करके ऐसी वाणी से बोले जो विनयपूर्ण और उसे (केकयी को) भली लगनेवाली थी— अर्थात् जैसे शान पर तेज़ की गयी तलवार किसी वीर का या तो सत्य लेती है-वह पीठ दिखा के भाग जाता है-या प्राण ही लेती है, वैसे ही मंथरा की सिखायी पढ़ायी दुर्बुद्धि और निष्ठुर केकयी भी राजा का यातो सत्य लेगी प्रण छुटा देगी- या प्राण ही ले लेगी-राजा का देहावसान हो जायगा। सत्य न जाय जीवन चाहे चला जाय यह विचार कर इस तलवार (केकयी) की चोट सहने के लिये राजा ने अपनी छाती कड़ी की और मन में कहा, ले मार मैं तैयार हूं, प्राण दे दूंगा पर सत्य को न छोड़ूंगा।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक, बिकल्प।

प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। रीति प्रतीति प्रीति करि हाँती
मोरे भरत राम दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकर साखी॥

शब्दार्थ–कस=कैसे। हाँती=(सं० हंत्री) नष्ट करके, तोड़ के। साखी=(साक्षी) गवाही।

भावार्थ–हे प्रिये ! तू बुरी तरह से ये बचन रीति प्रतीति और प्रीति को तोड़ के कैसे कहती है ? मेरे तो भरत और राम ये दोनों आँखों के समान हैं (अर्थात् आँखें दोनों सम प्रिय होती हैं उसमें बायें दहिने का विचार नहीं होता, भरत और राम दोनों समान प्रिय हैं) इसे मैं श्री शंकर (कुल देव) को साक्षी देकर कहता हूं।

अवसि दूत मैं पठउब प्राता। अइहहिं वेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिनु सोधि सबु साजु सजाई। देउँ भरत कहँ राजु बजाई॥

शब्दार्थ—अवसि=(अवश्य) जरूर। पठउब =(सं० प्रेषण) भेजूंगा। वेगि=शीघ्र। दोउ भ्राता=भरत और शत्रुघ्न। सोधि=निश्चित करा के, विचार के। बजाई=ललकार के, डंकेकी चोट।

भावार्थ—मैं सबेरे ही अवश्य दूत (भरत के ननिहाल) भेजूंगा। दोनों भाई (भरत, शत्रुघ्न) सुनते ही शीघ्र आवेंगे। अच्छा दिन निश्चित करा के (लग्न धरा के ,सब तैयारियां कर के डंके की चोट भरत को राज्य दूंगा।

दो०—लोभु न रामहिं राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिअ, करत रहेउँ नृप नीति॥३२॥

भावार्थ—राम को राज्य का लोभ नहीं है, वे तो भरत पर अधिक प्रीति (भी) रखते हैं। मैं ही हृदय में बड़े छोटे का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था (राजनीति के अनुसार बड़ा पुत्र ही राज्याधिकारी होता है)

राम-सपथ-सत कहउँ सुभाऊ। राम मातु किछु कहेउ न काऊ।
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूछे। ताते परेउँ मनोरथ छूछे॥

भावार्थ—राम की सौ सौगन्ध कर के मैं स्वभावतः कहता हूं कि राम की माता (कौशिल्या) ने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। हां, मैं ने तुझ से बिना पूछे ही सब किया है, इसी कारण मनोर्थ से छूछा पड़ गया (मेरी अभिलाषा पूर्ण न हो सकी)

रिसि परिहरु अब मंगल साजू। किछु दिन गये भरत युवराजू।
एकहि बात मोहिं दुखु लागा। बर दूसर असमंजस माँगा॥

शब्दार्थ—रिसि परिहरु=(रोष परिहार्य) क्रोध छोड़ दे। असमंजस= जो न तो करते ही बने और न न करते ही बने, दुविधा-मूलक।

भावार्थ—क्रोध छोड़ दे और अब मंगल साज सजा, क्योंकि थोड़े दिन बीतने पर ही भरत युवराज हो जायंगे। (अर्थात् पहला वरदान तो मैं मंजूर करता हूं, परन्तु)। एक ही बात से मुझे दुख हुआ है (और वह यह है कि) तू ने दूसरा वरदान असमंजसपूर्ण मांगा है।

अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहु साँचा।
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सब कोउ कहइ राम सुठि साधू॥

शब्दार्थ—अजहूं=(अद्यापि) अब भी। आँचा=आग की गर्मी। परिहास=हँसी। साँचेहु साँचा=सचमुच ही सत्य। अपराधू=कसूर। सुठि साधु =बड़े सरल स्वभाव के।

भावार्थ—अब भी उस (दूसरे वर) की आँच से हृदय जल रहा है। यह तेरा क्रोध है या हँसी हैं या सचमुच ही तू ऐसा चाहती है। (यदि क्रोध है तो) क्रोध को छोड़कर राम का कसूर बता, क्योंकि सब लोग कहते हैं कि राम बड़े सरल स्वभाव के हैं, राम ने तेरा क्या अपराध किया है जिससे तू उन पर क्रोध कर रही है?

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयेउ संदेहू।
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला।

शब्दार्थ—सराहसि=सराहती थीं, बड़ाई करती थी। अरिहि=शत्रु को भी। किमि=कैसे। प्रतिकूल=विरुद्ध।

भावार्थ—तू भी राम को सराहती थी और उन पर प्रेम करती थी अब (उनपर क्रोध देखकर) तेरी बात सुनकर मुझे संदेह हो रहा है (कि राम सचमुच सीधा है या नहीं पर) जिसका स्वभाव शत्रु को भी अनुकूल पड़ता है वह माता के विरुद्ध (कोई काम) कैसे करेगा ? (यह मेरी समझ में नहीं आता)

दो०—प्रिया हास रिस परिहरहि, माँगु विचारि विवेकु।
जेहि देखउँ अब नयन भरि, भरत-राज-अभिपेकु ॥३३॥

शब्दार्थ—हास=हँसी। नयन भरि=नेत्र भरकर, भली भाँति।

भावार्थ—हे प्रिये ! क्रोध और हँसी (से यदि राम वनवास चाहती हो तो उस) को छोड़ दो (यदि सचमुच ही राम वनवास चाहती हो तो) विवेक पूर्वक सोच विचार कर तब माँगो जिससे मैं भली भाँति भरत का राज्याभिपेक देखूँ (नहीं तो राम वनवास से मेरा शरीरान्त हो जायगा, भरत का राज्याभिपेक न देख सकूँगा)

जिअइ मीन वरु वारि विहीना। मनि बिनु फनिक जिअइ दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं॥

शब्दार्थ—मीन=मछली। वारि=जल, पानी। फनिक=सर्प। दुख, दीना=दुख से दीन होकर।

भावार्थ—(क्योंकि) चाहे मछली विना पानी के जीवित रहे और सर्प बिना मणि के दुख से दीन हो जीवित रहे (पर) मैं अपना स्वभाव कहता हूँ—मेरे मन में छल नहीं है—कि मेरा प्राण राम के बिना नहीं रह सकता।

समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना। जीवनु राम-दरस-आधीना।
सुनि मृदु वचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति-घृतपरई॥

शब्दार्थ—प्रवीना=चतुर। जीवनु=जीना। मृदु=मुलायम। अनल=अग्नि। आहुति=होम की सामग्री, साकल्य।

भावार्थ—हे चतुर प्रिये ! तू मन में समझ कर देख ले कि मेरा जीना राम के दर्शनाधीन है (अर्थात् पिछली बात विचारो जब राम विश्वामित्र के साथ गये थे उस समय मेरी क्या दशा थी ?)राजा के ये मुलायम वचन सुन कर दुर्बुद्धि केकयी अत्यन्त जलती है मानों अग्नि में घी की आहुती पड़ रही हो । (जैसे अग्नि में घी की आहुती पड़ने से वह और तेज़ हो जाती है वैसे ही राजा के मुलायम वचनों से केकयी और अधिक कुपित हुई) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ।
देहु कि लेहु अजसु करि 'नाहीं' । मोहि न बहुत प्रपञ्च सोहाहीं ॥

भावार्थ—केकयी कहने लगी, चाहे करोड़ों उपाय करिये पर यहाँ आप की माया न लगेगी । बरदान दीजिये नहीं तो 'नहीं देंगे' कह कर अपयश के भागी हूजिये । मुझे बहुत प्रपंच (माया, टाला टूली के लिए बकवाद) अच्छा नहीं लगता । अर्थात् आप कुछ भी कहें मैं आप की बात न मानूँगी ।

राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राममातु भलि सब पहिचाने ।
जस कौसिला मोर भल ताका । तस फलु उन्हहिं देउँ करि साका ॥

शब्दार्थ—सयाने=(सज्ञान) ज्ञानी । सब पहिचाने=सब को पहचान लिया है । भल ताका=भला चाहा । करि साका=नामवरी के साथ, जो याद रहे ।

भावार्थ—राम साधु हैं और आप भी ज्ञानी साधु हैं । राम की माता भली हैं, सब को मैंने खूब पहचान लिया है । कौशिल्या ने मेरा जैसा भला चाहा है वैसा ही फल मैं उन्हें दूँगी जो उन्हें याद रहेगा (अर्थात् कौशिल्या ने हमारी बुराई चाही है उसका बदला मैं उन्हें अवश्य दूँगी)

दो०—होत प्रात मुनि भेष धरि, जो न राम बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिय मन माहिं ॥३४॥

भावार्थ—सवेरा होते ही यदि राम मुनि वेष धारण करके बन न गये

तो मेरी मृत्यु और आप का अपयश होगा। हे राजन्! इसे आप मन में विचार लें।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध-जल जाइ न जोई॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला॥

शब्दार्थ—तरंगिनि=नदी। जाइ न जोई=देखी नहीं जाती। कूल=किनारा, तट। ढाहत=गिराती हुई। मूला=जड़ से। अनुकूला=सम्मुख।

भावार्थ—ऐसा कह कर कुटिल केकयी उठ के खड़ी हो गयी (उसका उठना ऐसा था) मानों रोष की नदी बढ़ गयी हो। यह नदी पाप रूपी पर्वत से निकली है और क्रोध रूपी जल से परिपूर्ण है, देखी नहीं जाती। दोनों वर इसके दो तट हैं, केकयी की कठिन हठ ही इसकी धारा है। कूबरी के वचनों की प्रेरणा ही इसमें उठनेवाले भंवर हैं, यह राजा दशरथ रूपी (तट के) वृक्ष को जड़ से गिराती हुई विपत्ति रूपी समुद्र के सम्मुख (मिलने के लिए) चली जा रही है। (अर्थात् जैसे नदी पहाड़ से निकलती है और बरसात में जल से इतनी परिपूर्ण हो जाती है कि देखते डर लगता है, वह अपनी बेगवती धारा से जिसमें भँवर भी उठा करते हैं तट के वृक्षों को जड़ से गिराती हुई समुद्र से मिलने जाती है, वैसेही केकयी को यह रोष पाप वासना से हुआ है कि कौशिल्या मेरा बुरा चाहती है। क्रोध उसके अंग प्रत्यंग में परिपूर्ण है। कुबड़ी के कहने के कारण उसने भयंकर हठ ठानी है। इस हठ से राजा का अनिष्ट होगा और केकयी को बिपत्ति झेलनी पड़ेगी)

लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिसु मीचु सीस पर नाँची॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी। जनि दिन कर कुल होसि कुठारी॥

शब्दार्थ—बात फुरि साँची=यही बात सत्य है कि यह सचमुच राम का बनवास चाहती है। मिसु=बहाने से। मीच=(मृत्यु)। बैठारी=बैठाया। कुठारी=कुल्हाड़ी।

भावार्थ—राजा ने समझ लिया कि सचमुचवाली बात ही सत्य है (क्रोध और हँसीवाली नहीं, तब उन्होंने जान लिया कि) स्त्री के बहाने से मृत्यु ही सिर पर नाच रही है (आ रही है) पुनः समझाने के अभिप्राय से) पैर पकड़कर विनती की और बैठाकर कहा कि सूर्यवंश (रूपी वृक्ष) के लिए तू कुल्हाड़ी मत हो।

(नोट) यहाँ लोग 'फुरि' और 'सांची' में पुनरुक्ति सी देख कर एतराज़ करते हैं, पर उन्हें राजा का पहला अनुमान "रिस परिहास कि सांचहु सांचा" स्मरण कर लेना चाहिये। अर्थात् न तो यह रिस है न परिहास है वरन सचवाली ही बात सच है। इसमें 'पुनरुक्तिवदाभास' अलंकार है, जिसे न समझने से लोग एतराज करते हैं।

माँगु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरह जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती॥

शब्दार्थ—जेहि तेहि भाँती = जिस तिस तरह, जैसे हो सके वैसे।

भावार्थ—तू मस्तक माँगे तो मैं अभी तुझे दे दूं पर मुझे राम के विरह में मत मार। जैसे हो सके राम को रख ले नहीं तो जन्म भर तेरी छाती जलती रहेगी (मैं मर जाऊँगा, तब तू कलपेगी)

दो०—देखी ब्याधि असाधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ॥ ३५॥

शब्दार्थ—ब्याधि = रोग। असाधि = असाध्य (रोग त्रिविध होते हैं साध्य, साध्यासाध्य, असाध्य) जो अच्छा न हो सके।

भावार्थ—राजा ने (कैकयी के हठ का) रोग असाध्य देखा। तब माथा पीट कर पृथ्वी पर गिर पड़े और 'राम' 'राम' 'रघुनाथ' इस प्रकार अत्यन्त दीन वचन कहने लगे॥

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठ सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीन दीन बिनु पानी॥

शब्दार्थ—करिनि=हथिनी ने । पाठीन=पढ़िना, मछली विशेष । दीन =दुखी ।

भावार्थ—राजा व्याकुल हैं उनके सब अंग शिथिल हो गये हैं मानों हथिनी ने कल्पवृक्ष को (अपनी रगड़ से)गिरा दिया है । गला सूख गया है मुख से आवाज़ नहीं निकलती मानो पढ़िना मछली पानी के विना तड़फ रही है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

पुनि कह कटु कठोर कैकेयी । मनहुँ घाव महुँ माहुर देई ॥
जौ अंतहु अस करतब रहेऊ । माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ ॥

शब्दार्थ—माहुर=विष । अन्तहु=अन्त में ।

भावार्थ—फिर कैकयी कड़ुवे और कठोर वचन कहती है, मानो घाव में विष दे रही है (घाव में विष जिस प्रकार असह्य हो जाता है राजा को वैसेही ये वचन बुरे लगे) केकयी बोली—यदि अन्त में यही कर्तव्य करना था तो आप ने "माँग माँग" किस विरते पर कहा था ?

दुइ कि होहिं एक संग भुआलू । हँसब ठठाइ फुलाउब गालू ।
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि षेम कुसल रउताई ॥

शब्दार्थ—ठठाइ=(सं० अट्टहास) जोर से हँसना । फुलाउब गालू= गाल फुलाना । रउताई= (रावत से) वीरता, लड़ाई ।

भावार्थ—हे राजन् ! क्या दो (विरुद्ध) बातें एक समय हो सकती हैं, जोर से हँसना और गाल फुलाना ? दानी कहाना और सूमता करना ? क्षेम कुशल से रहना और वीरता ? (अर्थात् इन दो बातों में जो एक चाहेगा उसे दूसरी त्यागना पड़ेगी । आप यदि अपने वचन रखना चाहते हैं तो सोच त्यागिये)

अलंकार—वक्रोक्ति ।

छाँड़हु वचन कि धीरज धरहू । जनि अबला जिमि करुना करहू ॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्य सन्ध कहँ तृन सम बरनी ।

शब्दार्थ—जनि करुना करहू=मत रोइये। सत्य संध=सत्यवादी।

भावार्थ—यातो वचन छोड़ दीजिये या धीरज धारण कीजिये। स्त्री के समान रोइये मत (क्योंकि) सत्यवादी के लिए स्त्री, पुत्र, घर, धन, पृथ्वी सब तृण के समान (तुच्छ) कही गयी हैं। (यहां पर व्यंग है, कैकयी का लक्ष्य दशरथ जी की निम्न चौपाइयों की ओर है "रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाउ वरु वचन न जाई॥ नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुञ्जा। सत्यमूल सब सुकृत सुहाये। वेद पुरान बिदित मनु गाये—अर्थात् आप ही ने सत्य की प्रशंसा की है अब उसी को त्यागना चाहते हैं)

अलंकार—धर्म लुप्तोपमा।

दो०—मरम वचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोष न तोर।
लागेउ तोहि पिचास जिमि, काल कहावत मोर॥३६॥

भावार्थ—मर्म बातें सुन कर राजा ने कहा-तू कह तेरा कुछ भी दोष नहीं है, मेरा काल ही तुझे पिचाश होकर लग गया है, जो तुझ से सब कहलवाता है॥

चहत न भरत भूप पद भोरे। बिधि बस कुमति बसी उर तोरे॥
सो सब मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू॥

शब्दार्थ—भोरे=धोखे से, भूलकर भी। बिधि=होनहार। कुठाहर=बुरे स्थान पर, बे मौके। भयउ बिधि बामू=बिधाता टेढ़ा हो गया।

भावार्थ—भरत राज्यपद भूलकर भी नहीं चाहते होनहार के कारण तेरे हृदय में दुर्बुद्धि समायी है। यह सब मेरे पापों का नतीजा है, जिन (मुझे) के लिए विधाता बेमौके टेढ़ा हो गया है

सुबस बसिहि फिर अवध सुहाई। सब गुनधाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई॥

शब्दार्थ—सुबस—(स्ववश) स्वतंत्र। तिहुंपुर=त्रिलोक।

भावार्थ—अयोध्या पुनः स्वतंत्र रूप से बसेगी, सब गुण धाम (अत्यंत गुणज्ञ) राम का प्रभुत्व होगा, सब भाई उनकी सेवा करेंगे, और त्रिलोक में राम की बड़ाई होगी।

तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयेहु न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहिं नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहुँ गोई॥

शब्दार्थ—मुयेहु=मरनेपर भी। नीक लाग=अच्छा लगे। ओट=आड़ में। मुहुं गोई=मुहं छिपा कर।

भावार्थ—(परन्तु) तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरने पर भी न मिटेगा और न कभी जायगा। अब तुझे जो अच्छा लगे वही कर। आँखों से ओझल होकर, मुंह छिपाकर अन्यत्र जा बैठ (सामने से हट जा)।

जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि किछु कहसि बहोरी॥
फिर पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नाहरू लागी॥

शब्दार्थ—जब लगि=जब तक। पछितैहसि=पश्चात्ताप करेगी। नाहरू=नाहर का बच्चा, शेर का बच्चा।

भावार्थ—मैं तुझ से हाथ जोड़ कर कहता हूं कि मैं जबतक जिऊँ, तबतक फिर कुछ मत कहना। अरी अभागिनी! तू अन्त में फिर पश्चात्ताप करेगी। तू शेर के बच्चे को पुष्ट करने के लिए गौ मार रही है।

(नोट)— अन्य लोग 'नाहरू' का विचित्र अर्थ करते हैं, पर वे ध्यान नहीं देते हैं कि अन्यान्य अर्थों में दोष यह है कि भरत की तुच्छता झलकती है, जो महा अनर्थ है। राजा जी कहते हैं कि 'भरत' तो नाहर का बच्चा है, वह तो ऐसे २ अनेक राज्य अपने बाहुबल से छीन सकता है। उसकी सहायता के हेतु तू राम को क्यों कष्ट देती है।

दो०—परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति किछु, जागति मनहु मसानु॥३७॥

शब्दार्थ—परेउ=गिर पड़े। निदानु=अन्त। मसानु जागति=मसान

जगाती है। (श्मशान जगाना मुहावरा है, जो लोग योगिनी सिद्ध करना चाहते हैं वे मुर्दे पर चढ़ कर श्मशान में रातभर मंत्र जप करते हैं वे लोग मौन साधन करते हैं बोलते नहीं चाहे कितनी ही बाधाएँ उपस्थित हों, इसे 'मसान जगाना' कहते हैं)।

भावार्थ—राजा करोड़ों तरह समझा कर, पृथ्वी पर गिर पड़े और कहा कि 'तू मेरा अन्त क्यों करती है? कपट में चतुर केकयी कुछ कहती नहीं, ऐसी चुप है मानो मसान जगा रही है।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

राम राम रट विकल भुआलू। जनु बिनु पंख विहंग बिहालू।
हृदय मनाव भोरु जनि होई। रामहिं जाइ कहइ जनि कोई॥

शब्दार्थ—पंख=(पक्ष) डैना। बिहंग=पक्षी। बिहालू=व्याकुल। भोर जनि होई=सवेरा न हो (यह मुहावरा है इसका ठीक अर्थ है 'हम जीवित न रहें')।

भावार्थ—राम राम रटते हुए राजा ऐसे बेचैन हैं मानों कोई पक्षी बिना पंख के व्याकुल है (यहाँ पर राजा रूपी पक्षी के दो वरदान ही पक्ष हैं जिन में से एक रामवनवास से कट गया) हृदय में मनाते हैं कि सवेरा न हो (हम सवेरे तक जीवित न रहें) कोई राम से न जाकर कह दे (कि तुम्हें बनवास दिया गया है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

उदय करहु जनि रवि रघुकुल गुरु। अवध बिलोकि सूल होइहिं उरु
भूप प्रीति केकयि निठुराई। उभय अवधि बिधि रची बनाई॥

भावार्थ—उदय करहु जनि=उदित न हो। रघुकुल गुरु=रघुवंशमें सब से बड़े। उरु= हृदय में। निठुराई=निष्ठुरता। उभय—दोनों। अवधि=सीमा, हद।

भावार्थ—हे रघुवंश में सर्वश्रेष्ठ भगवान सूर्य! आप उदित न हों। क्योंकि अयोध्या को देख कर आपके हृदय में दुःख होगा। (कवि कहता

हैं) विधाता ने राजा को प्रेम की और कैकयी को निष्ठुरता की सीमा ही रचकर बनाया है।

विलपत नृपहिँ भयेउ भिनुसारा। बीना वेनु संख धुनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक॥

शब्दार्थ–भिनुसारा=(सं० भानु सरण) प्रातःकाल। सायक=बाण।

भावार्थ—राजा को इस प्रकार कलपते कलपते ही सवेरा हो गया। दरवाजे पर वीणा, वेनु (बाँसुरी) और शँख की ध्वनि होने लगी। भाट लोग विरुदावली पढ़ने लगे गवैया गाने लगे, पर राजा को सुन कर बाण के समान (तीक्ष्ण) लगते हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मंगल सकल सुहाहिं न कैसे। सहगामिनिहिँ विभूषन जैसे॥
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू॥

शब्दार्थ—सहगामिनिहिं=पति के साथ सती होने वाली को। राम दरस=राज्याभिषिक्त राम का दर्शन।

भावार्थ—राजा को ये सब मंगल वाद्य और गान अच्छे नहीं लगते, जैसे सहगामिनी स्त्री को गहने का साज सिंगार भला नहीं लगता (पति के संग सती होने वाली स्त्री सोलहो श्रृङ्गार करके तब पति के साथ सती होती है। उसे यह साज सिङ्गार भला नहीं लगता) उस रात को किसी को भी नींद नहीं पड़ी, क्योंकि सब के हृदय में राज्याभिषिक्त राम का दर्शन करने की अभिलाषा का उत्साह था।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदित रवि देखि।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारनु कवनु विसेखि॥३८॥

भावार्थ—दरवाजे पर (नगर वासियों की) भीड़ लगी है, सचिव सूर्य को उदित हुआ देख कर सेवकों से कहते हैं कि अभी तक राजा साहब नहीं जागे, क्या विशेष कारण है?

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहिं बड़ अचरजु लागा।
जाहु सुमंत जगावहु जाई। कीजिय काजु रजायसु पाई॥

शब्दार्थ—पछिले पहर=सवेरे ४ बजे से पहले। अचरजु=आश्चर्य।

भावार्थ—राजा साहब नित्य तड़के उठते थे, आज हमें बड़ा आश्चर्य लग रहा है (कि अभी तक नहीं जगे) हे सुमंत्र ! तुम जाकर जगाओ और आज्ञा पाकर कार्य करो।

गे सुमन्त तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहु बिपति बिषाद बसेरा॥

शब्दार्थ—राउर=(राजपुर) रनिवास। भयावन=भयंकर। धाइ=दौड़ कर। हेरा=देखा। बसेरा=अड्डा, निवास स्थल।

भावार्थ—तब सुमंत्र रनिवास में गये। उसे भयंकर देखकर जाते डरते हैं। रनिवास मानो दौड़कर खा जायगा, वह देखा नहीं जाता ('धाइ खाइ' और 'जाइ न हेरा' यह कहने का ढंग है मतलब यह है कि भयंकर लगता है) मानो विपत्ति और विषाद (रंज) का अड्डा बन गया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

पूंछे कोउ न ऊतरु देई। गे जेहि भवन भूप कैकेई॥
कहि जयजीव बैठ सिरु नाई। देखि भूप गति गयेउ सुखाई॥

शब्दार्थ—भूपगति=राजा की दशा। जयजीव=(असीस) तुम्हारी जय हो, तुम जीते रहो।

भावार्थ—पूछने से कोई उत्तर नहीं देता (बतलाता नहीं) जिस महल में राजा और केकयी थे उस महल में गये। 'जयजीव' कह के और मस्तक नवा कर (प्रणाम करके) बैठे। राजा की दशा देख कर सुमंत्र जी सूख गये।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ॥
सचिव सभीत सकइ नहिं पूंछी। बोली असुभ भरी सुभ छूंछी॥

शब्दार्थ—बिबरन=विवर्ण, रंग फक्क हुआ। सभीत=डर से। छूँछी=खाली। असुभ भरी सुभ छूँछी=केकयी।

भावार्थ—(सुमन्त ने देखा कि राजा) सोच से विकल हैं। रंग फक्क हो गया है पृथ्वी पर पड़े हैं मानों जड़ से छूटा हुआ कमल है। डर से मंत्री (इस मामले का कारण) नहीं पूछ सकता था कि (इतने ही में) अशुभ-पूर्ण और शुभ-हीन केकयी बोली—

दो०—परी न राजहिं नींद निसि, हेतु जान जगदीसु।
राम राम रटि भोर किय, मरम न कहेउ महीसु ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—जगदीसु=शंकर, महादेव। भोर=सवेरा। मरम=भेद, गुप्त भाव।

भावार्थ—राजा साहब को रात में निद्रा नहीं लगी। इसका कारण ईश्वर जाने। राजा ने (रात भर) 'राम राम' रटते रटते सवेरा कर दिया है, भेद नहीं बतलाया।

आनहु रामहिं वेगि बोलाई। समाचार तब पूंछेहु आई।
चलेउ सुमंत राय रुख जानी। लखी कुचालि किन्हि किछुरानी॥

शब्दार्थ—वेगि=शीघ्र। रुख=इशारा। लखी=समझा।

भावार्थ—'राम को शीघ्रही बुला लाओ तब आकर समाचार पूछो।" राजा का रुख जान कर सुमंत्र जी चले और समझ लिया कि रानी ने कुछ अनर्थ किया।

सोच विकल मग परइ न पाऊ। रामहिं वोलि कहिहिं का राऊ।
उर धरि धीरजु गयउ दुआरे। पूंछहिं सकल देखि मन मारे॥

भावार्थ—सुमंत्र जी सोच से व्याकुल हो गये, रास्ते में पैर नहीं पड़ता। (मन में सोचते हैं) राम को बुलाकर राजा क्या कहेंगे। फिर हृदय में धैर्य धारण कर द्वार पर गये। सुमंत्र को मन मारे (म्लान) देख कर सब लोग पूछने लगे कि क्या कारण है ?

समाधान करि सो सवही का। गयेउ जहाँ दिनकर-कुल-टीका।
राम सुमंतहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा॥

शब्दार्थ—समाधान करि=संतोष देकर। दिनकर कुल टीका=सूर्यवंश में श्रेष्ठ, रामजी।

भावार्थ—सुमंत जी सभी लोगों को संतोष देकर (समझाकर) जहां सूर्यवंश में श्रेष्ट रामजी थे वहां (राम महल में) गये। रामजी ने सुमंत्र जी को आते देखा तो उनका आदर किया और उन्हें पिता के समान समझा।

निरखि बदन कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहिं चलेउ लेवाई।
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥

शब्दार्थ—निरखि बदन=मुख देखकर। रजाई=(राजाज्ञा) आज्ञा। रघुकुल-दीपहिं=रघुवंश में दीपवत् (श्रेष्ठ) कुभाँति=बुरे तौर से। बिलखाहीं=दुखी होते हैं।

भावार्थ—मुख देखकर और राजा की आज्ञा कह कर सुमंत्रजी रघुवंश में श्रेष्ठ रामचन्द्र जी को लिवा ले चले। रामचन्द्र जी मंत्री के साथ बुरे तौर से (पैदल, वेषभूषा हीन, अकेले) जा रहे हैं, यह देखकर जहाँ तहाँ सब लोग दुखी होने लगे।

दो०—जाइ दीख रघुबंस-मनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहिं, मनहु वृद्ध गजराजु ॥४०॥

शब्दार्थ—रघुवंस मनि=रघुवंश में मणिवत् (श्रेष्ठ) राम जी। निपट कुसाजु=अत्यन्त अस्त व्यस्त। सहमि परेउ=डर कर गिर पड़ा है।

भावार्थ—राम जी ने जाकर देखा कि राजा दशरथ जी अत्यन्त अस्त-व्यस्त पड़े हैं, मानों कोई बूढ़ा गजराज सिंहिनी को देख डर कर पृथ्वी पर गिर पड़ा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

सूखहिं अधर जरहिं सब अंगू। मनहुँ दीन मनि हीन भुअंगू।
सरुख समीप दीख कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई॥

शब्दार्थ—अधर=ओंठ। सब अंगू जरहिं=ज्वर चढ़ा है (जिससे

अंग जलते हैं)। दीन=दुखी। भुअंगू=सर्प। सरुख=(सरूष्ठ) कुपित। मीचु=(मृत्यु) मौत। घरी गनि लेई=घड़ी गिनती है।

भावार्थ=राजा के ओंठ सूख रहे हैं, सारे शरीर में ज्वर चढ़ा है। मानों सर्प मणि के बिना दुखी है। कुपित केकई को भी पासही बैठे देखा, वह ऐसी बैठी है मानों (स्वयं) मृत्यु ही (राजा के मरने की) घड़ी गिन रही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ।
तदपि धीर धरि समउ विचारी। पूंछी मधुर बचन महतारी॥

शब्दार्थ—सुना न काऊ=कभी सुना न था (महावरा)।

भावार्थ—राम जी का स्वभाव कोमल और करुणापूर्ण था उन्होंने पहले पहल यह दुख-दृश्य देखा जो कभी सुना भी न था। फिर भी धैर्य धारण कर और मौका विचार के मीठे वचनों से माता केकयी से पूंछा।

मोहिं कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुम्ह पर बहुत सनेहू॥

शब्दार्थ—जतन (यत्न) उपाय। निवारन होइ=मिट जाय।

भावार्थ—हे माता! मुझे पिता जी के दुख का कारण बता जिससे ऐसा उपाय किया जाय जिससे वह मिट जाय। (केकयी बोली) राम! सुनों सब कारण यही है कि राजा का तुम्हारे ऊपर अत्यन्त स्नेह है (अर्थात् तुम्हारा स्नेह ही राजा के दुःख का कारण है, व्यंग यह कि तुम्ही राजा के दुःख के कारण हो)।

देन कहेन्हि मोहिं दुइ बरदाना। माँगेउँ जो किछु मोहिं सुहाना।
सो सुनि भयेउ भूप उरसोचू। छाँड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥

भावार्थ—मुझे (राजा साहब ने) दो वरदान देने कहे थे। जो कुछ मुझे अच्छा लगा मैंने माँगा। उसे सुन कर राजा के हृदय में सोच हुआ, क्योंकि वे तुम्हारा संकोच नहीं छोड़ सकते।

दो०—सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—इत=इधर, एक ओर। उत=उधर, उस ओर। संकट=असमंजस।

भावार्थ—एक ओर पुत्र स्नेह है, और दूसरी ओर वचन रखना है, इसी अजमंजस में राजा पड़े हैं, यदि कर सको तो आज्ञा को मानकर कठिन क्लेश का अन्त कर दो।

निधरक बैठि कहइ कटुबानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी।
जीह कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु-लच्छ समाना॥
जनु कठोरपनु धरे शरीरू। सिखइ धनुष-विद्या बर बीरू॥

शब्दार्थ—निधरक=निर्भय। अकुलानी=व्याकुल हो गयी। कमान=धनुष। लच्छ=(लक्ष) निशाना।

भावार्थ—केकई निर्भय बैठी हुई कटु वचन बोल रही है जिसे सुनकर कठिनता भी अत्यन्त व्याकुल हो गयी। जीभ ही धनुप है और केकयी के वचन बाण हैं और मानो राजा ही मुलायम निशाना है, जान पड़ता है कि कठोरपनही सुन्दर वीर का शरीर धारण करके धनुप-विद्या सीख रहा है। (अर्थात् जिस प्रकार धनुष-विद्या सीखने वाला तीर—कमान लेकर पहले मुलायम निशानों पर ही तीर चलाकर सीखता है। बाण चलाना केले के वृक्ष को लक्ष बनाकर सिखाया जाता है—उसी प्रकार केकई अपने तीक्ष्ण वचनों से राजा का हृदय बेध रही है।

अलंकार—अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, रूपक।

सबु प्रसंगु रघुपतिहिं सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥
मन मुसुकाइँ भानु-कुल-भानू। रामु सहज आनन्द निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूपन। मृदु मंजुल जनु बाग-बिभूषन॥

शब्दार्थ—प्रसंग=ब्यौरा, कथा। निधानू=खजाना। बिगत दूपन=अदोष, विमल। बाग बिभूषन=वाणी के लिए भूपणवत्।

भावार्थ—सब कथा राम जी को सुनाकर बैठ गयी, मानों निष्ठुरता ही शरीर धारण करके बैठी है। सूर्यवंश में सूर्य के समान श्रेष्ठ राम जी मनमें मुसक्याते हैं क्योंकि वे तो स्वभावतः आनन्द के खजाना हैं। रामजी दोष रहित वचन बोले जो ऐसे मुलायम और सुन्दर थे मानो वाणी के भूषण ही हैं।

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी।
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

शब्दार्थ—तोषनिहारा=संतोष देने वाला, संतुष्ट करने वाला।

भावार्थ—(राम जी ने कहा) हे माता ! सुन वह पुत्र बड़ा भाग्यवान् है जो पिता और माता के वचन में प्रेम करता (उन्हें मानता) है। इसलिए माता और पिता को संतोष देनेवाला पुत्र हे माता ! सारे संसार में मिलना कठिन है।

दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहिंभांति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥ ४२॥

भावार्थ—हे माता ! बन में विशेष रूप से मुनि-गण मिलेंगे इससे मेरा सब प्रकार भला होगा। इतने पर भी पिता की आज्ञा है और (सब से श्रेष्ट बात) आपकी राय है (अतएव मुझे अवश्य बन जाना चाहिये)।

भरत प्रानप्रिय पावहिंराजू। बिधिसबबिधि मोहि सनमुख आजू।
जौ न जाउँ बन एतेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहिं मूढ़ समाजा॥

शब्दार्थ—विधि सनमुख=बिधाता अनुकूल हैं। एतेहु काजा=इतने कारणों से। मूढ़-समाजा=मूर्ख मंडली। ॐ

भावार्थ—(और भी उत्तम बात यह है) कि प्रान प्यारे भरत राज्य पावेंगे। आज बिधाता सब प्रकार से मुझे अनुकूल हैं। यदि इतने कारणों से भी मैं बन न जाऊं तो मुझे मूर्ख मंडली में सबसे बड़ा मूर्ख समझना चाहिए।

ॐ मूर्ख सत्रह प्रकार के होते हैं। बाबा रघुनाथदासजी ने 'विश्राम-सागर' में कहे हैं।

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमिय लेहिं विषमांगी।
तेउ न पाइ अस समय चुकाहीं। देखि विचारि मातु मन माहीं॥

शब्दार्थ—अरँडु=(एरँड) रेंड़। अमिअ=(अमृत)।

भावार्थ—जो लोग कल्पवृक्ष को छोड़ कर रेंड़ (ऐसे तुच्छ) वृक्ष को सेते और अमृत को छोड़कर विष ही को माँगते हैं (अर्थात् भली वस्तुएँ परित्याग कर बुरी संग्रह करते हैं) वे भी ऐसा मौका पाकर नहीं चूकते, हे माता ! तू मन में विचार कर देखले।

अंब एक दुखु मोहिं बिसेखी। निपट बिकल नर नायक देखी।
थोरिहिं बात पितहिं दुखु भारी। होति प्रतीति न मोहिं महतारी॥

शब्दार्थ—अंब=माता। निपट बिकल=अत्यन्त व्याकुल। प्रतीति= विश्वास।

भावार्थ—हे माता ! मुझे एक बात का विशेष दुख है, कि राजा साहब बड़े व्याकुल हैं। पिता जी को इस (मेरे बनवास सी) तुच्छ बात के लिये इतना भारी दुख हो रहा है। हे महतारी ! इस बात का विश्वास मुझे तो नहीं होता (कि केवल यही कारण है)

राउ धीर गुन-उदधि-अगाधू। भा मोहिं तें किछु बड़ अपराधू॥
तातें मोहिं न कहत किछु राऊ। मोरि सपथ तोहिं कहु सतिभाऊ॥

शब्दार्थ—गुन-उदधि-अगाधू=गुणों के अथाह समुद्र, अत्यन्त गुणी। सति भाऊ=सत्य भाव, सच्ची बात।

भावार्थ—(क्योंकि) राजा धैर्यवान् और गुणों के अथाह समुद्र (गुणी) हैं। (जान पड़ता है कि) मुझसे कोई बड़ा कसूर हो गया है, इसी लिए राजा साहब मुझसे कुछ कहते नहीं। हे माता ! तुझे मेरी कसम, तू सच्ची बात बता (कि राजा किस कारण से दुखी हैं ?)

दो०—सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जिमि बक्र गति, जद्यपि सलिल समान॥ ४२॥

शब्दार्थ—जोंक=जल का कीड़ा विशेष। वक्रगति=टेढ़ी चाल। सलिल=जल। समान=सीधा, सम।

भावार्थ—राम जी के इन स्वभावतः सरल वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी कुटिल वचन समझती है। जिस प्रकार यद्यपि जल सम होता है, फिर भी जोंक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है।

अलंकार—उदाहरण।

(नोट)—राम जी ने 'महतारी' शब्द 'माता' के अर्थ में कहा है, परन्तु केकई उसे व्यंग समझ कर 'महत्+अरि' के अर्थ में लेती है, अतः उसे राम के सरल वचन कुटिल जान पड़ते हैं।

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई॥
सपथ तुम्हारि भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं किछु जाना॥

शब्दार्थ—रहसी=हर्षित हुई।

भावार्थ—रानी कैकेयी राम की मंशा (वन जाने की) समझ कर हर्षित हुई और कपटपूर्ण प्रेम दिखाकर बोली—मैं तुम्हारी सौगन्ध और भरत की आन (कसम) करके कहती हूं कि मुझे कोई दूसरा कारण ज्ञात नहीं है।

(नोट) 'रहसना' क्रिया वर्ण विपर्यय द्वारा 'हरषना' से बनी है।

तुम्ह अपराध जोग नहिं ताता। जननी जनक बन्धु सुखदाता॥
राम सत्य सब जो किछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू॥

शब्दार्थ—जोग=(योग्य) लायक। ताता=प्यारे (यह शब्द मेरे प्यारे 'प्रिय' आदि के अर्थ में पुरुषों के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे इंगलिश में My dear शब्द है)। रत=लीन।

भावार्थ—हे प्यारे राम! तुम कसूर करने लायक नहीं हो। क्योंकि तुम माता, पिता और भाइयों को सुख देनेवाले हो। हे राम! तुम जो कुछ भी कहते हो सब सत्य है। सचमुच तुम पिता और माता के बचनों में रत रहते हो (पिता-माता की आज्ञा मानते हो)

पितहिं बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथे पनु जेहि अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे। उचित न तासु निरादर कीन्हे॥

शब्दार्थ—बुझाइ=समझा कर। बलि=बलिहारी जाती हूँ। सुकृत=पुण्य। सुअन=(सं० सूनु) पुत्र। निरादर=अनादर, बेइज्जती।

भावार्थ=मैं बलिहारी जाती हूँ तुम पिता जी को समझा कर वही बात कहो जिस से उन्हें बुढ़ापे में अपयश न हो। जिस पुण्य ने तुम ऐसा (उत्तम और सुन्दर) पुत्र दिया है उसकी बेइज्जती उचित नहीं है।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहिं मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए॥

शब्दार्थ—मगह=मगध (अपवित्र देश)। सुरसरिगत=गंगा में मिल जाने पर।

भावार्थ—कैकेयी के कुमुख से ये वचन वैसे ही शुभ जान पड़ते हैं जैसे मगध देश में गया आदि तीर्थ पवित्र हैं। राम जी को माता की सब बातें भली लगीं जिस प्रकार गंगा जी में मिल जाने पर (अपवित्र) जल भी पवित्र हो जाता है।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—गइ मुरछा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवँट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि, बिनय समय सम कीन्ह॥४४॥

शब्दार्थ—मुरछा=बेहोशी। सुमिरि=(स्मरण) याद करके। फिरि=उलट कर। करवँट=एक बल से दूसरे बल होना।

भावार्थ—राजा दशरथ जी की बेहोशी चली गयी, उन्हों ने राम को स्मरण करते हुए ('राम' 'राम' कहते हुए) उलट कर दूसरी ओर को करवँट ली। (इस बल से उस बल हुए) मंत्री ने राम का आगमन सुनाकर समयानुसार विनती की।

अवनिप अकनि राम पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥

सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप राम निहारे॥

शब्दार्थ—अवनिप=(अवनि=पृथ्वी+प=पालक) राजा। अकनि=(सं० आकर्ण्य) सुनकर। पगुधारे=(पधारे) आये हैं। उघारे=खोले। निहारे=देखा।

भावार्थ—राजा ने 'राम आये हैं' सुनकर धैर्य धारण करके नेत्र खोले। मंत्री ने राजा को सँभाल कर बैठाला। राजा ने देखा कि राम मेरे पैरों पर गिर रहे हैं (प्रणाम कर रहे हैं)।

लिए सनेह विकल उर लाई। गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहिं चितइ रहेउ नर नाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥

शब्दार्थ—उर लाई लिए=छाती से लगा लिया। गइ=खोयी हुई। फनिक=सर्प। विलोचन=(वि=दो+लोचन=नेत्र) दोनों नेत्र। (वि का अर्थ दो लेना गुजराती प्रयोग है)। वारि प्रवाहू=जल धारा।

भावार्थ—प्रेम से विकल होकर राजा ने राम को छाती से लगा लिया। मानों खोयी हुई मणि सर्प को पुनः मिल गयी। राजा रामजी को देखने लगे। (देखते देखते उनके) दोनों नेत्रों से अश्रुधारा बह चली।

सोक बिबस किछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहिं मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥

शब्दार्थ—कहइ न पारा=कह नहीं सकते। (यह प्रयोग बँगला का है जैसे 'कोरिते पारी ना' 'बोलिते पारिवे ना' 'चौलिते पारी ना' आदि)। बारहिं बारा=बारम्बार, पुनः पुनः। बिधिहिं=ब्रह्मा को। कानन=वन।

भावार्थ—शोक के कारण राजा कुछ कह नहीं सकते (केवल राम जी को) बारम्बार छाती से लगा लेते हैं। राजा हृदय में ब्रह्मा से मनाते हैं (कि हे भगवन् आप ऐसा यत्न करिये कि) जिस से राम चन्द्र जी वन न जायँ।

सुमिरि महेसहिं कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदाशिव मोरी॥
आसुतोष तुम अवढर दानी। आरति हरहु दीन जन जानी॥

शब्दार्थ—निहोरी=प्रार्थना करके। सदाशिव=जो सर्वदा मंगलरूप रहें, महादेव जी। आसुतोष=जो शीघ्र ही संतुष्ट हो जाय। अवढर=जो बेकायदा ढले, अत्यन्त प्रसन्न हो। आरति=दुःख। दीन जन=दुखीदास।

भावार्थ—राजा महादेव जी का स्मरण कर प्रार्थना करके कहते हैं—हे सदाशिव आप मेरी विनय सुनिये क्योंकि आप आशुतोष और अवढर दाता हैं, मुझ दास को दुखी समझ मेरा दुःख हरण कीजिये।

दो०—तुम्ह प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहिं देहु।
वचन मोर तजि रहहिं घर परिहरि सील सनेहु॥ ४५॥

भावार्थ—हे शिव। आप सबके हृदय में प्रेरणा करनेवाले हैं, अतएव राम को भी ऐसी बुद्धि दीजिये (प्रेरणा कीजिये) कि मेरा वचन और प्रेम तथा शिष्टाचार त्याग कर घर में (अयोध्या में ही) रहें (वन न जायँ)।

अजस होउ जग सुजस नसाऊ। नरक परउँ बरु सुरपुर जाऊ।
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं। लोचन ओट राम जनि होहीं॥

शब्दार्थ—नसाऊ=नष्ट हो जाय। सुरपुर=स्वर्ग। जाऊ=चला जाय (न मिले)।

भावार्थ—चाहे संसार में सुयश नष्ट हो जाय और अपजस हो। चाहे मैं नरक में पड़ूँ, मेरा स्वर्ग चला जाय (अर्थात् न मिलै) आप मुझे सम्पूर्ण असह्य दुःख सहन करावें, पर राम आँखों से ओझल न हों।

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर-पात सरिस मन डोला।
रघुपति पितहिं प्रेमवश जानी। पुनिकिछु कहिहि मातु अनुमानी॥
देश काल अवसरु अनुहारी। बोले वचन विनीत विचारी॥

शब्दार्थ—गुनइ=विचार रहे थे। पात=(पत्र) पत्ता। अनुहारी=अनुसार, योग्य, लायक, उचित। विनीत=नम्र।

भावार्थ—इस प्रकार राजा मन में विचार कर रहे थे, कुछ बोलते न थे, उनका मन पीपर के पत्ते के समान चंचल हो रहा था। राम जी ने

पिता को प्रेम के वश में समझा और यह भी अनुमान किया कि माता कैकेयी फिर भी कुछ कहना चाहती हैं (जिससे पिता को दुःख होगा) यह सब विचार कर देश, काल और अवसरोचित विनम्र वचन बोले।

तात कहउँ किछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई।
अति लघु बात लागि दुखपावा। काहु न मोहिंकहि प्रथमजनावा
देखि गोसाइहिं पूछेउँ माता। सुनि प्रसंगु भे सीतल गाता॥

शब्दार्थ—ढिठाई=धृष्टता। लरिकाई=लड़कपन। गोसाइहिं=सरकार को, आपको (कहने का ढंग)। प्रसंगु=ब्यौरा, कथा।

भावार्थ—हे तात! मैं धृष्टता करके कुछ कहता हूँ, यह अनौचित्य आप लड़कपन समझ कर क्षमा कर दीजियेगा। आपने अत्यन्त छोटी सी बात के लिए दुःख पाया। पहले ही मुझे किसी ने कहकर जताया नहीं। यहाँ पर सरकार को देखकर माता जी से पूछा तो सब ब्यौरा सुनकर शरीर शीतल हो गया (अत्यन्त आनन्द हुआ)

दो०—मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिय तात।
आयसु देइअ हरषि हिय कहि पुलके प्रभु गात॥ ४६॥

भावार्थ—"हे तात! यह समय मंगल का है आप जो इस समय स्नेह वश (मोह के कारण) सोच कर रहे हैं उसे त्यागिये और हर्षित हृदय से मुझे आज्ञा दीजिये"। ऐसा कहने के पश्चात् रामजी का शरीर रोमांचित हो गया (रोएं खड़े हो गये)

धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहिं प्रमोदु चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥

शब्दार्थ—जगतीतल=संसार। प्रमोदु=अतीव आनन्द। चारिपदारथ चारो पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) करतल=हाथ में।

भावार्थ—राम जी पुनः कहने लगे—'संसार में उसी का जन्म लेना धन्य (सार्थक) है, जिसके चरित्र (कार्य) सुनकर पिता को अतीव आनन्द हो। उसीके हाथ में चारो पदार्थ हैं जिसे पिता माता प्राण के समान प्रिय हैं।

आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ वेगिहिं होइ रजाई।
विदा मातु सन आवउँ माँगी। चलिहउँ वनहिं बहुरि पगलागी।

भावार्थ—आज्ञा का पालन कर और जन्म का फल पाकर (गुरुजनों की आज्ञा का पालन ही जन्म लेने का फल है) मैं शीघ्रही लौट आऊँगा मुझे आज्ञा दीजिये। अब मैं माता से विदा माँग आऊँ फिर आप के पैर लग कर (प्रणाम कर) वन चला जाऊँगा।

अस कहि राम गवन तब कीन्हा। भूप सोक वस उतरु न दीन्हा॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

शब्दार्थ—व्यापि गइ=व्याप्त हो गई, फैल गई। छुअत=स्पर्श करते ही, डंक मारते ही। बीछी=(वृश्चिक) एक जहरीला जन्तु।

भावार्थ—ऐसा कह कर राम जी चले। राजा ने शोक के कारण उत्तर नहीं दिया। (राम के वनवास की) यह तीक्ष्ण बात सारे शहर में ऐसी फैल गई मानो डंक मारते ही बिच्छी सारे शरीर में चढ़ गयी है। अर्थात बिच्छी के मारते ही जैसे सारे शरीर में उसका विष दौड़ जाता है वैसेही राम वनवास की बात चटपट अयोध्या में सब को मालूम हो गयी।

सुनि भे विकल सकल नरनारी। वेलि विटप जिमि देखि दवारी।
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। बड़ विषादु नहिं धीरजु होई॥

शब्दार्थ—विटप=वृक्ष। दवारी=दावाग्नि। धुनइ=पीटता है।

भावार्थ—यह बात सुनकर सब स्त्री-पुरुष व्याकुल हो गये, जैसे दावाग्नि देख कर लताएँ और वृक्ष व्याकुल होते हैं। जो जहाँ इस बात को सुनता है वह वहीं अपना माथा पीटने लगता है (मस्तक पर हाथ मार कर कहता है कि गजब हो गया) नगर में बड़ा दुःख फैला है किसी को धैर्य नहीं होता।

दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं, सोक न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन-रस कटकई, उतरी अवध बजाइ॥ ४७॥

शब्दार्थ—स्रवहिं=बहते हैं। कटकई=सेना। बजाइ=बाजा बजाकर, डंके की चोट।

भावार्थ—लोगों के मुख सूख रहे हैं, नेत्रों से अश्रु टपकते हैं, लोग रोते हैं, शोक हृदय में नहीं समाता (लोग अति व्याकुल हैं) मानों करुणा-रस की सेना अयोध्या में डंके की चोट के साथ चढ़ आई है (अर्थात् लोगों में बड़ी करुणा फैली है)

भलि बनाय विधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहिं गारी।
एहि पापिनिहिं बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥

भावार्थ—(रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक होने ही को था) अच्छी विधि बन गई थी, पर इस केकई ने बिगाड़ दी, अतः जहाँ तहाँ लोग कैकेई को गाली देते हैं, और कहते हैं कि इस पापिनी को क्या समझ पड़ा कि इसने घर को छाकर उस पर आग धर दी—अर्थात् बना बनाया काम बिगाड़ दिया।

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहति चीखा
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंश बेनु बन आगी॥

शब्दार्थ—काढ़ि=(कर्षण) निकाल कर। बेनु=बाँस।

भावार्थ—यह कैकेई अपने हाथों से ही अपनी आँखें निकाल कर देखना चाहती है, अमृत डालकर बिष चीखना चाहती है (अर्थात् असंभव को सम्भव करना चाहती है)। यह कुटिल कठोर दुर्बुद्धि अभागिनी कैकेई रघुवंश रूपी बाँस के बन के लिये आग के समान हुई—अर्थात् जैसे बाँस का जंगल बाँसों की ही रगड़ से जल जाता है वैसेही कैकेई भी अपने ही वंश रघुवंश को जला डालना चाहती है।

पालव बैठि पेड़ एइ काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा।
सदा राम एहि प्रान समाना। कारन कौन कुटिलपनु ठाना॥

शब्दार्थ—पालव=(पल्लव) पत्र, पत्ता। ठाटु=छप्पर छाने के पहिले

जो लकड़ियाँ बाँधी जाती हैं उसे ठाट कहते हैं और इस काम को ठाट बाँधना कहते हैं। ठाटा=बाँधा।

भावार्थ—इस कैकेई ने पत्ते पर बैठ कर पेड़ को काटा है, सुख में सोक का ठाट बाँधा है। राम जी सदा इसे प्राण के समान प्यारे थे, फिर इसने किस कारण से कुटिलता की (यह समझ नहीं पड़ता)

सत्य कहहिं कवि नारिसुभाऊ। सब विधि अगहु अगाधदुराऊ।
निज प्रतिबिंब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥

शब्दार्थ—अगहु=(अग्राह्य) जो पकड़ा न जा सके। अगाध= जिसकी थाह न लग सके। दुराऊ=छिपाव, गुप्त मंसा। बरुक=बल्कि।

भावार्थ—कवि लोग ठीकही कहते हैं कि स्त्री का स्वभाव ऐसा होता है कि जिस भाव को वह छिपाना चाहै, वह भाव सब प्रकार से अग्राह्य और अगाध ही रहता है। चाहे अपना प्रतिबिंब पकड़ा जा सके, लेकिन हे भाई स्त्री की गति नहीं जानी जाती। (राम जी से इसको द्वेष था, पर इस भाव को कैकेई ने आज तक ऐसा छिपाया कि कोई भी जान न सका)

दो०—काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ॥४८॥

शब्दार्थ—काह=क्या। अबला=स्त्री।

भावार्थ—आग किसे नहीं जला सकती ? समुद्र में क्या नहीं समा सकता ? प्रबल अबला क्या नहीं कर सकती ? संसार में काल किसे नहीं खाता ? (अर्थात् अग्नि सब कुछ जला सकती है, समुद्र में सब कुछ समा सकता है, अबला सब कुछ कर सकती है, संसार में काल सबको खाता है)।

अलंकार—काकु वक्रोक्ति।

का सुनाइ विधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा।
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु विचारि नहिं कुमतिहिं दीन्हा॥

भावार्थ—विधाता ने क्या सुनाकर क्या सुनाया, क्या दिखाकर क्या

दिखलाना चाहता है (अर्थात् रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक का संवाद सुनाकर बिनवास सुनाया और वनवास दिखाकर आगे न मालूम क्या दिखावेगा) कुछ लोग कहते हैं कि राजा ने अच्छा नहीं किया, इस दुर्बुद्धि-नी को विचार कर वरदान नहीं दिया।

जो हठि भयउ सकलदुखभाजनु। अबलाबिबसग्यानुगुनुगाजनु।
एक धरम परिमिति पहिचाने। नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने।

शब्दार्थ— हठि = अवश्यमेव। भाजनु = पात्र, वर्तन। परिमिति = हद, सीमा। गा = गया, नष्ट हो गया।

भावार्थ—जो (वरदान) निश्चय ही सब दुखों का कारण हुआ। स्त्री के वश में होकर मानो (राजा का) ज्ञान और गुण हवा हो गये। कुछ चतुर लोग जो धर्म की मर्यादा पहिचाननेवाले हैं वे राजा को दोष नहीं देते।

सिवि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी।
एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास-भाय सुनि रहहीं।

भावार्थ—कुछ लोग परस्पर शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कहानी कहते हैं। कुछ लोग इस काम में भरत की भी राय बतलाते हैं, कुछ लोग इस बात को सुन कर उदास ही रह जाते हैं (कुछ भी सम्मति नहीं देते)

कान मूँदि कर, रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा।
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान पियारे॥

शब्दार्थ—अलीहा = अलीक, झूठ। जाहिं = नष्ट होते हैं।

भावार्थ—कुछ लोग हाथों से कान मूँद कर और दाँतों से जीभ दबा-कर कहते हैं कि यह बात झूठी है (कान मूँद कर और जीभ दबाकर कहने का ढंग है) ऐसा कहने से तुम्हारे पुण्य नष्ट होते हैं, रामचन्द्र जी भरत जी को प्राण के समान प्यारे हैं।

दो०—चंद चुवइ बरु अनल कन, सुधा होइ विष तूल।
सपनेहुँ कबहुँ कि करहिं किछु, भरत राम प्रतिकूल॥४९॥

शब्दार्थ—अनल कन = आग की चिनगारी। तूल = तुल्य समान।

भावार्थ—चाहे चन्द्रमा से आग की चिनगारियाँ टपकें, चाहे अमृत विष के समान हो जाय, किन्तु क्या भरत जी सपने में भी कभी रामचन्द्र के विरुद्ध कुछ कर सकते हैं (अर्थात् नहीं कर सकते)।

अलंकार—काकु वक्रोक्ति।

एक विधातहिं दूषनु देहीं। सुधा दिखाइ दीन्ह बिषु जेहीं।
खरभर नगर सोच सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू॥

शब्दार्थ—खरभरु = खलबली। दाहू = जलन।

भावार्थ—कुछ लोग विधाता को दोष देते हैं जिसने अमृत दिखा· कर विष दिया (अर्थात् रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक सुनाकर वनवास सुनाया) नगर में खलबली मची है, सब को सोच है, हृदय में दुसह जलन हो रही है और उत्साह मिट गया है।

अलंकार—ललित (दूसरे चरण में)

विप्र वधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी।
लगीं देन सिख सीलु सराही। वचन बान सम लागहिं ताही॥

शब्दार्थ—जठेरी = ज्येष्ठा, बड़ी, बूढ़ी।

भावार्थ—ब्राह्मणों की स्त्रियाँ, कुलपूज्य और बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ जो कैकेई को बहुत प्यारी थीं वे कैकेई के सिष्टाचार की बड़ाई करके उसे शिक्षा देने लगीं, पर उसे उनकी बातें बाण के समान लगती हैं (बुरी लगती हैं)

भरतु न मोहिं प्रिय राम समाना। सदा कहहु यहु सबु जगु जाना।
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु बन देहू॥

भावार्थ—इसे सारा संसार जानता है कि तुम हमेशा कहती रहीं कि राम के समान मुझे भरत प्यारे नहीं हैं। तुम स्वभाव से ही राम जी पर प्रेम करती रहीं, तो फिर आज कौन सा अपराध करने के कारण उन्हें वन भेजती हो।

कबहुँ न कियहु सवतिया-रेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू।
कौसिल्या अब काह बिगारा। तुम जेहि लागि बज्र पुर पारा॥

शब्दार्थ—सवतिया रेसू=(सपत्नी+रीस=बराबरी) सपत्नी की बराबरी, सवतिया डाह, इसके पर्यायबाची दाँजाहिसकी, दाँजारेसी और सवतियारेसी शब्द हैं।

भावार्थ—तुमने कभी सवतियाडाह नहीं किया, सब देश तुम्हारे प्रेम और विश्वास को जानता है। अब कौशल्या ने क्या बिगाड़ा है जिसके लिये तुमने नगर पर बज्र गिराया है।

दो०—सीय कि पिय सँग परिहरिहि, लषन कि रहिहहिं धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर, नृप कि जिइहि बिनु राम॥५०॥

शब्दार्थ—भूँजब=भोगेंगे।

भावार्थ—क्या सीता जी पति का साथ छोड़ देंगी, क्या लक्ष्मण जी घर पर रहेंगे, क्या भरत जी अयोध्या का राज्य भोगेंगे, और क्या राजा दसरथ बिना राम जी के जियेंगे (अर्थात् सीता जी पति का साथ न छोड़ेंगी, लक्ष्मण जी भी घर में न रहेंगे. भरत जी अयोध्या का राज्य न करेंगे, और राजा दसरथ बिना राम के जीवित न रहेंगे)।

अलंकार—काकु वक्रोक्ति।

अस बिचार उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोठि जनि होहू॥
भरतहिं अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू॥

शब्दार्थ—कोहू=क्रोध। कोठि=कोठी, कोठिला, वह बड़ा पात्र जिसमें किसान लोग अनाज रखते हैं। कानन=बन।

भावार्थ—ऐसा विचार कर अपने हृदय से क्रोध दूर कर दो, शोक और कलंक की कोठी मत बनो। भरत को जरूर युवराज का पद दो, लेकिन बन में राम का क्या काम है (राम को बनवास का दंड न दो)।

नाहिंन राम राज के भूखे। धरमधुरीन बिषयरस रूखे।

गुरु गृह बसहिं राम तजि गेहू। नृप सन अस बर दूसर लेहू॥

शब्दार्थ—धरम-धुरीन = धर्म-धुरंधर। रूखे = (रूक्ष) उदासीन।

भावार्थ—धर्मधुरंधर राम जी राज्य के भूखे नहीं हैं, वे तो विषयरस से उदासीन ही हैं। तुम राजा से दूसरा वर यह माँग लो कि राम जी घर छोड़ कर गुरु के घर में जाकर रहें।

जौ नहिं लगिहहु कहे हमारे। नहिं लागिहि किछु हाथ तुम्हारे।
जौ परिहास कीन्ह किछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥

भावार्थ—जो तुम हमारे कहने के अनुसार न करोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा। जो तुमने कुछ हँसी की हो, तो उसे कह कर साफ़ साफ़ बतला दो।

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहिं सुनि तुम्ह कहँ लोगू।
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोक कलंक नसाई॥

शब्दार्थ—बेगि = जल्दी।

भावार्थ—राम जी के समान पुत्र वन जाने योग्य है? (अर्थात नहीं है) यह सुनकर तुम्हें लोग क्या कहेंगे? जल्दी से उठो और वही उपाय करो, जिस प्रकार शोक और कलंक नष्ट हो जाय।

छंद—जेहि भाँति सोक कलंक जाहि उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहिं जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिन,प्रान बिनु तन,चंद बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी॥

शब्दार्थ—पालही = पालन कर। बात चालही = बात कर। धौं = निश्चय ही (यह शब्द 'ध्रुव' का अपभ्रंश है)

भावार्थ—जिस प्रकार से शोक और कलंक मिटे वह उपाय करके कुल का पालन कर। हठ कर के रामजी को वन जाने से लौटा ले, दूसरी बात न कर। तुलसीदास जी कहते हैं, जिस प्रकार सूर्य के बिना दिन मलिन होता

है, प्राण के बिना शरीर निःशक्त हो जाता है, चन्द्रमा के बिना रात्रि असु-न्दर होती है; उसी प्रकार हे भामिनी तू अपने हृदय में अयोध्या को रामजी बिना समझ ले।

अलंकार—मालोपमा (भिन्नधर्मा)

(नोट)—कोई कोई इसमें तीन उपमाओं को राम, लक्ष्मण और जान-की के लिये मानते हैं, और विपरीत क्रमालंकार द्वारा 'तुलसी' की समता जानकी से, 'दास' की लक्ष्मण से और 'प्रभु' की रामजी से मानते हैं। इसी प्रकार आगे गंगा उतारने के प्रसंग में केवट ने कहा है कि "तब लगि न तुलसी दास नाथ कृपालु पार उतारिहौं"। इसमें भी मानते हैं कि केवट यही कह रहा है कि तुलसी (जानकी) दास (लक्ष्मण) और नाथ (राम जी) तीनों में से किसी को भी पार न उतारूंगा।

सो०—सखिन्ह सिखावन दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइ कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—तेइ = उसने। कान न कीन्ह = (मुहावरा) ध्यान न दिया। प्रबोधी = समझाई हुई।

भावार्थ—सखियों ने ऐसी शिक्षा दी, जो कि सुनने में मधुर है और जिसका अंत भी हितकारक है। लेकिन कुटिल कुबड़ी की समझाई हुई उस कैकेई ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी।
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥

शब्दार्थ—ब्याधि = रोग। असाधि = असाध्य, जिसका अच्छा होना सम्भव न हो।

भावार्थ—असह्य क्रोध से रुष्ट हुई कैकेई जवाब नहीं देती, और (शिक्षा देनेवाली सखियों की ओर) इस तरह देखती है मानों भूखी बाघिनी हरि-णियों की तरफ़ देखती है। उन सखियों ने असाध्य रोग जान कर (कैकेई

को समझाना असम्भव समझ कर) छोड़ दिया, और उसे दुर्बुद्धि, अभागिनी कहती हुई चल दीं।

राज करत यहि दैव बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई।
एहि विधि बिलपहिं पुर-नर-नारी। देहिं कुचालिहिं कोटिक गारी॥

शब्दार्थ—बिगोई = बिगाड़ा, खराब किया। बिलपहिं = बिलखते हैं, दुख करते हैं; रोते हैं।

भावार्थ—(वे सखियाँ कहती हैं) राज करते हुए (सुख से रहते हुए) इसे दैव ने बिगाड़ दिया, इस कैकेई ने ऐसा किया जैसा कोई न करेगा (अर्थात् बहुत खराब काम किया)। इस प्रकार (कहकर) नगर के सब स्त्री और पुरुष विलाप करते हैं और कुचालिनी कैकेई को करोड़ों गालियाँ देते हैं।

जरहिं बिषमजर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन-आसा।
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी॥

शब्दार्थ—जरहिं = जलते हैं।

भावार्थ—वे (स्त्री-पुरुष) विषमज्वर से जलते हैं और लम्बी लम्बी साँसें लेते हैं, और कहते हैं कि रामजी के बिना जीने की कौन आशा है। (इस तरह) बड़े भारी बियोग के कारण प्रजा इस प्रकार घबड़ा गयी, मानो जल में रहनेवाले जीव पानी सूखते हुए देखकर घबड़ा गये हों।

अति बिषाद बस लोग लोगाई। गये मातु पहिं राम गोसाईं।
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। इहै सोच जनि राखइँ राऊ॥

शब्दार्थ—लोगाई = स्त्री। पहिं = पास। चाऊ = चाव, उत्साह।

भावार्थ—स्त्री और पुरुष (नगर के) बहुत दुखी हैं। इन्द्रियों के स्वामी रामजी माता (कौशिल्या) के पास गये। उनका मुख प्रसन्न है और हृदय में चौगुना उत्साह है, सोच केवल इतना ही है कि कहीं राजा मुझे रोक न लें।

दो०—नव गयंद रघुबंसमनि, राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवन सुनि, उर अनंद अधिकान॥५२॥

शब्दार्थ—गयंद = हाथी। अलान = लकड़ी की बनी हुई तिकोनी बेड़ी जिसके भीतर लोहे के कांटे लगे रहते हैं। यह नये पकड़े हुए हाथी के पैर में लगाकर रस्सी में बाँध दी जाती है, लोहे के कांटे होने के कारण हाथी उछल कूद नहीं मचा सकता।

भावार्थ—रामजी नवीन पकड़े हुए हाथी के समान हैं, और राज अलान के समान है, वन जाने का संबाद उस राज्य रूपी बेड़ी से छूटने के समान जानकर रामजी के हृदय में बड़ा आनंद हुआ। कहने का मतलब यह है कि जैसे नया हाथी अलान में बँधने पर बड़ा दुखी होता है वन में स्वच्छंद रहने से वह बड़ा सुखी रहता है। इसी तरह राज्याभिषेक रूपी बेड़ी से छूटने का संवाद पाकर रामजी का हृदय बड़ा आनंदित हुआ।

अलंकार—रूपक और उपमा।

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा।
दीन्ह असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन वसन निछावरि कीन्हे॥

शब्दार्थ—रघुकुल-तिलक = रघुवंशियो में श्रेष्ठ। लाइ उर लीन्हें = हृदय से लगा लिया।

भावार्थ—रघुवंश के तिलक श्री राम जी ने दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्न होकर माता कौशिल्या के पैरों पर सिर नवाया, माता ने राम जी को आशीर्वाद देकर हृदय से लगा लिया और गहने तथा कपड़े न्योछावर किये।

बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेहजलु पुलकित गाता।
गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्त्रवत प्रेम रस पयद सुहाये॥

शब्दार्थ—पुलकित = रोमाँचित, रोंए खड़े हो जाना। स्त्रवत = चूता है। पयद = स्तन, छाती।

भावार्थ—माता कौशिल्या बार बार राम जी का मुहँ चूमती हैं, उनकी आँखों में प्रेम-जल भरा हुआ है और शरीर रोमांचित हो गया है। माता ने राम जी को गोद में बिठा कर फिर हृदय से लगा लिया, (हृदय से लगाते ही) उनके सुहावने स्तनों से पुत्र प्रेम के मारे दूध टपकने लगा।

प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई। रंक धनद पदवी जनु पाई।
सादर सुन्दर वदन निहारी। बोली मधुर वचन महतारी॥

शब्दार्थ—रंक=निर्धन, गरीब। धनद=(धन+द=देने वाला) कुबेर।

भावार्थ—उनका प्रेम और आनंद कुछ कहा नहीं जाता, (उनकी दशा ऐसी थी) मानो किसी ग़रीब को कुबेर का पद मिल गया हो। आदर के साथ राम जी का सुन्दर मुख देखकर माता कौशिल्या मीठे वचन बोलीं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा (दूसरे चरण में)

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद-मंगल-कारी।
सुकृत सील सुख सींव सुहाई। जन्म लाभ कइ अवधि अघाई॥

शब्दार्थ—मुद=प्रसन्नता, आनन्द। सींव=सीमा, कइ=की। अघाई=परिपूर्ण।

भावार्थ—हे तात कहो, माता बलिहारी होती है, आनन्द और कल्याण करनेवाली (राज्याभिषेक की) मुहूर्त कब है, जो पुण्य, शील और सुख की सुन्दर सीमा है और संसार में जन्म पाने की परिपूर्ण अवधि है। (माता के लिये अपने पुत्र को उच्चातिउच्च पद पर देखना ही जन्म धारण का फल है)

दो०—जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित, वृष्टि सरद रितु स्वाति॥५३॥

शब्दार्थ—आरत=आर्त, व्याकुल। चातक=पपीहा। स्वाति=नक्षत्र विशेष, (पपीहा केवल इसी नक्षत्र के जल को पीता है)

भावार्थ—जिस लग्न को सब स्त्री पुरुष चाहते हैं और उस लग्न में आप का राज्याभिषेक देखने के लिये इतने व्याकुल हैं जिस प्रकार से पपीहा और पपीहरी शरद ऋतु में स्वाती नक्षत्र की वर्षा के जल के लिये प्यासे रहते हैं।

अलंकार=उदाहरण।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू।
पितु समीप तब जायहु भैया। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया॥

शब्दार्थ—बेगि = तुरत, जल्दी। नहाहू = (सं० स्नान) स्नान करलो।

भावार्थ—हे प्यारे! मैं तुम्हारी बलैया लेती हूं, जल्दी नहालो और जो मन को रुचे कुछ मधुर चीज़ खालो, तब पिता के पास जाना, बहुत देरी हो गयी है, मैया बलिहारी जाती है।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह-सुर-तरु के फूला।
सुख मकरंद भरे, स्रियमूला। निरखि राम-मन-भँवर न भूला॥

शब्दार्थ—मकरंद = फूल का रस। स्रिय = श्री, शोभा।

भावार्थ—राम जी ने माता के सुन्दर वचनों को सुना, वे वचन मानो प्रेमरूपी कल्पवृक्ष के फूल ही थे। वे वचन रूपी फूल सुख रूपी मकरंद से भरे थे और शोभा के तो मूल ही थे। लेकिन इनको देखकर राम जी का मन रूपी भौंरा नहीं भूला (भोजन नहीं किया)

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक।

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी।
पिता दीन्ह मोहिं कानन-राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥

शब्दार्थ—कानन = वन।

भावार्थ—धर्म धुरंधर रामचन्द्र जी ने धर्म की गति जानकर माता से बहुत ही कोमल वचन कहे, पिता जी ने मुझे वन का राज्य दिया है, जहां सब तरह से मेरा बड़ा भारी काम है।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद-मंगल कानन जाता।
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँदु अंब अनुग्रह तोरे॥

शब्दार्थ—देहि = दे। जाता = जाते हुए। भोरे = धोखे से। अंब = माता।

भावार्थ—हे माता! प्रसन्न चित से आज्ञा दीजिए, जिससे कि बन जाते हुए आनन्द और कल्याण हो। हे माता प्रेम के वस में होकर भूल से भी डरिए नहीं, आप की कृपा से (वन में भी) आनन्द ही होगा।

दो०—बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु-बचन-प्रमान।
आइ पाँय पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान ॥५४॥

शब्दार्थ—बिपिन=वन, जंगल। प्रमान करि=पूरा करके। मलान=मलिन।

भावार्थ—चौदह वर्ष तक वन में बस कर, पिता का वचन पूरा करके, फिर आकर आप के चरणों के दर्शन करूंगा, अपना मन मत मलिन कीजिए, अर्थात् मन में दुखी न होइए।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके।
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस-पानी॥

शब्दार्थ—बिनीत=नम्र, कोमल। करके=कड़के, पीड़ा हुई। सहमि=डर कर।

भावार्थ—रामचन्द्र जी के ये नम्र और मीठे वचन माता के हृदय में बाण के समान लगे और उनको पीड़ा होने लगी। माता राम जी के ठंडे वचनों को सुन कर इस प्रकार डर कर सूख गयीं (बहुत दुखी हुईं) जैसे वर्षा ऋतु का जल पड़ते ही जवासा सूख जाता है।

अलंकार—उपमा (पूर्वार्द्ध में) ; उदाहरण (उत्तरार्द्ध में)

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहु मृगी सुनि केहरि नादू।
नयन सजल तन थरथर काँपी। माँजहिँ खाइ मीन जनु मापी॥

शब्दार्थ—केहरि=(केशरी) सिंह। नादू=नाद, शब्द। माँजहि=माँजा को (वर्षा के प्रथम जल के फेनको माँजा कहते हैं, वह ज़हरीला होता हैं)। मापी=वे सुध हो गई।

भावार्थ=(माता कौशिल्या के) हृदय का दुख कुछ कहा नहीं जाता, मानो हरिणी सिंह की गरज सुन कर दुखी हुई हो। उनकी आँखों में जल भर आया, शरीर थर थर काँपने लगा, और वे ऐसी व्याकुल हुईं मानो माँजा खाकर मछली व्याकुल हुई है।

अलंकार=उत्प्रेक्षा।

धरि धीरज सुत बदन निहारी। गद्गद वचन कहति महतारी।
तात पितहिं तुम्ह प्रान-पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥

शब्दार्थ—गद्गद वचन-शोक के समय की बातें जो कि मुख से कुछ निकलती हैं कुछ नहीं; यहाँ पर यही अर्थ है, (इसके अतिरिक्त इसका अर्थ आनन्द, हर्ष,.हर्ष के समय मुंह से शब्द न निकलना भी होता है)

भावार्थ—धैर्य धारण करके और पुत्र का मुख देखकर माता कौशिल्या गद्गद वचन कहती हैं! हे पुत्र! तुम तो पिता को प्राण के समान प्रिय हो वे तुम्हारे नित्य के कार्यों को देखकर प्रसन्न हैं।

राज देन कहँ शुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा।
तात सुनावहु मोहिं निदानू। को दिनकर-कुल भयउ कृसानू॥

शब्दार्थ—निदान=कारण। को=कौन। कृसानू=अग्नि।

भावार्थ—(राजा ने) राज्य देने के लिये शुभ दिन निश्चित किया था, अब किस अपराध के कारण वन जाने के लिये कहा है। हे बेटा! मुझे कारण बतलाओ, कि कौन व्यक्ति सूर्य वंश के लिये अग्नि रूप हुआ (अर्थात् सूर्य वंश को कष्ट पहुंचाने का कारण हुआ)।

दो०—निरखि राम रुख सचिव सुत, कारन कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंग रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ॥५५॥

शब्दार्थ—मूक=गूँगा। रुख=(फारसी) इशारा, संकेत। प्रसंग=हाल।

भावार्थ—राम जी का रुख पाकर मंत्री के पुत्र ने अच्छी तरह कारण बतलाया, सब हाल सुनकर कौशिल्या जी गूँगे की भाँति रह गईं, अर्थात् मुँह से कुछ कहते नहीं बना, उनकी दशा ऐसी हो गयी जो वर्णन नहीं की जा सकती।

नोट—राम जी ने विमाता के कलंक को अपने मुँह से कहना नहीं चाहा, मंत्री सुमंत के पुत्र 'अभिनंदन' से कहलवा दिया।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू।
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। विधि गति बाम विदित सब काहू॥

शब्दार्थ—दारुन = कठिन । दाहू = जलन । सुधाकर = चन्द्रमा ।

भावार्थ—माता कौशिल्या न तो राम जी को रख ही सकती हैं, न जाने के लिये ही कह सकती हैं; (रख सकने और भेजने) दोनों तरह से हृदय में कठिन पीड़ा हुई । चन्द्रमा लिखते हुए राहु लिख गया (अर्थात् सुखदाई राज्याभिषेक के बदले दुखदाई बनवास हो गया) सब लोग जानते हैं कि ब्रह्मा की गति सदा टेढ़ी ही होती है ।

अलंकार—ललित ।

धरम सनेह उभय मति घेरी । भइ गति साँप छछूँदरि केरी ।
राखउँ सुतहिं करउँ अनुरोधू । धरम जाइ अरु बंधु बिरोधू ॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी । संकट-सोच बिबस भइ रानी ॥

शब्दार्थ—उभय = दोनों । अनुरोध = बल पूर्वक किसी काम के करने को कहना ।

भावार्थ—धर्म और प्रेम दोनों ने कौशिल्या जी की बुद्धि को घेर लिया इससे उनकी दशा छछूँदर पकड़े हुए साँप की तरह हो गयी (साँप जब छछूँदर को पकड़ लेता है तो न तो उसे छोड़ही सकता है न निगलही सकता है । यदि छोड़ता है तो अंधा हो जाता है, और यदि निगल जाता है तो मर जाता है, लोक में ऐसी कहावत है । वह दोनों कामों में से एक भी करने का निश्चय नहीं कर पाता) कौशिल्या जी सोचती हैं कि राजा से अनुरोध करके मैं पुत्र को घर में रख सकती हूं, परन्तु ऐसा करने से एक तो धर्म जाता है दूसरे भाई से (भरत से) विरोध होता है । अगर बन जाने के लिये कहती हूं तो बड़ी हानि होती है, इस प्रकार रानी कौशिल्या संकट (पहिली बात में) और सोच (दूसरी बात में)के बस में हो गयीं ।

अलंकार—दृष्टान्त ।

बहुरि समुझि तिय-धरम सयानी । राम भरत दोउ सुत सम जानी ।
सरल सुभाउ राम महतारी । बोली बचन धीर धरि भारी ।
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका । पितु आयसु सब धरम क टीका ।

शब्दार्थ— तिय-धरम=स्त्री धर्म, अपनी सवत के लड़कों को अपने पुत्र के समान समझना। क=का। टीका=शिरोमणि, श्रेष्ठ।

भावार्थ—फिर बुद्धिमती कौशिल्या ने स्त्री-धर्म समझ कर राम और भरत दोनों पुत्रों को बराबर जानकर सीधे स्वभाव वाली राम जी की माता भारी धैर्य धारण करके बोलीं। हे बेटा मैं बलैया लेती हूं तुमने पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके बहुत अच्छा किया, क्योंकि पिता की आज्ञा सब धर्मों में श्रेष्ठ है।

दो०—राज देन कहि दीन्ह बन, मोहिं न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहिं भूपतिहिं, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥५६॥

शब्दार्थ—सो= सः, वह। लेस=थोड़ा, ज़रा।

भावार्थ—(तुम्हारे पिता ने) राज्य देना कह कर वनवास दिया इसका मुझे तनिक भी दुख नहीं है, (दुख केवल इतना ही है कि) तुम्हारे बिना भरत को, राजा को, और प्रजा को बहुत कष्ट होगा।

जौ केवल पितु आयसु ताता। तौं जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौ पितु-मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

भावार्थ—हे बेटा! जो केवल पिता की आज्ञा हो, तो माता को पिता से अधिक मान्य जान कर मेरे कहने से वन मत जाओ, और यदि पिता माता दोनों ने वन जाने के लिये कहा हो, तो वन सौ अयोध्या के समान हैं।

नोट—'जानि बड़ि माता'—माता का पद पिता से बड़ा है," धर्म शास्त्रों में "पितुर्दशगुणा माता" लिखा है। अर्थात् माता का गौरव पिता से दश गुणा अधिक है।

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी।
अंतहु उचित नृपहिं बनबासू। बय बिलोकि जिय होइ हरासू॥

शब्दार्थ—खग (ख+ग=गमन करने वाला) पक्षी। मृग=(मृ= जंगल, वन+ग=गमन करने वाला) जंगल में गमन करने वाले जानवर मा॰ बय=(वय), अवस्था, वय। हरासू=(ह्रास) दुख, कष्ट।

भावार्थ—(बन में) वनदेव तुम्हारे पिता और वनदेवी तुम्हारी माता के समान होंगी, पक्षी और जानवर तुम्हारे चरण कमलों की सेवा करेंगे। अंत में भी राजा को वनवास करना उचित है लेकिन तुम्हारी आयु (कम उम्र) देखकर चित्त दुखित होता है।

बड़ भागी वन अवध अभागी। जो रघुबंस तिलक तुम त्यागी।
जौ सुत कहउँ संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू॥

शब्दार्थ—रघु-बंस-तिलक=रघु के वंश में श्रेष्ठ, रामचन्द्र जी।

भावार्थ—हे राम! वन बड़ा भाग्यवान है और अयोध्या बड़ी अभागिनी है, जिसे तुमने छोड़ दिया। हे बेटा! जो मैं कहूँ कि मुझे साथ ले चलो, तो तुम्हारे हृदय में सन्देह होगा (अर्थात् शायद तुम समझो कि मेरी माँ पिता से प्रेम नहीं रखती)।

पूत परम प्रिय तुम सबहीके। प्रान प्रान के जीवन जी के।
ते तुम कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ॥

भावार्थ—हे पुत्र! तुम सभी को प्यारे हो, तुम सब के प्राणों के भी प्राण हो (अर्थात् प्राणों की सत्ता तुम्हीं से है) और चेतना के भी चेतना हो (अर्थात् चेतनाशक्ति के आधार हो)। वही तुम यह कह रहे हो कि मैं वन जा रहा हूँ, और मैं ये वचन सुनकर बैठी पछता रही हूँ (अर्थात् मुझे ये वचन सुनकर मर जाना चाहिये था कमसे कम जड़वत् तो अवश्य ही हो जाना चाहिये था, सो नहीं हुई, अतः मैं बड़ी कठोरहृदया हूँ)

दो०—यह विचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ॥५७॥

भावार्थ—ऐसा विचार कर मैं झूठा प्रेम बढ़ा कर हठ नहीं करती, मैं तुम्हारी बलैया लेती हूं, माता का सम्बन्ध मानकर तुम मेरी याद न भूल जाना।

देव पितर सब तुम्हहिं गोसाईं। राखहु नयन पलक की नाईं।
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना॥

अस विचारि सोइ करेहु उपाई। सबहिं जिअत जेहि भेंटहु आई।

शब्दार्थ—पितर=(पितृ) पूर्वपुरुष, पुरखा। राखहु=(रक्ष्) रक्षा करें। नाईं=(न्याय) तरह। परिजन=सम्बन्धी लोग। अंबु=पानी। मीन=मछली।

भावार्थ—गोसाइँ देवगण और पुरखा लोग, तुम्हारी रक्षा इस तरह से करें जैसे पलक आँखों की रक्षा करते हैं। चौदह वर्ष की अवधि रूपी जल में प्यारे सम्बन्धी लोग मछली की तरह हैं (कहने का भाव यह है कि जिस तरह मछली जल में जबतक रहती है तबतक जीती है, इसी तरह जब तक तुम्हारे बनवास की अवधि है तब तक लोग जीते रहेंगे, यदि अवधि के बाद न आओगे तो सब मछली की तरह तड़प तड़प कर मर जायँगे। तुम करुणा की खानि और धर्मधुरंधर हो। ऐसा बिचार कर वैसा उपाय करना जिससे सब को जीते जी आकर मिलो।

जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ। करि अनाथ जन-परिजन गाऊँ॥
सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल-काल बिपरीता।
बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी॥

शब्दार्थ—सुखेन=सुख से। गाऊँ=ग्राम (सं०) गाँव। कराल=भयंकर। बिलपि=विलाप करके, दुख प्रकाश करके, रोकर। आपुहिं=अपनेको।

भावार्थ—मैं बलैया लेती हूं तुम प्रजा, सम्बन्धियों और गाँव को अनाथ करके सुख से वन जाओ। आज सबके सुकर्मों का फल खतम हो गया, और भयंकर काल सब के विपरीत हो गया। इस प्रकार अनेक प्रकार से विलाप करके कौशिल्या जी राम जी के पैरों से लिपट गईं और उन्होंने अपने को परम अभागिनी समझा।

(नोट) राम जी के वन जाने से अयोध्या सचमुच अनाथ हो गयी थी। क्योंकि राजा दशरथ तो बेहोश पड़े थे वे राजकाज सँभाल ही नहीं सकते थे। रामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण जी वन को ही चले गये। रहे भावी राजा भरत और शत्रुहन, ये लोग ननिहाल में थे। अयोध्या की देखभाल करने वाला कोई स्वामी न रह गया था।

दारुन दुसह दाह उर व्यापा। बरनि न जाइ विलाप कलापा।
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु वचन बहुरि समुझाई॥

शब्दार्थ—कलापा=समूह, ढेर। लाई=लगा लिया।

भावार्थ—उनके हृदय में भयंकर और असह्य वेदना होने लगी, वे इतना विलाप करने लगीं कि उसकी वर्णना नहीं की जा सकती। राम जी ने माता को उठाकर हृदय से लगा लिया, और कोमल बातें कह कर उन्हें फिर समझाया।

दोहा०—समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाय।
जाइ सासु-पद-कमल-जुग, बंदि बैठि सिरनाइ॥ ५८॥

शब्दार्थ—जुग=युग्म (सं०), दो।

भावार्थ—इसी समय सीताजी रामजी के वन जाने का समाचार सुनकर घबड़ा उठीं। और (सास के पास) जाकर सास के दोनों चरण-कमलों को प्रणाम करके सिर नवाकर बैठ गयीं।

दीन्ह असीस सासु मृदुबानी, अति सुकुमारि देखि अकुलानी।
बैठि नमित मुख सोचति सीता, रूप राशि पति-प्रेम पुनीता॥

शब्दार्थ—असीस = आशीर्वाद। नमित = नीचा किया हुआ। पुनीत=पवित्र।

भावार्थ—सास ने कोमल वचनों से सीता जी को आशीर्वाद दिया, और उन्हें बहुत सुकुमार देखकर घबड़ा उठीं (यहां व्याकुल होने का भाव यह है कि बहुत सुकुमार होने से रामजी के बनवास से सीता जी को कष्ट होगा)। पति में पवित्र प्रेम रखनेवाली रूपवती सीताजी बैठकर सिर नीचा किये हुए सोच रही हैं।

चलन चहत वन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतव कछु जाइ न जाना॥

भावार्थ—जीवन-नाथ बन को चलना ही चाहते हैं, किस पुण्य से उनका साथ होगा। मेरे शरीर और प्राण दोनों साथ जायेंगे या केवल प्राण ही, विधाता का कर्त्तव्य कुछ मालूम नहीं पड़ता।

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी।
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहिं सीय-पद जनि परिहरहीं॥

शब्दार्थ—चारु=सुन्दर। लेखति=लिखती हैं, चिन्ह बना रही हैं। नूपुर=बिछिया। मुखर=शब्द।

भावार्थ—सीता जी अपने सुन्दर पैर के नाखून से ज़मीन में चिन्ह बना रही हैं, (जमीन में पैर के नाखून से चिन्ह बनाना स्त्रियों की आदत होती है) उस समय बिछियों का जो शब्द हो रहा है, उसकी मधुरता कवि लोग इस तरह वर्णन करते हैं, मानो वे प्रेमवश होकर यह प्रार्थना कर रहे हैं कि हमें सीताजी के चरण न त्यागें (तो अच्छा हो)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मंजु बिलोचनि मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी।
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु-ससुर परजनहिं पियारी

शब्दार्थ—मोचति= (मुच् धातु) बहाती हैं।

भावार्थ—सीता जी अपने सुन्दर नेत्रों से जल बहा रही हैं, यह देखकर रामजी की माता (रामजी से) बोलीं। हे प्यारे सुनो, सीताजी बहुत सुकुमारी हैं, और सास ससुर तथा संबंधियों को प्यारी हैं।

दो०—पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानु-कुल-भानु।
पति रवि-कुल-कैरव-बिपिन-बिधु गुन-रूप-निधानु॥ ५६॥

शब्दार्थ—कैरव=कुमुदनी।

भावार्थ—राजाओं में श्रेष्ठ जनक जी इनके पिता हैं, सूर्यवंश के सूर्य राजा दशरथ ससुर हैं, सूर्यवंश रूपी कुमुदबन लिये चन्द्रमावत प्रकाशक गुण और रूप की खानि (तुम) पति हो।

अलंकार—परंपरित रूपक।

मैं पुनि पुत्र बधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई।
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखउँ प्रान जानकिहिं लाई॥

शब्दार्थ—नयनपुतरि करि=आंखों की पुतली बनाकर, बहुत साव-धानी से रक्षा करना (यह कहने का मुहावरा है)।

भावार्थ—फिर मैंने उस रूपवती सुन्दर गुण और स्वभाव वाली सीता को प्यारी पतोहू के रूप में पाया है, बहुत यत्न से उसकी रक्षा करके प्रेम बढ़ाया है और उसीसे अपने प्राण लगा रखे हैं (प्राणवत प्यार करती हूं)

कलप वेलि जिमि बहु विधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ विधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥

शब्दार्थ—लाली=लालन किया, प्रेम पूर्वक पाला। सलिल=जल। प्रतिपाली=पालन किया। परिनामा=फल।

भावार्थ—कल्पलता की तरह मैंने अनेक प्रकार से उसका लालन किया है और प्रेम रूपी जल से सींचकर उसको पाला है। उसके फूलते और फलते समय विधाता बिपरीत हो गया मालूम नहीं होता कि क्या परिणाम होगा।

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा।
जिवनमूरि जिमि जोगवत रहेऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहेऊँ॥

शब्दार्थ—पीठ=पीढ़ा। अवनि=पृथ्वी, जमीन। जिवनमूरि=संजी-वनी बूटी। जोगवत=बचाती, रक्षा करती।

भावार्थ—सीता जी ने पलँग, पीढ़ा, गोद और हिंडोले के सिवाय कभी कठोर जमीन पर पैर नहीं रक्खा। मैं संजीवनी बूटी के समान उनकी रक्षा करती रहती हूं, कभी दिया की बत्ती भी टालने के लिये नहीं कहा (अर्थात हलका से हलका काम करने को मैंने कभी नहीं कहा)

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा।
चंद-किरन-रस-रसिक-चकोरी। रबि रुख नयन सकै किमि जोरी॥

शब्दार्थ—नयन जोरना=(मुहावरा है) निहारना, ताकना, देखना।

भावार्थ—वही सीता तुम्हारे साथ बन जाना चाहती है, हे रघुनाथ तुम्हारी क्या आज्ञा होती है। चन्द्रमा की किरणों के रस (आनन्द) को

चाहने वाली चकोरी, सूर्य से कैसे आँख मिला सकती है (अर्थात सुख से रहने वाली सीता वन का कष्ट नहीं सह सकती)।

अलंकार=ललित। काकुवक्रोक्ति।

दो०—करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि।
विष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि ॥६०॥

शब्दार्थ—केहरि=केसरी, सिंह। निसिचर=रात में चलनेवाले, राक्षस भूरि=अधिक, बहुत। सुभग=सुन्दर।

भावार्थ-हाथी, सिंह राक्षस आदि बहुत से दुष्ट जीव वन में चलते हैं। हे पुत्र क्या विष की बाटिका में सुन्दर संजीवनी बूटी सोभित हो सकती है? (अर्थात सीता जी वन में शोभित नहीं हो सकतीं)

अलंकार—ललित, बक्रोक्ति।

बंन हित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय-सुख-भोरी।
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ॥

शब्दार्थ—किसोरी=लड़कियाँ। बिरंचि=ब्रह्मा। भोरी=अज्ञान। पाहनकृमि (पाहन का शुद्ध रूप पाषाण) पत्थर का कीड़ा जो कि पत्थर को खा जाता है।

भावार्थ—ब्रह्मा ने वन के लिये विषय-सुख (उत्तम खान-पान परिधानादि) न जानने वाली कोल और किरात की कन्याओं को ही बनाया है, जिनका स्वभाव पत्थर के कीड़े की तरह कठोर है, उन्हें वन में कभी कष्ट नहीं होता।

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेत तजा सब भोगू।
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥

शब्दार्थ—तापस=तपस्वी। हेत=लिये। भोगू=सांसारिक सुख। बसिहि=बसेगी, रहेगी। कपि=बन्दर।

भावार्थ—अथवा तपस्वियों की स्त्रियां वन के योग्य हैं, जिन्होंने तपस्या के लिये सब सांसारिक सुख छोड़ दिये हैं। हे तात सीता जी वन में किस तरह रहेंगी, जो कि चित्र में बने हुए बन्दर को देखकर डरजाती हैं।

सुर-सर-सुभग बनज-बन-चारी। डाबर जोग कि हंस कुमारी।
अस बिचारि जस आयस होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥

शब्दार्थ—सुर-सर=(सुर=देवता+सर=तालाब) देवताओं का तालाब, मानसरोवर। सुभग=सुन्दर। बनज=(बन=पानी+ज=जन्म होना) पानी में पैदा होने वाला, कमल (रूढ़ि संज्ञा)। चारी=(चर् धातु) चलने वाला, विचरण करने वाला। डाबर=छोटा सा गड्ढा।

भावार्थ—मानसरोवर के सुन्दर कमल-बन में विचरण करने वाली हंस की पुत्री क्या छोटे से गड्ढे के योग्य हो सकती है? ऐसा विचार कर आप की जैसी आज्ञा हो, मैं जानकी को वैसी ही शिक्षा दूं।

जौ सिय भवन रहइ कह अंबा। मो कहँ होइ प्रान अवलंबा।
सुनि रघुवीर मातु-प्रिय-बानी। सील-सनेह-सुधा जनु सानी॥

भावार्थ—माता कौशिल्या जी कहती हैं कि यदि सीता जी घर में रहें, तो मेरे प्राण का आधार हो जाय। रामचन्द्रजी ने नम्रता, प्रेम और अमृत से भरे हुए माता के प्यारे वचनों को सुनकर।

दो०—कहि प्रिय बचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन गुन-दोष॥ ६१॥

शब्दार्थ—विवेकमय=विचार से भरे हुए। प्रबोधना=समझाना।

भावार्थ—विचार से भरी हुई बातें कहकर माता का समाधान किया, और जंगल के गुण दोष बतलाकर जानकी को समझाने लगे।

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं।
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जनि जिय किछु गुनहू॥

शब्दार्थ—समीप=पास, सामने। माहीं=(मध्य) में। आन भाँति=दूसरे प्रकार। गुनहू=समझो, विचारो।

भावार्थ—राम जी माता के सामने सीता जी से कहते हुए लज्जित हो रहे थे, लेकिन वे मन में अवसर का विचार कर बोले। हे राजकुमारी! मेरी

शिक्षा सुनो, हृदय में कुछ दूसरे प्रकार से न समझना (कहने का भाव यह है कि मेरो वार्तों का उल्टा अर्थ न लगा लेना)।

आपन मोर नीक जो चहहू। वचन हमार मानि गृह रहहू।
आयसु मोरि सासु सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई॥

भावार्थ—जो तुम अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरी बात मानकर घर पर रहो। सास की सेवा करना ही मेरी आज्ञा है, हे भामिनि (पत्नी) सब तरह से घर पर रहने में ही भलाई है।

एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥

शब्दार्थ—दूजा=(द्वितीय) दूसरा। करिहि=करें। भोरी=पगली, व्याकुल।

भावार्थ—आदर के साथ सास और ससुर के पैरों की पूजा करने से बढ़ कर दूसरा धर्म नहीं है। जब जब माता मेरी याद करें और प्रेम से व्याकुल होने से उनकी बुद्धि पगली की सी हो जाय।

तब तब कहि तुम्ह कथा पुरानी। सुंदरि समुझायेहु मृदु बानी।
कहहुँ सुभाय सपथ सत मोहीं। सुमुखि मातु हित राखहुँ तोहीं॥

भावार्थ—हे सुन्दरी, तब तब तुम पुरानी कथाएँ कहकर कोमल बातों से समझाना। मैं स्वभाव से ही कहता हूं (बातें बनाकर नहीं) मुझे सैकड़ों कसमें हैं, हे सुन्दरी मैं माता के लिये ही तुम्हें घर पर रखता हूं।

दो०—गुरु-श्रुति-संमत धरमफल, पाइअ विनहिं कलेसु।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेसु॥६२॥

शब्दार्थ—संमत=अनुकूल, अनुसार। पाइअ=पाओगी।

भावार्थ—गुरु और वेद के अनुसार धर्म का फल विना कष्ट पा जाओगी। हठ करने से गालव ऋषि, नहुष राजा आदि सभी ने कष्ट भोगा है।

मैं पुनि करि प्रमान पितु बानी। वेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी।

दिवस जात नहिं लागिहि वारा। सुंदरि सिखवन सुनहु हमारा॥

शब्दार्थ—प्रमान करि=पूरा करके। सयानी=(सज्ञानी से) चतुर। वारा=देर।

भावार्थ—हे सुन्दर मुख वाली चतुरसयानी सुनो, फिर मैं पिता के वचनों को पूरा करके जल्द लौटूँगा। हे सुन्दरी मेरी सीख सुनो, दिन बीतते देर नहीं लगती।

जौ हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा।
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम वारि बयारी॥

शब्दार्थ—पाउब=पाओगी। बयारी=हवा।

भावार्थ—हे वामा! जो तुम प्रेम के वस होकर हठ करोगी तो अंत में दुख पाओगी। वन कठोर है और वहुत भयानक है, और वहाँ पर धूप, सर्दी, जल और हवा वहुत विकट होते हैं।

कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहि बिनु पद-त्राना।
चरन-कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥

शब्दार्थ—कंटक=काँटा। चलब=चलेंगे। पदत्राना=जूता। भूमि-धर=(भूमि=पृथ्वी=धर=पकड़ना) पर्वत।

भावार्थ—रास्ते में कुशा काँटे और वहुत से कंकड़ रहते हैं, बिना जूते के पैदल ही चलना होगा। तुम्हारे चरण-कमल कोमल और सुन्दर हैं रास्ते में अगम्य वड़े वड़े पहाड़ हैं।

कंदर खोह नदी—नद—नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे।
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥

शब्दार्थ—कंदर=पर्वत की सुरंग, वह स्वाभाविक होती है, जो पहाड़ी जल से वन जाती हैं। खोह=दो पहाड़ों का तंग रास्ता जो ऊपर से पहाड़ों के निकले हुए वड़े भाग से घिरा रहता है। नद=वड़ी वड़ी नदियाँ। नारे=नाले। वृक=भेड़िया। नाद=शब्द, गरज।

भावार्थ—(वन की) कन्दराएं, खोह, नदी, नद और नाले दुर्गम और बहुत गहरे होते हैं, (वे ऐसे भयंकर होते हैं कि) उनकी ओर देखा नहीं जाता। भालू, बाघ, भेड़िया, सिंह और हाथी ऐसे जोर से शब्द करते हैं कि उसे सुन कर धीरज नहीं रहता।

दो०—भूमि सयन बलकल बसन, असन कंद-फल-मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल॥८३॥

शब्दार्थ—बलकल बसन=(बल्कल=पेड़ की छाल+बसन=वस्त्र) भोज पत्रादि के वस्त्र।

भावार्थ—जमीन पर सोना, भोजपत्रादि का वस्त्र, कन्द, फल और मूल का खाना मिलेगा, वह भी क्या सब दिन मिलेगा (अर्थात् हमेशा न मिलेगा समयानुसार ही मिलेंगे)।

नर अहार रजनीचर करहीं। कपट वेष बन कोटिक फिरहीं।
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥

भावार्थ—राक्षस लोग मनुष्यों को खाते हैं जो कि अगणित प्रकार के बनावटी वेष में वन में घूमा करते हैं। पहाड़ पर का जलभी बहुत हानिकारक होता है, जंगल का दुख वर्णन नहीं किया जाता।

ब्याल कराल बिहंग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा।
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृग लोचनि तुम्ह भीरु सुभाये॥

शब्दार्थ—ब्याल=साँप। बिहंग=(विहायसः गच्छतीति विहंगः) पक्षी। निकर =समूह। गहन=वन। भीरु=डरपोक।

भावार्थ—वन में बड़े भयानक साँप और डरावने पक्षी रहते हैं। वहाँ के राक्षस लोग और स्त्री पुरुष चोर होते हैं। वन की याद आने पर धैर्यवान पुरुष भी डर जाते हैं। हे मृगनयनी, तुम तो स्वभाव से ही डरनेवाली हो।

हसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहिलोगू।
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥

शब्दार्थ—लवनपयोधि=लवन=लवण, (खारा+पय=जल+धि= धारण करने वाला) खारा समुद्र। मराली=हंसिनी।

भावार्थ—हे हंसगमनी! तुम वन के योग्य नहीं हो (तुम्हारा वन गमन) सुनकर लोग मेरी नाम धराई करेंगे। मानसरोवर के अमृत समान जल से पली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्र में जी सकती है? (अर्थात् नहीं जी सकती)।

नव-रसाल-वन विहरन सीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला।
रहहु भवन अस हृदय विचारी। चंद वदनि दुख कानन भारी॥

शब्दार्थ—रसाल=(रस+आ=चारो तरफ से+ल=लानेवाला) चारो तरफ से रस लाने वाला, आम। करील=एक प्रकार का बिना पत्तों का कँटीला पेड़ जो रेतीली जमीन में ज्यादा होता है, इसे ऊँट बड़े चाव से खाते हैं।

भावार्थ—नये आम के वन में विहार करने वाली कोयल कहीं करील के जंगल में शोभा पा सकती है। हृदय में ऐसा विचार कर घर पर रहो, हे चन्द्रमुखी! वन में बड़ा दुख होता है।

दो०—सहज सुहृद, गुरु, स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि॥ ६४॥

शब्दार्थ—सहज=स्वाभाविक। सुहृद=अच्छे हृदय वाला, हित चिन्तक, मित्र।

भावार्थ—जो स्वाभाव से ही भला चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख सिर पर धर कर नहीं करता, वह भरपेट पछताता है, और उसके हित की अवश्य हानि होती हैं।

सुनि मृदु वचन मनोहर पियके। लोचन ललित भरे जल सियके।
सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जैसे॥

भावार्थ—पति के ये कोमल और मनोहर वचन सुनकर, सीता जी की सुन्दर आँखें जल से भर गयीं। (पति की) शीतल शिक्षा इस प्रकार

जलानेवाली हुई जैसे चकई को सरद ऋतु की चाँदनी रात जलाने वाली होती है।

उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी॥
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।

शब्दार्थ—बरबस=(बलवश) बलपूर्वक, जबर्दस्ती। छमबि=क्षमा करना। अबिनय=धृष्टता, ढ़िठाई।

भावार्थ—सीता जी ऐसी व्याकुल हो गयीं कि कुछ बोलते न बना, (वे सोचने लगीं कि) मुझे पवित्र, प्रेमी स्वामी छोड़ना चाहते हैं। फिर अपने नेत्रों के जलको जबर्दस्ती रोककर अवनि कुमारी (सीता जी) हृदय में धैर्य धारण करके, सास के पैरों पर गिर कर, हाथ जोड़ कर कहने लगीं, कि हे देवी! मेरी इस बड़ी ढिठाई को क्षमा कीजिएगा।

दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हितहोई॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुख जग नाहीं॥

भावार्थ—प्राणपति ने मुझे वही शिक्षा दी है, जिससे मेरा सब प्रकार क्षेम हो, परन्तु मैंने मन में विचार कर देखा है कि पति के बियोग के समान संसार में कोई दुख नहीं है।

दो०—प्राननाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु, सुरपुर नरक समान॥६५॥

शब्दार्थ—करुनायतन=(करुणा+आयतन) करुणा के स्थान।

भावार्थ—हे प्राणनाथ, दया सागर, सुन्दर, सुखदेने वाले, ज्ञानी और रघुवंश रूपी कुमुदनी को चन्द्रमा के समान प्रफुल्लित करनेवाले! तुम्हारे बिना (सुखदाई) इन्द्रलोक भी नर्क के समान (दुखदाई) है।

मातु-पिता-भगिनी-प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई।
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय विनु तियहिं तरनि तें ताते ।
तन धन धाम धरनि पुर राजू । पति बिहीन सब सोक समाजू ॥

शब्दार्थ—सजन=सम्बन्धी । सहाई=सहायता करने वाले । तरनि=सूर्य । ताते=गर्म (दुखदाई)

भावार्थ—माता, पिता बहिन, प्यारा भाई, प्यारा कुटुम्ब, हितैषी लोग, सास, ससुर, गुरु, सम्बन्धी, सहायता करनेवाले, सुन्दर अच्छे स्वभाव वाला सुख देने वाला लड़का, हे नाथ जहाँ तक प्रेम और सम्बन्ध है, वहाँ तक सब बिना पति के स्त्री को सूर्य से भी अधिक गरम मालूम होते हैं शरीर धन, महल, जमीन, नगर का राज्य बिना पति के ये सब शोक के समाज हैं ।

भोग रोग सम भूषण भारू । जम जातना सरिस संसारू ।
प्राणनाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु वारी । तइसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद विमल विधु बदन निहारे॥

शब्दार्थ—भारू=भार, बोझ । जातना=यातना, कष्ट । वारी=(वारि) जल । तइसिअ=तैसेही, वैसेही ।

भावार्थ—(पति के बिना) भोग रोग के समान है, गहने बोझ हैं, संसार यमदंड के समान है । हे प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना संसार में मेरे लिये कहीं पर कोई भी सुख देनेवाला नहीं है । हे नाथ ! जिस प्रकार जीव के विना शरीर (मुर्दा है) और जल के विना नदी (निरर्थक) हो जाती है, वैसेही विना पुरुष के स्त्री (वृथा) है। हे नाथ! आपका शरद ऋतु के समान स्वच्छ चन्द्रमुख देखकर आप के साथ सब सुख मिलेंगे ।

दो०—खग मृग परिजन, नगर बन, बलकल विमल दुकूल ।
नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुखमूल ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—खग=(ख=आकाश+ग=गमन करने वाला) पक्षी । दुकूल=रेशमी वस्त्र । परनसाल=(पर्ण=पत्ता+शाल=शाला, मकान) पत्तों से छाया हुआ मकान, झोपड़ा ।

भावार्थ—हे नाथ आप के साथ रहने से पक्षी और जंगल के जानवर सम्बन्धी के समान, वन नगर के समान, पेड़ों की छाल के वस्त्र स्वच्छ रेशमी कपड़े के समान और झोपड़ी देवलोक के समान सुखकारी होगी।

वनदेवी वनदेव उदारा। करिहहिं सासु-ससुर सम सारा।
कुस-किसलय-साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।

शब्दार्थ—सारा=सँभार करना, रक्षा करना। किसलय=पत्ता। साथरी=पलास के नवीन पत्तों को सुखाकर तोपक में भरकर बनाई जाती है, यह रूई और सेमर को भी कोमलता में मात करती है। मनोज=(मनः+ज=जन्मना) मन से उत्पन्न होने वाला, कामदेव।

भावार्थ—उदार बनदेव और बनदेवी सास और ससुर की भाँति रक्षा करेंगी। कुशा और पत्तों की बनी हुई सुन्दर साथरी प्रभु के साथ में सुन्दर कामदेव की तोसक के समान होगी।

कंद-मूल-फल-अमिअ अहारू। अवध-सौध-सत-सरिस पहारू।
छिनुछिनुप्रभु पदकमलविलोकी। रहिहउँ मुदितदिवसजिमिकोकी॥

शब्दार्थ—सौध=राज महल। छिनु छिनु=क्षण क्षण, प्रतिपल।

भावार्थ—कंद मूल और फल मधुर मिष्टान्न के भोजन के समान होंगे, पहाड़ अयोध्या के सैकड़ों राजमहल के समान होगा। प्रतिपल प्रभु के चरण कमलों को देखकर ऐसी प्रसन्न रहूंगी जैसे दिन में चक्रवाकी प्रसन्न रहती है।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे।
प्रभु-वियोग-लव-लेस-समाना। सब मिलि होंहि न कृपा निधाना॥

शब्दार्थ—घनेरे=घने, बहुत। लव-लेस=(लव=क्षण, निमेष, पल+लेश=अल्प, लघु, थोड़ा) पल भर से भी कम।

भावार्थ—हे नाथ आपने बन के बहुत से दुख वर्णन किये हैं, जिनमें बहुत से डर, शोक और क्लेश हैं, लेकिन हे दयासागर! ये सब मिलकर आपके वियोग के पलभर से भी कम समय के बराबर नहीं हो सकते।

अस जिय जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि।
बिनती बहुत करउँ का स्वामी। करुनामय उर अंतर जामी ॥

भावार्थ—हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ! ऐसा हृदय में जानकर मुझे साथ लीजिए छोड़िए नहीं। हे स्वामी मैं बहुत प्रार्थना क्या करूँ, आप तो दयासागर और हृदय की बात जानने वाले हैं।

दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत जानिअहि प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद, सील-सनेह-निधान ॥६७॥

शब्दार्थ—जानिअहि=जानते हैं।

भावार्थ—हे दीनों की सहायता करने वाले, सुन्दर, सुख देने वाले, सुन्दर स्वभाव और प्रेम से परिपूर्ण यदि आप यह समझें कि (बनवास की) अवधि तक मेरे प्राण रहेंगे तो मुझे अयोध्या में रखिए (अर्थात् चौदह वर्ष की अवधि तक मेरे प्राण न रह सकेंगे, मुझे साथ ले चलिए)

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहउँ। मारग जनित सकल श्रम हरिहउँ

शब्दार्थ—हारी=('हार' बुन्देलखण्डी) थकावट।

भावार्थ—रास्ते में चलते हुए प्रतिपल आप के चरण कमलों को देखकर मुझे थकावट न होगी। मैं सब तरह से पति की सेवा करूँगी और रास्ते में चलने से उत्पन्न हुई थकावट दूर करूँगी।

पाँय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मनमाहीं।
स्रम-कन सहित स्याम तनु देखी। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे॥

शब्दार्थ—पखारि=(प्रक्षालन) धोकर। बाउ=वायु। स्रम-कन=पसीने की बूंद। पेखे=(प्रेक्षण) देखना।

भावार्थ—मैं पैर धोकर, वृक्ष की छाया में बैठकर मन में प्रसन्न होकर हवा करूँगी। आपके श्याम शरीर पर पसीने की बूंदे देखकर और सदैव प्राणपति को देखते रहने से दुख का समय कहाँ रहेगा। (अर्थात दुख न रह जायगा)॥

सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी।
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही॥

शब्दार्थ—डासी = बिछाकर।

भावार्थ—समतल भूमि पर तिनका और पेड़ के पत्ते बिछाकर दासी सारी रात पाँव दावेगी। आप की कोमल मूर्त्ति बार बार देखने से मुझे गर्म हवा भी न लगेगी।

को प्रभुसँग मोहि चितवनि हारा। सिंहबधुहि जिमि ससक सियारा
मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहँ भोगू॥

शब्दार्थ—सिंह बधुहि = सिंहनी को। ससक = खरगोश

भावार्थ—प्रभु के साथ रहने से मेरी ओर कौन नजर उठाकर देखने वाला है, जैसे सिंह की स्त्री को क्या खरगोश और सियार देख सकते हैं! मैं सुकुमारी हूं और स्वामी बन के योग्य हैं! आप को तपस्या करना उचित है, और मुझको सुख चैन!

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

दो०—ऐसेहु बचन कठोर सुनि, जौ न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु विषम-वियोग-दुख, सहिहैं पामर प्रान॥६८॥

शब्दार्थ—बिलगान = फटा, दुखित हुआ। पामर = नीच, अधम।

भावार्थ—हे स्वामी जो ऐसी कठोर बातों को भी सुनकर मेरा हृदय न फटा, तो अनुमान करती हूं कि मेरे ये अधम प्राण वियोग का कठिन कष्ट भी सह लेंगे।

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन वियोग न सकी सँभारी।
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना॥

भावार्थ—ऐसा कह कर सीता जी व्याकुल हो गयीं, क्योंकि वे बिछोह की बातें भी (जो राम जी ने कही थीं) न सह सकीं। राम जी ने सीता जी की दशा देखकर समझा कि यदि मैं हठ करके इन्हें यहीं छोड़ जाऊं तो ये प्राण नहीं रक्खेगीं (प्राण त्याग देंगी)

कहेउ कृपालु भानु-कुल-नाथा। परिहरि सोच चलहु वन साथा।
नहिं विषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु वन गमन समाजू॥

भावार्थ—सूर्य वंश के स्वामी दयालु राम जी ने कहा कि सोच छोड़कर मेरे साथ वन चलो। अब दुख करने का समय नहीं है, जल्दी वन चलने का सामान करो।

कहि प्रिय वचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई।
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥

भावार्थ—प्यारी बातें कहकर राम जी ने अपनी प्रिया को समुझाया और माता के पैर छूकर आशीर्वाद पाया। (कौशिल्या जी कहती हैं) जल्द आकर प्रजा का दुख दूर करना, अपनी इस कठोर माता को न भूल जाना।

फिरिहि दसा विधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी।
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत वदन-विधु जोइहि॥

शब्दार्थ—सुघरी=सुन्दर समय, शुभ मुहूर्त। जोइहि=देखेगी।

भावार्थ—हे विधाता! क्या मेरी दसा फिर लौटेगी, जब मैं अपनी आँखों से यह सुन्दर जोड़ी देखूँगी। हे प्यारे वह सुन्दर दिन और शुभ मुहूर्त कब होगा जब माता जीते जी तुम्हारे मुख-चन्द्र को देखेगी।

दो०—बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय, हरषि निरखिहउँ गात॥६६॥

शब्दार्थ—बच्छ=(वत्स) बच्चा, शिशु। गात=(गात्र) शरीर।

भावार्थ—मैं कब फिर बच्छ, लाल, रघुपति, रघुबर और तात कहकर बुलाकर हृदय से लगाकर प्रसन्न होकर तुम्हें देखूँगी।

लखि सनेह कातरि महतारी। बचन न आव बिकल भइ भारी।
राम प्रबोध कीन्ह विधि नाना। समउ सनेह न जाइ बखाना॥

भावार्थ—राम जी ने माता को प्रेम से इतना अधीर देखा कि उनके मुँह से बातें नहीं निकलती थीं, वे बहुत अधिक व्याकुल हो गयीं। तब राम जी ने उन्हें बहुत तरह से समझाया उस समय का प्रेम वर्णन नहीं किया जाता।

तब जानकी सासु पग लागी । सुनिय माय मैं परम अभागी ।
सेवा समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥

भावार्थ—तब सीता जी सास के पैरों पड़ीं और बोलीं, हे माता सुनिए मैं बड़ी अभागिनी हूं, जब मुझे सेवा करने का समय मिला तब विधाता ने बनवास दे दिया, उसने मेरे मन की इच्छा पूरी नहीं की ।

(नोट) यहां 'मनोरथ' शब्द पुल्लिंग माना है, पर अन्यत्र कई जगह इसे स्त्रीलिंग माना है ।

तजब छोभ जनि छाड़िश्र छोहू । करम कठिन कछु दोष न मोहू ।
सुनि सिय वचन सासु अकुलानी । दसा कवनि विधि कहउँ बखानी ॥

शब्दार्थ—छोभ=(क्षोभ) दुख । छोहू=प्रेम, प्रीति ।

भावार्थ—आप दुख करना छोड़ दीजिए, प्रेम न छोड़िएगा । कर्म बड़ा कठिन है इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है । (कवि कहता है) सीता जी की ये बातें सुनकर कौशिल्या जी व्याकुल हो गयीं, मैं उनकी दशा किस तरह वर्णन करूँ ।

बारहिं बार लाइ उर लीन्हीं । धरि धीरज सिख आसिष दीन्हीं ।
अचल होउ अहिवात तुम्हारा । जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥

शब्दार्थ—अहिवात=(आधिपत्य) पतिव्रत, सोहाग ।

भावार्थ—कौशिल्या जी ने बार बार सीता जी को हृदय से लगाया, और धैर्य धर कर उन्हें शिक्षा और आशीर्वाद दिया । (उन्होंने आशीर्वाद दिया कि) तुम्हारा सोहाग तब तक अचल रहे जब तक गंगा और यमुना में जल की धारा है ।

दो०—सीतहि सासु असीस सिख, दीन्ह अनेक प्रकार ।
चली नाइ पद पदुम सिरु, अति हित बारहिं बार ॥७०॥

शब्दार्थ—अतिहित=बहुत प्रेम से ।

भावार्थ—सास ने सीता जी को आशीर्वाद और कई तरह से शिक्षा दी ।

सीता जी बारम्बार बहुत प्रेम से सास के चरण-कमलों को प्रणाम करके चलीं।

समाचार जब लछिमन पाये। ब्याकुल विलप बदन उठि धाये।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अतिप्रेम अधीरा॥

भावार्थ—जब लक्ष्मण जी ने यह समाचार (राम जी के वन जाने का) सुना तब वे घबड़ा कर उदास होकर उठ कर दौड़े। उनका शरीर थरथरा रहा था, रोयें खड़े हो गये थे और आँखों में जल भर आया था, प्रेम से अधीर होकर वे राम जी के पैरों पर गिर पड़े।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल तें काढ़े।
सोच हृदय विधि का होनिहारा। सब सुख सुकृत सिरान हमारा॥

शब्दार्थ—सिरान=खतम हो गया।

भावार्थ—लक्ष्मण जी से कुछ कहते न बना, खड़े होकर राम जी की ओर देखते रहे, वे ऐसे दुखी थे जैसे जल से निकालने पर मछली दुखित होती है। हृदय में सोचते हैं कि हे विधाता क्या होनेवाला है, क्या मेरे सब सुखों और पुण्यों का अंत हो गया?

मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा।
राम विलोकि बंधु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे॥

शब्दार्थ—मो कहँ=मुझको, मेरे लिये। तृन तोरे=सम्बन्ध छोड़े हुए।

भावार्थ—राम जी मेरे लिये क्या कहेंगे; घर में रक्खेंगे या साथ ले चलेंगे। रामचन्द्र जी ने भाई को शरीर, घर तथा सब से सम्बन्ध तोड़े हुए हाथ जोड़े हुए अपने सामने खड़ा देखा।

बोले वचन राम नयनागर। सील-सनेह-सरल-सुख-सागर।
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू॥

शब्दार्थ—नयनागर=(नय=नीति+नागर=चतुर) नीति में चतुर, नीतिनिपुण।

भावार्थ—नीति निपुण, सुन्दर स्वभाववाले, प्रेम, सिधाई और सुख के

सागर राम जी बोले। हे प्यारे! हृदय में यह समझ कर कि अंत में सुख होगा प्रेम के वश होकर अधीर मत हो।

दो०—मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु जनम जग जाय॥७१॥

शब्दार्थ—कर=का। नतरु=नहीं तो। जाय=वृथा, व्यर्थ।

भावार्थ—जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा स्वभाव से ही सिर पर धर कर (आदर पूर्वक मानकर) करते हैं; उन्होंने मानो जन्म लेने का लाभ उठाया, नहीं तो संसार में उनका जन्म व्यर्थ है।

अस जियजानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु-पितु-पद-सेवकाई।
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं। राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं॥

भावार्थ—हे भाई ऐसा हृदय में समझ कर मेरी सीख सुनो, माता और पिता के चरणों की सेवा करो। घर में भरत और शत्रुहन भी नहीं हैं, राजा बूढ़े हैं उनके मन में मेरे वन जाने का दुख है।

मैं वन जाउँ तुम्हें लै साथा। होइहि सब विधि अवध अनाथा।
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह दुख भारू॥

भावार्थ—यदि मैं तुम्हें साथ लेकर वन जाऊं, तो अयोध्या सब प्रकार से अनाथ हो जायगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और कुटुम्ब के लोग सब पर बड़ी असह्य विपत्ति पड़ेगी।

रहहु करहु सवकर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥

भावार्थ—यहाँ पर रहो, और सब को समझाओ, नहीं तो हे प्यारे!, बड़ा दोष होगा। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुखी रहती है वह राजा अवश्य नर्क में जाता है।

रहहु तात असि नीति विचारी। सुनत लषन भये ब्याकुलभारी।
सिअरे बचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे॥

शब्दार्थ—सिअरे=(शीतल) ठंढे। परसत=(स्पर्श) छूते ही। तुहिन=पाला। तामरस=(तामर=पानी+स=शयन करना) कमल।

भावार्थ—हे प्यारे! ऐसी नीति विचार कर तुम यहीं रहो, यह बात सुनते ही लक्ष्मण जी बहुत विह्वल हो गये। राम जी के शीतल वचनों को सुनकर ऐसे मुरझा गये (दुखी हुए) जैसे पाला लगते ही कमल मुरझा जाता है।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—उत्तरु न आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु त कहा बसाइ ॥७२॥

शब्दार्थ—त=तो। कहा बसाइ=क्या बस है।

भावार्थ—लक्ष्मण जी से जवाब न देते बना, उन्होंने व्याकुल होकर राम जी के पैर पकड़ लिये और बोले कि हे नाथ! मैं दास हूं, आप मालिक हैं, यदि आप मुझे त्याग दीजिएगा तो मेरा क्या बस चलेगा।

दीन्हि मोहि सिख नीक गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराई।
नरबर धीर धरम-धुर-धारी। निगम नीति के ते अधिकारी।

भावार्थ—हे स्वामी! आपने मुझे अच्छी शिक्षा दी है, लेकिन वह मुझे अपनी कायरता के कारण बहुत कठिन मालूम पड़ती है। जो श्रेष्ठ पुरुष, धैर्यवान और धर्म की धुरी धारण करनेवाले हैं वे ही वेद की नीति के अधिकारी हैं। (अर्थात् वे ही वेद की नीति के अनुसार कार्य कर सकते हैं, मैं नहीं)।

मैं सिसु प्रभु-सनेह प्रतिपाला। मंदर मेरु कि लेहिं मराला।
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥

शब्दार्थ—मन्दर मेरु=(मंदर=पर्वत+मेरु=सुमेरु) सुमेरु पर्वत। पतिआहू=विश्वास कीजिये।

भा०—मैं तो आपके प्रेम से पला हुआ बच्चा हूं, कहीं हंस मंदरा-सुमेर पर्वत उठा सकते हैं! मैं माता पिता गुरु, किसी को नहीं (मेरे सर्वस्व तो आपही हैं) हे नाथ! विश्वास कीजिये, यह बात सहज स्वभाव की कहता हूं।

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।
मोरे सवइ एक तुम्ह स्वामी। दीनवंधु उर अंतर जामी।

शब्दार्थ—सगाई=सम्बन्ध। निगम=वेद। निजु=निश्चय।

भावार्थ—संसार में जहाँ तक प्रेम और सम्बन्ध है और वेद ने जितना प्रेम और विश्वास निश्चय करके वर्णन किया है, हे दीन दयाल! हृदय की बात जानने वाले स्वामी वह सब मेरे लिये एक आप ही हैं।

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही।
मन-क्रम-वचन चरनरत होई। कृपा सिंधु परिहरिअ कि सोई॥

शब्दार्थ—भूति=ऐश्वर्य, धन, सम्पत्ति। क्रम=कर्म। रत=लीन।

भावार्थ—धर्म-नीति का उपदेश उसी को देना चाहिए, जिसे यश, ऐश्वर्य, अच्छी गति (मोक्षादि) प्यारे हों। हे दयासागर जो मन, वचन और कर्म से चरणों में प्रेम रखता हो क्या उसे छोड़ देना चाहिए (अर्थात मुझे यश, ऐश्वर्य आदि प्यारे नहीं हैं, मैं तो मनसा, वांचा, कर्मणा आपके चरणों में प्रेम रखता हूं मुझे धर्मनीति का उपदेश देकर छोड़िये नहीं)।

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदु वचन विनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत॥७३॥

भावार्थ—दया सागर राम जी ने प्रिय भाई लक्ष्मण की ये कोमल और नम्र बातें सुनकर प्रेम से डरा हुआ जानकर हृदय से लगाकर समुझाया।

माँगहु विदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु वन भाई।
मुदित भये सुनि रघुवर वानी। भयउ लाभ वड़ि गइ वड़ि हानी॥

भावार्थ—हे भाई जाकर माता से आज्ञा माँग कर जल्दी आओ, और वन को चलो। लक्ष्मण जी राम जी के वचन सुन कर प्रसन्न हो गये, राम जी के साथ जाने का बड़ा भारी लाभ हुआ और मन का बड़ा भारी कष्ट मिट गया।

हरषित हृदय मातु पहिं आये। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाये।
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥

शब्दार्थ—पहिं=पास, निकट।

भावार्थ—लक्ष्मण जी ऐसे प्रसन्न होकर माता के पास आये जैसे अन्धे आदमी को फिर से आँखे मिल गयी हों। उन्होंने जाकर माता के पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया, लेकिन उनका मन राम जी और सीता जी के ही साथ था।

पूँछे मातु मलिन मन देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥

शब्दार्थ—विसेखी=(विशेष) विशेष करके, विस्तार पूर्वक। सहमि गई=डर गयी, व्याकुल हो गयी, घबड़ा उठी। दव=वन की आग, वनाग्नि।

भावार्थ—माता सुमित्रा ने लक्ष्मण जी को मन मारे हुए देख कर कारण पूछा, तब लक्ष्मण जी ने सब बातें विस्तार के साथ कह सुनाईं। सुमित्रा जी (वनवासादि की) कठोर बातें सुनकर ऐसी घबड़ा उठीं जैसे हरिणी अपने चारो तरफ़ वनाग्नि देखकर व्याकुल हो उठती है।

लषन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बस करब अकाजू।
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥

शब्दार्थ—भा=हुआ। अनरथ=(अनर्थ) काम बिगड़ना।

भावार्थ—लक्ष्मण जी ने देखा कि अब अनर्थ होता है, यह तो प्रेम के वश होकर काम बिगाड़ देंगी। माता से विदा माँगते हुए इस डर से हिचकते हैं, कि हे विधाता यह साथ में जाने के लिये कहेंगी या नहीं।

दो०—समुझि सुमित्रा राम सिय, रूप-सुसील-सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाउ॥७४॥

शब्दार्थ—दीन्ह कुदाउँ=बुरा घात किया।

भावार्थ—सुमित्रा ने राम जी और सीता जी की सुकुमारता और सुन्दर स्वभाव समझकर, तथा (राम और सीता प्रति) राजा दशरथ का प्रेम सोचकर, सिर पीटने लगीं कि पापिनि कैकेयी ने बुरी घात की।

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोलीं मृदुबानी।
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥

भावार्थ—सुमित्रा जी ने अशुभ समय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही प्यारी कोमल बातें बोलीं। हे प्यारे लक्ष्मण! सीता तुम्हारी माता के समान हैं, और सब प्रकार से प्रेम करनेवाले राम जी तुम्हारे पिता के समान हैं।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू।
जौ पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

भावार्थ—वहीं पर अयोध्या है जहाँ पर राम जी रहते हैं, वहीं पर दिन होता है जहाँ सूर्य का प्रकाश होता है। जो सीता जी और राम जी वन जा रहे हैं तो तुम्हारा अयोध्या में रहने का कोई काम नहीं है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहि सकल प्रान की नाईं।
राम प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सब ही के॥

शब्दार्थ—सेइअहि=सेवा करनी चाहिए।

भावार्थ—गुरु, पिता माता, भाई, देवता और स्वामी इन सब की सेवा अपने प्राण की तरह करनी चाहिए। राम जी प्राण के समान प्यारे हैं, (हम लोगों के) जीव के जीवन और सब के निःस्वार्थी मित्र हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहि राम के नाते।
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन-लाहू॥

शब्दार्थ—मानिअहि=मानना चाहिए। लाहू=(लाभ, लभ धातु) फायदा।

भावार्थ—संसार में जो जहाँ से (जिस सम्बन्ध से) आदर करने योग्य और प्यारे हैं, उन सब को राम के ही सम्बन्ध से मानना चाहिए। हे प्यारे ऐसा हृदय में समझ कर राम जी के साथ वन जाओ और संसार में जन्म लेने का लाभ उठाओ।

दो०—भूरि भाग भाजन भयउ, मोहिं समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छल, कीन्ह रामपद ठाउँ ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—भूरि=अधिक,बहुत। भागभाजन=भाग्य के पात्र, भाग्यवान।

भावार्थ—मैं तुम्हारी बलैया लेती हूं, जो तुम्हारा मन छल छोड़कर राम जी के चरणों में लगा है, तो तुम मुझ सहित बड़े भाग्यवान हुए हो।

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत ते हित हानी॥

शब्दार्थ—जुवती=युवती, युवा स्त्री। बाँझ=वन्ध्या। बादि=व्यर्थ। बिआनी=पुत्र जनी, पुत्र पैदा किया।

भावार्थ—संसार में वही स्त्री पुत्रवती कही जाती है जिसका लड़का राम जी का भक्त हो, यदि पुत्र राम जी का भक्त न हो तो वह स्त्री बाँझ ही रहती तो ही अच्छा होता, उसने व्यर्थ ही पुत्र उत्पन्न हुआ क्योंकि राम जी का प्रेमी पुत्र न होने से भला नहीं होता।

तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं।
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम-सीय-पद सहज सनेहू॥

भावार्थ—हे प्यारे राम जी तुम्हारे भाग्य से ही वन जाते हैं (अर्थात तुम्हे राम जी की सेवा करने का शुभ अवसर मिलेगा, यही तुम्हारा भाग्य है, अथवा सनातनधर्म के विश्वासानुसार लक्ष्मण जी शेष जी के अवतार हैं, शेष जी पृथ्वी को धारण किये हुए हैं जो कि रावणादिक पापियों के पाप से भारी हो रही है, सो तुम्हारे सिर का बोझ हल्का करने के लिये राम जी तुम्हारे ही सौभाग्य से वन जा रहे हैं) दूसरा कोई कारण नहीं है। सब सुकर्मों का सब से बड़ा फल यही है कि राम जी और सीता जी के चरणों में स्वभाव से ही प्रेम हो।

नोट—सुमित्रा जी को राम जी और लक्ष्मण तथा सीतादिक के अवतार की बात मालूम थी, इसीलिये वे राम का बनवास सुनकर लक्ष्मण जी को स्वयं ही उनके साथ जाने की आज्ञा दे रही हैं, लक्ष्मण जी तो माता के

पास राम जी के साथ वन जाने की आज्ञा लेने आये थे अभी तक उन्होंने आज्ञा नहीं माँगी थी।

राग रोष इरिषा मद मोहू। जनि सपनेहु इन्हके बस होहू।
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम वचन करेहु सेवकाई॥

शब्दार्थ—राग=सांसारिक प्रेम। रोष=क्रोध। इरिषा=ईर्षा, दूसरे की बढ़ती न सह सकना। मद=घमंड। मोह=अज्ञानता, माया।

भावार्थ—राग, रोष, ईर्षा, घमंड और मोह इनके वश में कभी स्वप्न में भी न होना। सब प्रकार के विकारों को (राग, रोषादिक विकारों के अतिरिक्त जो बहुत से विकार हैं) छोड़ कर मन, बचन और कर्म से राम जी की सेवा करना।

तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु राम सिय जासू।
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

शब्दार्थ=सुपासू=आराम। लहहिं=(लह=लभ्=पाना) पावें।

भावार्थ—तुम्हारे लिये बन में सब प्रकार से आराम हैं, क्योंकि तुम्हारे साथ पिता तुल्य राम जी और माता तुल्य सीता जी रहेंगी। हे पुत्र! वही उपाय करना जिससे राम जी बन में कष्ट न पावें।

छंद—उपदेश यह जेहि तात तुम्ह तें राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं।
तुलसी सुतहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई।

शब्दार्थ—सुरति=याद, स्मरण। रति होउ=प्रेम हो। अबिरल=निरंतर, सघन, अविच्छिन्न। अमल=निष्कपट।

भावार्थ—हे प्यारे! मेरी यही शिक्षा है कि तुम से राम जी और सीता जी सुख पावें, वे बन में पिता, माता प्यारे कुटुम्ब और नगर के सुख को भूल जांय। तुलसीदास जी कहते हैं कि सुमित्रा जी ने पुत्र को शिक्षा देकर

आज्ञा (साथ जाने की) दी उसके बाद यह आशीर्वाद दिया कि रामजी और सीता जी के चरणों में तुम्हारा प्रतिदिन अविच्छिन्न और निष्कपट प्रेम हो।

सो०—मातु चरन सिर नाइ, चले तुरंत संकित हिये।
बाँगुर विषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भाग बस ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—वागुर=जाल, फंदा। विषम=कठिन।

भावार्थ—लक्ष्मण जी माता के चरणों में सिर नवाकर हृदय में डरते हुए इस तरह तुरंत चल दिये, जैसे कि हरिण सौभाग्य वश कठिन जाल को तोड़ कर भागा हो।

(नोट) शंकित इस बात से थे कि कहीं उर्मिलाजी आकर साथ चलने का हठ न करने लगें।

गये लषन जहँ जानकि नाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू।
बंदि राम सिय-चरन सुहाये। चले संग नृप मंदिर आये ॥

शब्दार्थ—भे—हुए।

भावार्थ—लक्ष्मण जी वहाँ पर गये जहाँ सीतापति थे, वे प्यारा संग पाकर मन में प्रसन्न हुए। रामजी और सीताजी के सुन्दर चरणों की वन्दना करके वे उनके साथ चले और राजा दशरथ के महल में आये।

कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ विधि बात बिगारी।
तन कृस मन दुख बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥

शब्दार्थ—कृस=दुर्बल। मलीने=उदास। मधु—शहद।

भावार्थ—नगर के स्त्री-पुरुष एक दूसरे से कहते हैं कि विधाता ने अच्छी तरह बात बनाकर बिगाड़ दी। उनके शरीर दुर्बल हो गये हैं, मन दुखी और मुख उदास हैं। वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे शहद छिनी हुई मधुमक्खी।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

कर मींजहिं सिर धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख विहँग अकुलाहीं।
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ विषाद अपारा।

शब्दार्थ—दरवारा=द्वार ।

भावार्थ—वे (शोक से) हाथ मलते हैं और सिर पीट कर इस तरह पछताते हैं जैसे पंख के विना पक्षी व्याकुल होते हैं। राजा के दरवाजे पर बड़ी भारी भीड़ हो गयी, और इतना दुख मच गया जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सचिव उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगुधारे।
सिय समेत दोउ तनय निहारी। व्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥

भावार्थ—राम जी आये हैं, यह प्यारा वचन कह कर मंत्री ने राजा को उठाकर बैठाया। राजा दशरथ सीता सहित दोनों पुत्रों को देखकर बहुत अधिक व्याकुल हुए।

दोहा—सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस, राउ लेइ उर लाइ॥ ७७॥

भावार्थ—राजा दशरथ सीता समेत दोनों सुन्दर पुत्रों को देख देख कर व्याकुल होते हैं और बारम्बार प्रेम के वस होकर हृदय से लगा लेते हैं।

सकइ न बोलि विकल नर नाहू। सोक जनित उर दारुन दाहू।
नाइ सीस पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तव माँगा।

भावार्थ—राजा इतने अधिक व्याकुल हैं कि बोल नहीं सकते, शोक से उनके हृदय में अति असह्य जलन (भयंकर वेदना) हो रही थी। इतने में ही रामजी ने बहुत प्रेम के साथ उनके पैरों पर सिर नवाकर बन जाने के लिये बिदा माँगी।

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समउ विसमउ कत कीजै।
तात किये प्रिय प्रेम-प्रमादू। जस जग जाइ होइ अपवादू॥

शब्दार्थ—विसमउ=दुख। कत=क्यों। प्रमादू=असावधानी, भूल। अपवादू=निंदा, अपकीर्ति।

भावार्थ—हे पिता मुझे आशीर्वाद और (वन जाने की) आज्ञा दीजिए,

आप प्रसन्नता के समय में दुख क्यों करते हैं। हे पिता प्यारे के प्रेम में पड़कर असावधानी करने से संसार में यश चला जाता है और अपकीर्त्ति होती है।

सुनि सनेह वस उठि नरनाहा। बैठारे रघुपति गहि बाहा।
सुनहु तात तुम्ह कहँ मुनि कहहीं। राम चराचर नायक अहहीं॥

शब्दार्थ—बाहा = बाँह, हाथ। चराचर = (चर = चल + अचर = अचल) चलनेवाले और न चलनेवाले। नायक = स्वामी। अहहीं = हैं।

भावार्थ—राम जी की बातें सुनकर प्रेम के वश होकर राजा दशरथ ने उठकर राम जी को हाथ पकड़ कर बैठाया। (तदनंतर बोले) हे प्यारे सुनो, तुम्हारे विषय में मुनि लोग कहते हैं कि राम जी चलने वाले और न चलने वालों के (चैतन्य और जड़ सब के) स्वामी हैं।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फल हृदय विचारी।
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सब कोई॥

शब्दार्थ—अनुहारी = अनुसार। निगम = वेद।

भावार्थ—ईश्वर अच्छे और बुरे कर्मों के अनुसार हृदय में विचार कर फल देता है। जो आदमी जैसा काम करता है वैसा ही फल पाता है, सब लोग ऐसी ही वेद की नीति बतलाते हैं (परंतु यहां आप इस नीति के विरुद्ध काम कर रहे हैं)

दो०—अउर करै अपराध कोउ, अउर पाव फल भोगु।
अति विचित्र भगवंत गति, को जग जानइ जोगु॥७८॥

भावार्थ—अपराध कोई और ही करता है और उसका फल कोई और ही (दूसरा ही) पाता है। भगवान की गति बड़ी विचित्र है, संसार में इसे कौन जान सकता है। (राजा का तात्पर्य यह है कि श्रमण बध का पाप तो मैंने किया है और उसका फल मेरा पुत्र भोगने जा रहा है)

राय राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किये छल त्यागी।

लखा राम रुख रहत न जाने। धरम-धुरं-धर धीर सयाने॥

शब्दार्थ—राखन हित लागी = रखने के लिये। लखा = समझ गये।

भावार्थ—राजा दशरथ ने राम जी को (अयोध्या में ही) रखने के लिये निष्कपट हृदय से बहुत से उपाय किये। लेकिन राम जी का रुख देख कर समझ गये कि ये (अयोध्या में) न रहेंगे, क्योंकि ये धर्मधुरंधर धैर्य-वान और ज्ञानी हैं।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही।
कहि बन के दुख दुसह सुनाये। सासु ससुर पितु सुख समुझाये॥

शब्दार्थ—अति हित = बहुत हितकारी।

भावार्थ—तब राजा ने सीता जी को हृदय से लगा लिया और अनेक प्रकार से बहुत हितकारी शिक्षा दी। उनसे बन के असह्य दुख बतलाये और सास ससुर तथा पिता से मिलनेवाले सुखों को समझाया।

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगम बन बिषम न लागा।
अउरउ सबहिं सीय समुझाई। कहिकहि बिपिन बिपति अधिकाई॥

भावार्थ—सीता जी का मन राम जी के चरणों में लगा था, उन्हें न तो घर सुखद जान पड़ता था न बन (के दुख) कठिन जान पड़ता था। और सब लोगों ने भी बन की बहुत सी विपत्तियों को बता बता कर सीता जी को समझाया।

सचिव नारि गुरु नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी।
तुम्ह कहँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुरु सासू॥

भावार्थ—मन्त्री की स्त्री और गुरु बशिष्ठ जी की पत्नी अरुन्धती जी प्रेम के साथ मधुर बातें बोलीं, "तुम को तो (राजा जी ने) बनवास नहीं दिया, ससुर, गुरु और सास जो कहते हैं वह करो"। (अर्थात ससुर, गुरु और सास की बात मान कर घर पर ही रहो)

दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद-चंद-चंदिनि लगत, जिमि चकई अकुलानि॥७६॥

भावार्थ—इन लोगों की ये शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल शिक्षाएँ सुनकर सीता जी को अच्छी नहीं लगीं और वे वैसीही व्याकुल हो गईं जैसे शरद ऋतु के चन्द्रमा की (शीतल सुखदायिनी) चाँदनी लगते ही चकई घबड़ा उठती है।

अलंकार—प्रतिवस्तूपमा।

सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई।
मुनि-पट-भूषण भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी॥

शब्दार्थ—तमकि उठी = क्रोधित हो उठी। आनी = ले आई।

भावार्थ—सीता जी लज्जावश किसी की बात का कुछ उत्तर नहीं देतीं। कैकेई यह टालमटोल की वार्ता सुनकर क्रोधित हो उठी और वह मुनियों के वस्त्र (वल्कल वस्त्र) और गहने (माला मेखलादि) और जलपात्र (कमंडल) ले आई और राम जी के आगे धर कर कोमल वचन बोली।

नृपहिं प्राण प्रिय तुम्ह रघुवीरा। सील सनेह न छाँड़हि भीरा।
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ। तुम्हहिं जान वन कहहिं न काऊ॥

शब्दार्थ—भीर = धर्मभीरु। सुकृत = पुण्य। काऊ = कभी।

भावार्थ—हे रघुवीर तुम राजा को प्राणों के समान प्यारे हो, भीरु पुरुष शील सनेह नहीं त्याग सकते, इसकारण चाहे उनका सुकर्म, सुयश और परलोक बिगड़ जाय, लेकिन वे तुम्हें कभी वन जाने के लिये न कहेंगे (तुम्हें पिता की प्रतिज्ञा पूरी करना मंजूर हो तो चलदो)

असविचारिसोइकरहुजोभावा। रामजननिसिखसुनिसुखपावा।
भूपहि वचन बान सम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥

भावार्थ—ऐसा विचार कर तुम्हें जो अच्छा लगे, वैसा करो। राम जी ने माता की शिक्षा सुनकर सुख पाया। (लेकिन) राजा दशरथ को कैकेई की ये बातें बाण के समान लगीं, (और सोचने लगे कि) अभागे प्राण अब भी नहीं निकलते।

लोग विकल मुरछित नरनाहू । काह करिय कछु सूझ न काहू ।
राम तुरत मुनि वेष बनाई । चले जनक जननिहिं सिरु नाई ॥

भावार्थ—सब लोग व्याकुल हैं, राजा दशरथ मूर्छित हैं, क्या करें यह किसी की समझ में नहीं आता । राम जी ने जल्दी से मुनि का वेष बनाया और पिता तथा माता को प्रणाम करके चल पड़े ।

दो०—सजि बन साज समाज सब, वनिता बंधु समेत ।
बंदि विप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहिं अचेत ॥८०॥

शब्दार्थ—सजि बन साज समाज=बल्कल वस्त्र पहन तथा मृगचर्म कमंडलादि लेकर और धनुष वाण तर्कशादि ठीक ठाक करके ।

भावार्थ—श्रीरामचन्द्र जी वन जाने की सब सामग्री ठीक करके सीता जी और भाई लक्ष्मण सहित ब्राह्मणों और गुरु लोगों को प्रणाम करके सब को व्याकुल करके चले । (रामचन्द्र जी को वन जाते देखकर सब लोग इतने व्याकुल हुए कि बेहोश हो गये)

निकसि वसिष्ठ द्वार भये ठाढ़े । देखे लोग बिरह दव डाढ़े ।
कहि प्रिय वचन सबहि समुझाये । विप्र बृन्द रघुवीर बुलाये ॥

शब्दार्थ—डाढ़े=(दग्ध) जले हुए ।

भावार्थ—राम जी कैकेई के महल से निकल कर वसिष्ठ जी के दरवाजे के पास आकर खड़े हुए, वहाँ आकर देखते हैं कि सब लोग बिरह की अग्नि से जल रहे हैं । उन्होंने प्यारी बातों से सब को समुझाया और ब्राह्मणों को बुलवाया ।

गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे । आदर दान बिनय बस कीन्हे ।
जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परिपोषे ॥

शब्दार्थ—बरषासन=(वर्ष+असन=भोजन) वर्ष भर के लिये भोजन । जाचक=(याचक) भिखमंगे ।

भावार्थ—और गुरु से कहकर उन ब्राह्मणों को एक वर्ष के लिये

भोजन दिया और आदर दान, तथा नम्रता से उनको वशीभूत कर लिया। भिखमंगों को दान और सम्मान से संतुष्ट किया और पवित्र मित्रों को प्रेम से पुष्ट किया।

नोट—इस समय राज्य के अधिकारी भरत जी उपस्थित नहीं थे, राजा दशरथ बेहोश पड़े थे, इसलिये राम जी ने गुरु से आज्ञा लेकर भरत के अधिकार में से खर्च किया।

दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरहिं सौंपि बोले कर जोरी।
सब कर सार सँभार गोसाईं। करब जनक जननी की नाईं॥

शब्दार्थ—सार सँभार=(मुहावरा) पालन पोषण। करब=करिएगा।

भावार्थ—तदनंतर दासी और दासों को बुलाकर उन्हें गुरु जी को सौंप कर हाथ जोड़ कर बोले। हे स्वामी इन सब का पालन पोषण माता पिता की तरह करिएगा।

बारहिं बार जोरि जुगपानी। कहत राम सब सन मृदु बानी।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहितें रहइ भुआल सुखारी॥

शब्दार्थ—जुग पानी=(युग पाणि) दोनों हाथ। तें=से।

भावार्थ—राम जी बार बार दोनों हाथ जोड़कर सब से नम्र वचन कहने लगे, कि वही सब प्रकार से मेरी भलाई करने वाला है जिससे राजा दशरथ सुखी रहें, अर्थात राजा दशरथ की सब प्रकार सहायता करने वाला आदमी मेरा सच्चा हितैषी है।

दो०—मातु सकल मोरे बिरह, जेहि न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाय तुम करेहु सब, पुरजन परम प्रबीन॥८१॥

भावार्थ—हे परम चतुर नगर वासियो! तुम सब लोग वही उपाय करना जिस उपाय से मेरी सब माताएँ मेरे बिछोह में दुख से व्याकुल न हों।

एहि बिधि राम सबहिं समुझावा। गुरु-पद-पदुम हरषि सिरुनावा।
गनपति गौरि गिरीस मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥

भावार्थ—इस प्रकार से राम जी ने सब को समझाया और प्रसन्न होकर गुरु के चरण कमलों को सिर नवाया। फिर गणेश जी, पार्वती जी और शिव जी की बन्दना करके राम जी आशीर्वाद पाकर बन की तरफ चले।

रामु चलत अति भयउ विषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू।
कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरप विषाद विवस सुरलोकू॥

भावार्थ—राम जी के चलते ही इतना अधिक शोक छा गया कि नगर निवासियों के दुख भरे शब्द सुने नहीं जाते थे। लंका में अपसगुन और अयोध्या में भारी शोक होने लगा इसलिये देवलोक में हर्ष और दुख दोनों हुए। हर्ष इस बात का कि अब रावण-वध का समय निकट आ गया, दुख इस बात का कि अयोध्या में शोक छा गया।

अलंकार—चपलातिशयोक्ति (राम के चलते ही लंका में अपशकुन हुए) समुच्चय—(चौथे चरण में)

गइ मुरछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत कहन अस लागे।
रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥

शब्दार्थ—बोलि = बुलवा कर।

भावार्थ—मुर्छा दूर होने पर राजा दशरथ सचेत हुए और सुमंत्र को बुलवाकर ऐसा कहने लगे कि रामजी वन को जा रहे हैं और मेरे प्राण अब भी नहीं निकल रहे हैं, ये किस सुख के लिये शरीर में बने हैं।

एहि तें कवनि व्यथा बलवाना। जो दुख पाइ तजिहिं तनु प्राना।
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लेइ रथ संग सखा तुम्ह जाहू॥

भावार्थ—इस कष्ट से कौन कष्ट पड़ा होगा जिसे पाकर ये प्राण शरीर से निकलेंगे। राजा दशरथ फिर धैर्य धारण करके कहते हैं, हे सखा सुमन्त! तुम रामके साथ में रथ लेकर जाओ।

दो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ दिखराइ बन, फिरेहु गये दिन चारि॥८२॥

शब्दार्थ—सुठि=बहुत। गये दिन चारि=(मुहावरा है) कुछ दिन बीतने पर।

भावार्थ—ये दोनों राजकुमार बहुत ही कोमल स्वभाव के हैं, सीता जी भी सुकुमारी हैं। तुम इन्हें रथ पर चढ़ाकर वन दिखलाकर चार दिन में लौट आना।

जौ नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई।
तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेस किसोरी॥

भावार्थ—जो दोनों धैर्यवान भाई न लौटें क्योंकि राम जी सत्यप्रतिज्ञ और अटल प्रण वाले हैं, तो तुम हाथ जोड़ कर प्रार्थना करना, कि "हे प्रभु! जानकी जी ही को लौटा दीजिए।

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेउ मोरि सिख अवसरु पाई।
सास ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिय वन बहुत कलेसू॥

भावार्थ—जब सीता जी वन को देख कर डरें तब समय पाकर मेरी शिक्षा कहना कि सास ससुर ने ऐसा संदेश कहा है कि हे पुत्री! घर लौट चलो, वन में बहुत कष्ट होता है।

पितु गृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेउ जहाँ रुचि होइ तुम्हारी।
एहि विधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥

शब्दार्थ—कदंबा=(कदम्ब) समूह, बहुत से। त=तो।

भावार्थ—कभी पिता के घर में कभी कभी ससुराल में जहाँ तुम्हारी इच्छा हो रहना। इस प्रकार से समझाने के लिये अनेक उपाय करना, यदि सीता जी लौटेंगी तो मेरे प्राणों का आश्रय हो जायगा।

नाहिं त मोर मरन परिनामा। किछु न बसाइ भयो विधि वामा।
अस कहि मुरछि परा महि राऊ। राम लखन सिय आनि देखाऊ॥

शब्दार्थ—परिनामा=(परिणाम) अंत। बसाइ=बस, अधिकार।

भावार्थ—नहीं तो अंत में मैं मर जाऊँगा, जब विधाता ही विपरीत हो गया है, तो कुछ बस नहीं है। इस प्रकार कह कर राजा दशरथ मुर्छित

होकर जमीन पर गिर पड़े और कहने लगे कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर मुझे दिखलाओ।

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथ अति वेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहर नगर, सीय सहित दोउ भाइ ॥८३॥

भावार्थ—राजा दशरथ की आज्ञा पाकर सिर नवा कर सुमंत बहुत तेज रथ तैयार करके नगर के बाहर जहाँ पर सीता समेत दोनों भाई थे, वहाँ गया।

तब सुमंत नृप बचन सुनाये। करि बिनती रथ राम चढ़ाये।
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले बनहिं अवधहिं सिरु नाई॥

भावार्थ—जब सुमंत्र ने राम जी से राजा दशरथ के वचन (राम जी को वन में कुछ दूर तक पहुंचाने की बात) कह सुनाये और प्रार्थना करके उन्हें रथ पर चढ़ाया। सीता समेत दोनों भाई रथ पर चढ़कर अयोध्या को प्रणाम करके वन की ओर चले।

चलत राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा।
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं॥

भावार्थ—राम जी के वन जाते समय अयोध्या को अनाथ देखकर सब लोग व्याकुल होकर राम जी के साथ लग गये। दयासागर राम जी उन्हें अनेक प्रकार से समझाते हैं, वे समझाने से लौट जाते हैं, लेकिन प्रेम के बस होकर फिर लौट आते हैं।

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी।
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहिं एक निहारी॥

शब्दार्थ—कालराति = दीवाली की रात्रि। तीन रात्रियाँ प्रसिद्ध हैं :- १-काल-रात्रि, २-शिवरात्रि (महारात्रि), ३-मोह रात्रि (जन्माष्टमी की रात्रि)।

भावार्थ—अयोध्या अत्यंत भयावनी जान पड़ती है मानो अंधियारी काल-रात्रि है (दिवाली की रात्रि तंत्रशास्त्रानुसार बड़ी भयानक मानी गई

हैं, क्योंकि इसी रात को अनेक तंत्र मंत्र जगाये जाते हैं। (उसकी भयानकता ही घटाने के लिये चिराग जलाने की रीति प्रचलित है) पुर के जन घोर जंतु सम है, परस्पर देखकर डरते हैं।

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

शब्दार्थ—मसान=(श्मसान) मरघट। बिटप=पेड़। सरोवर=तालाब।

भावार्थ—घर मरघट के समान, सम्बन्धी लोग भूत के समान, और पुत्र, हितुआ तथा मित्र लोग मानो यमदूत के समान मालूम होते थे। बागों में वृक्ष और लताएँ कुम्हलाने लगीं और नदी तथा तालाब (ऐसे शोभा हीन हो गये थे कि) देखे नहीं जाते थे।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट अर्थान्तरन्यास (ऊपर वाली चौपाई की भयानकता का पुष्टीकरण)

दो०—हय गय कोटिन्ह केलि मृग, पुर पसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका, सारस हंस चकोर॥ ८४॥

शब्दार्थ—हय=घोड़ा। गय=हाथी। केलि-मृग=क्रीड़ा के पशु, हरिण, खरगोश, आदि। पुरपसु=नगर के जानवर; गाय, बैल, भैंस आदि। चातक=पपीहा। पिक=कोयल। रथांग=चकवा। सुक=(शुक) तोता। सारिका=मैना।

भावार्थ—करोड़ो हाथी, घोड़े, क्रीड़ा के पशु, नगर के जानवर गाय, बैल, भैंसादि, पपीहे, मोर, कोयल, चकवा, तोता, मैना, सारस, हंस, चकोर,

राम वियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े।
नगरु सकल बन गहवर भारी। खग मृग बिपुल बिकल नरनारी॥

शब्दार्थ—गहवर=घना।

भावार्थ—रामचन्द्रजी के बिछोह में सब व्याकुल होकर ऐसे खड़े थे मानो जहाँ तहाँ तसवीरें बनी हों। सारा नगर घने बन के समान था और सब स्त्री पुरुष पशु पक्षी के समान थे।

बिंधि कैकेइ किराततिनि कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही।
सहि न सके रघुवर विरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥

भावार्थ—उस अयोध्या रूपी वन के लिये विधाता ने कैकेई को किरातिनी रूप बनाया जिसने दसों दिशाओं में असह्य अग्नि लगा दी। (रामजी को बनबास देकर कैकेई रूपी किरातिनी ने अयोध्या में विरह रूपी अग्नि लगा दी)। सब लोग राम जी की विरह रूपी अग्नि न सह सके, इसलिये व्याकुल होकर उनके साथ भाग चले।

सबहिं विचारु कीन्ह मन माहीं। रामलखन सिय बिनु सुख नाहीं।
जहाँ राम तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू।

भावार्थ—सब ने अपने अपने मन में सोचा कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख नहीं है। जहाँ रामजी रहैं वहीं पर उनका सब समाज रहना उचित है, रामजी के बिना हम लोगों को अयोध्या में रहने का काम नहीं है।

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुरदुर्लभ सुख सदन बिहाई।
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हहीं। विषय भोग बसकरहिंकितिन्हहीं।

भावार्थ—ऐसा पक्का विचार करके सब पुरवासी अपने अपने देवदुर्लभ सुखमय महलों को छोड़कर रामजी के साथ चले (तुलसीदास जी कहते हैं) रामचन्द्रजी के चरण कमल जिन्हें प्यारे हैं, क्या उन्हें भोग विलास वश में कर सकते हैं, (अर्थात् नहीं कर सकते)॥

दो०—बालक वृद्ध विहाय गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय, प्रथम दिवस रघुनाथ॥ ८५॥

भावार्थ—बच्चों और बुड्ढों को घर में छोड़कर सब लोग राम जी के साथ चले, रामजी ने पहिले दिन तमसा नदी के किनारे डेरा डाला।

नोट—तमसा नदी अयोध्या से आठ कोस की दूरी पर है।

रघुपति प्रजा प्रेम वस देखी। सदय हृदय दुख भयउ विसेखी।
करुनामय रघुनाथ गोसाईं। वेगि पाइअहि पीर पराई॥

शब्दार्थ—पाइअहि पीर पराई=पराई पीर पाते हैं अर्थात् दूसरे का दुख समझ कर स्वयं दुखी होते हैं। 'पराई पीर पाना' यह अवधी मुहावरा है।

भावार्थ—प्रजा को प्रेम वश देखकर दयालु चित्त रामजी को बड़ा दुख हुआ। (क्योंकि) दयासागर गोस्वामी रामचन्द्रजी दूसरे का दुख देख कर बहुत जल्द दुखी हो जाते हैं।

कहि सप्रेम मृदु वचन सुहाये। बहु विधि राम लोग समुझाये।
किये धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे॥

भावार्थ—रामजी ने प्रेम के साथ सुहावने कोमल वचन कहकर लोगों को अनेक प्रकार से समझाया और बहुत से धर्मोपदेश दिये; लेकिन वे प्रेम के वसमें होने के कारण लौटाने से भी नहीं लौटते थे।

सील सनेह छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई।
लोग सोग श्रम बस गे सोई। कछुक देवमाया मति मोई।

शब्दार्थ—असमंजस=द्विविधा, जहाँ पर दो बातों में से एक भी करते न बने वहाँ पर व्यवहृत होता है। मोई=मोही, बुन्देलखण्ड में 'मोही' को 'मोई' बोलते हैं। अथवा मोई=मिली हुई।

भावार्थ—रामचन्द्रजी से उनका संकोच और प्रेम नहीं छोड़ा जाता था, इसलिये वे दुविधा में पड़ गये। लोग शोक और थकावट के कारण सो गये, और देवताओं की माया ने भी उनकी बुद्धि को कुछ कुछ मोह लिया।

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती।
खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहिं बाता॥

शब्दार्थ—जामजुग=(याम युग) दो पहर। खोज मारि=(खोज=किसी प्रकार का निसान+मारि=नष्ट करके) इस प्रकार कि निशान से पता न चले।

भावार्थ—जब दो पहर रात बीत गयी, तब रामजी ने मंत्री सुमंत्र से प्रेम के साथ कहा। हे तात! इस तरह रथ हांको कि पता न चले, और किसी दूसरे उपाय से बात न बनेगी।

दो०—राम लखन सिय जान चढ़ि, संभु चरन सिरु नाइ।
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ॥ ८६॥

शब्दार्थ—तुरत=(त्वरित) तेजी से। जान—रथ।

भावार्थ—जब रामचन्द्र जी, सीता जी और लक्ष्मण जी शिव जी को प्रणाम करके रथ पर चढ़ गये तब सुमंत्र ने तेजी से इस प्रकार रथ चलाया कि ढूँढने से पता न चले॥

जागे सकल लोग भये भोरू। गे रघुनाथ भयउ अति सोरू।
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँदिसि धावहिं।

शब्दार्थ—भोरू=सवेरा। सोरू=(शोर फारसी) कोलाहल। खोज=चिन्ह।

भावार्थ—सवेरा होने पर सब लोग जागे तो देखा कि रामजी चले गये, इससे लोगों में बड़ा कोलाहल मच गया। वे रथ का चिन्ह ढूँढते हैं लेकिन रथ का चिन्ह कहीं नहीं मिलता तब वे राम राम कह कर चारो तरफ दौड़ते हैं।

मनहुँ वारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ वनिक समाजू।
एकहिं एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू।

शब्दार्थ—वारिनिधि=(वारि=जल+निधि=ख़जाना) समुद्र। बूड़=वर्ण विपर्यय से डूब से बूड़ बन गया। वनिक=(वणिक् संस्कृत) बनिया।

भावार्थ—राम जी के चले जाने से उन लोगों की दशा ऐसी हो गयी है मानो समुद्र में जहाज डूब जाने पर बनिकों का समुदाय बहुत व्याकुल हो गया हो। उनमें एक दूसरे को यह शिक्षा देते हैं कि रामजी ने हम लोगों को दुखदाई जानकर छोड़ दिया है (अर्थात् हमारे रहने से उन्हें कष्ट होगा इस लिये हमें छोड़ दिया है)

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना।
जौ पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा। तौ कस मरन न माँगे दीन्हा।

शब्दार्थ—मीना=मछली। पै=निश्चय।

भावार्थ—वे अपनी निन्दा करते हैं और मछली की प्रशंसा करके कहते हैं कि रामजी के बिना इस जीवन को धिक्कार है (क्योंकि मछली तो अपने प्रियतम जल से बिछुड़तेही मर जाती है लेकिन हम लोग अपने प्रियतम रामजी से बिछुड़ कर भी जीवित हैं)। जो ब्रह्मा ने निश्चय ही प्रियतम का बिछोह बनाया था तो मांगने पर मृत्यु क्यों नहीं दी।

एहि विधि करत विलाप कलापा। आये अवध भरे परितापा।
विषम वियोग न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना।

शब्दार्थ—कलापा = समूह। परितापा = दुख, शोक।

भावार्थ—इस प्रकार अनेक विलाप करते हुए दुख से भरे हुए नगर निवासी लोग अयोध्या में आये। उनके कठिन दुःख का वर्णन नहीं किया जा सकता, वे वनवास की चौदह वर्ष की अवधि की आशा से प्राण रखते हैं (चौदह वर्ष बाद पुनः राम के दर्शन होंगे, इस आशा से प्राण रखते हैं)

दो०—राम-दरस हित नेम-व्रत, लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन विहीन तमारि॥ ८७॥

शब्दार्थ—कोक = चकवा। कोकी = चकवाकी। तमारि = सूर्य।

भावार्थ—सब स्त्री पुरुष रामचन्द्रजी के दर्शन के लिये नियम और व्रत करने लगे, वे ऐसे दुखी थे मानों चकवा, चकई और कमल सूर्य के बिना दुखी हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

सीता सचिव सहित दोउ भाई। शृंगवेरपुर पहुँचे जाई।
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरष विसेखी।

शब्दार्थ—शृंगवेरपुर = वर्तमान नाम सिँगरौरा। देवसरि = देवनदी, गंगा।

भावार्थ—सीता जी और मंत्री सुमंत्र समेत दोनों भाई शृंगवेरपुर में जा पहुँचे। राम जी गंगा को देखकर रथ से उतर पड़े और विशेष रूप से प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम किया।

लषन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहिं सहित सुख पायउ रामा।
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।

शब्दार्थ—सूला=शूल, पीड़ा, क्लेश।

भावार्थ—लक्ष्मणजी मंत्री सुमंत्र और सीता जी ने भी गंगा को प्रणाम किया, रामजी ने सब के साथ सुख पाया। गंगा जी सब आनन्द और कल्याण की जड़ हैं, सब सुखों को देने वाली और सब कष्टों को हरने वाली हैं।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। राम विलोकहिँ गंग तरंगा।
सचिवहिँ अनुजहिँ प्रियहिँ सुनाई। विबुधनदी महिमा अधिकाई।

शब्दार्थ—विबुधनदी=(विबुध=देवता+नदी) गंगा।

भावार्थ—रामजी बहुत सी कथाओं का प्रसंग कहकर गंगा जी की लहरों को देखते हैं। मंत्री छोटे भाई और अपनी प्रिया सीता जी को गंगा की बड़ी महिमा सुनाकर।

मज्जन कीन्ह पंथ स्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ।
सुमिरत जाहि मिटहि भव भारू। तेहि स्रम यह लौकिक व्यवहारू।

शब्दार्थ—भव भारू=संसार का भार।

भावार्थ—रामजी ने स्नान किया, स्नान करने से रास्ते में चलने से उत्पन्न हुई थकावट मिट गयी और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। (तुलसीदास जी कहते हैं) जिसका स्मरण करते ही संसार का भार मिट जाता है, उसे थकावट उत्पन्न ह ना यह केवल लौकिक व्यवहार है (वास्तविक नहीं है)

नोट—तुलसीदास जी का यह स्वभाव है कि जब वे देखते हैं कि पाठक राम जी को मनुष्य समझना चाहता है, तब वे राम जी की माधुर्य्य लीला के बीच में उनका कुछ ऐश्वर्य वर्णन कर देते हैं। यहाँ पर राम जी की माधुर्य लीला का वर्णन करते करते तुलसी दास जी के ध्यान में आया कि कहीं पाठक लोग राम जी को गंगा स्नान करके थकावट दूर करते आदि देखकर मनुष्य न समझने लगें, तो उन्होंने तुरंत राम जी का कुछ ऐश्वर्य वर्णन कर दिया जिससे पाठक यह न भूलने पावे कि राम जी परमेश्वर के अवतार हैं।

दो०—सुद्ध सच्चिदानंदमय, कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति-सागर-सेतु ॥ ८८ ॥

शब्दार्थ—सुद्ध=त्रिगुणातीत, सत्व, रज, तम से परे। सच्चिदानंदमय= सत्, चित और आनन्द युत, सत्=जो कभी नष्ट न हो, चित्=सब जीवों में जो चैतन्य शक्ति है, आनन्द=जो सदैव आनन्दमय रहता है। कंद= जड़। नरअनुहरत=मनुष्य की तरह। संसृति=संसार। सेतु=पुल।

भावार्थ—त्रिगुणातीत, सत्, चित, आनन्द युक्त, संसार के आदि कारण सूर्य वंश में श्रेष्ठ राम जी मनुष्य की तरह चरित्र करते हैं जो संसार रूपी समुद्र से पार उतारने के लिये पुल के समान है।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई।
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरष अपारा ॥

शब्दार्थ—भारा=भार उतने बोझा को कहते हैं जितना एक आदमी उठा सके।

भावार्थ—जब यह समाचार (राम जी के वन में आने का) गुह नामक निषाद को मालूम हुआ, तब उसने प्रसन्न होकर अपने प्यारे सम्बन्धियों को बुलवा लिया, और फल, कंद आदि भेंट की चीजें बहँगियों में भर राम जी से मिलने के लिये चला, उस समय उसके मन में बड़ी प्रसन्नता थी।

करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे।
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूछी कुसल निकट बैठाई ॥

भावार्थ—गुह राम जी को दंडवत करके भेंट की चीजें उनके आगे धर कर उन्हें बहुत प्रेम के साथ देखता है। राम जी ने अपने स्वाभाविक प्रेम से उसे अपने पास बैठा कर उसकी कुशल पूछी।

नाथ! कुसल पद पंकज देखे। भयउँ भाग-भाजन जन लेखे।
देव! धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा ॥

शब्दार्थ—जन=भक्त, दास। लेखा=गणना

भावार्थ—हे स्वामी, आपके चरण कमलों को देखने से मेरी कुशल है। (चरणों के दर्शन ही मेरी कुशल का कारण हैं) अब मैं सेवकों की गणना में एक भाग्यमान सेवक हो गया। हे देव! मेरी धरती धन और धाम सब तुम्हारे हैं (यहीं रहो और राज्य करो) मैं तो सपरिवार आप का नीच टहलुवा हूं (उसी तरह आपकी सेवा करूंगा)

कृपा करिय पुर धारिय पाऊ। थापिय जन सब लोग सिहाऊ।
कहेहु सत्य सब सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥

शब्दार्थ—थापिय जन=जनकी प्रतिष्ठा बढ़ाइए। सिहाऊ=प्रशंसा करें।

भावार्थ—कृपा करके नगर में चलकर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाइए जिससे सब लोग मेरी प्रशंसा करें। (तब राम जी ने उत्तर दिया) हे चतुर मित्र तुमने सब ठीक कहा है, लेकिन पिताजी ने मुझे दूसरी ही आज्ञा दी है।

दोहा—बरष चारिदस बास बन, मुनि-व्रत-बेष अहारु।
ग्राम बास नहिं उचित सुनि, गुहहिं भयउ दुख भारु॥८९॥

भावार्थ—चौदह वर्ष तक बन में रहना होगा, मुनियों का व्रत, वेष और भोजन करना पड़ेगा, गाँव में रहना उचित नहीं है। यह सुनकर गुह बड़ा दुखी हुआ।

राम लषन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी।
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठये बन बालक ऐसे॥

भावार्थ—गाँव के स्त्री और पुरुष राम लक्ष्मण और सीता का रूप देख कर प्रेम के साथ कहते हैं। हे सखी! कहो वे माता पिता कैसे (कठोर) हैं जिन्हों ने ऐसे बालकों को वन में भेजा है।

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहिं जिन दीन्हा।
तब निषाद पति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना॥

शब्दार्थ—लोयन=लोचन, आँख। लाहु=लाभ। सिंसुपा=शरीफ़ा, शीशम, अशोक, यहां पर अशोक का ही अर्थ है।

भावार्थ—उनमें से कोई कहते हैं कि राजा ने अच्छा किया, जिन्हों ने हमको नेत्रों का लाभ (नेत्रों का लाभ अच्छी से अच्छी वस्तु देखना है, राम जी के दर्शन से बढ़कर नेत्रलाभ भला क्या हो सकता है) दिया है। तब निषाद राज गुह ने हृदय में विचार किया तो उसे (राम जी के ठहरने के लिये) अशोक का पेड़ बहुत मनोहर मालूम हुआ।

लेइ रघुनाथहिं ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा।
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुबर संध्या करन सिधाये॥

शब्दार्थ—ठाउँ=स्थान। जोहार=प्रणाम।

भावार्थ—गुह ने राम जी को लेजाकर वह स्थान दिखलाया, राम जी ने कहा कि यह स्थान सब प्रकार से सुहावना है। नगर के लोग राम जी को प्रणाम करके अपने अपने घर लौट आये, तब राम जी सन्ध्या करने के लिये चले।

गुह सँवारि साथरी डसाई। कुस किसलय मय मृदुल सुहाई।
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी।

शब्दार्थ—सँवारि=सजा करके। साथरी=पत्तों का बिछौना। डसाई=बिछाया।

भावार्थ—गुह ने सजा करके पत्तों का बिछौना बिछाया जो कि मुलायम कुश और नवीन पत्तों का होने के कारण कोमल था। उसने पवित्र फल और कंद मीठे तथा कोमल जानकर दोनों में भर भर कर राम जी के आगे लाकर रक्खा।

दो०—सिय सुमंत्र भ्राता सहित, कन्द मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंस मनि, पायँ पलोटत भाइ॥९०॥

शब्दार्थ—पलोटत=दाबते हैं।

भावार्थ—सीता जी, सुमंत्र और भाई समेत कंद, मूल और फल खाकर रघुकुल श्रेष्ठ राम जी लेटे और भाई लक्ष्मण उनके पैर दाबने लगे।

उठे लषन प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहिं सोवन मृदुबानी।
कछुक दूर सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन॥

शब्दार्थ—सरासन= (सर=बाण+आसन) धनुष। बीरासन=बीरों का आसन, इस आसन में बायाँ पैर जमीन में घुटना तोड़कर रक्खा जाता है और दाहिना पैर घुटना तोड़कर सीधे रखकर बैठा जाता है।

भावार्थ—जब लक्ष्मण जी ने जाना कि रामजी सो गये तो वे कोमल बचनों से मंत्री को सोने के लिये कहकर उठे। और धनुष बाण सजाकर कुछ दूरी पर वीरासन बैठकर जागने लगे (पहरा देने लगे)

गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती।
आपु लषन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथा सर चाप चढ़ाई।

शब्दार्थ—पाहरू=पहरेदार। प्रतीती=विश्वासपात्र। कटि=कमर। भाथा=तरकस। सर=(शर) बाण। चाप=धनुष।

भावार्थ—गुह ने विश्वासपात्र पहरेदारों को बुलाकर स्थान स्थान पर बहुत प्रेम के साथ रक्खा। उसके बाद स्वयं कमर में तरकस और हाथ में धनुष पर बाण चढ़ाकर लक्ष्मण जी के पास जाकर बैठा।

सोवत प्रभुहिं निहारि निषादू। भयउ प्रेम बस हृदय विषादू।
तनु पुलकित जल लोचन बहई। बचन सप्रेम लषन सन कहई।

शब्दार्थ—पुलकित=रोमांचित, हर्ष या शोक से शरीर के रोंगटे खड़े हो जाना।

भावार्थ—रामजी को (पत्तों से बनी हुई शय्या पर वृक्ष के नीचे) सोते हुए देखकर प्रेम के मारे निषाद के हृदय में बड़ा दुःख हुआ, उसका शरीर रोमाञ्चित हो गया, उसकी आँखों से आँसू बहने लगे, वह प्रेम के साथ लक्ष्मण जी से ये बातें कहने लगा।

भूपति भवन सुभाय सुहावा। सुरपति सदन न पटतर पावा।
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे।

शब्दार्थ—पटतर=समता, बराबरी। चारु=सुन्दर। चौबारे=दालान, चौपार। रतिपति=कामदेव

भावार्थ—राजा दशरथ का महल स्वभाव से ही सुन्दर है, इन्द्र का महल भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता। उसके दालान मणियों के बने हुए हैं (देखने से ऐसा जान पड़ता है) मानों कामदेव ने अपने ही हाथों से बनाया है।

दो०—सुचि सुबिचित्र सुभोगमय, सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास॥२१॥

शब्दार्थ—सुमन=फूल। सुपास=सुख।

भावार्थ—जिन महलों में पवित्र और विचित्र सुन्दर भोग की सामग्रियाँ भरी हुई हैं, जो फूल और सुगंधित द्रव्यों से सुवासित हैं, जहाँ पर सुन्दर पलँग और मणियों से बने हुए दीपक हैं, जहाँ सब प्रकार से सब सुख हैं।

बिबिध बसन उपधान तुराई। छीरफेनु मृदु बिसद सुहाई।
तहँसियराम सयननिसिकरहीं। निजछबिरतिमनोजमद हरहीं॥

शब्दार्थ—उपधान=(उप=समीप+धा=रखना) तकिया। तुराई=(तूल+आई) तोशक। छीरफेन=दूध का फेन। बिसद=स्वच्छ, उज्वल।

भावार्थ—जहाँ पर दूध के फेन के समान उज्ज्वल, कोमल और सुन्दर अनेक वस्त्र तकिया तोशक रहते हैं, वहाँ पर सीता जी और राम जी रात में सोते थे, वे अपनी शोभा से रति और कामदेव का भी अभिमान नष्ट करते थे।

ते सिय राम साथरी सोये। स्रमित बसन बिनु जाहिँ न जोये।
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥
जोगवहिँ जिन्हहिं प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥

शब्दार्थ—स्रमित=(श्रमित) थके हुए।

भावार्थ—वे सीता और राम जी थक कर पत्तों के बिछौने पर बिना

बस्त्र के सोये हैं। माता, पिता, सम्बन्धी, नगर निवासी, मित्र, सुन्दर स्व-भाव वाले दास और दासियाँ अपने प्राण की तरह जिनकी रक्षा किया करते थे, वही गोस्वामी राम जमीन पर सोये हुए हैं।

पिता जनक जग विदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ।
राम चन्द्र पति सो वैदेही। सोवत महि विधि वाम न केही।
सिय रघुवीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू।

भावार्थ—जिनके पिता जनक जी का प्रभाव संसार में प्रसिद्ध है, जिनके ससुर इन्द्र के मित्र रघुवंश के स्वामी राजा दशरथ हैं, और जिनके पति राम जी हैं वही सीता जी जमीन पर सो रही हैं। विधाता किसे विप-रीत नहीं होता। क्या सीता और राम जी वन के योग्य हैं? (अर्थात नहीं) लोग सत्य कहते हैं कि कर्म ही मुख्य है।

दो०—केकयनंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहि, सुख अवसर दुख दीन्ह॥९२॥

भावार्थ—केकय राजा की पुत्री दुर्बुद्धि कैकेई ने कठिन कुटिलता की है जिसने राम जी और सीता जी को सुख के समय में दुख दिया है।

भइ दिनकर कुल विटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब विस्व दुखारी।
भयउ विषाद निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी॥

भावार्थ—केकई सूर्य वंश रूपी वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ी के समान हुई, उस दुर्बुद्धि ने सारे संसार को दुखित किया है। राम जी और सीता जी को जमीन पर सोते देखकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ।

बोले लखन मधुर-मृदु वानी। ज्ञान-विराग-भगति-रस सानी।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता॥

भावार्थ—लक्ष्मण जी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति रस से मिले हुए मनोहर और कोमल वचन बोले। "हे भाई! कोई किसी को सुख दुःख देने वाला नहीं है, सब लोग अपने किये हुए कर्म का फल भोगते हैं।

नोट—लक्ष्मण जी का निषाद को दिया हुआ यह उपदेश "लक्ष्मण गीता" नाम से प्रसिद्ध है। यह उपदेश चौरानबे दोहे तक है।

जोग वियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।
जनम मरन जहँ लगि जग जालू। संपति विपति करम अरु कालू॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरग नरक जहँ लगि व्यवहारू।
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं॥

शब्दार्थ—मध्यम=उदासीन। परमारथ=परमार्थ, मोक्ष।

भावार्थ—योग, वियोग, भोग, अच्छा, बुरा, मित्र, शत्रु, उदासीन ये सब भ्रम के जाल हैं। जन्म, से मरण तक जहाँ तक संसार का जाल है, सम्पति, विपत्ति, कर्म और काल, जमीन, घर, धन, कुटुम्ब, स्वर्ग, नरक जहाँ तक पहुँच है जहाँ तक देखा, सुना और मन में विचारा जाता है वहाँ तक मोह ही सब की जड़ है ये वस्तुएं परमार्थ मूलक नहीं हैं। अर्थात् इन से परमार्थ (मुक्ति) साधन नहीं हो सकता, ये वस्तुएं केवल अज्ञान में डाले रहती हैं।

अलंकार—कारक दीपक।

दो०—सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाक-पति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥९३॥

शब्दार्थ—रंक=निर्धन। नाकपति=(नाक=स्वर्ग+पति=स्वामी) इन्द्र। प्रपंच=(जिसमें पाँच तत्व प्रधान हैं) संसार।

भावार्थ=जिस प्रकार स्वप्न में राजा भिखमंगा हो जाता है और निर्धन मनुष्य स्वर्ग का स्वामी हो जाता है, जागने पर कुछ लाभ या हानि नहीं होती, उसी प्रकार इस संसार को भी हृदय में (स्वप्नवत्) समझो।

अलंकार—उदाहरण।

अस विचारि नहिं कीजिय रोषू। काहुहि बादि न देइय दोषू॥
मोह निसा सब सोवनिहारा। देखहिं सपन अनेक प्रकारा॥

शब्दार्थ—रोष=क्रोध। बादि=व्यर्थ।

भावार्थ—ऐसा विचार कर क्रोध न कीजिए; किसी को व्यर्थ दोष न दीजिए। सभी लोग मोह रूपी रात्रि में सोते हैं और तरह तरह के स्वप्न देखते हैं।

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी॥
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास बिरागा।

भावार्थ—इस संसार रूपी रात्रि में योगी लोग ही जागते हैं जो मुक्ति की साधना करते और संसार से अलग रहते हैं। (यह ज्ञान कथन है)। संसार में जीव को उस समय जागा हुआ (सावधान) समझना चाहिए जब वह सब विषयों के भोग से दूर भाग जाय! (यह वैराग्य कथन है)।

होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू॥

भावार्थ—जब ज्ञान होने से मोह और भ्रम भाग जाते हैं, तब रामजी के चरणों में प्रेम होता है। हे सखा! मन, वचन और कर्म से रामजी के चरणों में प्रेम होना यही सबसे बड़ा मोक्ष है। (इन दोनों पंक्तियों में भक्ति कही गयी है)।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा।

शब्दार्थ—अविगत=जिसकी गति जानी न जाय। अलख=(अलक्ष्य) जो देखा न जा सके। अनादि=जिसका आरम्भ नहीं है। नेति=(न+इति) जिसका अंत नहीं हैं।

भावार्थ=रामजी ब्रह्म हैं, वे मोक्ष के रूप ही हैं, वे अविगत, अलक्ष्य, अनारम्भ और अनुपमेय हैं। वे सब विकारों से हीन और भेद रहित हैं, वेद सदैव "नहीं अंत है" ऐसा कह कर उसका निरूपण करते हैं।

सो०—भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपालु।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहि जग जालु॥९४

शब्दार्थ—भूसुर=(भू=पृथ्वी+सुर=देवता)ब्राह्मण। सुरभि=गाय।

भावार्थ—दयालु राम जी भक्त, पृथ्वी, ब्राह्मण, गाय और देवताओं की भलाई के लिये मनुष्य शरीर धारण करके ऐसे चरित्र करते हैं जिनके सुनने से संसार का बन्धन छूट जाता है।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुवीर चरन रत होहू॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल दातारा॥

शब्दार्थ—भा=हुआ। भिनुसारा=(भानु=सूर्य+सरन=चलना सूर्य पीछे पीछे चलता है जिसके) सवेरा। जग मंगल दातारा=संसार का कल्याण करने वाले (राम जी)

भावार्थ—हे मित्र! ऐसा समझकर मोह छोड़कर सीता और राम जी के चरणों में अनुरक्त हो अर्थात सीता जी और राम जी के चरणों से प्रेम करो। (इस प्रकार) रामजी का गुण वर्णन करते हुए सवेरा हो गया और संसार का कल्याण करनेवाले रामजी जग उठे।

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान वटछीर मँगावा।
अनुज सहित सिर जटा बनाये। देखि सुमंत नयन जल छाये॥

शब्दार्थ—वटछीर= (वट=बर्गद+क्षीर=दूध) बर्गद का दूध। अनुज= (अनु=पीछे+ज=जन्मना) छोटा भाई।

भावार्थ—शौच के सब कार्यों को करके राम जी ने स्नान किया और पवित्र तथा चतुर राम जी ने बर्गद का दूध मँगवाकर उससे भाई सहित सिर की जटाओं को बनाया, यह देखकर सुमंत्र की आँखों में जल भर आया।

हृदय दाह अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना॥
नाथ कहेउ अस कोसल नाथा। लेइ रथ जाहु राम के साथा॥

भावार्थ—सुमंत के हृदय में बड़ी जलन थी उसका मुख उदास था वह हाथ जोड़कर बहुत ही दीन वचन बोला। हे स्वामी! कौशलपति दशरथ जी ने ऐसा कहा है कि रथ लेकर रामजी के साथ जाओ।

वन देखाइ सुरसरि अन्हवाई । आनेहु फेरि वेगि दोउ भाई ॥
लपन राम सिय आनेहु फेरी । संसय सकल सकोच निवेरी ॥

शब्दार्थ—निवेरी=(निवारण संस्कृत) दूर कराके, मिटाकर ।

भावार्थ—(सुमंत राजा दशरथ का सन्देश ज्यों का त्यों सुनाते हैं) वन दिखाकर और गंगा स्नान कराकर दोनों भाइयों को जल्द लौटा लाना । सब सन्देह और संकोच दूर कराकर लक्ष्मण जी रामजी और सीता जी को लौटा लाना ।

दो०—नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहिय करउँ वलि सोइ ।
करि विनती पायन्ह परेउ, दीन्ह वाल जिमि रोइ ॥ ९५ ॥

भावार्थ—हे गोस्वामी ! मैं आपकी वलि जाता हूं, राजा ने ऐसा कहा है, आप जैसा कहिए मैं वैसा करूँ । इस प्रकार प्रार्थना करके सुमंत रामजी के पैरों पर गिर पड़ा और वालक की तरह रो दिया ।

तात कृपा करि कीजिय सोई । जातें अवध अनाथ न होई ॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रवोधा । तात धरममत तुम्ह सब सोधा ॥

शब्दार्थ—तात=प्यारे। सोधा=ढूढ़ा, खोजा, अच्छी तरह पता लगाया।

भावार्थ—हे प्यारे ! कृपा करके वही काम कीजिए, जिसके करने से अयोध्या अनाथ न हो । रामजी ने मंत्री सुमंत को उठाकर समझाया और कहा, हे तात आप ने धर्म के सब सिद्धान्तों का भलीभाँति पता लगाया है ।

सिवि दधीचि हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ।
रंतिदेव वलि भूप सुजाना । धरम धरेउ सहि संकट नाना ।

भावार्थ—राजा शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिये बहुत से कष्ट सहन किये हैं । राजा रंतिदेव और चतुर राजा वलि ने भी अनेक कष्ट सहन करके धर्म ही को पालन किया है ।

धरम न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान वखाना ॥
मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥

शब्दार्थ—आगम—शास्त्र। निगम=वेद। बखानां=वर्णन किया।

भावार्थ=वेद, शास्त्र और पुराणों ने वर्णन किया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है उस सत्य धर्म को मैंने सरलता से पाया है, उसे छोड़ने से तीनों लोकों में अपकीर्त्ति होगी।

संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिये उतरु फिरि पातक लहऊँ॥

शब्दार्थ—सम्भावित=सज्जन, कीर्त्तिवान। सन=से। (शौरसेनी भाषा के रूप सुन्तू से 'सन' बना है)

भावार्थ—कीर्त्तिमान पुरुष की अपकीर्त्ति होने से करोड़ों मृत्यु के समान भयंकर जलन होती है। हे तात ! आप से मैं बहुत अधिक क्या कहूं, यदि आपको प्रत्युत्तर देता हूं तो पाप का भागी होता हूं।

दो०—पितु पद गहि कहि कोटि नति, विनय करवि कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात कै, तात करिय जनि मोरि॥ ९६॥

भावार्थ—मेरे पिता के पैरों पर पड़कर अनेक प्रकार से प्रणाम कहकर हाथ जोड़ कर प्रार्थना कीजिएगा कि हे तात मेरे लिये किसी बात की चिन्ता न कीजिए।

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरे। विनती करउँ तात कर जोरे।
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारे। दुख न पाव पितु सोच हमारे॥

भावार्थ—हे तात ! फिर आप पिता के ही समान मेरे बड़े हितैषी हैं, मैं हाथ जोड़ कर आप से प्रार्थना करता हूं, कि सब प्रकार से आप के लिये वही करना योग्य है (अर्थात आप सब तरह से वही कार्य कीजिएगा) जिससे मेरे पिता हमारे शोक में दुख न पावें।

सुनि रघुनाथ-सचिव-संवादू। भयउ सपरिजन विकल निषादू।
पुनि कछु लषन कही कटु बानी। प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी॥

भावार्थ—राम जी और मंत्री सुमंत की यह बातचीत सुनकर निषाद

(गुह) कुटुम्ब सहित व्याकुल हो गया। उसके बाद लक्ष्मण जी ने कुछ कड़ी बातें कहीं, जिसे अनुचित समझ कर राम जी ने लक्ष्मण को बोलने से रोक दिया।

सकुचि राम निज सपथ दिवाई। लषन सँदेसु कहिय जनि जाई।
कह सुमंत पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥

भावार्थ—राम जी ने लज्जित होकर अपनी कसम दिलाकर सुमंत से कहा कि लक्ष्मण का सन्देशा न कहिएगा। सुमंत ने फिर राजा का सन्देशा कहा कि सीता जी वन के कष्ट न सहन कर सकेंगी।

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहिं तुम्हहिं करनीया।
न तरु निपट अवलंब विहीना। मैं न जियब जिमि जल बिनु मीना॥

भावार्थ—जिस उपाय से सीता जी अयोध्या लौट आवें वही उपाय राम को और तुमको करना चाहिए। नहीं तो बिल्कुल आधार रहित हो जाने से मैं उसी तरह जीवित न रह सकूँगा जिस प्रकार जल के बिना मछली नहीं जीती।

दो०—मइके ससुरे सकल सुख, जबहिं जहाँ मन मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय, जब लगि बिपति बिहान॥९७॥

भावार्थ—पिता के घर और ससुराल में सब प्रकार का सुख है, जब तक विपत्ति का अन्त नहीं होता (अर्थात जब तक राम जी वन से नहीं लौट आते) तब तक सीता जहाँ मन हो वहाँ सुख से रहेंगी।

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती।
पितु सँदेस सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥

शब्दार्थ—आरत्ति = दीनता।

भावार्थ—राजा दशरथ ने जिस प्रकार से प्रार्थना की है वह दीनता और प्रेम नहीं कहा जा सकता। पिता का सन्देश सुनकर दयालु राम जी ने सीता जी को बहुत प्रकार से शिक्षा दी (लौट जाने को समझाया)

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटइ खँभारू।
सुनि पति वचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥

शब्दार्थ—खँभारू=दुख। व्याकुलता।

भावार्थ—अगर तुम लौटो तो सास, ससुर, गुरु और प्यारे कुटुम्बी सब की व्याकुलता मिट जाय। पति की बातें सुनकर सीता जी कहती हैं, हे परम प्रेमी प्राणपति सुनिए।

प्रभु करुनामय परम विवेकी। तनु तजि रहत छाँह किमि छेंकी।
प्रभा जाइ कहँ भानु विहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई।

भावार्थ—हे दयालु, अत्यंत ज्ञानवान प्रभु! छाया शरीर को छोड़ कर किस प्रकार अलग रह सकती है। प्रकाश सूर्य को छोड़ कर कहाँ जा सकता है? चाँदनी चन्द्रमा को छोड़ कर कहाँ जा सकती है (अर्थात कहीं नहीं जा सकती)।

अलंकार—वक्रोक्ति।

पतिहिं प्रेममय विनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुनाई।
तुम्ह पितु ससुर-सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी

भावार्थ—पति को प्रेमपूर्ण प्रार्थना सुनाकर सीता जी मंत्री सुमंत से सुन्दर बातें कहती हैं। आप पिता और ससुर से समान भलाई करने वाले हैं यदि मैं आप को उत्तर दूं तो बड़ी अनुचित बात है (गुरु जनों की आज्ञा अमान्य करना अनुचित है)

दो०—आरति बस सनमुख भयउँ, विलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात॥९८॥

शब्दार्थ—विलगु=बुरा। आरजसुत=पति।

भावार्थ—हे तात! मैं दुखी होने के कारण आपके सामने हुई हूँ, बुरा न मानिएगा। आर्यपुत्र के चरण कमलों से वियोग होने पर जहाँ तक सम्बन्ध है वह सब व्यर्थ है (राम जी को छोड़कर मैं अन्य संबंधियों के साथ सुखी नहीं रह सकती)।

पितु वैभव विलास मैं डीठा। नृप मणि मुकुट मिलत पद पीठा।
सुख निधान अस पितु गृह मोरे। पिय विहीन मन भाव न भोरे॥

शब्दार्थ—डीठा=(दृष्टि संस्कृत) देखा। पद पीठा=पैर के ऊपर का भाग। निधान=खज़ाना। भोरे=धोखे।

भावार्थ—मैंने पिता की सम्पत्ति और सुख चैन देखा है उनके पैरों से राजाओं के मणियों से जटित मुकुट छू जाते हैं (महाराजाओं का सिंहासन इतनी ऊँचाई पर होता है कि जब कोई छोटा राजा आकर प्रणाम करता है तो उसका मुकुट राजा के पैरों से छू जाता है)। पति के बिना पिता का ऐसा सुखमय घर मेरे मन को धोखे में भी अच्छा नहीं लगता।

ससुर चक्कवइ कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।
आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिँहासन आसनु देई॥

शब्दार्थ—चक्कवइ=चक्रवर्ती।

भावार्थ—ससुर चक्रवर्ती कोशल के राजा हैं जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रसिद्ध है। इन्द्र आगे से आकर जिनकी अगवानी करता है और अपने आधे सिंहासन पर बैठने का स्थान देता है।

ससुर एतादृस अवधनिवासू। प्रिय परिवार मातु सम सासू।
बिनु रघुपति-पद-पदुम-परागा। मोहि कोउ सपनेहु सुखद न लागा

शब्दार्थ—एतादृस=ऐसे।

भावार्थ—ऐसे ससुर, अयोध्या में रहना, प्यारा कुटुम्ब, माता के समान सासें ये सब बिना राम जी के चरण कमलों की धूलि के मुझे कोई स्वप्न में भी सुखकारी नहीं मालूम होते।

अगम पंथ बन भूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा।
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा।

शब्दार्थ—कुरंग=हरिण।

भावार्थ—दुर्गम रास्ता, जंगल, पहाड़ी ज़मीन, बहुत से हाथी, सिंह,

तालाब, नदी, कोल, किरात, हरिण और पक्षी प्राणपति के साथ में मुझे सब सुख देनेवाले होंगे।

अलंकार—अनुज्ञा।

दो०—सास ससुर सन मोरि हुति, विनय करबि परि पाय।
मोर सोच जनि करिय किछु, मैं वन सुखी सुभाय ॥९९॥

शब्दार्थ—हुति—(हुन्त् प्राकृत) ओर से।

भावार्थ—मेरी तरफसे सास ससुर से पैरों पर पड़कर प्रार्थना कीजिएगा, कि मेरा कुछ भी शोक न करें, मैं वन में स्वभाव से ही सुखी रहूंगी।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। वीर धुरीन धरे धनु भाथा।
नहिं मगस्रम भ्रम दुख मन मोरे। मोहिं लगिसोचुकरियजनि भोरे।

भावार्थ—वीरों में श्रेष्ठ प्राणपति और प्यारे देवर लक्ष्मण धनुष और तर्कस धरे हुए मेरे साथ हैं। मेरे मन में रास्ता चलने की थकावट का भ्रम और दुख नहीं हैं, (राजा जी से तथा सासजी से कहिएगा कि) मेरे लिये भूलकर भी शोक न करें।

सुनि सुमंत सिय सीतल बानी। भयउ विकल जनु फनि मनिहानी।
नयन सूझ नहिंसुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना।

भावार्थ—सीताजी की नम्र बातें सुनकर सुमंत ऐसे व्याकुल हुए जैसे सर्प मणि खो जाने पर व्याकुल होता है। उनके नेत्रों से दिखलाई नहीं देता था, कानों से सुनाई नहीं देता था, कुछ कह नहीं सके, बहुत व्याकुल हो गये।

राम प्रबोध कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतल छाती।
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतरु रघुनन्दन दीन्हे।

भावार्थ—रामजी ने सुमंत को बहुत समझाया लेकिन उनके हृदय की जलन नहीं मिटती थी। सुमंत ने रामजी के साथ चलने के लिये बहुत से उपाय किये लेकिन रामजी ने उन सबका उचित उत्तर दिया।

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करमगति किछु न बसाई।

राम-लषन-सिय-पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूरि गँवाई।

शब्दार्थ—रजाई=आज्ञा।

भावार्थ—सुमंत से रामजी की आज्ञा नहीं टालते बनी, कर्म की गति कठिन होने के कारण उसका कुछ वश नहीं चला। रामजी, लक्ष्मणजी और सीता जी को प्रणाम करके सुमंत इस प्रकार से लौटे जैसे बनिया अपना मूलधन खोकर दुखी होकर लौटता है।

दो०—रथ हाँकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद विषाद बस, धुनहिँ सीस पछिताहिं ॥१००॥

शब्दार्थ—तन=ओर। हेरि=देखि, देखकर।

भावार्थ—सुमंत ने रथ हाँका, तो घोड़े रामजी की ओर देखकर दुख से हिनहिनाने लगे। घोड़ों की यह दशा देखकर निषादगण दुख से सिर पीट कर अफ़सोस करने लगे।

जासु वियोग विकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जीहहिं कैसे।
बरबस राम सुमंत पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आये।

भावार्थ—(निषाद कहने लगे) जिसके बिछोह में पशु लोग इतने व्याकुल हैं उसके वियोग से प्रजागण, माता और पिता किस तरह जीवित रहेंगे। रामजी ने सुमंत को जबरदस्ती लौटाया और तदनंतर वे गंगा जी के किनारे पर आये।

माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहँ सब कहई। मानुष-करनि मूरि कछु अहई ॥

शब्दार्थ—केवट (कैवर्त्त) मल्लाह। रज=धूलि।

भावार्थ—किनारे पर आकर रामजी ने केवट से नाँव माँगी, लेकिन वह नाव न लाया और रामजी से कहने लगा कि मैं आपका सब भेद जानता हूँ, सभी लोग कहते हैं कि आपके चरण कमलों की धूलि मनुष्य बनाने की कोई बूटी है (आपकी पदरज छूकर जड़ वस्तु मनुष्य बन जाती है)।

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई।
तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥

शब्दार्थ=सिला=पत्थर। कठिनाई=कठोरता, कड़ापन। तरनिउ=नाव भी। घरनी=स्त्री। बाट परइ=(मुहावरा) मेरी जीविका मारी जायगी, रास्ता बंद होगा, गजबहोगा।

भावार्थ—जब पत्थर छूते ही सुन्दर स्त्री हो गया, फिर लकड़ी तो पत्थर से अधिक कठोर नहीं होती। यह नाव भी मुनि की स्त्री (गौतम मुनि की स्त्री अहिल्या) हो जायगी, नाव उड़ जाने से मेरी जीविका मारी जायगी।

एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू।
जौ प्रभु अवसि पार गा चहहू। मोहिं पद पदुम पखारन कहहू॥

शब्दार्थ—कबारू=धंधा, काम। पखारन=(प्रक्षालन) धोना।

भावार्थ—मैं इससे अपने सारे कुटुम्ब का पालन करता हूं, और दूसरा कुछ काम नहीं जानता। हे प्रभु! जो आप अवश्य पार जाना चाहते हैं, तो मुझे अपने चरण कमलों को धोने की आज्ञा दीजिए।

छंद—पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहउँ।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहउँ॥
बरु तीर मारहु लषन पै जब लगि न पायँ पखारिहउँ।
तब लगि न तुलसी दास नाथ कृपालु पार उतारिहउँ॥

भावार्थ—हे स्वामी मैं चरण कमल धोकर आप को नाव पर चढ़ाऊँगा मैं आपसे कुछ उतराई (पार ले जाने का भाड़ा) नहीं चाहता। हे राम जी! मुझे आप की कसम है और दशरथ जी की कसम है मैं सब सत्य सत्य कहता हूं। (कसम खाते समय केवट ने कहा होगा कि हे राम जी मुझे आप की कसम है और आप के बाप की कसम है जैसा कि लोग आज कल भी कहते हैं लेकिन तुलसीदास जी ने ग्राम्यदोष बचाने के लिये उसे दूसरी तरह व्यक्त किया है। केवट की कसम को सुनकर लक्ष्मण जी कुछ क्रोधित हो गये होंगे उनका क्रोध देखकर केवट ने कहा) चाहे लक्ष्मण जी

मुझे तीर मार दें लेकिन जब तक मैं पैर न धो लूँगा तब तक सीता जी (तुलसी), लक्ष्मण जी (दास) और दयालु आप को भी पार न उतारूँगा (तीन में से किसी एक को भी पार न उतारूँगा)

सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे ।
विहँसे करुनाऐन, चितै जानकी लखन तन ॥ १०१ ॥

शब्दार्थ—अटपटे=अशिष्ट, कठिन ।

भावार्थ—प्रेम से भरे हुए केवट के अशिष्ट वचनों को सुनकर दयावान राम जी सीता जी और लक्ष्मण जी की ओर देखकर हँसे ।

नोट—प्रेम लपेटे—प्रेम से सने हुए इसलिये कहा कि पाँव धोने के लिये केवट इतना अधिक उत्सुक है कि वह अपने प्राण की भी परवाह नहीं कर रहा है । अटपटे इसलिये कहा कि वह उतराई भी नहीं चाहता था और राम जी की कसम खा रहा था । लक्ष्मण जी और सीता जी की ओर देखकर हँसने का भाव यह है कि अभी तक तुम्हीं दोनों आदमियों ने मेरे एक एक चरण की सेवा का काम लिया था अब केवट भी चरण धोना चाहता है, इसे चरण धोने दें या नहीं, यह तो अपने प्राण तक की परवाह नहीं कर रहा है ।

कृपासिंधु बोले मुसकाई । सोइ करु जेहि तव नाव न जाई ।
बेगि आनु जल पाय पखारू । होत बिलम्ब उतारहि पारू ॥

भावार्थ—दयासागर राम जी ने मुस्कुरा कर केवट से कहा, वही काम करो जिससे तेरी नाव नष्ट न हो । जल्दी पानी लाओ और पैर धोओ, देर हो रही है, पार उतारो ।

जासु नाम सुमिरत इक बारा । उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ।
सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा । जेहि जग किय तिहुँ पगहुँ ते थोरा ॥

शब्दार्थ—केवटहि निहोरा=मल्लाह का एहसान लिया ।

भावार्थ—जिसका नाम एक बार स्मरण करते ही मनुष्य लोग अपार संसार सागर के पार हो जाते हैं, उन्हीं दयालु रामजी ने मल्लाह का एहसान

लिया। जिन्होंने संसार को तीन पग से भी कम बना दिया था (वामन अवतार में भगवान ने सारी पृथ्वी एक पग में माप ली थी)

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु वचन मोह मति करषी।
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा।

शब्दार्थ—करषी=(कर्षण) खिंच गई, दूर हो गयी।

भावार्थ—रामजी के चरणों के नाखून को देखकर गंगाजी (इसे अपना उत्पत्ति स्थान समझकर) प्रसन्न हुईं और उमड़ीं कि चरण छूलूं परंतु राम जी की वार्ते (रामजी ने केवट से जल लाकर पैर धोने के लिये कहा तब गंगाजी ने समझा कि अब मुझे प्रभु के चरण कमलों के छूने का अवसर मिलेगा) सुनकर गंगाजी की मोह बुद्धि (   ) दूर हो गयी। राम जी की आज्ञा पाकर मल्लाह कठौते में पानी भर ले आया।

अति आनंद उमँग अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

भावार्थ—बहुत आनन्द की उमंग से उसके हृदय में विशेष प्रेम उत्पन्न हो गया और वह रामजी के चरण कमल धोने लगा। उस समय देवता लोग उसके ऊपर फूल वर्षा कर उसकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि इसके समान पुण्यवान दूसरा कोई नहीं है।

दो०—पद पखारि जल पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयउ लै पार।१०२।

भावार्थ—राम जी के चरण धोकर और कुटुम्ब समेत स्वयं उस जल को पीकर पहले अपने पितरों को पारकर (पितरों को मुक्त करके) फिर आनन्द पूर्वक रामजी को गंगा पार ले गया।

अलंकार—अत्यंतातिशयोक्ति।

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता। सीय राम गुह लषन समेता॥
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा। प्रभु सकुचे यहि किछु नहिं दीन्हा॥

भावार्थ—सीता जी, रामजी, गुह और लक्ष्मण जी नाव पर से उतर कर गंगा जी की बालू पर खड़े हो गये। तब केवट ने नाव पर से उतर कर दण्डवत किया उस समय रामजी को यह सोचकर संकोच हुआ कि इसे उतराई कुछ नहीं दी गई (कुछ तो देना चाहिये)

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुँदरी मन मुदित उतारी।
कहेउ कृपालु लेहु उतराई। केवट चरन गहेउ अकुलाई।

भावार्थ—पति के हृदय की बात जाननेवाली सीता जी ने प्रसन्न चित्त से मणिजटित मुँदरी उँगली से निकाली। दयालु रामजी ने केवट से कहा अपनी उतराई लो, तब केवट ने व्याकुल होकर रामजी के चरण पकड़े (और कहने लगा कि)

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा।
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि भरि पूरी।

शब्दार्थ—दोष=पाप। दावा=अग्नि। बनि=(शुद्ध अवधी शब्द) बन्धी, मँजूरी।

भावार्थ—(केवट ने कहा) हे स्वामी! आज मैंने क्या नहीं पाया (अर्थात सब कुछ पाया) मेरे पाप, दुख और दरिद्रता की आग मिट गयी। मैंने बहुत दिनों तक मजदूरी की, लेकिन विधाताने आज ही भरपूर मजदूरी दी है।

अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीन दयाल अनुग्रह तोरे॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा॥

भावार्थ—हे दीनों पर दया करनेवाले स्वामी! आपकी कृपा से अब मुझे कुछ न चाहिए। लौटते समय आप जो कुछ मुझे देंगे, वह प्रसाद सिर पर धरकर ले लूँगा। (आदर पूर्वक ग्रहण करूँगा)।

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
विदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल वर देइ॥१०२॥

भावार्थ—रामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी और सीता जी ने बहुत उपाय किये

लेकिन केवट कुछ नहीं लेता था। तब दयासागर राम जी ने उसे विमल भक्ति का वरदान देकर विदा किया।

तब मज्जन करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा॥
सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥

शब्दार्थ—पारथिव=शिव जी की मिट्टी की बनाई हुई मूर्त्ति जिसे हाथ में लेकर या आसन पर रखकर पूजते हैं। पुरउबि=पूरा करिएगा।

भावार्थ—तब रघुवंश के स्वामी रामजी ने स्नान करके शिव जी को पारथी पूजा करके उन्हें प्रणाम किया। और सीता जी ने गंगा जी से हाथ जोड़कर कहा, हे माता मेरी मनोभिलाषा पूरी कीजिएगा।

पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करउँ जेहि पूजा तोरी।
सुनि सिय विनय प्रेम-रस-सानी। भइ तब विमल वारि बरबानी।

शब्दार्थ—बहोरी=फिरकर। बरबानी=(बरवाणी) श्रेष्ठ वचन।

भावार्थ—जिससे मैं फिर पति और देवर के साथ सकुशल लौट आकर आपकी पूजा करूँ। प्रेम-रस से भरी हुई सीता जी की यह प्रार्थना सुनकर पवित्र जल से यह सुन्दर वचन निकले।

सुनु रघुवीर प्रिया वैदेही। तव प्रभाउ जग विदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे॥

शब्दार्थ—लोकप=(लोक+प=पालने वाला) लोकपाल।

भावार्थ—हे रामजी की प्रिया सीताजी सुनो, तुम्हारा प्रभाव संसार में किसे नहीं मालूम है। तुम्हारे देखते ही लोग लोकपाल हो जाते हैं, सब सिद्धियां हाथ जोड़े हुए तुम्हारी सेवा करती हैं।

तुम्ह जो हमहिं बड़ि विनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्ह बड़ाई।
तदपि देवि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा।

शब्दार्थ—देबि=दूँगी। बागीसा=वाणी।

भावार्थ—तुमने हमसे जो बड़ी प्रार्थना की है यह मेरे ऊपर कृपा की

है, और मुझे बड़प्पन दिया है। लेकिन हे देवि ! अपनी वाणी सुफल होने के लिये मैं तुम्हें आशीर्वाद दूँगी—अर्थात् मुझे यह तो निश्चय ही है कि तुम सकुशल लौटोगी लेकिन यदि मैं आशीर्वाद दूँगी तो लोग कहेंगे कि यह सब गंगाजी के आशीर्वाद से ही हुआ।

दो०—प्राननाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मन कामना सुजस रहिहि जग छाइ ॥१०४॥

शब्दार्थ—पूजिहि=(पूर्ण) पूरी होगी।

भावार्थ—प्राणपति और देवर के साथ अयोध्या में सकुशल आकर तुम्हारी सब मन की इच्छा पूरी होगी और तीनों लोकों में तुम्हारा सुन्दर यश फैल जायगा।

गंग वचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला।
तब प्रभु गुहहिं कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुख भा उर दाहू।

शब्दार्थ—अनुकूल=प्रसन्न।

भावार्थ—गंगा जी की कल्याणकारी बातें सुनकर सीताजी ने उन्हें अपने ऊपर प्रसन्न समझा। तब रामजी ने गुह से कहा कि अब तुम घर लौट जाओ, यह बात सुनते ही गुह का मुख सूख गया और उसका हृदय दुखी हुआ।

दीन वचन गुह कह करजोरी। विनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी।
नाथ साथ रहि पंथ देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई॥
जेहि वन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करबि सुहाई।
तब मोहि कहँ जसि देवि रजाई। सोइ करिहउँ रघुवीर दोहाई॥

शब्दार्थ—दिन चारि=(कहने का मुहावरा है) कुछ दिन। परनकुटी=(पर्ण=पत्ता+कुटी=झोपड़ी) पत्तों की झोपड़ी। करबि=बनाऊँगा। दोहाई=कसम।

भावार्थ—गुह हाथ जोड़कर नम्र वचन कहने लगा, हे रघुवंश में श्रेष्ठ रामजी ! मेरी प्रार्थना सुनिए, मैं स्वामीके साथ रहकर, रास्ता दिखला कर,

और कुछ दिन आपकी सेवा करके, आप जिस वन में जाकर रहेंगे वहाँ मैं पत्तों की सुन्दर झोपड़ी बना दूँगा। आप की कसम खाकर कहता हूं तब आप मुझे जैसी आज्ञा दीजिएगा, मैं वैसाही करूँगा।

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू॥
पुनि गुह ज्ञाति बोलि सब लीन्हे। करिपरितोष बिदा सब कीन्हे॥

शब्दार्थ—हुलास=प्रसन्नता। गुह जाति=गुह की जाति के लोग।

भावार्थ—रामजी ने उसका (गुह का) स्वाभाविक प्रेम देखकर उसे साथ में लिया, इससे गुह के हृदय में बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनंतर गुह ने अपनी जाति के लोगों को बुलाया और उन्हें संतुष्ट करके सबको बिदा किया।

दो०—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहिं माथ।
सखा-अनुज-सिय-सहित बन, गमन कीन्ह रघुनाथ।१०५।

भावार्थ—तब रामजीने गणेश जी और शिव जी का स्मरण करके और गंगाजी को प्रणाम करके, अपने मित्र गुह, छोटे भाई लक्ष्मण और सीताजी के साथ बन को चले।

तेहि दिन भयउ बिटपतर बासू। लषन सखा सब कीन्ह सुपासू।
प्रात प्रातकृति करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई।

शब्दार्थ—सुपास=(सुपार्श्व संस्कृत) सुविधा, सुख। प्रातकृति=प्रातः काल की क्रिया, शौच, सन्ध्या आदि।

भावार्थ—उस दिन पेड़ के नीचे बस रहे, लक्ष्मणजी तथा गुह ने सब तरह की सुविधा कर दी। प्रातःकाल होने पर प्रातःकाल की क्रिया करके रामजी ने जाकर तीर्थराज प्रयाग का दर्शन किया।

नोट—यहाँ पर प्रयाग को तीर्थों का राजा कहा है इस लिये गोसाइँ जी आगे राजा के लिये १—मंत्री २—कोष ३—राज्य ४—दुर्ग ५—मित्र ६-सेना ७—छत्र चँवर, ८—सिंहासन आदि, जितनी चीजें होनी चाहिये सब तीर्थराज प्रयाग में दिखलाते हैं।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीत हितकारी।
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू।

शब्दार्थ—श्रद्धा=विश्वास। माधव=बेनी माधव। चारि पदारथ= चारो पदार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

भावार्थ—(तीर्थराज प्रयाग के) सत्य ही मंत्री हैं, श्रद्धा प्यारी स्त्री है, और बेनीमाधव के समान हितैषी मित्र हैं। चारो पदार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष खजाने में भरे हैं, और वहाँ का जो पुण्य स्थान है वही सुन्दर राज्य-प्रदेस है।

नोट—बड़े बड़े महाराजाओं के कोष में केवल रुपया, पैसा, हीरा, माणिक आदि धन की ही सामिग्रियां होती हैं लेकिन तीर्थराज प्रयाग में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारो पूर्ण रूप से वर्तमान हैं, यह प्रयाग राज की विशेषता है।

छेत्र अगम गढ़ गाढ़सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा।
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष-अनीक-दलन रनधीरा॥

शब्दार्थ—क्षेत्र=पुण्य भूमि, तीर्थ स्थान, सिद्ध स्थान्। गाढ़=दृढ़। प्रतिपच्छिन्ह=वैरियों। कलुप=पाप। अनीक=सेना।

भावार्थ—प्रयाग की पूर्ण भूमि ही दुर्गम दृढ़ और सुन्दर किला है, जिस किले को वैरी लोग स्वप्न में भी नहीं पा सके। जितने तीर्थ स्थान हैं वे ही उसकी सेना के योद्धा हैं, जो पाप रूपी सेना को युद्ध में मारने के लिये बड़े धैर्यवान हैं।

संगम सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अषयवट मुनि मन मोहा॥
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

शब्दार्थ—संगम=गंगा यमुना और सरस्वती का संगम। सुठि= अत्यन्त। अषयवट=वह वट वृक्ष (बरगद का पेड़) जो आजकल प्रयाग के किले के अन्दर है। दारिद=दरिद्र (संस्कृत)

भावार्थ—गंगा यमुना का संगम ही अत्यंत सुन्दर सिंहासन है और

अपयवट ही छत्र है, जो मुनियों का मन मोहित करता है। गंगा और यमुना जी की लहरें ही चवँर हैं जिन्हें देखकर दुख और दरिद्रता नष्ट हो जाती है।

दो०—सेवहिं सुकृती साधु सुचि, पावहिं सब मन काम।
वंदी वेद पुरान-गन, कहहिं विमल गुन ग्राम ॥ १०६ ॥

भावार्थ—पुण्यवान और पवित्र साधु गण प्रयाग राज की सेवा करते हैं जिससे सब मनोवाँछित पदार्थ (वेतन रूप में, क्योंकि सेवक को सेवा के वदले कुछ मिलना भी चाहिए) पाते हैं। वेद और पुराण आदि बन्दी लोग हैं जो तीर्थराज के गुण-गान करते हैं।

को कहि सकै प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृग-राऊ ॥
अस तीरथ पति देखि सुहावा। सुखसागर रघुवर सुख पावा॥

शब्दार्थ—मृग राऊ=(मृग=जंगल में चलने वाले, जानवर+राऊ= राजा) सिंह।

भावार्थ—प्रयाग की महिमा कौन वर्णन कर सकता है जो पाप समूह रूपी हाथियों को मारने के लिये सिंह के समान है। ऐसे सुन्दर तीर्थराज को देखकर सुख के समुद्र रामजी भी सुखी हुए।

कहि सिय लषनहिं सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई।
करि प्रणाम देखत वन बागा। कहत महातम अति अनुरागा॥
एहि विधि आइ विलोकी वेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी।

शब्दार्थ—श्रीमुख=अपने मुख से।

भावार्थ—श्रीराम जी ने अपने मुंह से सीता जी लक्ष्मण जी और मित्र गुह को तीर्थराज प्रयाग का गौरव कह कर सुनाया। प्रयागराज को प्रणाम करके वन और बाग देखते हुए तीर्थराज का माहात्म कहते हुए राम जी प्रेम से भर गये। इस प्रकार रामजी ने आकर त्रिवेणी का दर्शन किया जो स्मरण करते ही सब प्रकार के सुख देने वाली है।

मुदित नहाइ कीन्ह सिव सेवा। पूजि जथाविधि तीरथ देवा॥

तव प्रभु भरद्वाज पहिँ आये। करत दण्डवत मुनि उर लाये।
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई॥

शब्दार्थ—पहिं=(पार्श्व) पास, निकट। रासि=(राशि=संस्कृत) समूह, ढेर।

भावार्थ—रामजीने प्रसन्नता पूर्वक त्रिवेणी में स्नान करके (अपने इष्ट देव) शंकर जी की पूजा की और नियमपूर्वक तीर्थ देवताओं का पूजन किया। तद्नन्तर रामचन्द्र जी भरद्वाज मुनि के पास आये और उन्हें दण्डवत करने लगे, तव भरद्वाज मुनि ने उन्हें हृदय से लगा लिया। (उस समय) भरद्वाज मुनि के मन में जितना आनन्द हुआ वह कुछ कहते नहीं वनता, मानो उन्हें ब्रह्म समागम के आनन्द का ढेर ही मिल गया।

दो०—दीन्ह असीस मुनीस उर, अति अनन्द अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किये विधि आनि॥१०७॥

शब्दार्थ—लोचन गोचर=(लोचन=आँख+गोचर=सामने) आँखों के सामने। आनि=लाकर।

भावार्थ—मुनि जी ने राम जी को आशीर्वाद दिया, उनके हृदय में यह जान कर वहुत प्रसन्नता हुई कि मानों ब्रह्माने सुकर्मों का फल लाकर आँखों के सामने रक्खा है।

कुसल प्रश्न करि आसन दीन्हें। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हें॥
कन्द मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुँ अमी के॥

शब्दार्थ—कुसल प्रश्न करि=क्षेम कुशल पूछ कर। आसन दीन्हें=वैठाया। परिपूरन कीन्हें=संतुष्ट किया। कन्द=मीठी जड़ें, कन्दा। मूल=मूली कसेरू आदि। फल=ऋतु फल। अंकुर=अँकुआ (वीज के भीतर की गूदी जैसे वदाम) अमी=(अमिय) अमृत, सुधा।

भावार्थ—(फिर भरद्वाज जी ने) क्षेम कुशल पूछ कर उन्हें वैठाया और प्रेमपूर्वक उनकी पूजा करके (आतिथ्य सत्कार द्वारा) उन्हें सन्तुष्ट

किया। अच्छे अच्छे कन्द, मूल, फल और अंकुर लाकर दिये जो मानों अमृत के ही समान थे (मीठे थे, स्वादिष्ट थे)।

सीय-लषन-जन-सहित सुहाए। अति रुचि राम मूल फल खाए॥
भए विगत श्रम राम सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे॥

शब्दार्थ—जन = दास (निषाद)। सुखारे = सुखी। मृदु = नम्र। उचारे = (उच्चारण) कहे।

भावार्थ—सीता, लक्ष्मण और निषाद सहित रामजी ने अत्यन्त प्रेम से उन सुन्दर मूल और फलों को खाया। श्रम नष्ट हो जाने से (थकावट मिट जाने से) सब लोग सुखी हुए। तब भरद्वाज जी विनम्र बचन बोले।

आजु सुफल तप तीरथ त्यागू। आजु सुफल जपु जोग बिरागू॥
सुफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू॥

भावार्थ—हे राम जी! आज मेरे तप, तीर्थाटन, त्याग, जप, योग, वैराग्य आदि सम्पूर्ण शुभ साधन और कार्य आपके देखतेही सफल हो गये।

अलङ्कार—पदार्थावृत दीपक और तीसरी तुल्ययोगिता का सङ्कर।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद-सरसिज सहज सनेहू॥

शब्दार्थ—लाभ की सीमा और सुख की सीमा (अर्थात् जहां तक लाभ और सुख होना सम्भव है) तुमसे भिन्न नहीं है। आजआप के दर्शन से ही सम्पूर्ण आशाएँ पूर्ण हो गयीं। (अर्थात् आप का दर्शन सुख की सीमा है और सुख की सीमा ही लाभ की सीमा है इसलिए आज हमें सब कुछ मिल गया) अब कृपा करके आप यह बरदान दीजिये कि आपके चरण-कमलों में स्वभावतः स्नेह हो।

दो:—करम बचन मन छाँड़ि छल, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं, किए कोटि उपचार॥१०८॥

शब्दार्थ—उपचार = उपाय, यत्न ।

भावार्थ—(क्योंकि) जब तक मनसा, वाचा, कर्मणा छल छोड़कर मनुष्य आपका दास नहीं होता तब तक करोड़ों उपाय करने पर भी स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता ।

सुनि मुनि बचन राम सकुचाने । भाव भगति आनंद अघाने ॥
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा । कोटि भाँति कहि सबहिँ सुनावा ॥

शब्दार्थ—अघाने = सन्तुष्ट हुए ।

भावार्थ—भरद्वाज जी के वचन सुनकर रामजी सकुच गये और उनका भाव उनकी भक्ति देखकर आनन्द से सन्तुष्ट हो गये । तत्पश्चात् राम जी ने भरद्वाज जी का सुन्दर और भानेवाला यश करोड़ों प्रकार से कह कर सब को सुनाया ।

सो बड़ सो सब गुन गन-गेहू । जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू ॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं । बचन अगोचर सुख अनुभवहीं ॥

शब्दार्थ—गुन-गन-गेहू = (गुणों का घर) गुणी । आदर देहू = सम्मान करें । नवहीं = विनम्र होते हैं । वचन अगोचर = जो वचनों द्वारा नहीं कहा जा सकता, अकथ ।

भावार्थ—हे मुनीश ! आप जिसका सम्मान करें वही बड़ा और सब गुणों से युक्त है । (कवि कहता है) भरद्वाज जी और रामजी आपस में विनम्र हो रहे हैं और अकथनीय सुख का अनुभव कर रहे हैं ।

अलङ्कार—अन्योन्य ।

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी । बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी ॥
भरद्वाज आश्रम सब आए । देखन दशरथ सुअन सुहाए ॥

शब्दार्थ—सुधि = समाचार, खबर । बटु = ब्रह्मचारी, विद्यार्थी । दशरथ सुअन = दशरथ के पुत्र (राम-लक्ष्मण)

भावार्थ—प्रयाग निवासी लोगों को जब यह ख़बर मिली (कि राम-लक्ष्मण आये हैं) तो ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी सबके

सब भरद्वाज जी के आश्रम में दशरथ के सुन्दर पुत्र राम लक्ष्मण को देखने के लिए गाये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोचन लाहू॥
देहिं असीस परम सुख पाई। फिरे सराहत सुन्दरताई॥

भावार्थ—राम जी ने सब को प्रणाम किया। वे लोग नेत्रों का लाभ पाकर (अलौकिक सौंन्दर्य देख कर) प्रसन्न हो गये। अत्यन्त सुख पाकर रामजी को आशीर्वाद दिया और इन लोगों के सौन्दर्य की सराहना करते हुए लौट गये।

दो०—राम कीन्ह विस्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लषन जन, मुदित मुनिहिं सिरनाइ॥१०९॥

शब्दार्थ—विस्राम = आराम। नहाइ = (स्नान) स्नान करके। सिरनाइ = सिरनवाकर, प्रणाम करके।

भावार्थ—रामजी ने रात को आराम किया और सवेरे प्रयाग में स्नान करके सीता लक्ष्मण और निषाद सहित प्रसन्नता पूर्वक मुनि भरद्वाज जी को प्रणाम करके आगे चले।

राम सप्रेम कहेउ मुनिपाहीं। नाथ कहिअ हम केहि मगु जाहीं॥
मुनिमन विहँसि रामसन कहहीं। सुगम सकलमगु तुम्ह कहँ अहहीं

शब्दार्थ—पाहीं = से। सन = से। मगु = रास्ता।

भावार्थ—रामजी ने प्रेमपूर्वक भरद्वाज जी से कहा—"हे नाथ! बताइये हम किस रास्ते से जाँय?" मुनि जी हृदय में हँसते हुए रामजी से कहने लगे—'आप के लिए तो सभी रास्ते सुगम ही (सरल) हैं।

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए। सुनि मन मुदित पचासक आए।
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥

शब्दार्थ—लागि = लिए। सिष्य = चेले। पचासक = पचास के लगभग।

भावार्थ—भरद्वाज जी ने रामजी के साथ जाने के लिए अपने चेलों को

बुलाया। (रामजी के साथ जाना होगा) सुनकर आनन्दित हृदय से पचास शिष्य आये। सब का प्रेम रामजी पर अपार है, सभी कहते हैं कि "रास्ता हमारा देखा है" (जिससे गुरुजी हमें ही रामजी के साथ जाने को कहें)

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे।
करि प्रनाम रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥

शब्दार्थ—बटु = विद्यार्थी, ब्रह्मचारी। सुकृत = पुण्य। आयसु = आज्ञा।

भावार्थ—मुनि भरद्वाज जी ने तब चार ब्रह्मचारी साथ कर दिये। जिन्होंने अनेक जन्मों में सब पुण्य किये थे। ऋषि जी को प्रणाम कर और आज्ञा लेकर आनन्दित मन से रामचन्द्रजी चले।

ग्राम निकट जब निसरहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई॥
होहिं सनाथ जनम फल पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥

शब्दार्थ—निसरहिं = (सं० निः सरन) निकलते हैं। धाई = दौड़कर। पठाई = (सं० प्रेषण) भेजकर।

भावार्थ—राम सीता और लक्ष्मण जब गावों के पास से होकर निकलते हैं (गुजरते हैं) तो उन गावों के स्त्री-पुरुष दौड़ दौड़ कर इन लोगों का दर्शन करते हैं और अपने जन्म लेने का फल पाकर (अद्वितीय दर्शन करके) सनाथ हो जाते हैं (वे बेचारे रामजी के आगे चले जाने के कारण) अपने मन उन्ही के साथ भेजकर दुःखित होकर लौट आते हैं (अर्थात् उनके मन इन तीनों मूर्तियों के दर्शन पाकर मुग्ध हो जाते हैं)

दो०—बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल, जो सरीर सम स्याम॥ ११०॥

शब्दार्थ—बिदा किए = लौटा दिया। मन काम = मनोवांछित। उतरि = उतरकर, पार करके। नहाए = (स्नान) स्नान किया। स्याम = साँवला।

भावार्थ—उन चारों ब्रह्मचारियों को (जो भरद्वाज जी के आश्रम से साथ आये थे) विनय करके लौटा दिया। वे ब्रह्मचारी अपना मनोवाँछित

(रामजी का सत्संग) पाकर लौट गये। इन लोगों ने यमुना पार करके उस जल में स्नान किया जो रामजी के शरीर के समान साँवला था।

अलङ्कार—प्रतीप।

सुनत तीरवासी नरनारी। धाए निज निज काज बिसारी॥
लखन-राम-सिय सुन्दरताई। देखि करहिं निज भाग बड़ाई॥

शब्दार्थ—तीरवासी=तट के पास के गावों में बसने वाले। धाए=दौड़े। काज=(कार्य) काम। बिसारी=(विस्मरण) भूलकर, छोड़कर।

भावार्थ—(राम-सीता और लक्ष्मण के आने का समाचार) सुन कर यमुना के तट के निकट वर्ती गावों के स्त्री-पुरुष अपना अपना काम छोड़कर (इन राजकुमारों को देखने के लिए) दौड़े। राम, सीता और लक्ष्मण का सौन्दर्य देखकर सब लोग अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं। (ऐसा अपूर्व दर्शन बड़े भाग्य से होता है)

अति लालसा सबहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महुँ बय बिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति राम पहिचाने॥

शब्दार्थ—लालसा=अभिलाषा, इच्छा। बूझत=पूछते हुए। बय बिरिध=(वयोवृद्ध) बुड्ढे। सयाने=(सज्ञान) चतुर। जुगुति=(युक्ति) उपाय।

भावार्थ—उन सब लोगों के हृदय में इन लोगों का नाम और ग्राम जानने की बड़ी इच्छा है पर (बेचारे देहाती) पूछते सकुचते हैं। उन लोगों में जो वयोवृद्ध और चतुर थे उन्होंने किसी युक्ति से रामजी को पहचान लिया (कि ये दशरथजी के पुत्र हैं और निर्वासित होकर वनमें आये हैं).

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहिं चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥

शब्दार्थ—कथा=बयान, प्रसंग। सबिषाद=दुःख से। पछिताहीं=पश्चात्ताप करते हैं।

भावार्थ—इन बुड्ढों ने सब को पूरा बयान सुनाया और बतलाया

कि ये पिता की आज्ञा से वन के लिए चले हैं। यह बात सुनकर सर्व लोग पश्चात्ताप करने लगे और कहने लगे कि रानी और राजा ने अच्छा नहीं किया (कि ऐसे सुकुमार और सुन्दर कुमारों को निर्वासित कर दिया)

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघु वयस सुहावा॥
कवि अलखित गति वेष बिरागी। मन-क्रम-वचन राम अनुरागी॥

शब्दार्थ—तापस=तपस्वी। लघु वयस=छोटी अवस्था का। अलखित=(अलक्षित) जो जानी न जाय। गति=चाल, भाव। विरागी=वैरागी, विरक्त। क्रम=कर्मणा।

भावार्थ—इसी समय एक तपस्वी आया जो बड़ा तेजस्वी छोटी अवस्था का और सुन्दर था, उसकी गति कवि के लिए अलक्षित है (जान नहीं पड़ता कि वह कौन था ?) उसका वेष (पहनावा) विरक्तों का सा था। वह मनसा, वाचा, कर्मणा रामजी का प्रेमी था।

(नोट)—यह तपस्वी बालक गालव मुनि का पुत्र था।

दो०—सजल नयन तन पुलकि निज, इष्ट देव पहिचानि।
परेउ दण्ड जिमि धरनितल, दसा न जाइ बखानि॥१११॥

भावार्थ—यह तपस्वी अपने इष्टदेव रामजी को पहचान कर, जलभरी आखों से, और पुलकित शरीर से डण्डे की भाँति धरातल पर लेट गया (साष्टांग दण्डवत की। उसकी उस समय की) दशा कही नहीं जाती॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारस पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरें तन कह सब कोऊ॥

शब्दार्थ—उर लावा=छाती से लगा लिया। रंक=दरिद्र। पारस=एक प्रकार का पत्थर जिसमें लोहा छुआ देने से सुवर्ण हो जाता है। परमारथ=परमेश्वर।

भावार्थ—रामजी ने प्रेम पूर्वक पुलकित होकर उस तपस्वी को छाती से लगा लिया। (और इतने आनन्दित हुए कि) मानों कोई महादरिद्र

मनुष्य पारस पत्थर पा गया है। (इन लोगों का भेंटना ऐसा जान पड़ता है) मानों प्रेम (तपस्वी) और परमार्थ (रामजी) दोनों शरीर धारण करके भेंट रहे हैं। ऐसाही सब लोग कहते हैं (अर्थात् प्राचीन रामायण लिखने वाले या पुराण-प्रणेता ऋषि, मुनियों ने ऐसा ही इसका वर्णन किया है)।

बहुरि लषन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमँगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हअसीसा

शब्दार्थ—बहुरि=पुनः,तत्पश्चात। पायन्ह लागा=पैरों पड़ा, प्रणाम किया। उमँगि=आनन्दित होकर। सिसु=(शिशु) बालक। असीसा=आशीर्वाद।

भावार्थ—तत्पश्चात वह लक्ष्मण जी के पैरों पड़ा, उन्होंने प्रेम से आनन्दित होकर उस तपस्वी को उठा लिया (और भेंटा) फिर उसने सीता जी के चरणों की धूलि मस्तक पर धारण की (स्त्री समझ कर सीता जी के पैर स्पर्श नहीं किये) माता जानकी जी ने उसे बालक समझ कर आशीर्वाद दिया।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयनपुट रूप पियूखा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥

शब्दार्थ-निषाद=गुह। मिलेउ=भेंटा। पुट=कटोरा, दोना। पियूखा=अमृत। सुअसनु=अच्छा भोजन।

भावार्थ—निषाद ने उस तपस्वी को दण्डवत की। निषाद को (नीच कुल में उत्पन्न हुआ होने पर भी) उस तपस्वी ने राम जी का प्रेमी जानकर आनन्दित होकर भेंटा। पुनः वह तपस्वी बालक नेत्र रूपी दोनों द्वारा राम का अमृत रूपी सौन्दर्य पीने लगा (एक टक रूप देखने लगा) और ऐसा आनन्दित हुआ जैसे भूखा मनुष्य अच्छा भोजन पाकर सुखी होता है।

अलंकार—रूपक और उपमा।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥

राम लषन-सिय रूप निहारी। होहिं सनेह विकल नर नारी॥

भावार्थ—(मार्ग के गावों की स्त्रियाँ इन तीनों जनों को देखकर परस्पर कहती हैं) हे सखी! वे माता-पिता कैसे (कठोर) हैं जिन्होंने ऐसे (सुन्दर और सुकुमार) बालकों को वन में भेज दिया है। राम-लक्ष्मण और सीता का रूप (सौन्दर्य) देख कर सब स्त्री पुरुष प्रेम से व्याकुल हो जाते हैं।

दो०—तब रघुवीर अनेक विधि, सखहिं सिखावन दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेइ कीन्ह॥११२॥

शब्दार्थ—सखहिं = सखा को (निषाद राज को)। सिखावन = शिक्षा। रजायसु = आज्ञा। सीस धरि = मानकर। गवनु कीन्ह = चला गया।

भावार्थ—तब रामचन्द्र जी ने निषाद को बहुत प्रकार से शिक्षा दी (समझाया क्योंकि वह रामजी के साथ से लौटना नहीं चाहता था) रामजी की आज्ञा मान कर वह अपने घर चला गया।

पुनि सिय राम-लषन कर जोरी। जमुनहिं कीन्ह प्रनाम बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रवितनुजा कै करत बड़ाई॥

शब्दार्थ—कर = हाथ। रवितनुजा = सूर्य की पुत्री, यमुना जी। कै = की।

भावार्थ—फिर सीता, राम और लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर यमुना को पुनः प्रणाम किया और सीता सहित दोनों भाई यमुना जीकी बड़ाई करते हुए चले।

पथिक अनेक मिलहिं मगु जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राज लषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोचु अति हृदय हमारे॥

शब्दार्थ—पथिक = बटोही, राहगीर। राज लषन = राज्य लक्षण।

भावार्थ—अनेक बटोही रास्ते में जाते हुए मिलते थे। वे दोनों भाइयों को देखकर प्रेम पूर्वक कहते थे कि तुम लोगों के सारे शरीर में राज्यलक्षण हैं (पर तुम लोग जंगलों में घूम रहे हो यह) देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच होता है।

मारग चलहु पयादेहि पाएँ । ज्योतिषु झूठ हमारेहिं भाएँ ॥
अगमु पंथ गिरि कानन भारी । तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ॥

शब्दार्थ—मारग=(मार्ग) रास्ता । पयादेहिंपाएँ=पैदल ही । भाएँ=भाव से, विचार से, । पंथ=रास्ता । कानन=वन ।

भावार्थ—(राज्य लक्षण होने पर भी) तुम लोग रास्ते में पैदल ही चल रहे हो । हमारे विचार से (यह वैचित्र्य देखकर) ज्योतिष (सामुद्रिक शास्त्र से मतलब है) झूठा है । एक तो यह रास्ता ही अगम (न जाने योग्य) है (क्योंकि कांटे आदि अधिक हैं) दूसरे बड़े बड़े पर्वत और जंगल हैं, इतने पर भी साथ में सुकुमारी स्त्री है ।

करि केहरि बन जाइँ न जोई । हम सँग चलहिं जो आयसु होई ॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई । फिरब बहोरि तुम्हहिं सिरुनाई ॥

शब्दार्थ—करि=हाथी । केहरि=सिंह । जाइँ न जोई=देखे नहीं जाते । लगि=तक । सिरुनाई=मस्तक नवा कर, प्रणाम करके ।

भावार्थ—वन में हाथी और सिंह भरे हैं, वे देखे नहीं जाते । (अर्थात् बड़े ही भयानक हैं) इसलिये यदि आज्ञा हो तो हम संग चलें । जहाँ तक आप लोग जायंगे वहां तक पहुंचाकर और आपको प्रणाम करके फिर हम लौट आवेंगे ।

दो०—एहि विधि पूछहिं प्रेम बस, पुलक गात जल नयन ।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहिं, कहि बिनीत मृदुबयन ॥११३॥

शब्दार्थ—कृपासिंधु=दयासागर, राम जी । फेरहिं=लौटाते हैं । विनीत=विनम्र । मृदुबयन=मुलायम बोली ।

भावार्थ—इस प्रकार लोग प्रेमपूर्वक, पुलकित शरीर और सजल नेत्रों से राम जी से (साथ चलने के बारे में) पूछते हैं । कृपा सिंधु राम जी बिनम्र और मुलायम बचन कह कर उन्हें लौटा देते हैं ।

(नोट) लेख तो 'नयन' बयन' है, इन्हें 'नैन बैन की भाँति पढ़ना होगा ।

जे पुर गाँव बसहिं मगु माहीं । तिन्हहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं

केहि सुकृती केहि घरी बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए॥

शब्दार्थ—पुर=छोटे गांव, पुरवा। माहीं=(मध्य) में। नाग नगर=पाताल की भोगवती नगरी। सुर नगर=इन्द्रपुरी। सिहाहीं=सिहाते हैं। केहि सुकृती=किस पुण्यात्मा ने। बसाए=बसाया, आबाद किया।

भावार्थ—जो गाँव और पुरवे (रामजी के जाने वाले) रास्ते में बसे हैं (स्थित हैं) उन्हें नागों और देवताओं के नगर सिहाते हैं (कि हम इन स्थानों पर न बसे कि रामजी के चरण का स्पर्श होता) किस पुण्यात्मा ने किस (शुभ) घड़ी में (समय में) इन्हें आबाद कराया (कि राम जी इनके पास से गुजरते हैं) ये धन्य हैं, पुण्यमय हैं और अत्यन्त अच्छे हैं।

जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं।
पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुरपुर-बासी॥

शब्दार्थ—चलि जाहीं=होकर जाते हैं। अमरावति=देव लोक। सराहहिं=बड़ाई करते हैं। सुर पुर वासी=देव लोक निवासी, देवता।

भावार्थ—जहाँ जहाँ होकर (जिस जिस रास्ते से) राम जी के चरण जाते हैं, उनके समान देव लोक भी नहीं है। रास्ते के पास के रहनेवाले लोग जो बड़े पुण्यात्मा हैं (क्योंकि रामजी का दर्शन पाते हैं) उन्हें देव लोक निवासी देवता सराहते हैं (उनकी बड़ाई करते हैं कि ये धन्य हैं कि रामजी का दर्शन पाते हैं)

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीतालखन सहित घनस्यामहिं॥
जे सरसरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिंदेव-सर-सरितसराहहिं॥

शब्दार्थ—भरि नयन=नेत्र भरकर, भली भाँति। घनस्यामहिं रामहिं=बादल के सदृश साँवले राम जी को। अवगाहहिं=थहाते हैं, स्नान करते हैं, आचमन करते हैं।

भावार्थ—जो सीता और लक्ष्मण सहित घनश्याम राम जी को देखते हैं (उनकी बड़ाई देवता करते हैं) जिन तालाबों और नदियों में राम जी

स्नान या आचमन करते हैं उनकी बड़ाई मान सरोवर (देवसर) और गंगा (देवसरित) करती हैं।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति।

जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई।
परसि राम-पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥

शब्दार्थ—तरुतर=वृक्ष के नीचे। कलपतरु=कल्प वृक्ष। परसि=(स्पर्श) छू कर। परागा=धूलि। भूरि=बड़ा, अत्यन्त।

भावार्थ—जिस वृक्ष के नीचे राम जी जाकर बैठते हैं, उस वृक्ष की बड़ाई कल्पवृक्ष करते हैं। राम जी के चरण-कमलों की धूलि को स्पर्श कर के पृथ्वी अपना बड़ा भाग्य समझती है।

दो॰—छाँह करहिं घन बिबुध गन, बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, रामु चले मग जाहिं॥११४॥

शब्दार्थ—छाँह=छाया। घन=बादल। बिबुध गन=देवता लोग। सुमन=पुष्प, फूल। बिहँग=पक्षी। मृग=पशु।

भावार्थ—बादल छाया करते हैं और देवता गण सिहाते हुए पुष्प बरसाते हैं। इस प्रकार राम जी पर्वत, वन, पशु और पक्षी देखते हुए रास्ते में चले जा रहे हैं।

सीता-लषन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निसरहिं जाई।
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥

शब्दार्थ—निसरहिं जाई=जा निकलते हैं। बाल=बच्चे। तुरत=(त्वरित) शीघ्र। बिसारी=भूलकर, छोड़ कर।

भावार्थ—सीता और लक्ष्मण सहित जब राम जी किसी गाँव के पास से गुजरते हैं तो इनका आगमन सुनकर वहाँ के बालक, वृद्ध पुरुष और स्त्रियाँ घर के काम-काज छोड़कर (देखने के लिये) चल देते हैं। (दौड़ते हैं)

राम लषन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी ॥
सजल विलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा ॥

शब्दार्थ—रूप=सौन्दर्य। निहारी=देखकर। सुखारी=सुखी। विलोचन=दोनों नेत्र। मगन=आनन्दित। बीरा=बलवान।

भावार्थ—राम, सीता और लक्ष्मण का सौन्दर्य देखकर तथा नेत्रों का फल पाकर लोग सुखी होते हैं। दोनों नेत्र अश्रु से भर जाते हैं और शरीर पुलकित हो जाता है। सब लोग इन दोनों वीरों को देखकर मग्नहो गये।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी।
एकन्हि एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं ॥

शब्दार्थ—सुरमनि=देवताओं की मणि, कौस्तुभ मणि। सिख=शिक्षा। लाहु=लाभ, फायदा। छन=(क्षण) समय।

भावार्थ—उनकी दशा कही नहीं जा सकती (वे इतने प्रसन्न हैं कि) मानो दरिद्रों ने कौस्तुभ-मणि की ढेरी (राशि) पा ली है। एक दूसरे को बुलाकर शिक्षा देते हैं (समझाते हैं) कि इस समय नेत्रों का लाभ ले लो (अन्यथा ये आगे चले जायँगे तुम फिर पछताओगे)

रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे।
एक नयन मग छवि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बरबानी॥

शब्दार्थ—अनुरागे=मुग्ध हो गये। चितवत=देखते हुये। आनी=(आनयन) लाकर, धारण करके। सिथिल=स्तब्ध, शान्त। तन मन बानी=मनसा वाचा कर्मणा।

भावार्थ—राम जी को देखकर कुछ लोग मुग्ध हो जाते हैं और राम जी को देखते हुए उनके संग लगे चले जाते हैं। कुछ लोग नेत्रों के रास्ते से राम जी की छवि हृदय में लाकर (धारण कर के) मनसा वाचा कर्मणा शिथिल हो जाते हैं।

दो०—एक देखि वट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गँवाइअ छिनकुसम, गवनव अवहिं कि प्रात ॥११५॥

शब्दार्थ—बट छाँह = बरगद की छाया। डासि = बिछाकर। मृदुल = मुलायम। पात = पत्ता। गँवाइअ = मिटाइये, दूर कीजिये। छिनकु = क्षण-भर। गवनब = जाइयेगा।

भावार्थ—कुछ लोग बरगद की अच्छी छाया देखकर और मुलायम तृण और पत्ते बिछाकर राम जी से कहते हैं कि क्षण भर यहाँ पर बैठकर (थकावट) दूर कीजिये। फिर चाहे अभी चले जाइयेगा या प्रातःकाल चले जाइयेगा।

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी।
सुनि प्रिय वचन प्रीति अति देखी। रामु कृपालु सुसील बिसेखी॥
जानी स्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बटछाहीं।

शब्दार्थ—कलस = घड़ा। अँचइअ = (सं० आचमन) हाथ मुँह धोइये पीजिये। मृदुबानी = मीठे वचन से। स्रमित = थकी हुई। घरिक = घड़ीभर। बिलंबु कीन्ह = बिताया।

भावार्थ—कोई घड़ा भर पानी लें आते हैं और मीठी वाणी से कहते हैं कि हे नाथ! जल पीजिये। उनके प्रिय वचन सुनकर और उनकी अत्यन्त प्रीति देखकर विशेष दयावान और शीलवान् रामजी ने अपने मन में सीता जी को थकी हुई जान कर बटकी छाया में घरी भर समय बिताया।

मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा।
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्-मुखचन्द-चकोरा॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मन मोहा।

शब्दार्थ—सोभा = सौन्दर्य। लोभा = लुब्ध हो गया। चकोरा = वह पक्षी जो चन्द्रमा से अति प्रेम करता है और अग्नि खाता है। तमाल = वृक्ष विशेष। बरन = रंग। मदन = कामदेव। मोहा = मोहित हो गया, मुग्ध हो गया।

भावार्थ—स्त्री पुरुष आनन्दित होकर शोभा देख रहे हैं। इनके अनु-

पम सौन्दर्य को देखकर उनके नेत्र और मन दोनों लुब्ध हो गये। वे सब लोग एकटक (टकटकी लगाकर) रामचंद्र जी के मुखचन्द्र को चकोर की भाँति चारों ओर से देखते हुए शोभा पा रहे हैं। रामजी का तरुण तमाल वृक्ष की भाँति साँवले रंग का शरीर ऐसा शोभित है कि उसे देखतेही करोड़ों कामदेवों के मन मोहित हो जाते हैं।

दामिनि बरन लषन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के॥
मुनि पट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनुतीरा॥

शब्दार्थ—दामिनि बरन = बिजली के रंग के, गौर वर्ण। सुठि = (सुष्ठु) अति, अत्यन्त। कटिन्ह = कमरों में। तूनीरा = तरकस।

भावार्थ—लक्ष्मण बिजली के से रंग के अत्यन्त भले दीख पड़ते हैं। पैर से शिर तक वे सुन्दर हैं और हृदय को भानेवाले हैं। मुनिपट (वल्कल आदि) से कमरों में तरकस बाँधे हैं। उन लोगों के कर-कमलों में धनुष बाण शोभा दे रहे हैं।

दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद-कन-जाल ॥११६॥

शब्दार्थ—उर = वक्षस्थल। बिसाल = बड़े। सरद परब = शरदपूर्णिमा। बिधु = चन्द्रमा। बदन = मुख। स्वेद-कन जाल = पसीने की बूँदें।

भावार्थ—मस्तक पर जटों के बने हुए सुन्दर मुकुट हैं, वक्षस्थल, भुजाएँ और नेत्र विशाल हैं। शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा सदृश मुख सुन्दर हैं जिन पर पसीने की बूँदें शोभा दे रही हैं।

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥
राम लषन सिय सुन्दरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥

शब्दार्थ—जोरी = जोड़ी, युग्म मूर्ति। मति = बुद्धि। चित मन मति = चित (चिंतनात्मिका बुद्धिः), मन (संकल्प, विकल्पात्मक मनः)। बुद्धि (निश्चयात्मिका बुद्धिः)। लाई = लगाकर।

भावार्थ—यह (राम-लक्ष्मण की) मनोहारिणी जोड़ी वर्णी नहीं जा सकती। क्योंकि (तुलसी दास जी कहते हैं) इसकी शोभा बहुत है और मेरी बुद्धि थोड़ी सी है। राम-लक्ष्मण और सीता का सौन्दर्य सब लोग चित, मन और बुद्धि लगाकर (आँखों से) देख रहे हैं।

थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे॥
सीय समीप ग्राम तिय जाहीं। पूंछत अति सनेह सकुचाहीं॥

शब्दार्थ—थके = छक गये, स्तब्ध हो गये। दिया = दीपक।

भावार्थ—प्रेम के प्यासे वे देहाती स्त्री- पुरुष (इन त्रिमूर्तियों का सौन्दर्य देखकर) छक गये। मानो हिरना हिरनी दीपक देखकर छक गये हैं (मुग्ध हो गये हैं। हिरन सौन्दर्योपासक जीव हैं वह दीपक का सौन्दर्य देखकर मुग्ध होकर उसे देखा करता है) सीता जी के पास गाँव की स्त्रियाँ जाती हैं पर उनसे (नाम, स्थान, तथा इस प्रकार वन में दो पुरुषों के साथ घूमने का कारण) पूँछने में अत्यंत प्रेम के कारण सकुचती हैं।

बार बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं वचन मृदु सरल सुभाएँ॥
राजकुमारि विनय हम करहीं। तिय सुभाय किछु पूंछत डरहीं॥

शब्दार्थ—लागहिं पाएँ = पैर लगती हैं, चरण स्पर्श करती हैं। सुभएँ = स्वभावतः।

भावार्थ—वे ग्राम वधूटियाँ बारम्बार सीता जी के चरण छूती हैं। और स्वभावतः नम्र तथा सरल वचनों से कहती हैं। हे राज कुमारि ! हम सब आप से बिनती करना चाहती हैं पर स्त्री-स्वभाव होने से पूँछने से डरती हैं (कि हम से कोई ऐसी बात न बन पड़े जो न पूँछनी चाहिये)

स्वामिनि अविनय छमबि हमारी। बिलगु न मानव जानि गँवारी॥
राजकुँवर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने॥
दो०—श्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुखमा अयन।
सरद सर्वरीनाथ मुख, सरद सरोरुह नयन॥ ११७॥
कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

शब्दार्थ—अविनय = असंगत विनती। छमवि = क्षमा कीजियेगा। बिलगु न मानव = बुरा न मानना। गँवारी = गाँववाली (स्वभावतः मूर्ख)। सलोने = (सलावण्य) नमकीन, अति सुन्दर। दुति = (द्युति) प्रभा, आभा। मरकत = नीलम मणि। सोने = (सुवर्ण)। किसोर = (१६ वर्ष से २५ वर्ष के बीच की अवस्था)। सुखमा अयन = सौन्दर्य के घर, अतीव सुन्दर। सर्वरी नाथ = (शर्वरी = रात्रि + नाथ = स्वामी) चन्द्रमा। सरोरुह = कमल। मनोज = (मन + ज) कामदेव। लजावनिहारे = लज्जित करने वाले। को = कौन।

भावार्थ—इस लिए हे स्वामिनि! हमारी इस अविनय (टूटी फूटी बातें) के लिए हमें क्षमा कर दीजियेगा और गँवारिनें समझ कर बुरा न मानना। ये जो सहजही सलोने दोनों राज कुमार हैं जिन से नीलमणि और सुवर्ण ने भी द्युति पायी है, जो सौन्दर्य के घर साँवले और गोरे किशोरावस्था के हैं, जिनका मुख सरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा के समान (आनन्द देने वाला और सुन्दर) है, जिनके नेत्र सरद ऋतु के कमल के समान (प्रफुल्ल और बड़े बड़े) हैं और जो करोड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले हैं, हे सुमुखि! ये तुम्हारे कौन हैं, बताओ।

सुनि सनेह मय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन महुँ मुसुकानी॥
तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिक बयनी॥

शब्दार्थ—मंजुल बानी = सुन्दर बाणी। धरणी = पृथ्वी। बरबरनी = श्रेष्ठ वर्ण वाली। बालमृग नयनी = मृग छौना के से नेत्र वाली, सुन्दर और चञ्चल नेत्र वाली। पिकबयनी = कोयल की सी बाणी वाली, मीठी बाणी वाली।

भावार्थ—यह ग्राम वधूटियों की प्रेमपूर्ण सुन्दर बाणी सुनकर सीता जी मन में सकुच कर मुसक्याने लगीं, और उन लोगों को देख कर पृथ्वी की ओर देखती है (अर्थात् इन ग्राम नारियों से यदि यह नहीं बतातीं कि ये हमारे पति हैं तो ठीक नहीं और यदि अपनी माता पृथ्वी के सामने

कहती हूँ तो लज्जा का पालन नहीं होता) इन दोनों (ग्राम नारियों और पृथ्वी) के सङ्कोच से श्रेष्ट वर्ण वाली सीता जी (कहने में) सकुचती हैं। किन्तु मृग छौने के से नेत्र वाली और कोयल की सी वाणी वाली सीता जी (किसी प्रकार सकुच कर प्रेम पूर्वक मीठे वचनों से) बोलीं—

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लषनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पियतन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि॥
भईं मुदित सब ग्राम बधूटीं। रंकन्ह रतन रासि जनु लूटीं॥

शब्दार्थ—सुभग = सुन्दर। लघु देवर = पति का छोटा भाई। अञ्चल = आँचर। ढाँकी = छिपाकर। तन = ओर। बाँकी = टेढ़ी। खञ्जन = पक्षी विशेष। मञ्जु = सुन्दर। तिरीछे नैननि = तिरछे नेत्रों से, कटाक्ष पूर्ण नेत्रों से। तिन्हहिं = उन सबों से। सैननि = संकेत द्वारा। ग्रामबधूटी = गाँव की नारियाँ। रङ्कन्ह = दरिद्रों ने, गरीबों ने। रतनरासि = रत्नों की ढेरी।

भावार्थ—सहज ही और स्वभावतः जिनका शरीर सुन्दर और गोरा है, जिनका नाम लक्ष्मण है वे मेरे छोटे देवर हैं। फिर सीता जी ने अपना चन्द्रवत् मुख आँचर से ढककर, और प्रिय (रामजी) की ओर देख कर, भौंहें टेढ़ी करके अपने खञ्जन पक्षी सम सुन्दर नेत्रों द्वारा कटाक्ष कर के संकेत द्वारा उन सबों से (रामजी को) अपना पति बतलाया। सब ग्राम बधूटियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं मानों दरिद्रों ने रत्नों की ढेरियां लूटी हैं।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा।

दो०—अति सप्रेम सिय पाँय परि, बहु बिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहिसीस॥११८॥

शब्दार्थ—पाँय परि = पैरों पड़ कर, प्रणाम करके। असीस = आशीर्वाद। सोहागिनि = सौभाग्यवती। लगि = तक। महि = पृथ्वी। अहिसीस = शेषनाग के मस्तक पर।

भावार्थ—(अपना दोष क्षमा कराने के लिये वह प्रश्न करने वाली स्त्री)

अत्यन्त प्रेमपूर्वक सीता जी के पैरों पड़ी, और सब मिल कर बहुत प्रकार से आशीर्वाद देने लगीं कि तुम सर्वदा सौभाग्यवती रहो जब तक शेष नाग के मस्तक पर पृथ्वी है।

पारवती सम पति प्रिय होहू। देबि न हम पर छाँड़ब छोहू॥
पुनि पुनि विनय करिअ कर जोरी। जौ एहि मारग फिरिअ बहोरी॥
दरसनु देब जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पिआसी॥

शब्दार्थ=छोहू=प्रेम।

भावार्थ—पार्वती जी के समान आप अपने पति को प्यारी हों (अर्थात् शिवजी ने पार्वती जी को जिस प्रकार अर्द्धांग दे दिया है उसी प्रकार रामजी आप को इतना प्यार करें कि अपने आधे अंग में ही रखें, अति प्रेम करें) परन्तु हे देवि! हम लोगों की ममता मत छोड़ देना (हमारा ध्यान अवश्य रखना) हम आपसे बारम्बार हाथ जोड़ कर विनती करती हैं कि यदि आप लौटते समय इसी रास्ते आवें तो हमें अपनी दासी समझ कर दर्शन दीजियेगा। सीता जी ने (उनके ये बिनम्र वचन सुन कर) जान लिया कि ये सब केवल प्रेम की प्यासी हैं (केवल प्रेम चाहती हैं।)

मधुर वचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषीं॥
तबहिं लषन रघुबर रुख जानी। पूंछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी॥
सुनत नारि नर भए दुखारी। पुलकित गात, विलोचन बारी॥

शब्दार्थ—परितोषीं=सन्तुष्ट किया। कुमुदिनी=कुई। कौमुदी=ज्योत्स्ना, चाँदनी। पोषीं=सन्तुष्ट हुईं। रुख=मरज़ी, इच्छा। गात=शरीर। विलोचन=दोनों नेत्र। बारी=जल, आँसू।

भावार्थ—सीताजी ने मीठे मीठे बचन कह कह कर उनको सन्तुष्ट किया (तसल्ली दी। वे ऐसी प्रसन्न हुईं) मानों कुमुदिनियां चाँदनी पाकर सन्तुष्ट हुई हैं। (चाँदनी के निकलते ही कुईं फूल जाती है) उसी समय लक्ष्मण जी ने राम जी की मरज़ी जानकर मीठी वाणी से लोगों से रास्ता पूछा। (वे लोग अब चले जायँगे इसी अभिप्राय से रास्ता पूछते हैं, इस लिए

लक्ष्मण जी की बात) सुनतेही सब स्त्री-पुरुष दुःखी हो गये। शरीर पुलकित हो गये और नेत्रों में आँसू डबडबा आये।

मिटा मोद, मन भए मलीने। विधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने॥
समुझि करमगति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥

शब्दार्थ—मोद = आनन्द। मलीने = (म्लान) दुखी। निधि = नौ निधियाँ (महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकर कच्छपौ। मुकुन्द कुन्द नीलाश्च खर्वश्च निधयो नव।) दीन्हि = दी हुई। सोधि = खोजकर, विचारकर।

भावार्थ—आनन्द नष्ट हो गया और उनके मन दुखी हो गये। मानों विधाता दी हुई निधि छीने ले रहा है। उन्हों ने कर्म की चाल समझ कर धैर्य धारण किया और सुगम रास्ता विचार कर बता दिया।

दो०—लषन जानकी सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिए लाइ मन साथ॥ ११९॥

शब्दार्थ—गवनु कीन्ह = प्रस्थान किया, चल दिये।

भावार्थ—लक्ष्मण और सीता जी सहित तब रामजी ने प्रस्थान किया। सब लोगों को प्रिय बचन कह कर लौटा दिया, पर उनके मन अपने साथ लेते गये। (अर्थात् उन ग्रामवासियों का मन राम जी की दर्शनाभिलाषा में मग्न था)

फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैअहिं दोषु देहिं मन माहीं॥
सहित विषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं॥

शब्दार्थ—दैअहिं = (दैव) अदृष्ट, भाग्य को।

भावार्थ—लौटते हुए वे ग्राम वासी स्त्री-पुरुष अत्यन्त पश्चात्ताप करते हैं और मन में भाग्य को दोष देते हैं (हमारा अभाग्य है कि ये हमारे ग्रामों में नहीं बसते, बन को चले जा रहे हैं) दुख के साथ वे आपस में कहते हैं कि विधाता के कार्य सब उल्टे (जान पड़ते) हैं (हमारे अनुकूल नहीं हैं या इन सुकुमार राजकुमारों को भी बनवास दिया गया जो उचित न था)

निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु सागरु खारा। तेइ पठए बन राज कुमारा॥

शब्दार्थ—निपट-निरंकुस=अति स्वतन्त्र, स्वेच्छाचारी। निठुर=(निष्ठुर) निर्दय। सरुज=रोगग्रस्त। रूख=(वृक्ष) पेड़। खारा=नमकीन।

भावार्थ—विधाता बड़ा स्वेच्छाचारी, निर्दय और अशंक है, जिसने चन्द्रमा ऐसे सुन्दर पदार्थ को रोग ग्रस्त (चन्द्रमा में क्षयरोग माना जाता है) और कलङ्क मय बनाया, कल्प वृक्ष (ऐसे मनोवाँछित दायक पदार्थ) को जड़ वृक्ष बनाया और समुद्र (ऐसी जल राशि) को खारा किया, उसी विधाता ने इन राज कुमारों को भी बन में भेजा है।

जौ पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मगु बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥

शब्दार्थ—बादि=व्यर्थ। पदत्राना=पनहीं, जूता। बाहन=सवारी।

भावार्थ—यदि विधाता ने इन्हें बनवास दिया है तो उसने भोग-बिलास व्यर्थ ही बनाया (क्योंकि जब वह भोग बिलास इन सुन्दर और सुकुमार राजकुमारों के लिए नहीं तो उसका अधिकारी कौन है?) ये बिना जूतों के मार्ग में घूम रहे हैं तो विधाता ने भाँति भाँति की सवारियाँ व्यर्थ बनायीं। (सब प्रकार की सवारियाँ ऐसे ही सुकुमारों के योग्य हैं)

ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुतर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥

शब्दार्थ—महि=पृथ्वी, ज़मीन। परहिं=सोते हैं। डासि=बिछाकर। सुभग सेज=सुन्दर शैय्या। कत=क्यों। सृजत=(सृजन) बनाता है। तरुतर=वृक्ष के नीचे। धवल धाम=उज्ज्वल मकान, अच्छे अच्छे घर।

भावार्थ—यदि ये पृथ्वी पर कुश और पत्ते बिछाकर सोते हैं तो विधाता सुन्दर शैय्या (की सामग्री) क्यों बनाता है? यदि विधाता ने इन्हें वृक्षों के नीचे रहने का स्थान दिया है तो उसने अच्छे अच्छे घरों (की

सामग्री) बना कर क्यों मिहनत की ? (अर्थात् ऐसे सुकुमार और सुन्दर राज कुमार भी यदि इन वस्तुओं का उपयोग नहीं करते, तो यह ब्रह्मा का व्यर्थ परिश्रम है)

(नोट) सेज और धाम ब्रह्मा नहीं बनाता, पर उनकी सामग्री अवश्य ब्रह्मा रचित है इसी से सेज और धाम को ब्रह्माकृत मानना अनुचित नहीं।

दो०—जौ ए मुनिपट-धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
विविधि भाँति भूषन बसन, बादि किए करतार॥ १२०॥

शब्दार्थ—मुनिपट-धर=वल्कल वस्त्रधारी। जटिल=जटाधारी। सुठि= अत्यन्त। भूषन=गहना। बसन=वस्त्र। बादि=व्यर्थ। करतार=विधाता।

भावार्थ—यदि ये अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार राजकुमार वल्कल वस्त्रधारी और जटाधारी हैं तो भाँति भाँति के गहने और वस्त्र विधाता ने व्यर्थ ही बनाए। (उन गहनों और वस्त्रों का उचित उपयोग न हो सका)

(नोट)—गहनों और वस्त्रों की सामग्री भी ब्रह्मा कृत है।

जौ ए कन्द मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भये विधि न बनाए॥

शब्दार्थ—सुधादि असन=अमृत के स्वाद वाले भोजन।

यदि ये कन्द, मूल और फल खाते हैं तो संसार में अमृत से स्वादिष्ट भोजन व्यर्थ ही हैं। कुछ लोग कहते हैं कि ये स्वभावतः सुन्दर हैं, ये स्वयं प्रकट हुए हैं, ब्रह्मा ने इन्हें नहीं बनाया।

जहँ लगि बेद कही विधि करनी। स्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुवन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥

शब्दार्थ—लगि=तक। विधि करनी=ब्रह्मा का कर्तृत्व। गोचर= इन्द्रिय गम्य, जहाँ तक इन्द्रियाँ जा सकें। खोजि=ढूँढ़कर, तलाश करके। दसचारी=चौदहो।

भावार्थ—वेदों ने जहाँ तक ब्रह्मा का कर्तृत्व बतलाया है और जितनी बातें कानों, नेत्रों मन एवं अन्य इन्द्रिय गम्य वर्णन की हैं। उनमें ऐसी

का वर्णन नहीं है, चौदहो लोकों में ढूँढ़कर देखो, क्या कहीं ऐसा पुरुष और ऐसी स्त्री हैं (अर्थात् नहीं है)

इन्हहिं देखि विधि मन अनुरागा। पटतर जोग बनावइ लागा॥
कीन्ह बहुत स्रम अइकि न आए। एहि इरिषा बन आनि दुराए॥

शब्दार्थ—अनुरागा=प्रेम से मुग्ध होगया। पटतर=बराबरी की चीज़। जोग=(योग्य) लायक। अइकि न आए=ढाँचा न बन सका, खाका न खिंच सका। अइकना=अन्दाज़ लगाना। आनि दुराए=लाकर छिपा दिया।

भावार्थ—मेरे जान विधाता इन्हें देख कर मन में अनुरक्त हो गया, और इनकी बराबरी के लायक दूसरी मूर्तियाँ बनाने लगा। परन्तु बहुत मिहनत करने पर भी इस ढाँचे के और न बने। इसी डाह से उसने इन्हें बन में लाकर छिपा दिया है।

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहिं परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्य पुञ्ज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥

शब्दार्थ—आपुहिं=अपने को। लेखे=समझते हैं।

भावार्थ—कुछ लोग कहते हैं कि हम बहुत (तर्क वितर्क) नहीं जानते बस अपने को अत्यन्त धन्य (भाग्यवान्) मानते हैं। फिर उन्हें भी हम पुण्यवान समझते हैं जो लोग इन्हें देख चुके हैं, देखते हैं, और देखेंगे।

दो०—एहि विधि कहि कहि वचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर॥१२१॥

शब्दार्थ—नीर=जल, आँसू।

भावार्थ—इस प्रकार प्रिय वचन कह कह कर वे लोग नेत्रों में आँसू भर लेते हैं (उन की आँखें डबडबा आती हैं) और सोचते हैं कि इस जंगली अगम रास्ते में अत्यन्त सुकुमार शरीर वाले (राज कुमार) कैसे चलेंगे?

नारि सनेह विकल सब होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबर हृदय कहइँ बर बानी॥

शब्दार्थ—सनेह विकल=प्रेमाकुल । चकई=पक्षी विशेष, (यह रात्रि में पति वियुक्त रहती है) साँझ=(संध्या) शाम । सोहीं=शोभित हैं । गहवरि=गद्गद ।

भावार्थ—सब स्त्रियाँ प्रेम के कारण ऐसी व्याकुल हो जाती हैं मानो चकई संध्या समय प्रेम से व्याकुल होकर शोभित हैं । चरण कमल को कोमल और रास्ते को कठिन जानकर वे सुन्दर वाणी में गद्गद हृदय से कहती हैं ।

परसत मृदुल चरन अरुनारे । सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ॥
जौ जगदीस इन्हहिं बन दीन्हा । कस न सुमनमय मारग कीन्हा ॥

शब्दार्थ—परसत=स्पर्श करके, छूके । मृदुल=कोमल । अरुनारे=लाल । जगदीस=ब्रह्मा । सुमनमय=पुष्पों का ।

भावार्थ—इनके कोमल और लाल चरणों को स्पर्श करके पृथ्वी भी सकुचती होगी जैसे हमारे हृदय सकुचते हैं । यदि ब्रह्मा ने इन्हें बन ही दिया था तो उसने मार्ग को पुष्पमय क्यों नहीं बनाया ?

जौ माँगे पाइअ विधि पाहीं । रखिअहिं सखि इन्ह आँखिन्ह माहीं ।
जे नर नारि न अवसर आए । तिन्ह सिय रामु न देखन पाए ॥

शब्दार्थ—पाहीं=से ।

भावार्थ—यदि विधाता से माँगे मिले तो हे सखी ! इन्हें आखों में रखना चाहिए । जो स्त्री पुरुष समय पर नहीं आये वे सीता और राम जी को न देख सके ।

सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई । अब लगि गए कहाँ लगि भाई ॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई । प्रमुदित फिरहिं जनम फलु पाई ॥

शब्दार्थ—बूझहिं=पूछते हैं । अब लगि=इस समय तक ।

भावार्थ—वे लोग (इन त्रिमूर्तियों का) सुन्दर सौन्दर्य सुनकर व्याकुल हो कर पूछते हैं "हे भाई ! इस समय तक वे कितनी दूर तक निकल गये होंगे !" (यह जानकर कि अभी यहाँ तक पहुंचे होंगे) समर्थ जन दौड़ते

हुए जाकर देखते हैं और अपने जन्म का फल (परब्रह्म परात्पर परमात्मा का दर्शन) पाकर आनन्दित होकर लौटते हैं।

दो०—अबला बालक वृद्धजन कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं ॥ १२२ ॥

शब्दार्थ—अबला=स्त्री। कर मीजहिं=हाथ मलते हैं।

भावार्थ—स्त्री, बच्चे और बुड्ढे लोग हाथ मलते और पछताते हैं (क्योंकि उनमें इतना सामर्थ्य नहीं कि अब राम जी जहाँ तक चले गये हैं वहाँ तक जाकर उनके दर्शन करें) इस प्रकार जहाँ जहाँ राम जाते हैं, लोग प्रेम के वश हो जाते हैं।

गाँउँ गाँउँ अस होइ अनन्दू। देखि भानु कुल कैरव चन्दू।
जे किछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहि दोषु लगावहिं ॥

शब्दार्थ—कैरव =कुमुद, कुई।

भावार्थ—प्रत्येक गाँव में सूर्यवंश रूपी कुमुद के लिए चन्द्रवत् (अर्थात् आनन्द देनेवाले) रामचन्द्र जी को देखकर ऐसाही आनन्द होता है। जो लोग (राम जी के वनवास का) समाचार (कारण, कथा) सुन पाते हैं वे रानी कैकेयी और राजा दशरथ को दोष लगाते हैं (कि इन लोगों ने यह कार्य उचित नहीं किया)

अलंकार—परिकरांकुर।

कहहिं एक अतिभल नरनाहू। दीन्ह हमहिं जेइ लोचन लाहू।
कहहिं परसपर लोग लोगाई। बातें सरल सनेह सुहाई ॥

भावार्थ—कुछ लोग कहते हैं कि राजा बड़े अच्छे हैं जिन्होंने हमें नेत्रों का लाभ दिया (राम जी को बनवास दिया जिससे अपूर्व सौन्दर्य देखने को मिला) स्त्री पुरुष आपस में प्रेम की सरल और सुन्दर बातें कहते हैं।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए। धन्य सो नगर जहाँ ते आए।
धन्य सो देसु सैलु बनु गाऊँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ ॥

शब्दार्थ—सैलु=(शैल) पर्वत। ठाऊँ=(स्थान) जगह।

भावार्थ—वे पिता-माता धन्य हैं जिनके ये पुत्र हैं। वह नगर भी धन्य है जहाँ से ये आये हैं। वह देश, वह पर्वत, वह वन, वह गाँव और वह स्थान धन्य है जहाँ जहाँ होकर ये लोग जाते हैं।

सुख पायेउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही॥
राम-लषन-पथि कथा सोहाई। रही सकल मग-कानन छाई॥

शब्दार्थ—बिरंचि=ब्रह्मा। रचि=बनाकर, सृष्टि करके। पथि-कथा=मार्ग-कथा, रास्ते की कथा। कानन=वन।

भावार्थ—ब्रह्मा ने उस मनुष्य को बना कर अवश्य सुख पाया होगा जिसके ये सब प्रकार से प्यारे हैं। राम और लक्ष्मण जी के मार्ग की कथा सम्पूर्ण रास्ते और वन में छा गयी है (अर्थात् जहाँ देखो वहीं राम जी के वनवास की ही बात चीत हो रही है)

दो०—एहि बिधि रघुकुल कमल रबि, मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय सौमित्रि समेत॥ १२३॥

शब्दार्थ—देत=देते हुए। बिपिन=वन। सौमित्रि=(सुमित्रा का अपत्य वाचक) लक्ष्मण जी।

भावार्थ—इस प्रकार रघुवंश-कमल-सूर्य (रघुवंश को आनन्द देनेवाले) राम चन्द्रजी रास्ते के लोगों को सुख देते हुए और वन देखते हुए सीता तथा लक्ष्मण सहित चले जा रहे हैं।

आगे राम लषन बने पाछे। तापस बेष बिराजत काछे॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे॥

शब्दार्थ—आगे=(अग्र)। बने पाछे=पीछे शोभित हैं। तापस बेष काछे=तपस्वियों का बेष धारण किए हुए। उभय=दोनों। ब्रह्म=परमात्मा।

भावार्थ—आगे राम जी हैं और पीछे लक्ष्मण जी शोभित हैं। तपस्वियों का बेष धारण किये हुए सुन्दर जान पड़ते हैं। दोनों भाइयों के

बीच सीता जी किस प्रकार शोभा पा रही हैं जिस प्रकार परमात्मा और जीव के बीच में माया शोभा पाती है।

अलङ्कार—उदाहरण।

(नोट) अरण्यकाण्ड (तृतीय सोपान) में भी इस चौपाई से ठीक मिलती हुई एक चौपाई है, यथा—"आगे राम लषन पुनि पाछे। मुनिवर बेष बने अति काछे। उभय बीच सिय सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥"

बहुरि कहउँ छवि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥

शब्दार्थ=बहुरि=पुनः। मधु=वसन्त। मदन=कामदेव। रति=कामदेव की स्त्री। उपमा=समता। जोही=देखकर, विचार कर। बुध=चन्द्रमा का पुत्र। बिधु=चन्द्रमा। रोहिनि=चन्द्रमा की स्त्री।

भावार्थ—मेरे मन में जैसी छवि बसती है वह मैं पुनः कहता हूँ। ऐसा जान पड़ता है मानों कामदेव (राम) और वसन्त (लक्ष्मण) के बीच में रति (सीता) शोभा पा रही है। पुनः मैं हृदय में विचार कर इस स्वरूप की उपमा कहता हूं, मानों चन्द्रमा और बुद्ध के बीच में रोहिणी शोभा पा रही है।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा।

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय राम पद अंक बराएँ। लषन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥

शब्दार्थ—रेख=चिन्ह। सभीता=डरती हुई। अंक=चिन्ह। बराएँ=बरका कर, बचाकर। दाहिन लाएँ=दक्षिण करके।

भावार्थ—राम जी के चरणों के चिन्हों के बीच में (अर्थात् राम जी के दो चरण के चिन्हों के बीच में जिससे पति का जहाँ चरण पड़ा है वहाँ हमारा पैर न पड़े) सीता जी डरती हुई पैर रखती हैं और रास्ता चलती हैं। सीता जी और राम जी दोनो जनों के चरण चिन्हों को बरका कर लक्ष्मण

जी (राम और सीता के चलनेवाले) रास्ते को अपनी दाहिनी ओर कर के चलते हैं ।

राम लषन सिय प्रीति सुहाई । बचन अगोचर, किमि कहि जाई ।
खग मृग मगन देखि छवि होहीं । लिए चोरि चित राम बटोही ॥

शब्दार्थ—मृग = पशु । बटोही = पथिक ।

भावार्थ—राम, लक्ष्मण और सीता जी की सुन्दर प्रीति वचन और इन्द्रियों से परे है तो वह कैसे कही जा सकती है ? पशु-पक्षी भी इन की छवि देखकर मग्न हो जाते हैं । राम-बटोही ने उन सबों के चित्त चुरा लिये हैं ।

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ ॥
भव मगु अगमु अनन्दु तेइ, बिनु स्रम रहे सिराइ ॥१२४॥

शब्दार्थ—भव = संसार । सिराइ = खतम कर दिया, पूरा कर दिया ।

भावार्थ—जिन जिन लोगों ने सीता सहित राम-लक्ष्मण दोनों भाई प्रिय-पथिकों को देखा उन्हों ने संसार रूपी अगम मार्ग को आनंद पूर्वक विना श्रम (थकावट) के पूरा कर दिया (मुक्त हो गये, अब उन्हें संसार में न आना पड़ेगा)

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ । बसहिं लषन-सिय-राम बटाऊ ॥
राम-धाम-पथ पाइहि सोई । जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई ॥

शब्दार्थ—अजहुं = अद्यापि) अब भी । काऊ = कभी । बटाऊ = पथिक, बटोही । राम-धाम = वैकुण्ठ, साकेत लोक । पथ = मार्ग ।

भावार्थ—अब भी जिस के हृदय में स्वप्न में भी कभी राम, लक्ष्मण और सीता बटोही रूप से बसते हैं वह वैकुण्ठ का मार्ग पावेगा जो मार्ग कभी कोई मुनि पाता है ।

तब रघुबीर स्रमित सिय जानी । देखि निकट बटु सीतल पानी ॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई । प्रात नहाइ चले रघुराई ॥

भावार्थ—तब राम जी ने सीता जी को थकी हुई जाना तो पास ही

बरगद का वृक्ष और शीतल जल देखकर वहाँ रात को वास किया और कन्द, मूल, फल खाए। प्रातः काल स्नान करके रामजी पुनः चले।

देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए॥
रामु दीख मुनि बासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जल पावन॥

शब्दार्थ—मुनिवासु = मुनि जी का स्थान। पावन = पवित्र।

भावार्थ—रामजी सुंदर बन, तालाब और पर्वत देखते हुए वाल्मीकि जी के आश्रम में आये! राम जी ने देखा कि मुनि जी का स्थान बड़ा रमणीक है। सुंदर पर्वत तथा जंगल है और जल भी पवित्र है।

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस-भूले॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥

शब्दार्थ—सरोज = कमल। बिटप = वृक्ष। गुंजत = गुंजार करते हैं। मंजु = सुन्दर। मधुप = भौंरे। रस-भूले = रस में मस्त। बिपुल = अत्यन्त। कोलाहल = शोर।

भावार्थ—तालाबों में कमल और बन में वृक्ष फूले हैं। सुन्दर भौंरे रस में मस्त होकर गुंजार कर रहे हैं। पशु पक्षी अत्यन्त शोर कर रहे हैं और बैर को त्याग कर प्रसन्न मन से चरते हैं।

दो०—सुचि सुन्दर आस्रमु निरखि, हरषे राजिव नैन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि, आगे आयेउ लैन॥ १२५॥

शब्दार्थ—सुचि = पवित्र। निरखि = देखकर। राजिव नैन = कमलवत नेत्र वाले (रामजी)। लैन आयेउ = लिवाने आये।

भावार्थ—कमलवत् नेत्र वाले रामजी पवित्र और सुन्दर बाल्मीकि जी का आश्रम देखकर प्रसन्न हुए। रामजी का आगमन सुनकर मुनिजी आगे लिवाने आये।

मुनि कहँ राम दण्डवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रवर दीन्हा॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आस्रमहिं आने॥

शब्दार्थ—दण्डवत=प्रणाम। जुड़ाने=शीतल हुए। सनमानु=(सन्मान) आदर। आने=(सं० आनयन) ले आये।

भावार्थ—रामजी ने मुनिजी को प्रणाम किया। ब्राह्मणश्रेष्ट वाल्मीकि जी ने उन्हें आशीर्वाद दिया और राम जी की छवि (सुन्दरता) देखकर उनके नेत्र शीतल होगये। रामजी का आदर करके उन्हें आश्रम में लिवा लाये।

मुनिवर अतिथि प्रान प्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मँगाए॥
सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आसनु दिए सुहाए॥

भावार्थ—मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि जी ने प्राणप्रिय पाहुने पाये। मीठे मीठे, कंद, मूल, फल मँगाये। सीता, राम और लक्ष्मण ने फल खाये तब मुनिजी ने सुन्दर आसन दिये।

वालमीकि मन आनँद भारी। मंगल मूरति नयन निहारी॥
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन स्रवन सुखदाई॥

भावार्थ—वाल्मीकि जी के मन में इन मंगल मूर्तियों को नेत्र से देख-कर बड़ा आनंद हुआ। तब रामजी कर कमल जोड़ कर कानों को सुख देने वाले वचन बोले—

तुम त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनरानी॥

शब्दार्थ—त्रिकाल दरसी=तीनों काल को जानने वाले (भूत, वर्त-मान और भविष्य का ज्ञाता) बदर=बेर।

भावार्थ—हे मुनिनाथ! आप त्रिकालज्ञ हैं और संसार बेर के समान आप के हाथ में है (अर्थात् बेर को जैसे उलट पलट कर देख सकते हैं उसी प्रकार आप संसार की संपूर्ण बातें जानते हैं) ऐसा कहकर रामजी ने सब कथा वर्णन की जिस जिस प्रकार से रानी ने बनवास दिया था।

दो०—तात बचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुन्य प्रभाउ॥ १२६॥

भावार्थ—एक तो पिता का वचन, दूसरे माता का भला, तीसरे भरत ऐसा (सुयोग्य) भाई राजा हो, चौथे हे प्रभो ! आपका दर्शन (मुझे इस वनवास के कारण मिला) यह सब मेरे पुण्यों का प्रभाव है दूसरा कुछ नहीं। (अर्थात् कैकेयी का इस में दोष नहीं)

अलंकार—समुच्चय (दूसरा)।

देखि पाँयँ मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदवेगु न पावइ कोई॥
मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भू-सुर-रोषू॥
अस जिअ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय-सौमित्रि-सहित जहँ जाऊँ।

शब्दार्थ—पायँ = (पाद) चरण। सुकृत = पुण्य। राउर = आप की। आयसु = आज्ञा। उदवेगु = कष्ट, दुःख। नरेस = क्षत्रिय। पावक = अग्नि। दहहीं = जलते हैं। भूसुर = ब्राह्मण।

भावार्थ—हे मुनिराज ! आप के चरण देखकर आज हमारे पुण्य सुफल हो गये। अब आपकी जहाँ आज्ञा हो और जहाँ किसी मुनि को कष्ट न हो—क्योंकि मुनि और तपस्वी जिनसे दुःख पाते हैं वे क्षत्रिय बिना अग्नि के ही जल जाते हैं। ब्राह्मणों का संतोष मंगल मूल और उनका क्रोध करोड़ कुलों को जलानेवाला है हृदय में विचार कर—ऐसा स्थान बतलाइये जहाँ मैं सीता लक्ष्मण सहित जाऊँ (और निवास करूँ)

तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बास करउँ कछु काल कृपाला॥
सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥
कस न कहहु अस रघुकुल केतू। तुम्ह पालक संतत स्रुति सेतू॥

शब्दार्थ—रुचिर = सुन्दर। परन तृन साला = पत्ते और घास का घर। साधु साधु = शाबाश शाबाश। रघुकुल केतू = रघुवंश में श्रेष्ठ। पालक = रक्षक। संतत = सदा। सेतू = मर्यादा।

भावार्थ—"वहाँ पर सुन्दर पत्तों और घास का घर बनाकर हे कृपालु !

कुछ समय तक वास करूं" रामजी की यह स्वभावतः सरल और सुन्दर वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि बाल्मीकि जी शाबाश ! शाबाश !! बोले और कहा 'हे रघुवंश में श्रेष्ठ रामजी ! आप ऐसा क्यों न कहें ? (यही कहना आप को शोभता है) क्योंकि आप सदा वेदकी मर्यादा के रक्षक हैं ।

छन्द—स्रुति-सेतु-पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधानकी ॥
जो सहस सीसु अहीसु महि-धरु लषनु सचराचर धनी ।
सुरकाज धरि नर राजतनु चलेदलन खल निसिचर अनी ॥

शब्दार्थ—स्रुति-सेतु-पालक = वेदों की मर्यादा के रक्षक । जगदीस = परब्रह्म परमात्मा । सृजति = बनाती है । हरति = नाश करती है । रुख = इशारा, संकेत । कृपा निधान = कृपा के खजाना, अत्यंतकृपालु । सहससीसु अहीसु = शेषनाग । महि-धरु = पृथ्वी को धारण करनेवाले । सचराचर = स्थावर जंगम । धनी = मालिक, स्वामी । सुर काज = देवताओं के कारण । नरराज = क्षत्रिय । दलन = नाशकरने । खल = दुष्ट । निसिचर = रात्रि में चलनेवाले, निशाचर, राक्षस । अनी = सेना, समूह ।

भावार्थ—हे राम ! आप वेदों की मर्यादा के रक्षक हैं और जानकी परब्रह्म परमात्मा की माया हैं, जो कृपानिधान (आप) का इशारा पाकर संसार का प्रणयन, पालन और नाश करती है । जो शेषनाग पृथ्वी को धारण करनेवाले चराचर के स्वामी हैं वे लक्ष्मण जी हैं और देवताओं के कार्य के कारण क्षत्रिय का शरीर धारण करके निशाचरों का नाश करने के लिए आप लोग वन को चले हैं ।

सो०—राम स्वरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अविगत अकथ अपार, नेतिनेति नित निगम कह ॥१२७॥

शब्दार्थ—बुद्धिपर = बुद्धिके परे । अविगत = सर्वव्यापी । निगम = वेद ।

भावार्थ—हे राम ! आपका स्वरूप वचन और इन्द्रियों से अगम्य है,

बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथनीय, और अपार है, वेद भी उसके लिए सदा "नेति नेति" कहता है।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे।
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। अउरु तुम्हहि को जाननिहारा॥

शब्दार्थ—पेखन = (सं० प्रेक्षण) कठपुतली का खेल। हरि = विष्णु।

भावार्थ—हे भगवान्! संसार कठपुतली का खेल है और आप देखने वाले हैं। ब्रह्मा विष्णु और महेश संसार को नचाने वाले सूत्रधार हैं (इतने पर) ये त्रिदेव भी आपका मर्म (भेद) नहीं जानते (अर्थात् हम किसके लिये यह खेल कर रहे हैं यह बात इन्हें भी नहीं ज्ञात है) तो फिर आपको और कौन जानने वाला है।

अलंकार—परंपरितरूपक।

सोइ जानइ जेहि देउ जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई।
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहिं रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥

शब्दार्थ—भगत-उर-चन्दन = भक्तों के हृदय को चन्दन के समान शीतल करनेवाले।

भावार्थ—आपको वही जान सकता है जिसको आप स्वयं जनादें और आपको जानते ही जीव आपका रूप हो जाता है। हे भक्त-उर- चन्दन रघु-नंदन! आपकी ही कृपा से भक्त आपको जानते हैं।

चिदानंद मय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।
नर तन धरेउ संत सुरकाजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥

शब्दार्थ—चिदानंद = (चित् + आनन्द), चित्-चैतन्य रहनेवाला; आनन्द-आनन्दित रहनेवाला। विगत विकार = परिवर्तन रहित, अविनाशी, सत्। अधिकारी = जो पानेके योग्य है, हक़दार। प्राकृत = सांसारिक। राजा = क्षत्रिय।

भावार्थ—हे भगवन्! आपका शरीर सत् चित् और आनन्दमय है,

अधिकारी लोग ही इसे जान सकते हैं। आपने संतों और देवताओं के कार्य के लिए मनुष्य शरीर धारण किया है और एक सांसारिक क्षत्रिय की भाँति बात कहते और कार्य करते हैं।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिय नाचा॥

शब्दार्थ—जड़ = मूर्ख। बुध = पंडित। काछिअ = स्वांग बनाया जाय। नाचा = (नृत्य) नाचना।

भावार्थ—हे रामजी! आपके चरित्र देख और सुनकर मूर्ख लोग इसमें मोह जाते हैं (आप को भूल जाते हैं) और पंडित लोग सुखी होते हैं। आप जो कहते हैं उसे सम्पूर्ण सत्य भी करते हैं, सो ठीकही है क्योंकि जैसा स्वांग बनाया जाय वैसाही नाचना भी चाहिए।

दो०—पूछेउ मोंहि कि रहउँ कहँ, मैं पूंछत सकुचाउँ।
जहँ न होउ तहँ देउ कहि, तुम्हहिं देखावउँ ठाउँ॥१२८॥

भावार्थ—"हे भगवन्! आपने मुझ से पूछा कि कहाँ रहूं"। पर मैं पूछते सकुचाता हूं—आप जहाँ (जिस स्थान में) न हों वह स्थान बता दीजिये तो मैं भी आपको रहने का स्थान बता दूंगा (आप तो सर्वत्र व्याप्त हैं, कोई स्थान तुमसे खाली नहीं, फिर मैं नया स्थान कहाँ बताऊँ)

सुनि मुनि वचन प्रेमरस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी॥

शब्दार्थ—साने = संयुक्त। अमिअ = (अमृत)। बोरी = डुबोई हुई।

भावार्थ—मुनि के प्रेम रससे सने हुए ये वचन सुनकर रामजी मनमें सकुचकर मुसक्याने लगे। बाल्मीक जी हँस कर पुनः अमृत में डुबोई हुई मधुर वाणी बोले।

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसउ सिय लषन समेता॥
जिन्हके स्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे॥

शब्दार्थ—निकेता=घर। सुभग=सुन्दर। सरि=नदी। निरंतर=सदा। रूरे=सुन्दर।

भावार्थ—हे राम जी! सुनिये अब मैं घर बतलाता हूं जहाँ सीता और लक्ष्मण सहित आप बसें। जिनके कान समुद्र के समान हैं और आपकी सुन्दरकथा अनेक नदियाँ हैं, वे समुद्र सदा भरे जाते हैं पर पूरे नहीं भर जाते (अर्थात् आपकी कथा सुनते सुनते जो नहीं अघाते) उनके हृदय में आपके लिए सुन्दर घर है।

(नोट)—यहां श्री वाल्मीकि जी ने रामके निवास योग्य १४ स्थान बतलाये हैं। उनमें से यह पहला स्थान है।

लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप विन्दु लहि होहिं सुखारी॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसउ बंधुसिय सह रघुनायक॥

शब्दार्थ—लोचन=नेत्र। चातक=पपीहा। जलधर=बादल। निदरहिं=निरादर करते हैं। सरित=नदी। सर=तालाब। सदन=घर।

भावार्थ—जिन्होंने अपने नेत्रों को पपीहा बना रखा है और आपके दर्शन रूपी बादलकी ही अभिलाषा करते हैं जो नदी समुद्र और बड़े बड़े तालाबों का भी निरादर करते हैं, केवल आपके रूपके विन्दु मात्र जल से सुखी रहते हैं, उनके हृदय आपके लिए सुख देनेवाले घर हैं, वहाँ आप लक्ष्मण और सीता सहित बसें। (पपीहा स्वाती नक्षत्र के बादल का ही जल पीता है, नदी, तालाब या समुद्रादि का जल नहीं पीता ऐसी जनश्रुति है। इसी प्रकार जो दास रामजी का दर्शन ही अभिप्रेत समझते हैं और सबको त्याग देते हैं हे रामजी उन्हीं के हृदय में लक्ष्मण और सीता सहित आप बसें)

(नोट)—यह दूसरा स्थान हुआ।

दो०—जस तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुनगन चुनइ, राम बसउ हिय तासु॥१२९॥

शब्दार्थ—जस = (यश) कीर्ति। मानस = मानसरोवर। जीहा (जिह्वा) जीभ। मुकुताहल = (मुक्ताफल) मोती।

भावार्थ—आपका यश स्वच्छ मानसरोवर है और जिसकी जिह्वा हंसिनी है (जो हंसिनी) आपके गुण रूपी मोतियों को चुनती (खाती) है हे रामजी ! आप उसके हृदय में वसें। (अर्थात् जिसप्रकार हंसिनी मानसरोवर में मोतियों को चुन चुनकर खाती है उसीप्रकार जो मनुष्य निरन्तर आपका यश कहा करता है और आपके गुणों को ग्रहण करता है, हे रामजी ! आप उसीके हृदय में वसें)।

अलंकार—सम अभेद रूपक।

(नोट)—यह तीसरा स्थान हुआ।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि विनय विसेखी ॥
कर नित करहिं राम पद-पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥
चरन रामतीरथ चलि जाहीं। राम बसउ तिन्हके मन माहीं ॥

शब्दार्थ—सुवासा = सुगन्ध। नासा = (नासिका) नाक। निवेदित भोजन = भोग लगाया भोजन। पट = वस्त्र। भूषन = गहना। कर = हाथ।

भावार्थ—जिसकी नाक नित्य आदर पूर्वक आपके पवित्र और सुन्दर प्रसाद की सुगन्ध लेती है (अर्थात् जो आपको धूप, दीप, गन्ध, माल्य आदि चढ़ाकर उसे अपने उपयोग में लाते हैं) आप का भोग लगाकर तव उसे भोजन करते हैं, आपके प्रसाद (चढ़ाये हुए) वस्त्र और गहनों को धारण करते (पहनते) हैं, जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मण को देखकर प्रेम पूर्वक और विशेष बिनती करते हुए नत हो जाते हैं (प्रणाम करते हैं), जिनके हाथ नित्य आप के चरणों की पूजा करते हैं, जिनके हृदयमें राम का ही भरोसा है, दूसरे का नहीं, जिनके चरण रामतीर्थों के लिये चलते हैं (पैदल रामतीर्थों को जाते हैं) हे राम ! आप ऐसे लोगों के मन में वसें।

(नोट)—यह चौथा स्थान है।

मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। विप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरुहिं जिअ जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी॥

दो०—सबु करि माँगहि एकु फलु राम, चरन रति होउ।
तिन्ह के मन मंदिर बसउ, सिय रघुनंदनु दोउ॥१३०॥

शब्दार्थ—मंत्रराजु = रामतारक मंत्र (रां रामाय नमः)। तरपन = (तर्पण) देव, ऋषि व पितरों को जल देना। होम = हवन। जेवाँइ = भोजन कराके। सकल भाय = सब भावों से, सब प्रकार। रति = प्रेम। मन मंदिर = मन रूपी घर। रघुनंदनु दोउ = दोनों भाई, (राम लक्ष्मण)।

भावार्थ—जो मनुष्य आपका राम तारक मंत्र नित्य जपते हैं, परिवार सहित आपकी पूजा करते हैं, विविध प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं, ब्राह्मणों को भोजन कराके बहुत सा दान देते हैं, आप से अधिक अपने गुरु को हृदय में समझ कर सम्मान पूर्वक सब प्रकार से उनकी सेवा करते हैं। यह सब कार्य करके यही एक फल चाहते हैं कि रामजी के चरणों में प्रेम हो, ऐसे मनुष्यों के मन रूपी घर में सीता सहित आप दोनो भाई बसें।

अलंकार—रूपक (मनमंदिर में)

(नोट)—यह पंचम स्थान है।

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसउ रघुराया॥

शब्दार्थ—कोह = (क्रोध)। मद = घमंड। छोभ = (क्षोभ) अशांति। राग = प्रेम। द्रोहा = द्वेष। दंभ = अभिमान।

भावार्थ—जिन मनुष्यों में काम, क्रोध, मद, मान, मोह, लोभ, अशांति, प्रेम, द्वेष, कपट अभिमान और माया नहीं है। हे रामजी! आप उनके हृदय में बसें।

(नोट)—यह छठां स्थान हुआ।

सब के प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥

कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुमहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसउ तिन्ह के मन माहीं ॥

शब्दार्थ—सरिस=(सदृश) समान। गारी=गाली, निन्दा। गति=आश्रय, शरणपाने का स्थान।

भावार्थ—जो मनुष्य सब को प्यारे हैं, सब के हितेच्छु हैं, जिन के लिए सुख और दुख प्रशंसा तथा निन्दा समान है, जो सत्य और प्रिय बातें विचार कर कहते हैं (सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्) जागते और सोते आप की शरण में ही रहते हैं, आपके सिवाय जिन्हें दूसरा आश्रय नहीं है, हे राम जी ! ऐसे मनुष्य के मन में आप बसें।

(नोट)—यह सातवां स्थान है।

जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव विष तें विष भारी ॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर विपति विसेखी ॥
जिनहिं राम तुम्ह प्रान पिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥

शब्दार्थ—जननी=माता। पर नारी=दूसरे की स्त्री। पराव=दूसरे का। विष तें विष भारी=भयंकर बिष। संपति=ऐश्वर्य। विपति=दुःख, आपत्ति। सदन=घर।

भावार्थ—जो दूसरे मनुष्य की स्त्री को माता के समान समझते हैं, दूसरे के धन को भयंकर विष समझते हैं, जो दूसरे का ऐश्वर्य देख प्रसन्न होते हैं, जो दूसरे की विपत्ति देखकर अत्यंत दुखी होते हैं और हे राम ! जिन्हें आप प्राण के समान प्यारे हैं, उनके हृदय में आपके लिए शुभ घर है।

(नोट)—यह आठवां स्थान है।

दो०—स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह के बसउ, सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३१॥

शब्दार्थ—तात=प्रिय। मनमंदिर—मन रूपी घर। भ्रात=भाई।

भावार्थ—हे प्रिय रामचन्द्रजी ! जिन मनुष्यों के लिए स्वामी, मित्र, पिता, माता और गुरु अर्थात् सब कुछ आप ही हैं उन के मन रूपी घर में सीता जी सहित आप दोनों भाई बसें।

अलङ्कार—तीसरी तुल्य योगिता और रूपक।

(नोट)—यह नवां स्थान हुआ।

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।
नीति निपुन जिन्ह कइ जगलीका। घरतुम्हार तिन्हकर मननीका॥

शब्दार्थ–अवगुन=बुराई। गहहीं=(ग्रहण) धारण करते हैं। धेनु=गौ। संकट=दुःख। लीका=साख, धाक। नीका=अच्छा।

भावार्थ—जो मनुष्य सबकी बुराई छोड़कर उनके गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गौ के लिए दुःख सहते हैं, जो नीति में निपुण हैं और संसार में जिनकी साख चलती है, उनके मन में आपके लिए अच्छा घर है।

(नोट)—यह दसवां स्थान है।

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेइ उर बसउ सहित बैदेही॥

शब्दार्थ—दोसा=(दोष) बुराई। भरोसा=अवलम्ब, आश्रय। उर=हृदय। वैदेही=(विदेह का अपत्यवाची) सीता जी।

भावार्थ—जो मनुष्य सुकर्मों को आपका किया कार्य समझता है और कुकर्म को अपनी करतूत समझता है, जिसे सब प्रकार से आपका ही आसरा है और जिसे रामभक्त प्यारे लगते हैं उसके हृदय में आप सीता सहित बसें।

(नोट)—यह ग्यारहवां स्थान है।

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई।
सब तजि तुम्हहिं रहइ लउ लाई। तेहि के हृदय रहउ रघुराई॥

शब्दार्थ—पाँति=(पंक्ति से) जाति पाँति=जाति की पंक्ति में बैठना। परिवार=कुटुंब। सदन= घर। लउ लाई=प्रेमकरके। रहउ=रहें, बसें।

भावार्थ—जो मनुष्य जाति-पाँति, धन, धर्म, बड़प्पन, प्यारा कुटुंब, सुखदेनेवाला घर सब त्याग कर केवल तुम्हीं से प्रेम करके रहे, उसके हृदय में हे रघुराज! आप बसें।

नोट)—यह बारहवां स्थान हुआ।

सरगु नरकु अपवरगु समाना। जहँ तहँ देख धरे धनुबाना।
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥

शब्दार्थ—सरगु=(स्वर्ग) वैकुंठ। अपवरगु=मोक्ष, मुक्ति। राउर=आपका। चेरा=दास। डेरा=दो चार दिन के लिए विश्रामस्थल।

भावार्थ—जिस मनुष्य के लिये स्वर्ग-नरक और मुक्ति समान है, जो यहाँ वहाँ आपही को धनुष और बाण लिये हुए देखता है. जो मनसा, वाचा, कर्मणा आपका दास है, हे राम जी! आप उसके हृदय में डेरा करें।

(नोट)—यह तेरहवां स्थान है।

दो०—जाहि न चाहिअ कबहुँ किछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसउ निरंतर तासु उर सो राउर निज गेहु॥ १३२॥

शब्दार्थ—निरंतर=सदा। गेहु=(गृह) घर।

भावार्थ—जिसे कभी कुछ नहीं चाहिए, केवल आपसे ही स्वाभाविक प्रेम है, हे राम! आप उसके हृदय में सदा बसें, वह आपका खास घर है।

(नोट)—यह चौदहवां स्थान है।

एहि विधि मुनिवर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए।
कह मुनि सुनहु भानुकुल नायक। आश्रम कहउँ समय सुखदायक॥

शब्दार्थ—भवन=घर। भानुकुल नायक=सूर्यवंश में श्रेष्ठ। आश्रमु=स्थान।

भावार्थ—इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने रामजी को रहने के लिए घर दिखाये (बताये) मुनिजी के ये प्रेमपूर्ण वचन रामजी के मन को भाये (अच्छे लगे)। मुनिजी ने कहा—"हे सूर्यवंश में श्रेष्ठ रामचन्द्र जी! सुनिये अब मैं इस समय में सुख देनेवाला स्थान कहता हूं (बताता हूं).

चित्रकूट गिरि करउ निवासू । तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ।
सैल सुहावन, कानन चारू । करि केहरि मृग विहँग विहारू ॥

शब्दार्थ—चित्रकूट=(चित्र=विचित्र+कूट=शिखर) विचित्र शिखर वाला, रंग विरंगे शिखर जिसमें हों। सुपासू=आराम। सैल=पर्वत। कानन चारू=सुन्दर वन। करि=हाथी। केहरि=सिंह। मृग=हिरन या पशु। विहँग=पक्षी।

भावार्थ—आप चित्रकूट नामक पर्वत पर निवास करें वहाँ आपको सब प्रकार से आराम मिलेगा। सुहावना पर्वत है, सुन्दर वन है, और हाथी, सिंह, हिरन तथा पक्षी वहाँ विहार करते हैं।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी।
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक-पोतक डाकिनि॥

शब्दार्थ—पुनीत=पवित्र। अत्रिप्रिया=अनुसूया जी। सुरसरि=गंगा। पातक=पाप। पोतक=(पुत्रक) बच्चा।

भावार्थ—वहाँ एक पवित्र नदी है पुराणों में जिसका वर्णन है, अनुसूया जी जिसे अपने तप के बल से ले आयी हैं। वह गंगा जी की एकधारा है उसका नाम मंदाकिनी है, वह सब पाप रूपी बच्चों के लिये डाकिनी है (सब पापों का नाश करने वाली है)

अलंकार—परंपरितरूपक।

अत्रि आदि मुनिवर तहँ बसहीं। करहिं जोग जपतप तन कसहीं।
चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देउ गौरव गिरिवर हू॥

शब्दार्थ—तन कसहीं=इन्द्रियों को वशमें करते हैं। गिरिवर हू=पर्वत-श्रेष्ठ चित्रकूट को भी।

भावार्थ—वहाँ पर अत्रि आदि मुनिवर बसते हैं, वे योग, जप, तप करते हैं और अपने शरीर को कसते हैं। हे राम जी! आप चलिये सबका परिश्रम सफल कीजिये। (आप के लिए ही वे तपस्या कर रहे हैं, उन्हें

अपना दर्शन दीजिये) और पर्वतों में श्रेष्ठ चित्रकूट (कामता नाथ) पर्वत को भी गौरव दीजिये ।

दो०—चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ ।
आइ नहाए सरित वर, सिय समेत दोउ भाइ ॥ १३२ ॥

शब्दार्थ—अमित=अत्यंत, अत्यधिक ।

भावार्थ—महामुनि वाल्मीकि जी ने चित्रकूट की अत्यधिक महिमा गाकर कही (विस्तार से बतायी) तब सीता सहित दोनों भाइयों ने आकर सरितवर मंदाकिनी में स्नान किया ।

रघुवर कहेउ लषन भल घाटू । करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू ।
लषनु दीख पय उतर करारा । चहुँदिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥

शब्दार्थ—ठाहर=स्थान । ठाटू=प्रबन्ध । पय=पयस्विनी नदी । उतर=उत्तर । करारा=तट । फिरेउ=घूमा हुआ है । नारा=नाला ।

भावार्थ—राम जी ने कहा—हे लक्ष्मण ! यह घाट अच्छा है । अब कहीं ठहरने का प्रबन्ध करो । लक्ष्मण जी पयस्विनी नदी के उत्तर तट को देखा कि नाला धनुष के समान चारों दिशाओं में घूमा हुआ है ।

(नोट)—यह नाला अब भी है । इसे 'धनुआनारा' कहते हैं ।

नदी पनच सर सम दम दाना । सकल कलुष कलि साउज नाना ।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी । चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥

शब्दार्थ—पनच=(प्रत्यंचा) धनुष की डोरी । सर=वाण । सम=शम । कलुष=पाप । कलि=कलियुग । साउज=जीव, पशु, शिकार । चित्रकूट=चित्रकूटग्राम (चित्रकूट में तीन स्थानों का नाम चित्रकूट है, चित्रकूट गाँव, चित्रकूट पर्वत, चित्रकूटधाम) अचल=निश्चल, स्थिर । अहेरी=(आखेटी) शिकारी । चुकइ न=चूकता नहीं, खाली नहीं जाता । घात=लक्ष्य । मुठभेरी=समीप से ही ।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी ने कहा इस धनुषाकार घूमे हुए नाला रूपी धनुष की) प्रत्यंचा नदी (मंदाकिनी) है । शम, दम और दान ही वाण

हैं। कलियुग में होनेवाले सब पाप ही बहुत से पशु हैं। मानों चित्रकूट ग्राम ही निश्चल शिकारी है जिसका लक्ष्य चूकता नहीं और समीप से ही शिकार को मार लेता है (अर्थात् शिकारी जैसे धनुष और बाण के सहारे जीवों का शिकार करता है उसी प्रकार यह चित्रकूट ग्राम मंदाकिनी नदी और शम, दम दानादि की सहायता से कलियुग के सब पापों का निश्चय ही नाश करनेवाला है)

अलंकार—रूपक और उत्प्रेक्षा।

अस कहि लषन ठाउँ देखरावा। थल बिलोकि रघुबर सुख पावा।
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर-थपति प्रधाना॥

शब्दार्थ—ठाँउँ=(सं० स्थान) जगह। थल=स्थल, स्थान। रमेउ= लगा, लग्न हुआ, रमगया। सुर थपति=(सुर=देवता+थपति=[स्थपति] राजगीर) विश्वकर्मा आदि।

भावार्थ—ऐसा कहकर लक्ष्मण जी ने स्थान दिखलाया। स्थान देख कर राम जी को सुख प्राप्त हुआ (प्रसन्न हुए) देवताओं ने जब जाना कि राम जी का मन इस स्थान में रम गया है तब वे विश्वकर्मा को प्रधान बनाकर चित्रकूट को चले (ताकि वहां राम जी के रहने के लिये निवास स्थान बनाकर तैयार कर दें)

कोल किरात बेष सब आए। रचे परन-तृन सदन सुहाए॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥

शब्दार्थ—परन=(सं० पर्ण) पत्ता। तृन=तिन, घास। सदन= घर, मकान, कुटी। बिसाला=बड़ी।

भावार्थ—वे सब देवता और विश्वकर्मा कोल, किरातों का वेष धारण करके आये और चित्रकूट में पत्तों और घास के सुन्दर घर (इन लोगों के रहने के लिए) बनाये। ये घास-पत्तों के बने दोनो सुन्दर घर वर्णे नहीं जाते। एक सुन्दर और छोटा है दूसरा बड़ा है।

दो०—लषन जानकी सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत ।
सोह मदन मुनि-वेष जनु रति रितुराज समेत ॥ १३४ ॥

शब्दार्थ—राजत=शोभा पाते हैं। रुचिर=सुन्दर। निकेत=घर। मदन=कामदेव। रति=कामदेव की स्त्री। रितुराज=वसंत।

भावार्थ—लक्ष्मण और सीता जी सहित रामचन्द्रजी (पत्ते और घास के) सुन्दर घर में शोभा पा रहे हैं मानों कामदेव (राम) मुनि वेष धारण किये रति (सीता जी) और वसंत (लक्ष्मण जी) सहित शोभित हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

अमर नाग किन्नर दिसि पाला। चित्रकूट आए तेहि काला ॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥

शब्दार्थ—अमर=देवता। नाग=पाताल वासी। किन्नर=हिमालय वासी। दिसिपाला=दिग्पाल।

भावार्थ—देवता, नाग, किन्नर और दिग्पाल सब उस समय चित्रकूट में आये। राम जी ने सबको प्रणाम किया। देवता अपने नेत्रों का लाभ पाकर (राम, लक्ष्मण और सीता जी के अपूर्व सौन्दर्य का दर्शन करके) प्रसन्न हो गये।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भये हम आजू ॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए। हरषित निज निज सदन सिधाए॥

शब्दार्थ—सुमन=पुष्प, फूल। सिधाए=गये।

भावार्थ—फूल बरसा कर देवता लोग कहने लगे—हे नाथ! आज हम सनाथ हो गये (अब तक हम अनाथ थे, हमारा रक्षक कोई नहीं था) विनय करके अपना असह्य दुःख सुनाया और प्रसन्न होकर अपने अपने घर गये।

चित्रकूट रघुनन्दनु छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आये ॥
आवत देखि मुदित मुनि बृन्दा। कीन्ह दण्डवत रघुकुल चन्दा ॥

शब्दार्थ—रघुनंदनु=रघुवंश को आनन्द देने वाले, रामचन्द्र जी। छाए=निवास किया, बसे (छप्पर छाकर रहना या घर बनाकर बसना)। मुनि वृन्दा=मुनि मंडली। दंडवत=प्रणाम। रघुकुल चन्दा=रघुवंश में चन्द्रवत् (आनन्दप्रद)

भावार्थ—चित्रकूट पर्वत (कामतानाथ) पर रामचन्द्र जी बसे यह समाचार सुन सुनकर मुनि लोग देखने के लिए आए। मुनि मंडली को प्रसन्न होकर आते देख करके रघुवंश को आनंदप्रद रामजी ने प्रणाम किया।

मुनि रघुवरहिँ लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥
सिय-सौमित्रि-रामछबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं॥

शब्दार्थ—लाइ लेहीं=लगा लेते हैं। होन हित=होने के लिए। आसिष=आशीर्वाद। सौमित्रि=लक्ष्मण जो (सुमित्रा का अपत्यवाची)। लेखहिं=समझते हैं।

भावार्थ—मुनिगण रामचन्द्र जी को हृदय से लगा लेते हैं और निज-वाणी सुफल होने के लिए आशीर्वाद देते हैं (अर्थात इनको यदि हम आशीर्वाद देंगे तो वह अवश्य सुफल होगा क्योंकि ये साक्षात् ईश्वर हैं) सीता-लक्ष्मण और राम जी की छवि (सुन्दरता) देखते हैं और अपने सम्पूर्ण साधनों को सफल समझते हैं।

दो०—जथा योग सनमानि प्रभु, बिदा किए मुनि वृन्द।
करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमनि सुछंद॥१३५॥

शब्दार्थ—जाग=यज्ञ। सुछंद=स्वतंत्र, निर्भय।

भावार्थ—यथोचित सम्मान करके राम जी ने मुनियों को विदा किया, वे लोग अपने अपने आश्रमों में निर्भय होकर योग, जप, यज्ञ और तप करने लगे।

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नवनिधि घर आई॥
कन्द मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥

शब्दार्थ—सुधि=समाचार, खबर । कोल किरात=जंगली लोग । नव निधि=नवो निधियां । दोना=(द्रोण) पत्तों के बनाये हुए पात्र ।

भावार्थ—(राम जी के आने का) समाचार कोल और किरातों ने भी पाया । वे इतने प्रसन्न हुए मानो नवो निधियाँ हीं उनके घर में आ गई हों । वे कंद, मूल और फल दोनों में भर भर कर ले चले मानों दरिद्र सोना लूटने के लिये जा रहे हैं ।

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता । अपर तिन्हहिं पूछहिं मगु जाता ।
कहत सुनत रघुवीर निकाई । आइ सवनि देखे रघुराई ॥

शब्दार्थ—अपर=दूसरे । मगु जाता=राह चलते । निकाई=सुन्दरता और शील ।

भावार्थ—उन कोल किरातों में जिन्होंने दोनों भाइयों को देखा था दूसरे राह चलते जन उनसे पूछते हैं (कि कहो भाई किस स्थान पर हैं कहाँ से आये हैं, कैसे हैं आदि) इस प्रकार रामचन्द्र जी की निकाई कहते सुनते उन सबों ने भी आकर रामजी को देखा ।

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे । प्रभुहिं विलोकहिं अति अनुरागे ॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े । पुलक सरीर नयन जल बाढ़े ॥

शब्दार्थ—जोहारु=प्रणाम । भेंट=उपहार । अनुरागे=प्रेमासक्त हुए ।

भावार्थ—वे लोग आगे उपहार रखकर प्रणाम करते हैं और अत्यन्त प्रेमासक्त होकर रामजी को देखते हैं, वे सब जहाँ के तहाँ ऐसे निश्चल खड़े हैं मानों चित्र में लिखे हुए हैं । उनके शरीर में रोमांच हो रहा है और नेत्रों में जल छलछला आया है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

राम सनेह-मगन सब जाने । कहि प्रिय वचन सकल सनमाने ॥
प्रभुहिं जोहारि बहोरि बहोरी । वचन विनीत कहहिं कर जोरी ॥

भावार्थ—रामजी ने उन सबों को स्नेह में मग्न समझा, तब प्रिय वचन

कह कर सबका सम्मान किया, वे रामजी को बारम्बार प्रणाम कर हाथ जोड़कर विनम्र बचन कहते हैं:—

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु राउर कोसल राय॥ १३६॥

शब्दार्थ—पाय=पद, चरण। राउर=आपके। कोसलराय=कोशल देश के क्षत्रिय।

भावार्थ—हे नाथ! अब हम सब आप के चरण देख कर सनाथ हो गये। हे कोशल राय! हमारे भाग्य से ही आप का आगमन हुआ है।

अलंकार—हेतु।

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउँ तुम्ह धारा॥
धन्य विहँग मृग काननचारी। सफल जनम भए तुम्हहिं निहारी॥

शब्दार्थ—पंथ=रास्ता, मार्ग। पहारा=पर्वत। पाउ=पद, चरण। धारा=रक्खा। बिहँग=पक्षी। मृग=(मृ=पृथ्वी+ग=गमन करने वाला) पशु। कानन चारी=जंगली

भावार्थ—हे नाथ! वह भूमि, वह वन, वह मार्ग, वह पर्वत जहाँ जहाँ आपने अपने चरण रक्खे हैं (जिन जिन से होकर आप आये हैं) वे सब धन्य हैं। जंगली पशु-पक्षी भी धन्य हैं जिनके जन्म आपके दर्शन से सफल हो गये।

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा।
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥

शब्दार्थ—दरसु=दर्सन, सौन्दर्य।

भावार्थ—हम सब लोग भी सकुटुंब धन्य हैं, क्योंकि नेत्र भर कर आपका सौन्दर्य देखा और आपने यहाँ अच्छा स्थान समझ कर निवास किया, यहाँ आप सब ऋतुओं में सुखी रहेंगे।

हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई।

बन बेहर गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥

शब्दार्थ—करि = हाथी। केहरि = सिंह। अहि = सर्प। बाघ = (व्याघ्र) शेर। बराई = (वारण) बचाकर। बेहर = बावली। कंदर = गुफा। खोह = दो पर्वत शिखरोंके बीच का स्थान।

भावार्थ—हम लोग सब प्रकार से आपकी सेवा करेंगे। हाथी, सिंह, सर्प, शेर से बचावेंगे। बन, बावली, पर्वत, गुफा और खोह सब हमारा पग पग देखा हुआ है।

जहँ तहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब। सर निरभर भल ठाउँ देखाउब।
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥

शब्दार्थ—अहेर = (आखेट) शिकार। निरभर = झरना।

भावार्थ—हम लोग जहाँ तहाँ आपको शिकार खेलावेंगे। तालाब, झरने आदि अच्छे अच्छे स्थान दिखावेंगे। हम सकुटुंब आपके सेवक हैं। हे नाथ! आप आज्ञा देने में मत सकुचियेगा।

दो०—बेद बचन मुनिमन अगम ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बयन॥१३७॥

भावार्थ—जो रामचन्द्र जी वेदवाणी और मुनि लोगों के मन को भी अगम्य हैं (वेद और मुनि-गण भी जिनका पार नहीं पाते) वे कृपालु प्रभु किरातों के बचन इस प्रकार सुनते हैं जैसे पिता बालक के वचनसुनता है।

रामहिं केवल प्रेमु पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा।
राम सकल बनचर परितोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥

शब्दार्थ—बनचर = बनवासी। परि तोषे = संतुष्ट किया। परिपोषे = परिपुष्ट किया।

भावार्थ—रामजी को केवल प्रेम प्यारा है, इस बात को जो जानने वाला है वह जानले। श्री रामजी ने सम्पूर्ण वनवासियों को संतुष्ट किया और नम्र वचन कहकर अपने प्रेम से उनका परितोष किया।

विदा किए सिरु नाइ सिधाए। प्रभुगुन कहत सुनत घर आए।
एहि विधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं विपिन सुरमुनि सुखदाई॥

भावार्थ—रामजी ने उन्हें विदा किया वे प्रणाम करके चले और रामजी के गुण कहते सुनते अपने घर आए। इस प्रकार सीता सहित देवता और मुनियों को सुख देनेवाले दोनों भाई वन में निवास करते हैं।

जब तें आइ रहे रघुनायकु। तबतें भो बनु मंगल दायकु।
फूलहिं फलहिं विटप विधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥

शब्दार्थ—विटप = वृक्ष। बलित = युक्त। बेलि = लता। बिताना = चँदवा

भावार्थ—जब से रामचन्द्र जी आकर रहने लगे तब से वह वन मंगल दायक हो गया। श्रेष्ठ लताओं के सुन्दर चँदवों से युक्त वृक्ष नाना प्रकार से फूलने और फलने लगे।

सुरतरु सरिस सुभाय सुहाए। मनहुँ बिबुधबन परिहरि आए।
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिविधि बयारि बहइ सुखदेनी॥

शब्दार्थ—सुरतरु सरिस = कल्पवृक्ष के समान। बिबुध = देवता। मधुकर श्रेनी = भ्रमर मंडली। त्रिविधि बयारि = तीन प्रकार की वायु (शीतल, मंद, सुगंध)।

भावार्थ—वे वृक्ष स्वभावतः कल्पवृक्ष के समान सुशोभित हैं। मानों नंदन वन को छोड़कर स्वर्ग से मर्त्य लोक में चले आये हैं। भ्रमरमंडली अतिसुन्दर गुंजार कर रही है और शीतल, मंद, सुगंध वायु बहती है।

दो०—नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग स्रवन सुखद चितचोर॥१३८॥

शब्दार्थ—नीलकंठ = मोर। कलकंठ = कोयल। सुक = तोता। चातक = पपीहा। चक्क = चक्रवाक, चकई-चकवा।

भावार्थ—मोर, कोयल, तोता, पपीहा,, चक्रवाक और चकोरादि नाना प्रकार के पक्षी बोलते हैं जो शब्द कानों को सुख देनेवाला और चित्त को चुरा लेनेवाला है।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा।
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिसेखी॥

शब्दार्थ—कपि=बन्दर। कोल=सुअर। कुरंगा=हिरन। बिगत-बैर=वैररहित।

भावार्थ—हाथी, सिंह, बन्दर, सुअर और हिरन वैररहित होकर (शत्रुता त्यागकर) सब एक साथ घूमते हैं। शिकार के लिए घूमते हुए रामजी का सौन्दर्य देखकर विशेषकर मृगमंडली प्रसन्न हो जाती है।

बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकरकन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥

शब्दार्थ—सिहाहीं=ईर्ष्या करते हैं। सुरसरि=गंगा। सरसइ=सरस्वती। दिनकरकन्या=यमुना। मेकलसुता=नर्मदा। बखाना करहिं=प्रशंसा करते हैं।

भावार्थ—संसार में देवताओं के जितने वन हैं, सब रामवन (जिस वन में रामजी निवास करते हैं, चित्रकूट वन) को देखकर ईर्ष्या करते हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी जो धन्य हैं, तथा सब बड़े सरोवर समुन्द्र नदी और नद सब मंदाकिनी की प्रशंसा करते हैं।

उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकलसुर बासू॥
सैल हिमाचलु आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥
बिंधि मुदित मन सुख न समाई। बिनु स्रम बिपुल बड़ाई पाई॥

शब्दार्थ—उदय अस्त गिरि=उदयाचल और अस्ताचल। मंदर=मंदराचल। बिंधि=विन्ध्याचल। बिपुल=बहुत।

भावार्थ—उदयाचल, अस्ताचल, कैलाश, मंदराचल, सब देवताओं का निवासस्थल सुमेरु गिरि और हिमाचल आदि जितने पर्वत हैं सब चित्रकूट पर्वत (कामदानाथ गिरि) का यश गाते हैं (अर्थात् यह बड़ा पवित्र है कि रामजी ने इसके ऊपर निवास किया) विन्ध्याचल प्रसन्न है, उसके मनमें

सुख समाता नहीं, क्योंकि उसको विना परिश्रम के ही बहुत बड़ाई मिल गयी है। (कामता पर्वत विंध्यागिरि का ही एक अंश है)

दो०—चित्रकूट के विहँग मृग बेलि विटप तृन जाति।
पुन्यपुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति ॥ १३९ ॥

शब्दार्थ—मृग=पशु। बेलि=लता। विटप=वृक्ष। तृनजाति= तृणकी जाति के, उद्भिज।

भावार्थ—चित्रकूट के पशु पक्षी, लता वृक्ष और सब उद्भिज धन्य और पुण्यात्मा हैं, ऐसा रातों दिन देवता कहते हैं।

नयनवंत रघुवरहिं बिलोकी। पाइ जनम-फल होहिं बिसोकी ॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परमपद के अधिकारी ॥

शब्दार्थ—नयनवंत=नेत्रवाले, चेतन जीव, चर। बिसोकी=शोक रहित। परमपद=मोक्ष।

भावार्थ—चेतन जीव रामचन्द्र जी को देखकर और अपने जन्म का फल पाकर शोकरहित हो जाते हैं। अचर जीव रामजी के चरणों की धूलि को स्पर्श करके सुखी हैं, और वे भी मोक्ष के अधिकारी हो गये हैं।

सो बनु सैल सुभाय सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन ॥
महिमा कहिअ कवनि विधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥

भावार्थ—वह बन और पर्वत स्वभावतः सुहावने, मंगलमय और अत्यंताधिक पवित्र हैं। उनकी महिमा भी किस प्रकार से कही जा सकती है, जहाँ स्वयं सुख सागर राम जी ने ही निवास किया।

पय-पयोधि तजि अवध विहाई। जहँ सिय-राम-लषनु रहे आई।
कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन। जौ सत सहस होहिं सहसानन॥

शब्दार्थ—पय पयोधि=क्षीर सागर। विहाई=त्याग कर। सुषमा= शोभा। सत सहस=सौ हज़ार, एक लाख। सहसानन=शेषनाग।

भावार्थ—जिस बन में सीता, राम और लक्ष्मण, क्षीर सागर को छोड़

कर और अयोध्या को त्याग करके आ निवास किया उस बन की शोभा यदि एक लाख शेषनाग हों (और कहें) तो भी नहीं कह सकते। (वह बन अतीव शोभित है)

सो मैं बरनि कहउँ बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं॥
सेवहिं लषनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥

शब्दार्थ—डाबर कमठ=गड़ई का कछुआ।

भावार्थ—उस शोभा का वर्णन मैं (तुलसीदास) किस प्रकार से कर सकता हूँ, क्या गड़ई का कछुवा मंदराचल उठा सकता है? लक्ष्मण जी सीता और राम जी की मनसा-वाचा-कर्मणा सेवा करते हैं। उनका शिष्टाचार और प्रेम कहा नहीं जा सकता।

दो०—छिनु छिनु लखि सिय राम पद, जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहु लषनु चित, बंधु मातु पितु गेहु॥१४०॥

शब्दार्थ—छिनु छिनु=क्षण, क्षण, प्रति क्षण। आपु पर=अपने ऊपर। चित न करत=चित्त नहीं करते, स्मरण नहीं करते। बंधु=भाई। गेहु=(गृह) घर, स्त्री।

भावार्थ—लक्ष्मण जी प्रति क्षण सीता और राम के चरण देखकर और उनका अपने ऊपर प्रेम जानकर स्वप्न में भी माता, पिता, भाई और स्त्री का स्मरण नहीं करते।

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोरकुमारी॥

शब्दार्थ—सुरति=स्मरण। बिधु-बदनु=चन्द्रवत् मुख।

भावार्थ—रामजी के साथ सीता जी नगर के लोग, कुटुंब और घर की सुध को भूलकर सुखी रहती हैं। प्रति क्षण पति का चन्द्रवत् मुख देखकर ऐसी प्रसन्न रहती हैं मानो चकोरी (चन्द्रमा को देखकर) प्रसन्न है।

नाह-नेहु नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी।

सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बन प्रिय लागा।

शब्दार्थ—नाह-नेहु = (नाथ-स्नेह) पति-प्रेम। कोकी = चकई। अनुरागा = अनुरक्त होने से।

भावार्थ—पति प्रेम नित्य बढ़ता हुआ देखकर सीता जी ऐसी प्रसन्न रहती हैं, जैसे दिनमें चकई प्रसन्न रहती है। सीता जी के मन में रामजी के चरणों में प्रेम है इसलिए सैकड़ों अयोध्या के समान ही उन्हें बन प्रिय लगता है (अयोध्या से सौगुना अच्छा लगता है)

परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा।
सासुससुर सममुनितियमुनिवर।असन अमियसम कंदमूल फर॥

शब्दार्थ—परनकुटी = पर्णशाला। कुरंग = मृग, हिरन। विहंगा = पक्षी। असन = भोजन। अमिय = अमृत। फर = फल।

भावार्थ—प्रियतम पति के साथ पर्णशालाही प्रिय है, हिरने और पक्षी ही प्यारा कुटुंब है। मुनितिय (अनुसूया आदि) सास और मुनिवर (अत्रि आदि) ससुर के समान हैं। कंद मूल और फल ही अमृत के समान (स्वादिष्ट) भोजन हैं।

नाथ साथ साथरी सुहाई। मयन-सयन सय सम सुखदाई।
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू॥

शब्दार्थ—साथरी = कुश आदि से बनी चटाई। मयन = कामदेव। सयन = शैय्या। सय = सौ। विषय-विलासू = विषय की सामग्री।

भावार्थ—सीता जी को पति के साथ सुन्दर साथरी ही कामदेव की सैकड़ों शैय्याओं के समान सुख देनेवाली है। जिसके केवल देखने मात्र से मनुष्य लोकपाल हो जाते हैं, क्या उसे विषय सामग्री मोह सकती है? (कदापि नहीं।)

दो०—सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय-बिलासु।
राम प्रिया जग जननि सिय किछु न आचरजु तासु॥१४१॥

शब्दार्थ—सुमिरत = स्मरण करते ही। जन = दास। विषय विलासु = विषय सामग्री। रामप्रिया = रामजी की स्त्री।

भावार्थ—जिन रामजी के स्मरण करते ही दास लोग विषय सामग्री को तिनके के समान त्याग देते हैं। सीता जी उन्हीं रामजी की स्त्री और संसार की माता हैं, इसलिये (विषय भोग से अरुचि की बात) उनके लिए कुछ आश्चर्य नहीं है (अर्थात् ऐसा तो होनाही चाहिए)

सीयलषनुजेहिविधिसुख लहहीं। सोइरघुनाथ करहिंसोइ कहहीं।
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लषन सिय अति सुखमानी॥

शब्दार्थ—पुरातन = पुरानी, प्राचीन। कथा = बड़ी बड़ी दास्तानें। कहानी = छोटे छोटे कथानक।

भावार्थ—जिस प्रकार सीता जी और लक्ष्मण जी को सुख मिलता है रामजी वही कार्य करते हैं और वैसी ही बात कहते हैं। रामजी पुरानी कथा-कहानी कहते हैं, उसे सीता जी और लक्ष्मण जी अत्यंत सुख मान कर सुनते हैं।

जब जब राम अवध सुधि करहीं। तब तब वारि बिलोचन भरहीं।
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह सील सेवकाई॥
कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ विचारी॥

शब्दार्थ—सुधि = स्मरण, याद। वारि = जल। परिजन = कुटुंब।

भावार्थ—जब जब रामजी अयोध्या की याद करते हैं तब तब दोनों नेत्रों में जल भर आता है। माता, पिता, कुटुंब, भाई और भरत के प्रेम, शिष्टचार और सेवा का स्मण करके कृपासागर रामजी दुखी हो जाते हैं, पर कुसमय विचार कर धैर्य धारण करते हैं।

लखिसियलषनुविकलहोइजाहीं। जिमिपुरुषहिंअनुसरपरिछाहीं॥
प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपालु भगत उर चंदनु॥
लगे कहन किछु कथा पुनीता। सुनि सुख लहहिं लषनु अरु सीता॥

शब्दार्थ—पुरुषहिं = व्यक्ति को। अनुसर = अनुसरण करती है, पीछे पीछे चलती है। परिछाहीं = छाया। प्रिया = स्त्री। गति = दशा। भगत उर चंदनु = भक्तों के हृदय को शीतल करने वाले। पुनीता = पवित्र।

भावार्थ—(रामजी को दुखी) देखकर सीता जी और लक्ष्मण जी दोनो जने इस प्रकार व्याकुल हो जाते हैं, जिस प्रकार छाया व्यक्ति का अनुसरण करती है। स्त्री और भाई की यह दशा देखकर धैर्यवान्, कृपालु और भक्तों को सुख देनेवाले रामचन्द्रजी कुछ पवित्र (अच्छी अच्छी) कथा कहने लगते हैं। उसे सुनकर सीता जी और लक्ष्मण जी को सुख मिलता है।

दो०—राम लषन सीता सहित सोहत परन-निकेत।
जिमि वासव बस अमरपुर सची जयंत समेत ॥ १४२ ॥

शब्दार्थ—परन निकेत = पत्तों के घर में, पर्णकुटी में। वासव = इन्द्र। अमरपुर = इन्द्रपुरी। सची = इन्द्राणी। जयंत = इन्द्रका पुत्र।

भावार्थ—रामचन्द्र जी सीता जी और लक्ष्मण जी सहित पर्णकुटी में इस प्रकार शोभा पाते हैं जिस प्रकार इन्द्र इन्द्राणी और जयंत सहित इन्द्र-पुरी में निवास करता (और शोभा पाता) है।

(अलंकार)—उदाहरण।

जोगवहिं प्रभु सिय लषनहिं कैसे। पलक विलोचन गोलक जैसे।
सेवहिं लषनु सीय रघुवीरहिं। जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं ॥

शब्दार्थ—जोगवहिं = रक्षा करते हैं। गोलक = आँख का गटा। अविवेकी = मूर्ख। पुरुष = व्यक्ति, मनुष्य।

भावार्थ—रामजी सीता और लक्ष्मण की रक्षा किस प्रकार करते हैं, जिस प्रकार पलकें दोनों आखों के गटों की रक्षा करती हैं। लक्ष्मणजी सीता जी और रामजी की ऐसी सेवा करते हैं जैसे मूर्ख मनुष्य अपने शरीर की सेवा करते हैं।

अलंकार—उदाहरण।

एहि विधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी।

कहेउँ राम-वन गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत अवध जिमि आवा॥

शब्दार्थ—खग = पक्षी। मृग = पशु। सुर = देवता। तापस = तपस्वी।

भावार्थ—इस प्रकार पशु, पक्षी, देवता और तपस्वियों के हितैषी रामचन्द्रजी वन में सुखी बसते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि रामजी का सुन्दर वनगमन हमने कहा (वर्णन किया) अब सुमंत अयोध्या में किस प्रकार आये सो सुनिये।

फिरेउ निषादु प्रभुहिं पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई।
मंत्री विकल विलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयेउ विषादू॥

शब्दार्थ—फिरेउ = लौटा। निषादु = गुहराज। विषादू = दुःख।

भावार्थ—गुहराज रामचन्द्र जी को (यमुना जी के तट तक) पहुँचा कर लौटा। उसने आकर (गंगा जी के तटपर) मंत्री सहित रथ को देखा। मंत्री (सुमंतजी) को व्याकुल देखकर निषादराज को जैसा दुःख हुआ वह कहा नहीं जा सकता।

'राम राम सिय लपन' पुकारी। परेउ धरनितल व्याकुल भारी।
देखि दखिन दिसि हय हिंहिनाहीं। जनु बिनु पंख विहँग अकुलाहीं॥

शब्दार्थ—परेउ = गिरपड़े। दखिन दिसि = दक्षिण दिशा को। हय = घोड़े। हिंहिंनाहीं = हिन हिनाते हैं (हिन हिनाना घोड़ों का शब्द है) पंख = (पक्ष) डैना। अकुलाहीं = व्याकुल होते हैं।

भावार्थ—सुमंत जी 'राम राम सीता लक्ष्मण' कह कर अत्यंत व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। घोड़े दक्षिण दिशा की ओर देखकर हिन-हिनाते हैं (इधर ही रामजी गये हैं) घोड़े ऐसे व्याकुल हैं मानों बिना डैने के पक्षी व्याकुल हो रहे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दो०—नहिं तृन चरहिं न पिअहिं पय मोचत लोचन वारि।
व्याकुल भयेउ निषादपति रघुवर वाजि निहारि॥१४३॥

शब्दार्थ—तृन = घास। पय = जल। मोचत = गिराते हैं। निषाद-पति = गुहराज। बाजि = घोड़ा।

भावार्थ—वे घोड़े न तो घास खाते हैं न जल ही पीते हैं, केवल आँखों से जल गिरा रहे हैं। गुहराज रामचन्द्र जी के घोड़ों को देखकर बहुत व्याकुल हो गया।

धरि धीरज तब कहइ निषादू। अब सुमंत परिहरहु बिषादू।
तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥

शब्दार्थ—पंडित = विद्वान। परमारथ ज्ञाता = परमार्थ के जाननेवाले। बिमुख = प्रतिकूल।

भावार्थ—धैर्य धारण करके तब गुहराज कहने लगा—'हे सुमंत जी! आप अब दुख त्याग दें। आप विद्वान् और परमार्थज्ञाता हैं। इस समय विधाता प्रतिकूल है यह समझ कर धैर्य धारण करें।

बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी।
सोक सिथिल रथ सकइ न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी॥

शब्दार्थ—बिबिध = नाना प्रकार की। बरबस = (बलवश) बलात्, जबर्दस्ती। सकइ न हाँकी = चला नहीं सकता। बाँकी = तीक्ष्ण, कड़ी।

भावार्थ—गुहराज ने नाना प्रकार की कथाएँ मीठी वाणी से कह कर सुमन्त को जबर्दस्ती रथपर लाकर बैठाला। सुमन्त जी शोक के कारण शिथिल हैं, वे रथ को चला नहीं सकते, क्योंकि उनके हृदय में रामचन्द्रजी के विरह से बड़ी पीड़ा हो रही थी।

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन-मृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। राम बियोग बिकल दुख तीछे॥

शब्दार्थ—चरफराहिं = इधर उधर भागते हैं। बनमृग = जङ्गली जानवर। जोरे = जोते, नधे। अढुकि परहिं = रुक जाते हैं। फिरि = उलटकर। हेरहिं = देखते हैं। तीक्ष्ण (तीव्र) कठिन।

भावार्थ—घोड़े इधर उधर भागते हैं रास्ते में नहीं चलते। मानों रथ में जङ्गली जानवर लाकर नद्दे गये हैं। वे रुक जाते हैं और उलट कर पीछे की ओर देखने लगते हैं। वे राम वियोग के कठिन दुख से व्याकुल हैं।

जो कह राम लषन वैदेही। हिंकरि हिंकरि हय हेरहिं तेही॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती॥

शब्दार्थ—वैदेही = सीता जी। हिंकरि हिंकरि = पशुओं के प्रेम प्रदर्शन का शब्द। हेरहिं = देखते हैं। बाजि = घोड़ा। गति = दशा। फनिक = सर्प।

भावार्थ—जो मनुष्य राम, लक्ष्मण और सीता का नाम लेता है, उसकी ओर घोड़े हिंकर हिंकर कर देखने लगते हैं। घोड़ों के विरह की दशा कैसे कही जा सकती है! वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे बिना मणि के सर्प व्याकुल होता है।

अलङ्कार—उदाहरण।

दो०—भयेउ निषादु विषाद बस, देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिए सारथी संग॥ १४४॥

शब्दार्थ—सचिव = मन्त्री, सुमन्तजी। तुरङ्ग = घोड़ा। बोलि = बुलाकर। सङ्ग दिए = साथ कर दिये। सारथी = रथ चलाने वाला,

भावार्थ—गुहराज सुमन्त जी और घोड़ों को देखते ही अत्यन्त दुखी हो गया। तब उसने अपने चार अच्छे दासों को बुलाकर सुमन्त जी के साथ कर दिया।

गुह सारथिहिं फिरेउ पहुँचाई। विरह विषादु बरनि नहिं जाई॥
चले अवध लेइ रथहिं निषादा। होहिं छनहिं छन मगन विषादा॥

शब्दार्थ—गुह = निषादराज का नाम। सारथिहिं = रथ वाहक को, सुमन्त्र जी को। छनहिं छन = प्रति क्षण।

भावार्थ = गुह राज सुमन्त जी को (थोड़ी दूर) पहुंचा कर लौट आया उसके विरह का दुःख कहा नहीं जा सकता। बेचारे निषाद रथ लेकर अयोध्या की ओर चले पर वे प्रति क्षण दुःख में मग्न हो जाते थे (अत्यन्त दुखी होते थे, क्योंकि घोड़े सीधे से चलते नहीं थे)

सोच सुमन्त विकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना।
रहिहि न अंतहु अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू॥

शब्दार्थ—दीना = दुखी। धिग = धिक्कार है। बिछुरत = वियुक्त होते।

भावार्थ—सुमन्त जी व्याकुल और दुख से दुखी होकर सोचते हैं कि बिना रामचन्द्रजी के इस जीवन को धिक्कार है। यह अधम शरीर अन्त में भी न रहेगा (नष्ट हो जायगा) पर इसने रामचन्द्र जी के बिछुड़ते समय यश न ले लिया (अर्थात् नष्ट नहीं हो गया कि लोग बाद को कहते कि सुमन्त का प्रेम अद्वितीय था कि वियोग होते ही शरीर त्याग दिया)

भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना॥
अहह मन्दमति अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका॥

शब्दार्थ—अजस = अपयश। अघ भाजन = पाप के पात्र। हेतु = कारण। चूका = चूक गया। अजहुँ = (अद्यापि) अब भी। दुइ टूका = दो टुकड़े।

भावार्थ—मेरे प्राण अपयश और पाप के पात्र हो गये। न जाने किस कारण से ये चले नहीं जाते (प्राणान्त नहीं होता) हा ! हे मन्दमति हृदय, तू समय चूक गया, अब भी तू दो टुकड़े नहीं हो जाता।

मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धनरासि गँवाई॥
बिरद बाँधि वर बीर कहाई। चलेउ समर जसु सुभट पराई॥

शब्दार्थ—मींजि हाथ = हाथ मलकर। सिरु धुनि = माथा पीटकर। गँवाई = खो दी। बिरद बाँधि = नामवरी पाकर। जसु = जैसे। पराई = (पलायन) भागना।

भावार्थ—सुमन्त जी हाथ मलकर और माथा पीट कर पश्चात्ताप करते हैं, मानों किसी कृपण (कंजूस) ने धनराशि खो दी है अथवा कोई अच्छा बीर नामवरी पाकर और श्रेष्ठ वीर कहला कर जैसे रण से भाग चला है।

दो०—विप्र विवेकी वेद विद, सम्मत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मद पान कर, सचिव सोच तेहि भाँति॥१४५॥

शब्दार्थ—वेदविद संमत = वेद ज्ञाता और वेद की सम्मति से चलने वाला। साधु = सज्जन। मद = शराब।

भावार्थ—जिस प्रकार कोई विचारवान, वेद ज्ञाता, वेद की सम्मति के अनुकूल चलने वाले, सज्जन और कुलीन ब्राह्मण धोखे से शराब पी ले और सोच करे उसी प्रकार सुमन्त जी सोच कर रहे हैं।

अलङ्कार—उदाहरण।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम मन बानी॥
रहइ करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू॥

शब्दार्थ = सयानी = सज्ञान, बुद्धिमती। पतिदेवता = पतिव्रता। नाहू = (नाथ) पति। दारुण दाहू = कठिन जलन।

भावार्थ—जैसे कोई कुलीन, सरला, बुद्धिमान और मनसा वाचा, कर्मणा पतिव्रता स्त्री को कर्मवश निज पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष से संसर्ग करना पड़े और उसके हृदय में कठिन जलन हो, वैसेही सुमन्त जी के हृदय में कठिन जलन हो रही है।

लोचन सजल दीठि भइ थोरी। सुनइ न स्रवन, बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुंह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी॥

शब्दार्थ—दीठि = (दृष्टि) नज़र। भोरी = भुला गई। अधर = ओंठ। लागि लाटी = (लाटी लगना अवध का मुहावरा है, इसके अर्थ अधिक प्यास से मुख का सूखना है) अवधि कपाटी = अवधि रूपी किवाड़ी से बन्द।

भावार्थ—सुमन्त जी के नेत्रों में जल भरा है, दृष्टि कम हो गयी है (कम दिखायी देता है) कानों से सुन नहीं पड़ता, व्याकुल हैं, बुद्धि भुला गयी है, ओंठ सूख रहे हैं, मुंह में लाटी लग गयी है और केवल प्राण नहीं जाते (अन्य सब विपत्तियाँ झेल रहे हैं) वे हृदय में अवधि रूपी किवाड़ी से बन्द हैं।

बिबरन भयेउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥

हानि गलानि विपुल मन ब्यापी। जम पुर पन्थ सोच जिमि पापी॥

शब्दार्थ—विवरन भयेउ = रङ्ग फक हो गया है। विपुल = अत्यन्त।

भावार्थ—सुमन्त जी का रंग फक हो गया है वे देखे नहीं जाते। उनका चेहरा ऐसा हो रहा है मानों उन्होंने पिता माता को मार डाला है। उनके मन में अत्यन्त हानि और ग्लानि छाई है, वे ऐसा सोच कर रहे हैं जैसे नरक के मार्ग में पापी सोच करता है।

वचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखव जाई॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहिं विलोकत सोई॥

भावार्थ—वचन न आव = बोला नहीं जाता। काह = क्या।

भावार्थ—सुमन्त जी से बोला नहीं जाता, वे पश्चात्ताप करते हैं (मन में सोचते हैं कि) मैं अयोध्या में जाकर क्या देखूंगा? क्योंकि राम रहित रथ को जो देखेगा वही मेरा मुख देखने में सकुचेगा।

दो०—धाइ पूछिहहिं मोहिं जव, विकल नगर नर नारि।
उतर देव मैं सवहिं तव, हृदय वज्रु वैठारि॥ १४६॥

भावार्थ—जब नगर के व्याकुल स्त्री-पुरुष मुझसे पूछेंगे (कि राम, लक्ष्मण, जानकी कहाँ है?) तव मैं अपने हृदय में वज्र रखकर सब को उत्तर दूँगा (कि उन्हें वन में छोड़ आया)

पुछिहहिं दीन दुखित सव माता। कहव काह मैं तिन्हहिं विधाता॥
पूछिहि जवहिं लषन महतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥

भावार्थ—जव मुझ से दीन और दुःखित सब माताएँ पूँछेंगी। (कि राम कहाँ हैं?) हे विधाता तव मैं उनसे क्या कहूंगा। जब लक्ष्मण की माता सुमित्रा (सन्देश) पूछेंगी तव मैं उनसे कौनसा सुखदायक संदेश कहूंगा।

राम जननि जव आइहि धाई। सुमिरि वच्छु जिमि धेनु लवाई॥
पूंछत उत्तर देव मैं तेही। गे बन राम लषनु वैदेही॥

शब्दार्थ—राम जननि = कौशिल्या जी। धाई = दौड़कर। बच्छु = (वत्स) बच्चा। लवाई धेनु = हाल की ब्याई गौ। बैदेही = सीता जी।

भावार्थ—राम की माता कौशिल्या जब दौड़ कर आवेंगी, जैसे सद्यः प्रसूता गौ अपने बच्चे का स्मरण करके दौड़ती हुई आती है, तब मैं उसके पूछने पर यही उत्तर दूँगा कि राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गये।

जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देवा। जाइ अवध अब यहु सुख लेवा॥
पूँछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना॥
देइहउँ उतरु कवनु मुंहु लाई। आयेउँ कुसल कुँवर पहुँचाई॥
सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥

शब्दार्थ—देवा = दूँगा। कवनु मुहुं लाई = किस मुख से। कुँवर = (कुमार)। सँदेसू = समाचार।

भावार्थ—जो मुझसे (रामजी का समाचार) पूँछेगा उसे मैं (रामजी के वन जाने का) उत्तर दूँगा। अब अयोध्या में जाकर यही सुख लूँगा! (ऐसा दुःखद समाचार सब को सुनाऊँगा) जब दुःख से दीन हुए राजा दशरथजी पूँछेंगे—जिनका जीवन रामजी के ही आधीन है—तब मैं किस मुख से यह उत्तर दूँगा। कि कुमारों को कुशलपूर्वक पहुँचा आया। राम लक्ष्मण और सीता का समाचार सुनते ही राजा अपना शरीर तृण के समान त्याग देंगे।

दो०—हृदय न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रीतम नीरु।
जानत हौं मोहिं दीन्ह बिधि, यहु जातना-शरीरु॥१४७॥

शब्दार्थ—बिदरेउ = फट गया। पंक = कीचड़। नीरु = जल। जातना-शरीरु = वह शरीर जो मरण के पश्चात अंगुष्ट-प्रमाण में यमराज के पास जाता है। वह अनेक कड़ी यातनायें सहता है, पर नष्ट नहीं होता। वैसाही मेरा यह शरीर हो गया है।

भावार्थ—मेरा हृदय उस प्रकार फट नहीं गया जिस प्रकार अपने प्यारे जल के बिछुड़ते ही कीचड़ फट जाता है। मुझे जान पड़ता है कि विधाता

ने मुझे यह यातना-शरीर दिया है (इसी शरीर से मैं यातना-शरीर के भोग भोग रहा हूं)

एहि बिधि करत पन्थ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पाँय परि बिकल बिषादा ॥

शब्दार्थ—पंथ = रास्ते में, मार्ग में.। पछितावा = पश्चात्ताप। तुरत = (त्वरित) शीघ्र। पाँय परि = प्रणाम करके।

भावार्थ—इस प्रकार रास्ते में सुमन्त जी के पश्चात्ताप करते करते ही रथ शीघ्र तमसा के तट पर पहुँच गया। तब सुमन्त जी ने बिनती करके उन चारों निषादों को बिदा कर दिया। (लौटा दिया) वे भी दुःख से व्याकुल होते हुए प्रणाम करके लौट गये।

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुरु बाँभन-गाई ॥
बैठि बिपट तर दिवसु गवाँवा। साँझ समय तब अवसरु पावा ॥

शब्दार्थ—पैठत = (सं० प्रविष्ट) प्रवेश करते हुए। बाँभन = ब्राह्मण, द्विज, विप्र। गाई = (सं० गो) गाय। बिपट तर = वृक्ष के नीचे। गवाँवा = (सं० गमन) बिताया।

भावार्थ—नगर (अयोध्या) में प्रवेश करते हुए सुमन्त जी सकुचते हैं, मानो गुरु, ब्राह्मण और गाय को मारा है (गुरु, ब्राह्मण या गाय को मारनेवाला शास्त्रानुसार किसी को मुख नहीं दिखाता) इसलिए वृक्ष के नीचे बैठ कर दिन बिताया। तब संध्या समय (अन्धेरे में) उन्हें मौका (जिस समय कोई देख नहीं सकता था) मिला

अवध प्रवेसु कीन्ह अँधिआरे। पैठ भवन रथु राखि दुआरे ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये। भूपद्वार रथु देखन आए ॥

भावार्थ—अन्धेरे में सुमन्त जी ने अयोध्या में प्रवेश किया। रथ को दरवाजे पर छोड़ कर राजभवन में गये। जिन जिन लोगों ने (रथ के आने की) खबर पायी वे लोग राजद्वार पर रथ को देखने आये (कि रामजी का रथ आया है मगर वे आये हैं या नहीं।)

रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे।
नगर-नारि-नर ब्याकुल कैसे। निघटत नीर मीन गन जैसे॥

शब्दार्थ—घोरे = (सं० घोटक) घोड़े। गरहिं गात = शरीर गलने लगा, लोग बड़े दुखी हुए। आतप = गर्मी। ओरे = ओले। निघटत = विशेष घटने से। मीन = मछली।

भावार्थ—रथ को पहचान कर और घोड़ों को बेचैन देखकर नगर के लोगों का शरीर गलने लगा जिस प्रकार गर्मी से ओले गलने लगते हैं। नगर के सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार व्याकुल हैं जिस प्रकार जल के विशेष घट जाने से मछलियाँ व्याकुल होती हैं।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयेउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुँ प्रेतनिवासु॥ १४८॥

शब्दार्थ—प्रेत निवासु = प्रेतों का घर, भूतों का डेरा।

भावार्थ—सुमंत जी का आना सुनते ही सम्पूर्ण रनिवास व्याकुल हो गया। सुमंत जी को राजभवन ऐसा भयंकर जान पड़ा मानों भूतों का डेरा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी।
सुनइ न स्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा॥

शब्दार्थ—आरति = दुःखसे। सूझा = (शुद्ध) दिखाई देना। जेहि तेहि = जिस तिससे, सबसे। बूझा = पूंछा।

भावार्थ—अत्यंत दुःख से सब रानियाँ पूँछती हैं। सुमंत जी से उत्तर नहीं देते बनता। उनकी बोली व्याकुल हो गयी है। न कान से सुनाई पड़ता है और न आँख से दिखाई ही देता है "कहो राजा कहाँ हैं" यह बात सब से पूछता है।

दासिन्ह दीख सचिउ बिकलाई। कौसिल्या गृह गईं लेवाई।
जाइ सुमंत दीख कस राजा। अमिय रहित जनु चंदु बिराजा॥

शब्दार्थ—विकलाई = व्याकुलता। लेवाइ गईं = लिवा ले गयीं। अमिय रहित = अमृतहीन।

भावार्थ—दासियों ने सुमंत्र जी की व्याकुलता देखी तब वे उन्हें कौशिल्या जी के भवन में लिवा ले गयीं) राजा इस समय कैकेयी के यहां से आकर कौशिल्या जी के ही भवन में थे) सुमंत्र जी ने राजा को वहाँ जाकर किस प्रकार देखा मानों अमृतहीन चन्द्रमा शोभित है (अर्थात् राजा दशरथ जी उदास पड़े थे)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

आसन सयन विभूपन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना।
लेइ उसास सोच एहि भाँती। सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती॥

शब्दार्थ—आसन = विस्तरा। सयन = शैय्या। विभूपन = जेवर, गहना। भूमितल = धरातल, जमीन की सतह। उसास = (उछास) आहभरी साँस। सुरपुर = इन्द्रलोक खसेउ = गिर पड़े। जजाती = (ययाती) राजा नहुप के पुत्र।

भावार्थ—दशरथ जी विना शैय्या और विस्तरे के गहने उतार कर अत्यंत मलिन होकर धरातल पर लेटे हैं। वे आहभरी साँसे ले रहे हैं उन्हें इस प्रकार शोक हो रहा है मानों राजा ययाति इन्द्रलोल से गिर पड़े हैं (राजा ययाति स्वर्गारूढ़ होकर पुण्य क्षीण हो जाने से अपने दौहित्र के यज्ञकुंड में गिर पड़े थे)।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लपन वैदेही॥

शब्दार्थ—छाती भरि लेत = आहभरी साँसें लेते हैं। पंख = (सं० पक्ष) डैना। परेउ = गिर पड़ा। संपाती = जटायु का भाई गृद्ध। रामसनेही = प्यारे राम। वैदेही = सीता जी।

भावार्थ—दशरथ जी शोक से प्रति क्षण आह भरी साँसें लेते हैं मानों संपाति पंखों के जल जाने से गिर पड़ा है। राजा साहब "राम, राम और

प्यारे राम" कहते हैं पुनः 'राम, लक्ष्मण और सीता" कहते हैं।

(नोट) संपाति की कथा किष्किन्धाकांड में देखो।

दो०—देखि सचिउ 'जयजीव' कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति, कहु सुमंत कहँ रामु॥१४९॥

शब्दार्थ—जयजीव = आशीर्वादात्मक शब्द जो ब्राह्मण मंत्री राजाओं के प्रति राजदरबार में पहुँचने पर कहा करते थे।

शब्दार्थ—सुमंत जी ने राजा साहब को देखकर और 'जयजीव' कह कर दंड-प्रणाम (साष्टांग दंडवत) किया। यह सुनते ही दशरथ जी व्याकुल होकर उठे और कहा-हे सुमंत ! कहो राम कहाँ हैं !

भूप सुमंत लीन्ह उर लाई। बूड़त किछु अधार जनु पाई।
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि बारी॥

शब्दार्थ—लीन्ह उर लाई = हृदय से लगा लिया। बूड़त = डूबते हुए। अधार = सहारा। बारी = जल

भावार्थ—राजा ने सुमंत जी को हृदय से लगा लिया, मानो डूबते हुए मनुष्य को कुछ सहारा मिल गया। उन्हें प्रेमपूर्वक—अपने पास बैठाकर राजा आंखों में जलभर कर पूँछते हैं—

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लखनु बैदेही।
आने फेरि कि बनहिं सिधाए। सुनत सचिउ लोचन जल छाए॥

शब्दार्थ—आने फेरि = लौटा लाये। सिधाए = गये। लोचन = आँख। छाए = भर गया।

भावार्थ—'हे प्यारे मित्र राम की कुशल कहो। राम और लक्ष्मण, सीता कहाँ हैं ! उन्हें। लौटा लाये कि वे वन को ही चले गये यह सुनतेही सुमंत जी की आँखों में जल भर गया।

सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कहु सिय राम लखन संदेसू।
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥

भावार्थ—शोक से व्याकुल होकर राजा दशरथ जी पुनः पूँछते हैं 'हे सुमंत जी ! राम, लक्ष्मण और सीता का समाचार कहिये।' राम जी के सौन्दर्य, गुण, शिष्टाचार और स्वभाव को हृदय में स्मरण कर करके राजा शोक करते हैं।

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयेउ न हरष हरासू।
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहिं समाना

शब्दार्थ—हरष = प्रसन्नता। हरासू = (सं० ह्रास) दुःख, खेद।

भावार्थ—दशरथ जी कहते हैं कि मैंने राजतिलक का शुभ समाचार सुनाकर रामजी को वनवास दे दिया। इसे सुनकर उनके मन में पहले न तो प्रसन्नता ही हुई और न पीछे दुःख ही हुआ, ऐसे पुत्र के वियुक्त होते समय प्राण नहीं चले गये, मेरे समान और कौन बड़ा पापी है ? (जो ऐसे दुःसह समय में भी जीवित रह सकेगा)

दो०—सखा राम सिय लषन जहँ तहाँ मोहिं पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउँ सतिभाउ ॥१५०॥

शब्दार्थ—सतिभाउ = सच्चेभाव से, शुद्ध अन्तःकरण से।

भावार्थ—हे सखा ! जहाँ पर सीता, राम और लक्ष्मण हैं वहीं मुझे भी पहुँचा दे, नहीं तो मैं सच्चेभाव से कहता हूं कि प्राण अब छूटना ही चाहते हैं।

पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन-सँदेस सुनाऊ।
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। राम लषन सिय नयन देखाऊ ॥

शब्दार्थ—सुअन = (सं० सूनु) पुत्र। संदेस = समाचार। बेगि = शीघ्र।

भावार्थ—राजा बारम्बार सुमंत जी से पूँछते हैं कि अत्यंत प्यारे पुत्र (राम) का समाचार सुना। हे सखा ! वही प्रयत्न शीघ्र कर जिससे राम, लक्ष्मण और सीता को मुझे इन नेत्रों से दिखा दे।

सचिउ धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पंडित ज्ञानी।

वीर सुधीर-धुरंधर देवा । साधु समाज सदा तुम्ह सेवा ॥

शब्दार्थ—सुधीर-धुरंधर = धैर्यधारियों में श्रेष्ठ । साधु = संत ।

भावार्थ—सुमंत जी धैर्य धारण करके मीठी वाणी से बोले—'हे महाराज आप तो पंडित और ज्ञानी हैं । हे देव ! आप वीर और धैर्यधारियों में श्रेष्ठ हैं और आपने सदा संत समाज सेवन की है (अर्थात् अच्छे लोगों का सत्संग किया है । फिर आप ऐसा दुःख क्यों करते हैं !)

जनम मरन सब दुख सुख भोगा । हानि लाभ, प्रिय मिलन बियोगा ॥
काल करम बस होहिं गोसाईं । बरबस राति दिवस की नाईं ॥

शब्दार्थ—गोसाईं = स्वामी । बरबस = (बलवश) बलात् । नाईं = (सं० न्याय) समान ।

भावार्थ—जन्म और मरण, सब दुःख-भोग और सब सुख भोग, हानि और लाभ, प्रिय-मिलन और प्रिय वियोग ये सब बातें समयानुसार और कर्मवश हे स्वामी ! रात और दिन के समान बलात् (अवश्य) होती हैं ।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ।
धीरजु धरहु बिबेक बिचारी । छाँड़िय सोचु सकल हितकारी ॥

शब्दार्थ—जड़ = मूर्ख । बिलखाहीं = दुखी होते हैं ।

भावार्थ—(किन्तु इन संसार के अटल कार्यों में) मूर्ख जन सुख मिलने से प्रसन्न होते हैं और दुःख पड़ने से दुखी होते हैं किन्तु धीर-पुरुष सुख-दुख दोनों को मन में समान ही समझते हैं (अर्थात् सुख से न तो प्रसन्न ही होते हैं और न दुख से दुखी ही होते हैं) इसलिए विवेक से विचार कर आप धैर्य धारण करें । आप सबकी भलाई करने वाले हैं इसलिए सोच त्याग दीजिये (क्योंकि आप के दुखी होने से और लोग भी दुखी हैं, उन्हें कष्ट होता है)

दो०—प्रथम बासु तमसा भयेउ दूसर सुरसरि तीर ।
न्हाइ रहे जलपान करि सिय समेत दोउ बीर ॥ १५१ ॥

शब्दार्थ—सुरसरि = गंगा । बीर = भाई ।

भावार्थ—पहला निवास उन लोगों ने तमसा के किनारे किया और दूसरा गंगा जी के तट पर। उस दिन सीता सहित दोनों भाई केवल जल-पान ही करके रह गये (और कुछ नहीं खाया)

केवट कीन्हि वहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गँवाँई॥
होतप्रात वट-छीरु मँगावा। जटामुकुट निज सीस वनावा॥

शब्दार्थ—केवट=(सं० कैवर्त्त) निषाद। जामिनि=रात। सिंग-रौर=शृंगवेरपुर।

भावार्थ—निषाद ने बड़ी सेवाकी। वह रात उन्होंने शृंगवेरपुर (के निकट) में व्यतीत की। प्रातःकाल होते ही बरगद का दूध मँगवाया और उसीसे दोनों भाइयों ने अपने मस्तक पर जटा का मुकुट बनाया।

रामसखा तव नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई॥
लखन वान धनु धरे वनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई॥

शब्दार्थ—रामसखा=निषादराज। नाव=(सं० नौका) बनाइ धरे=ठीकठाक करके रखा। आपु=स्वयं।

भावार्थ—निषाद राज ने तब नाव मँगवायी। सीता जी को पहले चढ़ा कर तब रामचन्द्रजी उसपर चढ़े। लक्ष्मण जी ने धनुष ठीकठाक करके रखा, वे स्वयं रामजी की आज्ञा पाकर तब नाव पर चढ़े।

विकल विलोकि मोहि रघुवीरा। वोले मधुर वचन धरि धीरा।
तात प्रनामु तात सन कहेहू। वार वार पद-पंकज गहेहू॥

भावार्थ—मुझे व्याकुल देखकर रामजी धैर्य धारण करके मीठे वचन बोले—हे तात! पिताजी से हमारा प्रणाम कहिएगा (और हमारी ओर से) बारम्बार उनके चरण-कमल स्पर्श कीजियेगा।

करवि पाँय परि विनय वहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी।
वन मग मंगल कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह पुण्य तुम्हारें॥

शब्दार्थ—कृपा=दया। अनुग्रह=प्रेम, वात्सल्य-भाव।

भावार्थ—पुनः उनके पैरों पड़कर विनती कीजियेगा कि 'हे तात! आप हमारी चिन्ता न करें। आपकी दया, प्रेम और पुण्य से जंगल का मार्ग

हमारे लिए मंगल और कुशल दायक है।

छन्द–तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौं।
प्रति पालि आयसु कुसल देखन पायँ पुनि फिरि आइहौं॥
जननी सकल परितोषि परि परि पायँ करि विनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतन जेहिं कुसली रहहिं कोसल धनी॥

शब्दार्थ—कुसली=कुशल-पूर्वक। घनी=बहुत (गुजराती)। कोसल धनी=अवधेश, राजा दशरथ।

भावार्थ—हे तात! आप के अनुग्रह से मैं वन जाते समय सब प्रकार से सुख पाऊँगा। आपकी आज्ञा का पालन करके सकुशल मैं आपके चरण का दर्शन करने के लिए पुनः लौट आऊँगा (पुनः का भाव यह कि एक बार जैसे विश्वामित्र जी के साथ जाकर लौट आया था) सब माताओं को संतुष्ट करके और पैरों पड़ पड़ कर बहुत प्रकार से विनय कीजिएगा। वही यत्न कीजिएगा जिससे चक्रवर्ती जी कुशल पूर्वक रहें।

सो०—गुरु सन कहब सँदेसु, बार बार पद-पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु, जेहि न सोच मोहिं अवधपति॥१५२॥

भावार्थ—गुरु बशिष्ट जी से भी बारम्बार चरण-कमल छूकर यह संदेशा कह दीजिएगा कि राजा साहब को ऐसा उपदेश दें जिससे वे मेरा सोच न करें।

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनायेउ बिनती मोरी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जातें रह नरनाह सुखारी॥

शब्दार्थ—परिजन=कुटुम्ब के लोग। निहोरी=विनय करके। नरनाह=(नरनाथ) राजा साहब।

भावार्थ—सब नगरवासियों और कुटुम्ब के लोगों से विनय करके मेरी यह प्रार्थना सुनाइयेगा कि "वही सब प्रकार से हमारा हितु है जिससे राजा साहब सुखी रहें"।

कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपद पाएँ॥
पालेहु प्रजहिं करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी॥
अउर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई॥

तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहिं करइँ न काऊ॥

शब्दार्थ—सँदेसु=संदेसा। आएँ=आने पर। पाएँ=पाकर। भायप=भ्रातृत्व। सुजन=स्वजन, कुटुम्ब। काऊ=कभी।

भावार्थ—भरत के आने पर हमारा यह संदेशा कहिएगा कि "राज पद पाकर नीति को न छोड़ना। प्रजा को मन कर्म और वाणी से पालना। माताओं को समान समझकर सब माताओं की सेवा करना। और हे भाई! पिता, माता तथा कुटुंब की सेवा करते हुए भ्रातृत्व का निर्वाह करना। हे तात! राजा को इस प्रकार रखियेगा जिससे वे मेरा सोच कभी न करें।

लखन कहे किछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहिं निहोरा।
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई।

शब्दार्थ—बरजि=वर्जन करके मना करके। निहोरा=विनय की। सपथ=सौगन्ध, कसम। लरिकाई=लड़कपन।

भावार्थ—लक्ष्मण ने कुछ कठोर वचन कहे! राम जी ने उन्हें मना करके फिर मुझ से विनय की और बारम्बार अपनी कसम देकर कहा कि 'हे तात! लक्ष्मण का लड़कपन किसी से न कहियेगा।

दो०—कहि प्रनामु किछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह॥१५३॥

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहिं नाव चलाई॥

शब्दार्थ—कहन लिय=कहना चाहती थी। थकित=रुक गये। पुलक पल्लवित देह=पुलक से रोमांचित शरीर। रुख पाई=इच्छा समझकर।

भावार्थ—प्रणाम कह कर, स्नेह से सिथिल हुई, गद्गद वचन, जलभरी आखों और पुलक से रोमांचित शरीर होकर सीता कुछ कहना ही चाहती थी कि उसी समय राम जी की इच्छा समझ कर केवट ने पार की ओर नाव चला दी (सीता जी कुछ कह न सकीं)

रघुकुल-तिलक चले एहि भाँती। देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती।
मैं आपन किमि कहउँ कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयेऊ। हानि गलानि सोच-बस भयेऊ॥

शब्दार्थ—रघुकुल तिलक=रघुवंश में श्रेष्ठ। ठाढ़=(सं० स्थ) खड़े-खड़े। कुलिस=वज्र। वचन रहि गयेऊ=बोला नहीं गया, घिग्घी बँध गयी।

भावार्थ—रघुवंश में श्रेष्ठ रामचन्द्र जी इस प्रकार चले गये मैंने अपनी छाती पर वज्र रखकर खड़े-खड़े सब देखा। मैं अपना क्लेश क्या कहूँ? (यही समझ लीजिये कि) राम जी का संदेशा लेकर जीते जी लौट आया। ऐसा कहते कहते सुमंत जी की घिग्घी बँध गयी। वे बड़ी हानि ग्लानि और सोच के वश हो गये।

सूत-वचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू॥
तलफत विषम मोह मन मापा। माँजा मनहुँ मीन कहुँ व्यापा॥

शब्दार्थ—सूत=सारथी (सुमंत जी)। परेउ=गिर पड़े। मापा=व्याप्त हो गया। माँजा=बरसाती जल का फेन।

भावार्थ—सुमंत जी के वचन सुनतेही राजा दशरथ पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके हृदय में भीषण जलन होने लगी। उनको भारी ममता छा गयी, वे तलफने लगे मानों मछली के शरीर में माँजा व्याप्त हो गया।

(नोट) प्रथम वर्षा का फेन खाकर मछलियां तड़प तड़प कर मर जाती हैं। उसी फेन को 'मांजा' कहते हैं।

करि विलाप सब रोवहिं रानी। महा विपति किमि जाइ बखानी।
सुनि विलाप दुखहू दुख लागा। धीरज हू कर धीरज भागा।

शब्दार्थ—करि विलाप=बड़े जोर से।

भावार्थ—सब रानियां बड़े ज़ोर से रोने लगीं। वह महा विपत्ति कैसे वर्णन की जा सकती है? उनका वह रोना सुनकर दुःख को भी दुःख हुआ और धैर्य्य का धैर्य्य भी छूट गया।

अलंकार—अत्युक्ति।

दो०—भयेउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोर।
विपुल विहँग-बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोर।१५४।

शब्दार्थ—कोलाहल=खलबली। राउर=(सं० राजपुर) रनिवास। सोर=हल्ला गुल्ला। विपुल=बहुत। कुलिस=वज्र।

भावार्थ—राजा के रनिवास का हल्ला गुल्ला सुनकर अयोध्या में बड़ी खलबली पड़ गयी, मानो बहुत से पक्षियों के रहनेवाले बन में रात्रि के समय कठोर वज्र गिर पड़ा।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

प्रान-कंठ गत भयेउ भुआलू। मनि विहीन जनु व्याकुल व्यालू॥
इंद्रीं सकल विकल भईं भारी। जनु सर-सरसिज-बनु बिनु बारी॥

शब्दार्थ—प्रान कंठ-गत भयेउ=प्राण गले के पास आ गये। भुआलू=(सं० भूपाल) राजा। व्यालू=सर्प। सर=तालाब। सरसिज-बनु=कमलों का समूह। बारी=जल।

भावार्थ—राजा दशरथ के प्राण गले के पास आ गये। (वे ऐसे व्याकुल हुए) मानो बिना मणि के सर्प व्याकुल है। उनकी सब इन्द्रियां अत्यंत व्याकुल हो गयीं (उनकी दशा ऐसी है) मानो कमलों का तालाब बिना जल का (उदास जान पड़ता) है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

कौसिल्या नृपु दीख मलाना। रविकुल रवि अथएउ जिअजाना।
उर धरि धीर राममहतारी। बोलीं वचन समय अनुसारी॥

शब्दार्थ—मलाना=उदास। अथएउ=(सं० अस्त) डूब गये।

भावार्थ—कौशिल्या जी ने राजा दशरथ जी को उदास देखा तब वे हृदय में समझ गयीं कि अब सूर्यवंश के सूर्य (राजा दशरथ) डूबे! पुनः हृदय में धैर्य धारण करके राम-माता (कौशिल्या) समय के अनुकूल वचन बोलीं।

नाथ समुझि मन करिअ विचारू। राम-वियोग पयोधि-अपारू॥
करनधार तुम्ह अवधि जहाजू। चढ़ेउ सकल-प्रिय-पथिक-समाजू॥
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू॥
जौ जिय धरिअ विनय पिय मोरी। रामु लषनु सिय मिलहिं बहोरी॥

शब्दार्थ—पयोधि=समुद्र। अपारू=जिसका पार नहीं है। करनधार=(सं० कर्णधार) मल्लाह, खेनेवाला। अवधि=१४ वर्ष का समय। प्रिय=प्रियजन, कुटुंब के लोग। पथिक समाजू=यात्री-गण।

भावार्थ—हे नाथ ? मन में समझकर विचार करें कि राम का वियोग रूपी समुद्र अपार है आप कर्णधार हैं और १४ वर्ष का समय जहाज है। सम्पूर्ण कुटुंब के लोग ही यात्री गण हैं जो इस जहाजपर चढ़े हैं यदि आप धैर्य धारण करें तो पार पा जायँगे नहीं तो सारा परिवार डूब जायगा। हे प्रिय ! यदि मेरी बिनय आप हृदयमें धारण करें तो राम, लक्ष्मण और सीता पुनः मिलेंगे।

दो०—प्रिया वचन मृदु सुनत नृप चितयेउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि॥ १५५॥

शब्दार्थ—प्रिया=स्त्री, कौशिल्या जी। मृदु=मुलायम। चितयेउ= देखा। उधारि=(सं० उद्घाटन) खोलकर। मलीन=उदास।

भावार्थ—कौशिल्या जी के मुलायम वचनों को सुनते ही राजादशरथ जी ने आँखे खोलकर देखा। मानों उदास और तलफती हुई मछली ठण्डे पानी के सींचने से आँख खोलकर देखने लगी है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमंत कहँ राम कृपालू॥
कहाँ लषनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्र बधू बैदेही॥

भावार्थ—राजा धैर्य धारण करके उठकर बैठ गये। कहने लगे—'हे सुमंत ! बतलाओ दयालु राम कहाँ हैं ? लक्ष्मण कहाँ हैं ? प्यारे राम कहाँ हैं ? प्यारी पतोहू सीता कहाँ हैं ?

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती।
तापस-अंध-साप सुधि आई। कौसिल्यहिं सब कथा सुनाई॥

शब्दार्थ—बिलपत=रोते हैं। सरिस=(सं० सदृश) समान। सिराति न=व्यतीत नहीं होती, ख़तम नहीं होती। अंधतापस=श्रमण के माता पिता

भावार्थ—राजा व्याकुल होकर बहुत तरह से रोते हैं। रात्रि भी युग के सामान (बड़ो) होगई। क्योंकि वह ख़तम नहीं होती। इसी समय अंध तपस्वियों के श्राप की सुध आई तब कौशिल्या को उन्होंने सब कथा सुनाई।

भयेउ बिकल बरनत इतिहासा। रामरहित धिग जीवन-आसा।
सो तनु राखि करबि मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा॥

भावार्थ—(अन्ध-तपस्वियों के शाप का) इतिहास कहते कहते राजा व्याकुल हो गये और कहा कि राम के बिना जीने की आशा करने से धिक्कार है, क्योंकि उस शरीर को मैं रखकर ही क्या करूँगा जिसने मेरे प्रेम-प्रण का निर्वाह न किया।

हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते।
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा-पितु-हित-चित चातक-जलधर॥

शब्दार्थ—प्रानपिरीते=प्राणप्यारे। बीते=(सं० व्यतीत) गुज़रगये, हो गये। चातक=पपीहा। जलधर=बादल।

भावार्थ—हा प्राणप्यारे रघुनंदन (रामचन्द्र) तुम्हारे बिना जीते हुए बहुत दिन गुज़र गये। हा जानकी ! हा लक्ष्मण !! पिता के प्रेमी और मेरे चित्त-रूपी पपीहा के लिये बादल रूप रघुबर (राम) हा (कहाँ हो ?)!!!

दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह राउ गए सुरधाम॥ १५६॥

शब्दार्थ—परिहरि=त्यागकर, छोड़कर। सुरधाम=स्वर्ग।

भावार्थ—राम, राम, राम, राम, राम, और राम कहतेहुए रामचन्द्रजी के विरह में शरीर छोड़कर राजा दशरथ स्वर्ग चले गये।

जिअन-मरन-फल दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा।
जियत राम-बिधु-बदन निहारा। रामबिरह मरि मरनु सँवारा॥

शब्दार्थ—जिअन मरन-फल=जीने और मरने का लाभ। अंड=लोक। निहारा=देखा। सँवारा=सुधारा, बना लिया।

भावार्थ—राजा दशरथजी ने ही जीने और मरनेका लाभ पाया, उनका स्वच्छ यश अनेक लोकोंमें छा गया। क्योंकि जीतेजी रामजी का चन्द्रके समान मुख देखा और रामजी के ही विरह में मर कर अपना मरण भी बनालिया।

अलंकार—सम और लेश।

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सील बलु तेज बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा॥

शब्दार्थ—सील=शिष्टाचार। बखानी=वर्णन करके। परहिं=गिर पड़ती हैं।

भावार्थ—सब रानियाँ शोक से व्याकुल होकर रोती हैं। राजा दशरथ के सौन्दर्य, शिष्टाचार, बल और तेजस्विता का वर्णन करके वे अनेक प्रकार से विलाप करती हैं और बारम्बार धरातल पर गिर पड़ती हैं।

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घरघर रुदन करहिं पुरबासी॥
अथएउ आजु भानुकुल-भानू। धरम अवधि गुन-रूप-निधानू॥

शब्दार्थ—अथएउ=अस्त हो गये, डूब गये। अवधि=सीमा। रूप=सौन्दर्य। निधानू=खजाना।

भावार्थ—दास और दासी व्याकुल होकर विलाप करते हैं। नगर-निवासी भी घर घर रोते हैं सब कहते हैं—सूर्यवंश में सूर्यवत् राजा दशरथ जो बड़े धर्मिष्ठ, गुणी और सुन्दर थे अस्त हो गये (गोलोकवासी हो गये)

गारी सकल कैकइहिं देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी

शब्दार्थ—नयन बिहीन=नेत्रहीन, अंधा। जग=संसार (यहाँ अयोध्या से अभिप्राय है)। रैनि बिहानी=रात बीत गयी।

भावार्थ—सब लोग कैकेयी को गालियाँ देते हैं जिसने संसार (अयोध्या) को अंधा कर दिया। इस प्रकार रोतेरोते रात बीत गयी। सब ज्ञानी महर्षि आये।

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहिं करि निज बिग्यान प्रकास॥१५७॥

भावार्थ—तब वशिष्ठ मुनि जी ने समयानुकूल अनेक इतिहास (कथाएँ) कहकर अपने विज्ञान के प्रकाश से सबके शोक का निवारण किया (हटाया)

(इति पूर्वार्द्ध)

अथ उत्तरार्द्ध प्रारम्भ

तेल-नाउ भरि नृप तनु राखा । दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा ॥
धावहु वेगि भरत पहिं जाहू । नृप-सुधि कतहुँ कहेहु जनि काहू ॥
एतनेइ कहेउ भरत सन जाई । गुरु बोलाइ पठये दोउ भाई ॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए । चले वेगि बर-बाजि लजाए ॥

शब्दार्थ—जनि=मत, नहीं । धावन=दूत । बाजि=घोड़ा ।

भावार्थ—नौका में तेल भर कर राजा का (मृतक) शरीर उसमें रखा । फिर दूतों को बुलाकर यह कहा कि "दौड़ते हुए शीघ्र भरत के पास जाओ । राजा (के मरने) की ख़बर कहीं किसी से भी मत कहना । जाकर भरत से इतनाही कहना कि दोनों भाइयों को गुरु जी ने बुला भेजा है ।" वशिष्ट जी की आज्ञा पाकर दूत सुन्दर घोड़ों को भी लज्जित करते हुए शीघ्रता के साथ चले ।

अनरथु अवध अरंभेउ जबतें । कुसगुन होहिं भरत कहुँ तबतें ।
देखहिं राति भयानक सपना । जागि करहिं कटु कोटि कलपना ।

शब्दार्थ—अनरथु=बुरी घटनाएं । कटु=बुरी । कलपना=सोचविचार ।

भावार्थ—जब से अयोध्या में अनर्थ का श्री गणेश हुआ तब से भरत जी को (ननिहाल में) अपशकुन होते थे । भरत जी रात्रि में भयंकर स्वप्न देखते थे और जगकर अनेक बुरे सोच विचार किया करते ।

विप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना । सिव-अभिषेक करहिं विधि नाना ।
माँगहि हृदय महेस मनाई । कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥

शब्दार्थ—जेवाँइ=(सं० जेमन) भोजन कराके । सिव-अभिषेक= महादेव जी की एक पूजा विशेष । मनाई=प्रार्थना करके । परिजन=कुटु-म्ब के लोग ।

भावार्थ—(कुस्वप्न देखकर उसकी शान्ति के लिए भरत जी) ब्राह्मणों को भोजन कराके बहुत सा दान देते हैं तथा अनेक प्रकारों से शिव- अभि-

वेक करते हैं। हृदय में महादेव जी की प्रार्थना करके माँगते हैं कि माता, पिता, कुटुम्ब के लोग और भाई कुशल से रहें।

दो०—एहि विधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुरु- अनुसासन स्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ ॥१५८॥

शब्दार्थ—धावन=दूत। अनुसासन=आज्ञा। स्रवन सुनि=कानों से सुनकर, श्रवण करके। गनेसु मनाइ=गणेश जी की विनय करके।

भावार्थ—इस प्रकार भरत जी मन में सोच विचार कर ही रहे थे कि (अयोध्या के) दूत आ पहुँचे (उनसे) गुरु वशिष्ठ जी की आज्ञा श्रवण कर (दोनों भाई) गणेश जी की विनय करके चले।

चले समीर वेग हय हाँके। नाँघत सरित सैल वन बाँके॥
हृदय सोचु बड़ किछु न सुहाई। अस जानहिं जिअ जाउँ उड़ाई॥

शब्दार्थ—समीर वेग=वायु के समान तेज़। हय=घोड़े। हाँके= चलाये। नाँघत=(सं० उल्लंघन) पार करते हुए। सरित=नदी। सैल= (सं० शैल) पर्वत्त। बाँके=(बंक) टेढ़े, दुर्गम। उड़ाई=उड़कर।

भावार्थ—वायु के समान तेज घोड़ों को हाँककर दुर्गम नदी पर्वत और जंगलों को पार करते हुए दोनों भाई चले। भरत जी के हृदय में बड़ा सोच है (क्योंकि दूतों ने गुरु आज्ञा के अतिरिक्त अयोध्या का कोई समाचार नहीं बताया है) कुछ सोहाता नहीं। हृदय में ऐसा विचार आता है कि उड़कर चला जाऊँ।

एक निमेष बरष सम जाई। एहि विधि भरत नगर नियराई।
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥

शब्दार्थ—निमेष=पलभर, क्षणमात्र। जाई=बीतता है। नियराई= निकट आ गये। पैठारा=(सं० प्रविष्ट) प्रवेश करते हुए। रटहिं=बोलते हैं। कुखेत=कुक्षेत्र, बुरे स्थान में। करारा=(सं० करट) कौआ।

भावार्थ—भरत को पलभर का समय वर्ष के समान व्यतीत होता है।

इस प्रकार भरत नगर (अयोध्या) के निकट आ गये। नगर में प्रवेश करते हुए भरत जी को अपशकुन होते हैं, कौए बुरी तरह से बुरे स्थानों में बोल रहे हैं।

खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला।
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगर बिसेषि भयावनु लागा।

शब्दार्थ—खर = गदहा। सूल = दुःख। श्रीहत = शोभा हीन। सर = तालाब। बागा = बगीचे। बिसेषि = अत्यन्त। भयावनु लागा = भयंकर जान पड़ता है।

भावार्थ—गदहे और सियार अपशकुन सूचक शब्द कर रहे हैं (अर्थात् राज कुमार के नगर में आने के समय सलामी या मंगल वाद्य बजने चाहिए वे नहीं बजते वरन् गदहे और सियार करुण स्वर से रोते हैं) यह सुन सुनकर भरत जी के मन में दुःख होता है। तालाब, नदी, बन और बगीचे सब शोभाहीन हो गये हैं (इस प्रकार) नगर (अयोध्या) अत्यंत भयंकर जान पड़ता है।

खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम वियोग कुरोग बिगोए।
नगर नारि-नर निपट दुखारी। मनहु सबन्हि सब संपति हारी।

शब्दार्थ—खग = पक्षी। मृग = पशु। हय = घोड़ा। गय = (सं० गज) हाथी। जोए = देखे। बिगोए = बिगड़े हुए। निपट = अत्यंत। हारी = हार गये हैं, खो दी है।

भावार्थ—पशु, पक्षी घोड़े और हाथी देखे नहीं जाते। राम-वियोग रूपी बुरे रोग से ये सब बिगड़ गये हैं। नगर के स्त्री-पुरुष सब अत्यंत दुखी हैं मानो वे अपनी सब सम्पत्ति ही हार गये हैं (गँवा बैठे हैं)

दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गँवहिं जोहारहिं जाहिं॥
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय विषाद मन माहिं॥१५९॥

शब्दार्थ—पुरजन = नगर के लोग। गँवहिं = चुपचाप। जोहारहिं = प्रणाम करते हैं।

भावार्थ—नगर के लोग मिलते हैं। (भरत जी से) कुछ कहते नहीं चुपचाप प्रणाम करके चले जाते हैं। भरत जी की कुशल नहीं पूछ सकते उनके मन में भय और दुःख भरा है।

हाट बाट नहिं जाहिं निहारी। जनु पुर दहुँ दिसि लागि दवारी।
आवत सुत सुनि कैकय नंदिनि। हरषी रविकुल-जलरुह चंदिनि।

शब्दार्थ—हाट = बाजार। बाट = रास्ता। दहुँ = (सं० दश) दसो। दवारी = दावाग्नि। जलरुह = कमल। चंदिनि = चांदिनी।

भावार्थ—बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते, मानौ नगर के चारो ओर दावाग्नि लग गयी है। सूर्यबंश रूपी कमलों के लिए चाँदनी के समान (दुःखदायिनी) कैकेयी पुत्र को आता सुनकर प्रसन्न हो गयी।

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहु तुहिन बनज बनु मारा॥

शब्दार्थ—तुहिन = पाला। बनज बनु = कमलों का समूह।

भावार्थ—कैकेयी आरती सजाकर प्रसन्न हो उठकर दौड़ी। द्वार पर पुत्र को भेंटकर राज भवन में लिवा आई। भरत जी ने दुखित परिवार को (ऐसा) देखा मानो कमलों को पाला मार गया है अर्थात् सब उदास होकर बैठे हैं।

कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहिं ससोच देखि मन मारे। पूछति नइहर कुसल हमारे॥

शब्दार्थ—दव लाइ = दावाग्नि लगाकर। मनमारे = म्लान, उदास। नैहर = (प्रा० णाइ = पिता + हर = घर) मायका, पिता का घर।

भावार्थ—(उन उदास लोगों में) कैकेयी इस प्रकार प्रसन्न है मानो किराती (जंगल में) दावाग्नि लगाकर प्रसन्न हो रही है। पुत्रको सोच करते हुए और उदास देखकर पूछती है कि हमारे मायके में कुशल तो है?

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई।

कहु कहँ तात कहाँ सब माता । कहँ सियराम लषनु प्रिय भ्राता ॥

भावार्थ—भरत जी ने सम्पूर्ण कुशल कहकर सुना दी । और तब अपने कुलकी कुशल-क्षेम पूँछी । कहने लगे–पिता जी कहाँ हैं, सब माताएँ कहाँ हैं, सीता जी और प्यारे भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं ? (कहीं शिकार आदि खेलने के लिए या अन्य आवश्यक कार्य से बाहर तो नहीं गये हैं)

दो०—सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नयन ।
भरत स्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बयन ॥ १६० ॥

शब्दार्थ—सूल-सम=काँटे के समान, दुख देनेवाले ।

भावांर्थ—पुत्रके प्रेमपूर्ण वचन सुनकर, नेत्रों में कपट का जलभर कर भरतजी के कान और मन को काँटे के समान दुख देनेवाले बचन पापिनी कैकेयी बोली—

तात बात मैं सकल सँवारी । भइ मंथरा सहाय बिचारी ।
मिलिहि माँझ बिधिकाजु बिगारेउ । भूपति सुरपतिपुर पगु धारेउ ॥

शब्दार्थ—सँवारी=ठीक करली है । मिलिहि मांझ=साथही साथ । सुरपतिपुर पगु धारेउ=बैकुंठ को चले गये, शरीरांत हो गया ।

भावार्थ—हे तात ! मैंने सब बात ठीक करली थी, बेचारी मंथरा मेरी सहायक हुई, पर साथही साथ ब्रह्मा ने एक काम बिगाड़ दिया कि राजा साहब बैकुंठ चलेगये (राजा का शरीरांत हो गया)

(नोट) 'मिलिहि माँझ' यह ठेठ अवधी मुहावरा है । अब भी अवधमें इस मुहावरे का प्रयोग इसी अर्थ में होता है ।

सुनत भरत भे बिबस बिषादा । जनु सहमेउ करि केहरि नादा ॥
तात तात हा तात पुकारी । परे भूमितल ब्याकुल भारी ॥

शब्दार्थ—बिषाद बिबस भे=दुखी हुए । सहमेउ=(फा० सहम) डर गया । करि=हाथी । केहरिनादा=सिंह की आवाज से, सिंहनाद से । परे=गिर पड़े ।

भावार्थ—यह सुनते ही भरत जी बड़े दुखी हुए, मानो हाथी सिंहनाद से डर गया है। "तात! तात!! हा तात!!!" कहते हुए अत्यंत व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

चलत न देखन पायेउँ तोहीं। तात न रामहिं सौंपेहु मोहीं॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥

शब्दार्थ—सौंपेहु = (सं० समर्पण) सुपुर्द किया।

भावार्थ—(भरत जी विलाप करने लगे) हे पिताजी मैं तुम्हें परलोक जाते समय न देख सका। हे तात! आपने मुझे रामजी को नहीं सौंपा। फिर धैर्य धारण कर भरतजी सम्हलकर उठे और कहा, हे माता! पिता जी की मृत्यु का कारण बता।

सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरमु पाँछि जनु माहुर देई॥
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥

शब्दार्थ—मरमु = घाव। पाँछि = दबादबा कर, विकार निकाल करके, साफ करके। माहुर = बिष, जहर।

भावार्थ—पुत्रके वचन सुनकर कैकेयी कहने लगी, मानो घाव को साफ करके उसमें विष दे रही है, आदिसे अन्त तक अपनी सब करतूत उस कुटिल और कठोर कैकेयी ने प्रसन्न मन से कह डाली।

दो०—भरतहिं बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जिअ थकित रहे धरि मौनु॥१६१॥

शब्दार्थ—बन-गौनु = वनगमन, वनवास। हेतु = कारण। अपनपउ = अपनापन, अपने को। थकित = (सं० स्थगित) स्तंभित। धरि मौनु = चुप साध कर।

भावार्थ—रामजी का बन गमन सुनते ही भरत जी को पिताका मरण भूल गया (राम-वनवास में) अपने को ही हृदय में कारण समझ चुपसाध कर स्तंभित हो गये।

बिकल बिलोकि सुतहिं समुझावति। मनहुं जरेपर लोन लगावति॥

तात राउ नहिं सोचन जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउभोगू॥

शब्दार्थ—लोन = (सं० लवण) नमक। बिढ़इ = (सं० वृद्धि) पैदा करके, बढ़ाकर।

भावार्थ—पुत्रको व्याकुल देखकर कैकेयी समझाती है मानो जले स्थान पर नमक लगा रही है। (जले अंग में नमक असह्य पीड़ा करता है भरत को भी इन वाक्यों से असह्य पीड़ा हुई) हे तात ! राजा साहब सोच करने योग्य नहीं हैं। उन्होंने पुण्य और यश बढ़ा करके (सांसारिक वस्तुओं) का (भलीभाँति) उपभोग किया है।

जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमर पति-सदन सिधाए।
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू।

शब्दार्थ—जीवत = जीते जी। अमरपति-सदन सिधाए = इन्द्र लोक गये, वैकुंठ वासी हुए।

भावार्थ—राजा साहब ने जीते जी जन्म लेने का सम्पूर्ण फल पा लिया और अन्त में वैकुंठ वासी हुए। ऐसा मन में अनुमान करके शोक त्यागो और अपनी समाज (मंत्री, सेनापति इत्यादि) सहित नगर का राज्य करो।

सुनि सुठि सहमेउ राज कुमारू। पाके छत जनु लाग अँगारू।
धीरजु धरि भरि लेहिं उसाँसा। पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा।

शब्दार्थ—सुठि = (सं० सुष्ठु) अत्यंत। सहमेउ = डर गये। पाके-छत = पके हुए घाव में। अँगारू = चिनगारी। उसासा = लम्बी सांस।

भावार्थ—कैकेयी की यह बात सुनकर राज कुमार भरत बहुत डर गये। मानो पके हुए घाव में अंगार लग गया (पके घाव में अग्नि लगने से कितनी पीड़ा होगी ? अत्यधिक। इसी प्रकार भरत जी को ये वचन कष्ट-दायी हुए) धैर्य धारण करके भरत जी आह भर कर साँस लेते हैं और कहते जाते हैं, हे पापिनी ! तू ने सब प्रकार से कुल का नाश कर दिया।

जो पै कुरुचि रही असि तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही।
पेड़ काटि तैं पालव सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा।

शब्दार्थ—कुरुचि = बुरा विचार । जनमत = जन्म लेते ही । पालव = (सं० पल्लव) पत्ता । मीन = मछली । निति (निमित) लिए । उलीचा = (सं० अल्लुंचन) पानी फेंकना ।

भावार्थ—यदि ऐसा बुरा विचार तेरे मन में था तो तू ने मुझे जन्मते ही क्यों नहीं मार डाला ? (जिससे यह सब झंझट ही न होता) तूने पेड़ काटकर पत्ते को सींचा है । और मछली के जीने के लिए पानी को (जलाशय से बाहर) उलीच दिया है । (अर्थात् राजा दशरथ जी पेड़ के समान थे उन्हें छोड़ मुझ पत्ते को राज्य दिया है और मुझ मछली के जीने के लिए जल रूप रामजी को वनवास दे दिया फिर कार्य कैसे ठीक हो सकता है)

अलङ्कार—ललित ।

दो०—हंस वंस दशरथ जनक, राम लषन से भाइ ।
जननी तू जननी भई, विधि सन किछु न बसाइ ॥१६२॥

शब्दार्थ—हंस वंस = सूर्यवंश । जनक = पिता । जननी = माता । बसाइ = वश ।

भावार्थ—(भरत जी कहते हैं, देख मैं कितना भाग्यवान हूं) सूर्यवंश में मेरा जन्म हुआ है, दशरथ जी हमारे पिता हुए हैं, राम और लक्ष्मण से भाई हैं, पर हे जननी ! तू मेरी जननी (पैदा करने वाली) हुई ? ब्रह्मा से कुछ भी वश नहीं है । अर्थात् कुल, पिता और भाई श्रेष्ठ मिले तो माता भी श्रेष्ठ होनी चाहिए थी पर ब्रह्मा की मरज़ी न जाने कैसी है कि उसने बुरी माता मुझे दी ।

जब तैं कुमति कुमत जिअ ठयेऊ । खंड खंड होइ हृदय न गयेऊ ॥
बर मांगत मन भई न पीरा । जरि न जीह मुहँ परे न कीरा ॥

शब्दार्थ—कुमत = (कुमन्त्र) बुरा विचार । ठयेऊ = (सं० स्थ) स्थित हुआ, जमा, आया । गरि न = गल नहीं गयी । कीरा = (सं० कीट) कीड़ा ।

भावार्थ—हे कुमति ! जब से तेरे मन में कुमन्त्र आया, तभी तेरा हृदय टुकड़े टुकड़े क्यों नहीं हो गया ? वरदान मांगने में मन में पीड़ा नहीं हुई ? जीभ नहीं गल गयी ? मुख में कीड़े नहीं पड़े ?

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरनकाल विधि मतिहरि लीन्ही ॥
विधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल-कपट-अघ अवगुन खानी
सरल सुसील धरम रत राऊ। सो किमि जानइ तीय सुभाऊ ॥

शब्दार्थ—भूप=राजा। प्रतीति=विश्वास। किमि=कैसे। मति=बुद्धि। अघ=पाप। खानी=घर, खानि।

भावार्थ—राजा ने तेरा विश्वास कैसे कर लिया ? (ठीक है) मरते समय ब्रह्मा ने उनकी बुद्धि हर ली। ब्रह्मा भी स्त्रियों के हृदय की चाल नहीं जानता (फिर राजा साहब क्या जान सकते थे) स्त्रियाँ सम्पूर्ण कपट, पाप और दुर्गुणों की खानि ही हैं। सरल सुशील और धर्मिष्ठ राजा किस प्रकार नारि स्वभाव को जान सकते थे।

अस को जीव जन्तु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान-प्रिय नाहीं ॥
भे अति अहित राम तेउ तोहीं। को तू अहसि सत्य कहु मोहीं ॥
जो हसि सो हसि,मुहँ मसिलाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

शब्दार्थ—हसि=है। मसि लाई=कालिख लगाकर। ओट=ओझल।

भावार्थ—(भला बता तो) कौन ऐसा जीव-जन्तु संसार में है जिसे रामचन्द्रजी प्रान से प्रिय नहीं हैं ? (अर्थात् सब को प्राण-प्रिय हैं) ऐसे रामचन्द्र भी तुझे बड़े भारी शत्रु जान पड़े, तू कौन है ? (नर वेश में राक्षसी तो नहीं है ?) सची सची बात मुझे बतादे ? तू जो है सो है, अब मुख में कालिख लगाकर मेरी आँखों से ओट होकर कहीं अन्यत्र जा बैठ। (मैं तेरा मुख देखना नहीं चाहता)

दो०—राम विरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह विधि मोहिं।
मो समान को पातकी वादि कहउँ किछु तोहिं ॥ १६३ ॥

शब्दार्थ— मो समान = मुझ ऐसा। पातकी = पापी। बादि = व्यर्थ।

भावार्थ—(भरत जी कुछ सोच विचार कर कहने लगे) ब्रह्मा ने मुझे राम-विरोधी हृदय से उत्पन्न किया है, इस लिए मेरे समान पापी कौन है? (कोई नहीं) अतएव मैं तुझे व्यर्थ ही कुछ (कटु वचन) कहता हूं। (यह सब मेरे पापों का ही परिणाम है)

सुनि सत्रुघन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस किछु न बसाई॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥

शब्दार्थ—सत्रुघन = शत्रुघ्न। गात = शरीर। रिस = क्रोध। बसन = बस्त्र। बिभूषन = गहने।

भावार्थ—माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्न जी का शरीर क्रोध से जला जाता था, पर कुछ वश नहीं चलता था। इसी समय नाना प्रकार के वस्त्र तथा गहनों से अपने को सजाये हुए कुबड़ी मंथरा वहां पर आई।

लखि रिस भरेउ लषन-लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई।
हुमकि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करत पुकारा।

शब्दार्थ—लखि = (सं० लक्ष) देखकर। अनल = अग्नि। आहुति = हवनीय पदार्थ। हुमकि = (सं० हुंकार) हूं करके, जोर से। तकि = ताककर। परि = गिर पड़ी। मुँह भरि = मुँह के बल। महि = पृथ्वी पर।

भावार्थ—लक्ष्मण जी के छोटे भाई शत्रुघ्न जी उस मंथरा को देखकर क्रोध से और भर गये मानो जलती हुई आग में घी की आहुति पड़ गयी (घी की आहुति से अग्नि अधिक जल उठती है) कूबड़ ताक कर उस पर जोर से लात मारी। (लात लगने से मंथरा) चिल्लाती हुई मुँह के बल पृथ्वी पर गिर पड़ी।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा॥

शब्दार्थ—कपारू = (सं० कपाल) माथा। दलित = टूट गये। दसन = दांत। रुधिर-प्रचारू = खून बहता है। दइअ = (सं० दैव) ब्रह्मा।

नसावा = बिगाड़ा। नीक = अच्छा। अनइस = (सं० अनइष्ट) बुरा।

भावार्थ—कूबड़ टूट गया, माथा फूट गया, दाँत टूट गये और मुख से खून बहने लगा। मंथरा कहने लगी हा ब्रह्मा ! मैंने क्या बिगाड़ा कि अच्छा करते हुए बुरा फल मिला (अर्थात् मैंने राज पाने की सलाह दी और मार खाती हूं)

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।
भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई।

शब्दार्थ—नख सिख खोटी = सर्वाङ्ग दुष्टा, बड़ी दुष्टा। झोंटी = बालों का समूह, चोटी। पहिं = पास।

भावार्थ—शत्रुघ्न जी ने यह सुनकर और बड़ी दुष्टा जानकर उसकी चोटी पकड़ पकड़ कर उसे घसीटने लगे। दयालु भरत जी ने उसे छुड़ा दिया और दोनों भाई कौशिल्या जी के पास गये।

दो०—मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुखभारु।
कनक-कलप-वर-बेलि बन मानहुँ हनी तुसारु॥ १६३॥

शब्दार्थ—मलिन-बसन = मैले वस्त्र। कृस सरीर = शरीर दुबला है। कनक-कलप-वर-बेलि = सोने की सुन्दर कल्पलता। हनी = (सं० हनन) नष्ट कर दी। तुसारु = हिम, पाला।

भावार्थ—भरत जी ने कौशिल्या जी को देखा कि) वस्त्र मैले हैं, मुख का रंग फक हो गया है व्याकुल हैं, दुख के भार से शरीर दुर्बल हो गया है मानों बन में सोने की सुन्दर कल्पलता को पाले ने नष्ट कर दिया है।

भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइँ आई।
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी।

शब्दार्थ—झइँ आई = चक्कर खाकर, बेहोश होकर, तिलमिलाकर।

भावार्थ—भरत जी को देखकर माता कौशल्या उठकर (उनको हृदय से लगाने के लिये) दौड़ीं पर चक्कर खाकर मुरछित हो पृथ्वी पर गिर पड़ीं। माता की यह दशा देखते ही भरत जी बड़े व्याकुल हो गये और

अपने शरीर की दशा (अपनत्व) को भूलकर चरणों पर गिर पड़े (साष्टांग प्रणाम किया)

मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लषनु दोउ भाई॥
कैकइ कत जनमी जग माँझा। जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा॥

शब्दार्थ—तात = पिता जी। कत = क्यों। माँझा = (सं० मध्य प्रा० मज्झ) में। जौं = यदि। त = तो। बाँझा = (सं० वन्ध्या प्रा० वंझा) जिसे सन्तान न हो।

भावार्थ—(भरत जी कहने लगे) हे माता ! पिता जी को दिखा दे वे कहाँ हैं ? सीता और राम-लक्ष्मण दोनों भाई कहाँ हैं। कैकेयी संसार में क्यों जन्मी ? यदि जन्मी ही थी तो वन्ध्या क्यों नहीं हुई ? (अर्थात् ऐसे कृत्य करने वाली को वन्ध्या होना चाहिए था कि पुत्र होता ही नहीं तो यह बखेड़ा काहे को खड़ा होता)

कुल कलंक जेहिं जनमेउ मोहीं। अपजस-भाजनु प्रिय जन द्रोही॥
को त्रिभुवन मोहिं सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहिं लागी॥

शब्दार्थ—अपजस-भाजन = बदनामी का पात्र। गति = दशा। जेहिं लागी = जिसके कारण।

भावार्थ—जिस कैकेयी ने मुझ ऐसा कुलकलङ्क पुत्र पैदा किया। जो बदनामी का पात्र और प्रिय जनों का द्रोही है। त्रैलोक में मेरे समान दुर्भाग्य मनुष्य कौन होगा, हे माता ! जिसके कारण तुम्हारी ऐसी (बुरी) दशा हुई है।

पितु सुरपुर, बन रघुकुल केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मैं भयेउँ बेनु-बन-आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥

शब्दार्थ—सुरपुर = वैकुण्ठ में। रघुकुल केतू = रघुवंश में श्रेष्ठ (रामचन्द्र जी)। अनरथ हेतू = अनर्थ का कारण। धिग = धिक्कार है। बेनु = बाँस। दाह = जलन। दूषन = दोष। भागी = हिस्सेदार, पानेवाला।

भावार्थ—पिता जी वैकुण्ठ में गये और रघुवंश में श्रेष्ठ रामचन्द्र जी

बन में गये, इन सब अनर्थों का कारण केवल मैं ही हूं। मुझे धिक्कार है कि मैं बाँस के वन के लिए अग्नि (की तरह जलानेवाला) हुआ। और असह्य जलन, दुःख, तथा दोष का भागी हुआ।

दो०—मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिये उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि॥ १६५॥

शब्दार्थ—सँभारि = सँभल कर। लोचन = नेत्र। मोचति = बहाती है। बारि = जल, आँसू।

भावार्थ—माता कौशल्या भरत के नम्र बचन सुनकर पुनः सम्हल कर उठीं और उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। नेत्रों से आँसू बह रहे हैं।

सरल सुभाय माय हिय लाए। अति हित मनहु राम फिरि आए॥
भेंटेउ बहुरि लषन-लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदय समाई॥

शब्दार्थ—सरल = सीधे। माय = माता। हिय लाए = हृदय से लगा लिया। अतिहित = बड़े प्रेम से। लषन-लघु-भाई = शत्रुघ्न। न समाई = समाता नहीं।

भावार्थ—सीधे स्वभाव से माता कौशिल्या जी ने बड़े प्रेम से (भरत जी को) हृदय से लगा लिया मानो राम लौटकर आ गये हों। फिर शत्रुघ्न को भेंटा। उस समय इतना शोक और स्नेह उमड़ा कि वह (हृदय में) नहीं समाता।

देखि सुभाउ कहत सब कोई। राम मातु असि काहे न होई॥
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे॥

शब्दार्थ—उचारे = (सं० उच्चारण) कहे।

भावार्थ—कौशल्या जी का ऐसा सरल स्वभाव देखकर सब लोग कहते हैं कि राम की माता ऐसी क्यों न हो। (ऐसी होना ही चाहिए) कौशल्या जी ने भरत जी को गोद में बैठाया और उनके आँसू (अपने अंचल से) पोंछ कर मीठे बचन कहे।

अजहुँ बच्छु बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू।
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी।

शब्दार्थ—अजहुँ = (सं० अद्यापि) अब भी। बच्छु = (सं० वत्स प्रा० बच्छ) बच्चा। बलि = बलिहारी जाती हूं। गति = चाल। अघटित = जो घट बढ़ न सके (अमिट, अचल)

भावार्थ— हे वत्स! मैं बलिहारी जाती हूं अब भी धैर्य धारण करो और कुसमय समझ कर शोक छोड़ो। काल और कर्म की चाल अचल समझ कर हृदय में हानि ग्लानि मत मानो।

काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब विधि बाम विधाता।
जो एतेहु दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानै का तेहि भावा।

शब्दार्थ—काहुहि = किसी को। जनि = मत। बाम = टेढ़ा, अप्रसन्न। एतेहु = इतने पर भी। अजहुँ = अब भी। को = कौन। भावा = अच्छा लगता है (करना है)

भावार्थ—हे तात! किसी को दोष मत दो। सब प्रकार से ब्रह्मा मेरे प्रतिकूल हो गया है। जो इतने दुख पर भी वह मुझे जिला रहा है तो अब भी उसे क्या भाता है (क्या करना है?) यह कौन जान सकता है? (कोइ नहीं जान सकता)

दो०—पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुवीर।
बिसमउ हरष न हृदय किछु, पहिरे बलकल चीर॥१६६॥

शब्दार्थ—पितु आयसु = पिता की आज्ञा से। भूषन = गहना, जेवर। बसन = वस्त्र। बिसमउ = विषाद। बलकल चीर = पेड़ की छाल के वस्त्र (भोज पत्र के वस्त्र)

भावार्थ—हे तात! पिता की आज्ञा से रामचन्द्र ने जेवर और वस्त्र त्याग दिये (उतार डाले) उनके मन में कुछ हर्ष बिषाद नहीं था, उन्हों ने पेड़ की छाल के वस्त्र पहन लिये।

मुख प्रसन्न मन राग न रोषू। सब कर सब विधि करि परितोषू॥

चले बिपिन सुनि सिय संग लागी। रही न राम चरन-अनुरागी॥

शब्दार्थ—राग = प्रेम। रोपू = क्रोध। परितोषू = संतोष। बिपिन = वन। सँग लागी = साथ लगी गयी।

भावार्थ—रामचन्द्र का मुख प्रसन्न था, मन में न किसी से प्रेम न किसी पर क्रोध (प्रगट होता था)। सब लोगों को सब प्रकार से संतोष देकर वन चले। यह समाचार सुन कर सीता भी साथ में चली गयी, राम-चरण की अनुरागिणि होने से वह (अयोध्या में) न रही।

सुनतहिं लखन चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥

शब्दार्थ—रहहिं न = रह न सके। जतन = यत्न। सिरु नाई = प्रणाम करके।

भावार्थ—(राम का वन जाना) सुनते ही लक्ष्मण भी उनके साथ में उठकर चले। उनके रहने के लिए रामचन्द्र ने बहुत से यत्न किये पर वे रह न सके। तब रामचन्द्र जी सब को प्रणाम करके सीता और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वन को चल दिये।

रामु लखनु सिय बनहिं सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए॥
एहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे॥

शब्दार्थ—सिधाए = चले गये। न प्रान पठाए = प्राणों को न भेजा, प्राण नहीं छोड़ा। तउ = तौभी। तनु = शरीर।

भावार्थ—राम, लक्ष्मण और सीता वन चले गये, मैं न तो साथही गयी और न प्राणों को ही भेजा (प्राण नहीं छोड़ा) यह सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ, तौ भी इस अभागे जीव ने शरीर नहीं छोड़ा।

मोहिं न लाज निज नेह निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत-कुलिस समाना॥

शब्दार्थ—नेह = (सं० स्नेह) प्रेम। सुत = पुत्र। जिअइ मरइ =

जीना और मरना। सत कुलिस = सौ वज्र।

भावार्थ—अपना प्रेम देखकर मुझे लज्जा भी नहीं आती। राम ऐसा पुत्र हुआ और मुझ ऐसी माता हुई (अर्थात् राम की माता होने की योग्यता मुझ में नहीं) जीना और मरना तो राजा ने ही अच्छा जाना, मेरा मन तो सौ वज्र के समान (कठोर) है।

दो०—कौशल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु।
व्याकुल बिलपत राजगृह मानहु सोक निवासु॥ १६७॥

शब्दार्थ—सोक निवासु = शोक का घर।

भावार्थ—कौशल्या जी के वचन सुनकर भरत सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलपने लगा। उस समय राज भवन मानों शोक का घर ही हो गया।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिए हृदय लगाई॥
भाँति अनेक भरतु समझाए। कहि बिवेकमय बचन सुनाए॥

भावार्थ—दोनों भाई भरत और शत्रुघ्न व्याकुल होकर विलाप करने लगे। कौशल्या जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया और कई प्रकार से भरत को समझाया और उन्हें विवेक पूर्ण वचन कह कर सुनाये।

भरतहु मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान स्रुति कथा सुहाईं॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥

शब्दार्थ—स्रुति = वेद। सुचि = पवित्र। जुग = दोनों। पानी = (सं० पाणि) हाथ।

भावार्थ—तब भरत जी ने भी अन्य सब माताओं को पुराण और वेद की सुन्दर कथाएँ कह कर समझाया। भरत जी दोनों हाथ जोड़ कर छल रहित, पवित्र, सरल और सुन्दर वाणी बोले।

जे अघ मातु पिता गुरु मारे। गाइ गोठ महिसुर-पुर जारे॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥

जे पातक उपपातक अहहीं। करम वचन मन-भव कवि कहहीं॥
ते पातक मोहिं होहु विधाता। जौ एहु होइ मोर मत माता॥

भावार्थ—मारें = हत्या करने से। गाइ गोठ = (गौ गोष्ठ) गौशाला। महिसुर-पुर = ब्राह्मणों का नगर। जारे = जला देने से। तिय = स्त्री। बध कीन्हें = मारने से, हत्या करने से। मीत = (सं० मित्र) दोस्त। मही पति = राजा। माहुर = विष। पातक = पाप। मन-भव = मन में उत्पन्न होने वाले। कवि = विद्वान्। मत = राय।

भावार्थ—जो पाप माता पिता और गुरु की हत्या करने से होते हैं, जो पाप गौशाला और ब्राह्मणों का नगर जलाने से होते हैं, जो पाप स्त्री और बालक की हत्या करने से होते हैं, जो पाप मित्र और राजा को विष देने से होते हैं, जितने पातक और उपपातक हैं कर्म, वचन और मन-कृत विद्वान् लोग जितने पातक बतलाते हैं, वे सब पाप हे ब्रह्मा! मुझे हों, हे माता! यदि इस (राम वनवास) में मेरी राय हो।

दो०—जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूत गन घोर।
तिन्ह कै गति मोहि देउ विधि, जौ जननी मत मोर॥१६८॥

शब्दार्थ—गति = दशा।

भावार्थ—जो लोग विष्णु और महादेव के चरणों को त्याग कर घोर भूतों को भजते हैं, हे माता! उनकी गति मुझे ब्रह्मा दें यदि इसमें मेरी राय हो

बेंचहिं बेदु धरम दुहु लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। वेद विदूषक विस्व विरोधी॥
लोभी लम्पट लोलुप चारा। जे ताकहिं पर धनु पर-दारा॥
पावउँ मैं तिन्ह कइ गति घोरा। जौ जननी एहु संमत मोरा।

शब्दार्थ—बेचहिं वेदु = वेद को बेंचते हैं (द्रव्य लेकर वेद पढ़ाना ही वेद का बेंचना है) बेचहिं धरम = धर्म बेंचते हैं (द्रव्य लेकर कन्या आदि देना धर्म बेंचना है) दुहु = (दुः) पाप। लेहीं = खरीदते हैं, पाते हैं, कमाते हैं। पिसुन = चुगुल। कलह प्रिय = झगड़ालू। लोलुप चारा = व्यभि

चारी (इन्द्रियों के लोभी) ताकहिं=देखते हैं (यहाँ पर कुदृष्टि से देखने का अभिप्राय है , परधनु ताकहिं=दूसरे का धन चुराने की इच्छा करते हैं । परद्वारा ताकहिं=दूसरे की स्त्री की कुदृष्टि से देखते हैं। गति=दशा । (दुरावस्था) । संमत=राय ।

भावार्थ—जो लोग वेद और धर्म बेचते हैं और पाप कमाते हैं, चुगुलखोर हैं, दूसरे के पाप को (उस की बुराई होने के विचार से सब से) कह देते हैं, कपटी है, कुटिल है, झगड़ालू हैं, क्रोधी है, वेदों की निन्दा करने वाले हैं, संसार भर के विरोधी हैं, लोभी हैं, लंपट हैं, व्यभिचारी हैं, और जो दूसरे के धन को चुराने का विचार करते हैं, तथा दूसरे की स्त्री को कुदृष्टि से देखते हैं, हे माता ! उनकी सी भयङ्कर दुरवस्था मेरी हो यदि इसमें (रामचन्द्र जी को वन देने में) मेरी राय रही हो ।

जे नहिं साधु-संग अनुरागे । परमारथ पथ बिमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई । जिन्हहिं न हरिहर सुजसु सुहाई ॥
तजि स्रुति पंथ बाम पथ चलहीं । बंचक बिरचि बेषु जग छलहीं ॥
तिन्ह कइ गति मोहिं संकर देऊ । जननी जौं यहु जानउँ भेऊ ॥

शब्दार्थ—अनुरागे=प्रेम किया । परमारथ-पथ-बिमुख=मोक्ष प्राप्ति के मार्ग के प्रतिकूल हैं । भजहिं=सेवा करते हैं । स्रुति पंथ=वेद विहित मार्ग । बाम पथ चलहीं=वाम मार्गी हैं । बंचक=ठग । भेऊ=भेद, रहस्य ।

भावार्थ—जिन्होंने साधु-संगति से प्रेम नहीं किया, जो अभागे मोक्ष प्राप्ति के मार्ग के विमुख रहे, जो मनुष्य शरीर पाकर भगवान् की सेवा नहीं करते, जिन्हें विष्णु भगवान और महादेव जी का सुयश नहीं भाता, जो लोग वेद विहित मार्ग को त्याग कर वाम मार्गी हो गये हैं, जो ठग स्वांग बनाकर संसार को छलते हैं, हे माता ! महादेव जी मुझे ऐसे मनुष्यों की गति दें, यदि मैं इस कांड का रहस्य भी जानता होऊँ ।

दो:—मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभाय ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन काय ॥१६९॥

भावार्थ—माता कौशल्या भरत जी के सच्चे सरल और स्वाभाविक वचन सुन कर कहने लगीं, हे तात ! तुम मन, वचन, शरीर से रामचन्द्रजी को प्रिय हो॥

राम प्रान तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतहिं प्रान तें प्यारे॥
बिधु बिषु चुवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भए ज्ञान वरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यह जे जग कहहीं। ते सपनेहु सुखु सुगति न लहहीं।

शब्दार्थ—बिधु=चन्द्रमा। चुवै=टपकावे। स्रवै=गिरावे। हिमु=बरफ़। बारिचर=जलजन्तु। वरु=चाहे। न लहहीं=नहीं पा सकते।

भावार्थ—हे तात! राम जी तुम्हारे प्राणों के भी प्राण हैं (तुम्हें अत्यन्त प्यारे हैं) और तुम भी रामचन्द्र जी को प्राण से अधिक प्यारे हो। चन्द्रमा चाहे (अमृत न देकर) विष टपकावे, चाहे बर्फ़ से अग्नि गिरे, जल-जन्तु चाहे जल से विरक्त हो जाँय, ज्ञान होने पर भी चाहे मोह का नाश न हो (अर्थात् ये असम्भव बातें भी चाहे सम्भव हो जाँय) परन्तु हे भरत! तुम रामचन्द्र के प्रतिकूल नहीं हो सकते। राम बनबास में जो तुम्हारी राय कहैं वे स्वप्न में भी सुख और सुन्दर गति नहीं पा सकते।

अस कहि मातु भरत हिय लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहि बीति गई सब राती॥

शब्दार्थ—थन=(सं० स्तन)। पय=दूध। स्रवहिं=टपकाते हैं। छाए=भर गया।

भावार्थ—ऐसा कहकर माता कौशल्या ने भरत को हृदय से लगा लिया। (अत्यन्त प्रेम के कारण) स्तनों से दूध टपकने लगा और नेत्रों में जल भर गया। इस प्रकार अत्यंत बिलाप करते करते बैठे ही बैठे रात बीत गयी।

बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए।
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥

शब्दार्थ—उपदेसे=उपदेश दिया। परमारथ-बचन=परलोक सम्बन्धी

बातें। सुदेसे=सुन्दर।

भावार्थ—प्रातःकाल वामदेव और वशिष्ठ जी आये और सब मंत्रियों तथा बड़े बड़े लोगों को बुलवाया। मुनि ने बहुत प्रकार से भरत को परमार्थ सम्बन्धी सुन्दर वचन कहकर उपदेश दिया।

दो०—तात हृदय धीरज धरहु करहु जो अवसरु आजु।
उठे भरत गुरु वचन सुनि करन कहेउ सब काजु॥१७०॥

भावार्थ—वशिष्ठ जी ने कहा—हे तात! हृदय में धैर्य धारण करो और आज इस समय पर जो करना चाहिये सो करो। गुरु जी का वचन सुनकर भरत जी उठे। तब वशिष्ठ जी ने सब कार्य करने को कहा।

नृपतनु बेद विहित अन्हवावा। परम विचित्र विमान बनावा।
गहि पद भरत मातु सब राखीं। रहीं राम दरसन अभिलाखीं॥

शब्दार्थ—वेद विहित=बेद के नियमानुसार। विमान=अर्थी। राखीं=रख छोड़ा (सती होने से बचाया)

भावार्थ—राजा दशरथ का मृतक शरीर बेद के नियमानुसार नहवाया गया और उसके लिए अत्यंत विचित्र विमान (अर्थी) बना। (सब माताएँ सती होने जा रहीं थीं) पर भरत जी ने चरण पकड़कर सबको सती होने से बचाया, वे भी रामचन्द्र जी के दर्शन की अभिलाषा से रह गयीं (सती नहीं हुईं)

चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुर पुर सोपान सुहाई॥

शब्दार्थ—अगर=एक सुगंधित काष्ठ। भार=बोझा। (जितना एक मनुष्य उठा सके) अमित=बहुत। अनेक=कई प्रकार के। सोपान=सीढ़ी।

भावार्थ—चन्दन, अगर आदि सुगंधित काष्ठों के कितने ही बोझे आये जो तौल में बहुत, कई प्रकार के और सुन्दर थे। सरयू के किनारे रचकर (कारीगरी से) चिता बनाई गई (वह ऐसी जान पड़ती थी) मानों बैकुंठ की सुन्दर सीढ़ी ही है।

एहिबिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।

सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना।

शब्दार्थ—दाह-क्रिया = जलाने की क्रिया। विधिवत = विधि पूर्वक। सोधि = जाँचकर। सुमृति = (स्मृति) धर्म शास्त्र। दसगात = दश गात्र। बिधान = क्रिया।

भावार्थ—इस प्रकार सम्पूर्ण दाह क्रिया की गयी। विधि पूर्वक सब ने स्नान करके तिलांजुलि दी। भरत जी ने सम्पूर्ण स्मृति, वेदों और पुराणों से जाँच कर दश गात्र की क्रिया (पिंडादि) की।

जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा।
भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥

शब्दार्थ—सहस भाँति = सहस्रों प्रकार से, भली भाँति। धेनु = गाय। बाजि = घोड़ा। गज = हाथी। बाहन = सवारी।

भावार्थ—जहाँ पर मुनिवर वशिष्ट जी ने जैसी आज्ञा दी वहाँ पर वैसाही सब काम किया गया। अशौच से शुद्ध होकर भरत जी ने सब दान दिये। गाय, घोड़े, हाथी और बहुत सी सवारियाँ दान दीं।

दो०—सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत, लहि भूमि सुर भे परि पूरन काम॥ १७१॥

शब्दार्थ—भूषन = जेवर। बसन = वस्त्र। धरनि = पृथ्वी। धाम = मकान। लहि = पाकर। भूमिसुर = ब्राह्मण। भे परिपूरन काम = कामनाएँ पूर्ण हो गयीं, संतुष्ट हो गये।

भावार्थ—भरत जी ने ब्राह्मणों को सिंहासन, जेवर, वस्त्र, अन्न, पृथ्वी, धन और मकान आदि दान दिये। ब्राह्मण लोग यह दान पाकर इतने धनी हो गये कि उन्हें अब और दान लेने की इच्छा ही न रह गई।

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।
सुदिन सोधि मुनिवर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥

शब्दार्थ—हित = लिए, वास्ते। करनी कीन्हि = (अवधी मुहावरा)

'करनी करना' और 'काम करना' उस कार्य को कहते हैं जो किसी के मर जाने पर दानादि किया जाता है।

भावार्थ—पिता के लिए भरत ने जैसी करनी की वह लाखों मुख से भी नहीं कही जा सकती। सुन्दर दिन सोध कर तब मुनिवर वशिष्ठ जी आये और सब मंत्रियों और महाजनों को बुलवाया।

बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु वसिष्ठ निकट बैठारे। नीति-धरम-मय वचन उचारे॥

शब्दार्थ—बोलि पठए=(मुहावरा) बुला भेजा। उचारे=कहे।

भावार्थ—राजसभा में सब जाकर बैठे और दोनों भाई भरत और शत्रुघ्न को बुला भेजा भरत जी को वशिष्ठ जी ने निकट बैठाया और नीति और धर्म पूर्ण वचन बोले।

प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी।
भूप धरमब्रतु सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥

शब्दार्थ—करनी=कृत्य। सराहा=प्रशंसा की।

भावार्थ—मुनिवर वशिष्ठ जी ने पहले कुटिल कैकेयी ने जैसे कृत्य किये थे उसकी सम्पूर्ण कथा वर्णन की, फिर राजा के धर्मव्रत और सत्य की प्रशंसा की जिन्होंने शरीर त्याग कर प्रेम को निबाहा।

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लषन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥

भावार्थ—रामचन्द्र जी के गुण, शील और स्वभाव को कहते ही मुनिराज वशिष्ठ जी के नेत्रों में जल भर आया और शरीर में रोमांच हो आया। फिर उन्होंने लक्ष्मण और सीता जी की प्रीति का वर्णन किया (इसके कहते कहते) ज्ञानी मुनि वशिष्ठ जी शोक और स्नेह में मग्न हो गये।

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥१७२॥

शब्दार्थ—भावी = होनहार। बिलखि = (वि + लक्ष्य) विशेष लक्ष्य करके, विवेक पूर्वक।

भावार्थ—वशिष्ठ जी ने विशेष लक्ष्य करके कहा, हे भरत ! सुनो, होनहार प्रबल है, हानि लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश सब ब्रह्मा के हाथ में हैं (किसी का दोष नहीं)

(नोट)-'बिलखि' शब्द का अर्थ "व्याकुल होकर" न होना चाहिये, क्योंकि वशिष्ट व्याकुल होते तो ऐसे विवेक पूर्ण वचन न कह सकते।

अस बिचारि केहि देइअ दोषू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोषू।
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोचु जोगु दसरथु नृप नाहीं।

शब्दार्थ—देइअ दोषू = दोष दूँ। रोषू = क्रोध।

भावार्थ—ऐसा विचार कर किसे दोष दिया जाय और व्यर्थ ही किस पर क्रोध किया जाय। हे तात ! अपने मन में विचार करो, राजा दशरथ जी शोच करने योग्य नहीं थे।

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।
सोचिअ बयसु कृपिन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू।
सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। मुखरु मान प्रिय ग्यान गुमानी॥

शब्दार्थ—सोचिअ = शोक करना अर्थात् 'सुगति होगी वा नहीं' ऐसी चिन्ता करना। विषय लय-लीना = भोग विलास में लगा रहे। नृपति = राजा (यहां पर क्षत्रिय) बयसु = वैश्य। कृपिन = कृपण, कंजूस। अवमानी = अपमान करने वाला। मुखरु = बकवादी। गुमानी = घमंडी।

भावार्थ—(क्योंकि) उस ब्राह्मण के लिए शोच करना चाहिए जो वेद न जानता हो और अपना धर्म त्याग कर भोग विलास में लगा रहे। उस क्षत्रिय के लिये शोच करना चाहिए जो नीति न जानता हो और जिसे प्रजा प्राण के समान प्यारी न हो। उस वैश्य के लिए शोच करना चाहिए जो धनवान् होकर भी कंजूस हो और अतिथि तथा शिव जी की भक्ति (आदर-

सत्कार तथा पूजा-सेवा) में चतुर न हो। उस शूद्र के लिए शोच करना चाहिए ब्राह्मणों का अपमान करता हो, बकवादी हो, अपना मान (इज्जत, आदर) चाहता हो और ज्ञान का घमंड करता हो,

(नोट) इस प्रसंग में 'सोचिअ' शब्द का अर्थ सर्वत्र यही समझना चाहिये जो ऊपर लिख आये हैं।

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी।
सोचिअ बटु निज ब्रत परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई।

शब्दार्थ—पति बंचक = पति को ठगने वाली, पति को धोखा देने वाली। कलह प्रिय = लड़ाकी। इच्छाचारी = स्वतंत्राचरणवाली। बटु = ब्रह्मचारी।

भावार्थ—फिर पति को धोखा देने वाली स्त्री के लिए शोच करना चाहिए जो कुटिल, लड़ाकी और स्वतंत्रताचरण वाली हो। उस ब्रह्मचारी के लिए शोच करना चाहिए जो अपना व्रत (ब्रह्मचर्य) त्याग दे और गुरु की आज्ञानुसार न चले।

दो०—सोचिअ गृही जो मोहबस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंचरत बिगत बिबेक बिराग ॥ १७३ ॥

शब्दार्थ—गृही = गृहस्थ। जती = सन्यासी। प्रपंच रत = माया में लीन।

भावार्थ—उस ग्रहस्थ के लिये शोचना चाहिये जो मोह के कारण कर्म मार्ग को छोड़ दें (कर्मण्यता त्याग दे) और उस संन्यासी के लिये शोचना चाहिए जो माया में लीन हो और बिवेक और वैराग्य-हीन हो।

बैखानस सोइ सोचइ जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावै भोगू॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुरु बंधु बिरोधी।

शब्दार्थ—बैखानस = बान प्रस्थ। बिहाइ = (सं० बिहाय) छोड़कर। भोगू = विषय। पिसुन = छली, चुगुलखोर।

भावार्थ—वह बानप्रस्थ शोच करने योग्य है जिसे तप छोड़कर विषय-विलास भला लगे। उस मनुष्य के लिए शोच करना चाहिए जो छली

हो बिना कारण क्रोध करता हो और माता-पिता गुरु तथा भाई से विरोध रखता हो।

सब बिधि सोचिअ पर-अपकारी। जिन तनु पोषक निरदय भारी।
सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छांड़ि छल हरिजन होई।

शब्दार्थ—पर-अपकारी = दूसरे की बुराई करने वाला। निज तनु पोषक = अपना पेट भरने वाला। हरिजन = भगवान का भक्त।

भावार्थ—सब प्रकार से उस मनुष्य को शोचना चाहिए जो दूसरे की बुराई करने वाला, अपना पेट भरने वाला और बड़ा निर्दय हो। वह भी सब प्रकार से शोचनीय है जो छल त्याग कर भगवान् का भक्त न हो।

सोचनीय नहिं कोसल राऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ।
भयेउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा।
बिधि हरिहर सुरपति दिसि नाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन-गाथा

शब्दार्थ—भयेउ न = हुआ नहीं। होनिहारा = होने वाला। विधि = ब्रह्मा। हरि = विष्णु। हर = महादेव। सुरपति = इन्द्र। दिसिनाथा = दिग्पाल। गुन गाथा = गुणानुवाद।

भवार्थ—कोशल राज श्री दशरथ जी सोच करने योग्य नहीं हैं, क्योंकि उनका प्रभाव तो चौदहो भुवनों में प्रगट है। हे भरत! जैसे तुम्हारे पिता थे, वैसा राजा (पृथ्वी पर) न हुआ है, न हैं, न अब भविष्य में होने वाला है। क्यों कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और दिग्पाल सब राजा दशरथ का गुणानुवाद गाते हैं।

दो०—कहहु तात केहि भाँति कोउ करइ बड़ाई तासु।
राम लषन तुम सत्रुहन सरिस सुअन सुचिजासु १७४॥

भावार्थ—हे तात! कहो उसकी बड़ाई कोई मनुष्य किस प्रकार से करे जिसके राम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न ऐसे पवित्र-पुत्र हैं।

सब प्रकार भूपति बड़भागी। वादि विषाद करिअ तेहि लागी।

एहु सुनि समुझि सोच परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू।

शब्दार्थ—बादि = व्यर्थ। तेहि लागी = उनके लिये। सिरधरि = मानकर। रजायसु = राजाज्ञा।

भावार्थ—हे भरत! राजा सब प्रकार से बड़े भाग्यवान् थे, उनके लिए विषाद करना व्यर्थ है। इसे सुनकर और समझकर सोच त्यागो; और राजा साहब की आज्ञा मानकर उसी के अनुसार कार्य करो।

राय राज पदु तुम्ह कहँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा।
तजे राम जेहि बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी।

शब्दार्थ—फुर = सत्य, ठीक। लागी = लिए। बिरहागीं = विरहाग्नि में।

भावार्थ—राजा ने तुम्हें राजपद दिया। पिता के वचनों को सत्य (उसके अनुसार कार्य) करना चाहिए (तदनुसार चलना आवश्य है) जिसने वचनों के लिए ही रामचन्द्रजी को भी त्याग दिया और राम जी की विरहाग्नि में अपना शरीर भी जला डाला (उसका बचन रखना ही चाहिये)

नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना।
करहु सीस धरि भूप रजाई। है तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई।

शब्दार्थ—प्रवाना = (सं० प्रमाण) प्रमाणित, ठीक। सीस धरि करहु = मानकर उसके अनुसार चलौ। रजाई = राजज्ञा, आज्ञा।

भावार्थ—राजा साहब को वचन प्रिय थे प्राण (उतने) प्रिय नहीं थे (इस लिये) हे तात! पिता के वचनों को प्रमाणित करो। राजा साहब की आज्ञा को मानकर उसके अनुसार तुम चलो, इसमें तुम्हारी सब प्रकार से भलाई ही है।

परसुराम पितु अग्याँ राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
तनय जजातिहिं जौबनु दयऊ। पितु अग्या अघ अजसु न भयऊ॥

शब्दार्थ—राखी = मानी। साखी = (सं० साक्षी) गवाह। तनय = लड़का, पुत्र। जौबनु = (सं० यौवन) जवानी।

भावार्थ—क्योंकि सम्पूर्ण संसार साक्षी है कि परशुराम जी ने अपने पिता की आज्ञा मानकर अपनी माता तक को मार डाला। और (पुरु-नामक) पुत्र ने (अपने पिता) ययाति को अपनी जवानी देदी, पर पिता की आज्ञा के कारण पाप और अपयश नहीं हुआ।

दो०—अनुचित उचित विचार तजि जे पालहिं पितु बयन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति अयन ॥१७५॥

शब्दार्थ—पालिहिं = पालन करेंगे। पितु बयन = पिता के वचन, पिता की आज्ञा। भाजन = पात्र। अयन = घर।

भावार्थ—(इस लिए) जो लड़के अनुचित और उचित का विचार त्याग कर (बिना ना-नुकुर के) पिता की आज्ञा का पालन करेंगे। वे सुख और सुयश के पात्र हैं और वे ही अन्त में इन्द्र लोक पाते हैं (स्वर्ग जाते हैं)

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा, सोक परिहरहू।
सुरपुर नृप पाइहि परितोषू। तुम्ह कहँ सुकृत सुयसु नहिं दोषू।

शब्दार्थ—फुर = (सं० स्फुरण) सत्य। सुरपुर = स्वर्ग। सुकृत = पुण्य।

भावार्थ—(अतएव) हे भरत! राजा साहब के वचनों को अवश्य सत्य करो (राजा दशरथ की आज्ञा मानो और) प्रजा का पालन करो तथा शोक को त्याग दो (ऐसा करने से) स्वर्ग में राजा साहब संतोष पावेंगे (संतुष्ट होंगे) तुम्हें भी (इससे) पुण्य और सुयश होगा (किसी प्रकार का) दोष न लगेगा।

बेद बिहित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावै टीका॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी॥

शब्दार्थ—बेद बिहित = वेदानुसार। संमत = राय, विचार। टीका = राज्यतिलक।

भावार्थ—यह बात वेदानुसार है और सबकी सम्मति भी यही है कि पिता जिसे दे उसेही राज्य तिलक मिलता है (इस लिये) राज करो और ग्लानि त्याग दो। मेरी बातों को हितकर समझकर मान लो।

सुनि सुखु लहब राम वैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही॥
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होंहि सुखारी॥

शब्दार्थ—लहब = (सं० लब्ध) पावेंगे। केही = कोई भी।

भावार्थ—(तुम्हें राज्य करते) सुनकर सीता और राम सुख पावेंगे। कोई भी पंडित (तुम्हारे इस कार्य को) अनुचित न कहेगा। कौशल्यादिक माताएँ भी प्रजा के सुख पाने से सुखी होंगी।

मरम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब विधि तुम्ह सन भल मानिहि।
सौंपेहु राजु राम के आएँ। सेवा करेहु सनेहु सुहाएँ॥

शब्दार्थ—मरम = (सं० मर्म) भेद। कर = का। सन = से। सौंपब = सं० समर्पण) दे देना। सुहाएँ = सुन्दर।

भावार्थ—जो मनुष्य तुम्हारा और रामचन्द्र जी का भेद जान लेगा, वह सब प्रकार से तुम से भला मानेगा। रामचन्द्र जी के आने पर राज्य उन्हें दे देना और सुन्दर-स्नेह के साथ उनकी सेवा करना।

दो०—कीजिअ गुरु आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि॥१७६॥

शब्दार्थ—बहोरि = पुनः।

भावार्थ—मंत्री हाथ जोड़कर कहने लगे, हे भरत जी! गुरु जी की आज्ञा अवश्य मानिये और इसी के अनुसार कार्य कीजिए (अर्थात् आप राज भार ले लें) रामचन्द्र जी के आने पर जैसा उचित जान पड़े तब तैसा पुनः कीजिएगा।

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुरु आयसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ विषादु कालगति जानी।

शब्दार्थ—पूत = (सं० पुत्र) हे बेटा!। पथ्य = करने योग्य, गुणकारी। हित = भला। कालगति = समय का फेर।

भावार्थ—कौशल्या जी धैर्य धारण कर कहने लगीं। हे बेटा गुरु जी की

आज्ञा गुणकारी है उसे भली मानकर उसका आदर करो (मानो) और समय का फेर समझ कर शोक त्याग दो।

बन रघुपति सुरपुर नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्ह ही सुत सब कहँ अवलंबा।

शब्दार्थ—सुरपुर=स्वर्ग में। नरनाहू=(नरनाथ) राजा साहब। कदराहू=(सं० कातर) डरते हो, हिचकिचाते हो। परिजन=कुटुंब। अंबा=माता। अवलंबा=आधार, सहाय।

भावार्थ—वन में रामचन्द्र जी हैं, स्वर्ग में राजा साहब हैं, और हे तात! तुम इस प्रकार हिचकिचा रहे हो? (यह ठीक नहीं क्योंकि) कुटुंब, प्रजा, मंत्री और माताओं सब के लिए तुम्हीं एक अवलम्ब हो।

लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरज धरहु मातु बलि जाई।
सिरधरि गुरु आयसु अनुसरहू। प्रजापालि परिजन दुख हरहू।

शब्दार्थ—बाम=टेढ़ा। बलि जाई=बलिहारी जाती है।

भावार्थ—ब्रह्मा का टेढ़ापन और समय की कठिनता देखकर धैर्य धरो। माता तुम्हारी बलिहारी जाती है। गुरु जी की आज्ञा मानकर उसी के अनुसार चलो और प्रजा का पालन (रक्षण) करके कुटुंब का दुःख हरो।

गुरु के बचन सचिउ अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु।
सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी।

शब्दार्थ—अभिनंदनु=अनुमोदन। हिय=(सं० हृद्) हृदय, मन।

भावार्थ—गुरु वशिष्ठ जी के वचन और मंत्रियों के अनुमोदन सब भरत जी ने सुने, वे उनके हृदय के लिये मानो चंदन (से शीतल) थे (अर्थात् भरत जी के हृदय को सांत्वना दायक थे) पुनः शीतल स्नेह और सरलता के रस में सनी हुई माता कौशल्या की भी मीठी वाणी सुनी।

छंद—सानी-सरल-रस मातु बानी सुनि भरत व्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥

सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहिं सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की॥

शब्दार्थ—लोचन=नेत्र। सरोरुह=कमल। अंकुर=अंकुआ, पौधा। सींव=सीमा।

भावार्थ—सरलता के रससे सनी हुई माता कौशल्या की वाणी सुनकर भरत जी व्याकुल हो गये। उनके नेत्र-कमलों से आँसू बहने लगे मानो वे इनके द्वारा हृदय के नये विरहांकुर को सींच रहे हैं। ऐसी दशा देखते ही उस समय (सब लोग इतने प्रेममग्न हो गये कि) सब को अपने शरीर की खबर भी न रही। तुलसीदास जी कहते हैं कि सब लोग आदर पूर्वक स्वाभाविक प्रेम की सीमा भरत जी की सराहना करने लगे।

सो०—भरत कमल-कर जोरि, धरम-धुरंधर धीर धरि।
बचनु अमिअ जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं।१७७।

शब्दार्थ—अमिअ-बोरि=अमृत में डुबोकर, अमृत के समान मीठे।

भावार्थ—धर्म-धुरंधर-भरत अपने कमलवत् हाथों को जोड़कर और धैर्यधारण करके अमृत के समान मीठे वचनों से सबको उचित उत्तर देने लगे।

(भरत जी का प्रथम भाषण)

मोहिं उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिउ संमत सबही का॥
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥

शब्दार्थ—नीका=भला। संमत=राय।

भावार्थ—मुझे गुरु जी ने अच्छा उपदेश दिया। प्रजा और मंत्री सबकी यही राय है। फिर माता जी ने भी उचित आज्ञा दी है, उसे मुझे अवश्यमेव शिरोधार्य करना चाहिये।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी।
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू।

शब्दार्थ—हित=हितुवा। जाइ=नष्ट होता है। पातक=पाप। भारू=बोझ।

भावार्थ—(क्योंकि) गुरु, पिता, माता, स्वामी और हितुवा इनकी बात सुनकर और भली जान करके उसे प्रसन्न मन से करना चाहिए। यह उचित है या अनुचित ऐसा विचार करने से धर्म नष्ट होता है और सिर पर पाप का बोझा चढ़ता है।

तुम्ह तौ देउ सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई।
जद्यपि एह समुझत हौं नीके। तदपि होत परितोषु न जी के।

शब्दार्थ—सिख=(शिक्षा) उपदेश। आचरत=(सं० आचरण) चलने से, करने से। नीके=भली भाँति। जी के=हृदय को।

भावार्थ—आप लोग तो मुझे वही सरल शिक्षा दे रहे हैं जिसके अनुसार चलने से मेरा भला होगा, यद्यपि मैं इस बात को भली भाँति समझता हूँ, तो भी मेरे हृदय को संतोष नहीं होता।

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावन देहू।
उत्तर देउँ छमब अपराधू। दुखित-दोष गुन गनहिं न साधू।

शब्दार्थ—अनुहरत=(अनुसरत) अनुसरण करने योग्य, मानने योग्य। सिखावनु=(सिखावन) शिक्षा।

भावार्थ—अब आप लोग मेरी विनय सुनलें, और मेरे अनुसरण करने योग्य मुझे शिक्षा दें (अर्थात् मैं इस आज्ञा पर चलने योग्य नहीं हूं) मैं आप लोगों को उत्तर दे रहा हूं, मेरा अपराध क्षमा करें, क्योंकि दुःखित मनुष्य के गुण-दोष का अच्छे लोग कुछ विचार ही नहीं करते।

दो०—पितु सुरपुर सियराम बनु करन कहहु मोहिं राजु।
पहिलें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु॥ १७८॥

शब्दार्थ—सुरपुर=स्वर्ग। कै=अथवा।

भावार्थ—पिता जी स्वर्ग में हैं और सीता राम वन में हैं, आप लोग मुझे राज करने को कहते हैं, इससे मेरी कोई भलाई समझते हैं या अपना कोई बड़ा कार्य सिद्ध करना चाहते हैं ? (अर्थात् मेरे राज्य करने से कोई कार्य न हो सकेगा)

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥

शब्दार्थ—हित=भलाई। हरि लीन्ह=हरण कर लिया, नष्ट कर दिया। आन=(सं० अन्य) दूसरे।

भावार्थ—हमारी भलाई रामचन्द्र जी की सेवा में ही थी, उसे माता की कुटिलता ने नष्ट कर दिया। मैंने मन में अनुमान करके देखा तो किसी दूसरे उपाय से मेरी भलाई नहीं देख पड़ती।

सोक समाजु राजु केहि लेखे। लषन राम सिय पद बिनु देखे॥
बादि बसन बिनु भूषन-भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू॥
सरुज शरीर बादि सब भोगा। बिनु हरि भगति जाय जप जोगा॥
जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई॥

शब्दार्थ—शोक समाज=सोक पूर्ण। लेखे=हिसाब में, गिनती में। बादि=व्यर्थ। भारू=बोझ। बिरति=वैराग्य। सरुज=रोगी। भोगा=विलास। जाय=(फा० ज़ाया) व्यर्थ। देह=शरीर।

भावार्थ—शोक का घर राज्य बिना लक्ष्मण, राम और सीता के चरण देखे किस गिनती में है? (अर्थात् इन लोगों से प्रेम नहीं तो राज्य व्यर्थ है) क्योंकि बिना वस्त्र के गहनों का बोझ लादना (गहना पहनना) व्यर्थ है। बिना वैराग्य के ईश्वर के विषय में विचार करना व्यर्थ है। रोगी शरीर के लिये बहुत से विषय-भोग व्यर्थ हैं, बिना भगवान की भक्ति के जप और योग भी व्यर्थ है। बिना प्राण के सुन्दर देह भी व्यर्थ है, इसी प्रकार रामचन्द्र जी के बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है।

अलंकार—विनोक्तिमाला।

जाउँ राम पहँ आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू॥
मोहि नृपु करि आपन भल चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू॥

शब्दार्थ—पहँ=पास। एकहिं आँक=निश्चय, पक्की तरह से। करि=बनाकर।

भावार्थ—पक्की तरह से मेरी भलाई इसमें है कि आप लोग आज्ञा दें और मैं रामचन्द्र जी के पास जाऊँ। मुझे राजा बना कर आप लोग अपना भला चाहते हैं। सो यह तो आपलोग स्नेह और मूढ़ता वश कह रहे हैं (अर्थात् मेरे राजा होने से आपकी भलाई न होगी)

दो०—कैकेइ सुअन कुटिल मति राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहवस मोहि से अधमु के राज॥१७८॥

शब्दार्थ—सुअन=(सं० सूनु) पुत्र। बिमुख=प्रतिकूल। गतलाज=निर्लज्ज। मोहवस=भ्रम से।

भावार्थ—मैं कैकेयी का पुत्र हूं, कुटिल बुद्धि का हूं, रामचन्द्रजी के प्रतिकूल हूं और निर्लज्ज हूं। आपलोग मुझ ऐसे अधम के राज्य में सुख चाहते हैं, यह भ्रम से ऐसा सोचते हैं। (अर्थात् आपलोगों को भ्रम हो गया है कि मेरे राज्य करने से आप को सुख होगा, वस्तुतः मेरे राज्य में दुःख ही मिलेगा)

अलंकार—समुच्चय (दूसरा) और सार।

कहउँ साँच सब सुनि पतियाहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू॥
मोहिं राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥

शब्दार्थ—पतियाहू=(सं० प्रत्ययन) विश्वास कीजिये। धरमसील=धर्मिष्ठ। हठि=जबर्दस्ती, हठ करके। रसा=पृथ्वी। रसातल=पृथ्वी के नीचे का एक तल।

भावार्थ—मैं सत्य कहता हूं, आप सुनकर विश्वास कीजिये कि राज्य के लिए धर्मिष्ठ राजा चाहिए। मुझे आप जबर्दस्ती राज्य देंगे। तभी पृथ्वी रसातल को चली जायगी।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीयराम बनबासू॥
राय राम कहुँ कानन दीन्हा। बिछुरत गवनु अमरपुर कीन्हा॥

शब्दार्थ—पापनिवासू=पाप का घर, बड़ा पापी। लगि=लिए। राय=राजा दशरथ। कानन=वन। अमरपुर=स्वर्ग।

भावार्थ—मेरे समान कौन बड़ा पापी होगा जिसके लिए सीताजी और रामचन्द्र जी को वनवास मिला। राजा साहब ने रामजी को वन दिया और रामजी के बिछुड़ते ही स्वयं भी स्वर्ग चले गये (शरीर छोड़ दिया) (और मुझे राज्य करने को छोड़ गये)

मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू॥

शब्दार्थ—सठ=दुष्ट। अनरथ कर हेतू=अनर्थ का कारण। सचेतू=चैतन्य होकर। अवासु=घर। उपहासू=हँसी।

भावार्थ—मैं ही दुष्ट सम्पूर्ण अनर्थों का कारण हूं, क्योंकि बैठा बैठा चैतन्य होकर सब बातें सुन रहा हूं (अर्थात् ये बातें सुनकर मुझे शरीर त्याग देना चाहिये) बिना रामचन्द्र जी के राजभवन देखकर मेरे प्राण संसार में उपहास सह रहे हैं।

राम पुनीत विषयरस रूखे। लोलुप भूमिभोग के भूखे॥
कहँ लगि कहउँ हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई॥

शब्दार्थ—पुनीत=पवित्र। रूखे=(सं० रूक्ष) बिरक्त। लोलुप=लालची। लगि=तक। निदरि=निरादर करके। कुलिसु=वज्र। लही=पाई है।

भावार्थ—रामचन्द्रजी बड़े पवित्र हैं वे विषय-भोग से बिरक्त रहते हैं लालचीजन भूमि के भोगों के भूखे रहते हैं (इन्हें तो राज्य का लोभ था ही नहीं) कहाँ तक अपने हृदय की कठिनता कहूं, जिसने वज्र का भी निरादर करके बड़ाई पायी है (जो वज्र से भी अधिक कठोर है)

दो॰—कारन तें कारज कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर॥ १८०॥

शब्दार्थ—कुलिस=वज्र। अस्थि=हड्डी। उपल=पत्थल। कराल=भयंकर।

भावार्थ—(मैं जो इतना कठोर हूं) इसमें मेरा दोष नहीं है, क्योंकि कारण तें कार्य कठिन हुआ ही करता है, जैसे (दधीचि की हड्डी से बना

-हुआ) वज्र हड्डी से और (पत्थर से उत्पन्न होने वाला) लोहा पत्थर से भयंकर और कठोर होता है (अर्थात् कैकेयी जब बड़ी कठोर है तो उसका पुत्र मैं उससे भी अधिक कठोर होऊँगा ही)

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

कैकेई-भव तनु अनुरागे। पामर प्रान अघाइँ अभागे॥
जौ प्रिय विरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥

शब्दार्थ—कैकेईभव = कैकेयी से उत्पन्न हुए। तनु = शरीर। अनुरागे = प्रेम करके। पामर = नीच। अघाइँ = इच्छापूर्ण करलें, पेट भरलें।

भावार्थ—कैकेयी से उत्पन्न हुए शरीर से प्रेम करके ये अभागे और नीच प्राण भली भाँति अपनी इच्छा पूरी कर लें। जो प्रिय के विरह में प्राण प्रिय लगे (न छूटे) तो भविष्य में और भी कुछ देखना और सुनना बदा है।

लषन राम सिय कहुँ बन दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा।
लीन्ह विधवपन अपजस आपू। दीन्हेउ प्रजहिं सोकु संतापू॥
मोहिं दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू॥

शब्दार्थ—पठइ = भेजकर। आपू = स्वयं। संतापू = पीड़ा। काजू = कार्य।

भावार्थ—कैकेयी ने राम, लक्ष्मण और सीता को बन दिया, स्वर्ग भेज कर अपने पति (राजा दशरथ) की भलाई की। स्वयं वैधव्य और अपयश लिया, प्रजा को शोक और पीड़ा दी तथा मुझे सुख, सुयश और सुराज दिया इस प्रकार उसने सब का कार्य सम्पन्न किया (सब का कार्य बिगाड़ दिया)

(नोट १)—अंतिम अर्द्धाली में बहुत ही उत्तम लक्षणामूलक अविवक्षित वाच्य ध्वनि है।

(नोट २)—पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि आगे "घालेसि सब जग बारह बाटा" कहा जायगा सो वे बारह रास्ते यही हैं। (१) राम को बन का रास्ता (२)—सीता को वन का रास्ता (३)—लक्ष्मण को, बन का रास्ता (४)—दशरथ को अमरपुर का रास्ता (५)—अपने को विधवापन का रास्ता (६)—अपयश का रास्ता (७)—प्रजा को शोक का (८)—प्रजा

को संताप का (९)—सुभ को सुख का (१०)—सुयश का (११)—सुराज का रास्ता (१२)—सब को सुकाज का रास्ता।

एहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका॥
कैकइ जठर जनमि जग माहीं। यह मोहिं कहँ किछु अनुचित नाहीं॥
मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई॥

शब्दार्थ—नीका=भला। टीका=राज्यतिलक। जठर=पेट, गर्भ। पाँच=पंच=। सहाई=सहायता।

भावार्थ—इससे मेरा भला और अब क्या होगा। तिस पर आप लोग मुझे राज्यतिलक देने को कहते हैं (बड़ा ही अच्छा है) कैकेयी के गर्भ से संसार में जन्म लेकर यह मेरे लिये कोई अनुचित कार्य नहीं है। मेरी सब बातें तो ब्रह्माने ही बना दी हैं। प्रजा और पंच हमारी सहायता व्यर्थ क्यों करते हैं।

(नोट)—इस चौपाई में बहुत अच्छा गुणीभूत व्यंग है।

दो०—ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पिआइअ बारुनी कहहु कवन उपचार॥ १८१॥

शब्दार्थ—ग्रह ग्रहीत=ग्रह बुरे हों। बात=वात रोग। बारुनी=शराब। उपचार=दवा।

भावार्थ—जिसके ग्रह बुरे हों, वात रोग से पीड़ित हो, फिर उसे बीछी मार दे, और इस पर भी उसे शराब पिला दी जाय, भला बतलाइये फिर उसकी क्या दवा हो सकती है (कि वह बच सके)

अलंकार—समुच्चय (दूसरा)

नोट—कैकेई के गर्भ में आना भरत के लिये ग्रहग्रहीत होना है, ननिहाल चला जाना (अयोध्या से अनुपस्थिति) वात व्याधि है, राम बन गमन बीछी मारना है, और राज्य देना मद पिलाना है।

कैकेइ सुअन जोग जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहिं सोई॥
दसरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहिं बिधि बादि बड़ाई॥

शब्दार्थ—जोग=(योग्य) लायक। बिरंचि=ब्रह्मा। बादि=व्यर्थ।

भावार्थ—कैकेयी के पुत्र के योग्य संसार में जो कुछ है, चतुर विधाता ने मुझे वह सब कुछ दिया है पर "दशरथ-पुत्र" और "राम का छोटा भाई" कहलवाकर विधाताने मुझे व्यर्थ की बड़ाई दी (अर्थात् कैकेयी के पुत्र को 'दशरथ का पुत्र' और 'राम का छोटा भाई' नहीं बनाना था)

अलंकार—सम (पूर्वार्द्ध में), विषम (उत्तरार्द्ध में)

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका॥
उतर देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथारुचि जेही॥

शब्दार्थ—टीका कढ़ावन कहहु=राज्यतिलक लगवाने को कहते हैं। रायरजायसु=राजा की आज्ञा। सुखेन=सुखसे। जथारुचि जेहि=जिस की जो इच्छा है।

भावार्थ—आपलोग राज्यतिलक करवाने को कहते हैं। राजा की आज्ञा सभी को भली लग रही है। किस प्रकार और किसको किसको मैं उत्तर दूँ। जिसकी जो इच्छा हो मुझसे कहिये।

मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्हि भलाई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सियरामु प्रानप्रिय नाहीं॥

शब्दार्थ—बिहाई=(सं० विहाय) छोड़कर। के=कौन।

भावार्थ—मुझे और मेरी कुमाता को छोड़कर, और कौन कहेगा कि (राम को वनवास) देकर भलाई (अच्छा) की गयी ? (कोई न कहेगा) मेरे सिवा संसार के चराचर में कौन ऐसा है जिसे सीताराम प्राण के समान प्यारे नहीं हैं (सबको प्रिय हैं)

परम हानि सबु कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर नहिं दूषनु काहू॥
संसय सील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सबु जो किछु कहहू॥

शब्दार्थ—लाहू=(सं० लाभ) नफ़ा। अदिन=दुर्भाग्य।

भावार्थ—मेरी बड़ी भारी हानि सबको बड़ा लाभ जान पड़ती है, यह मेरा दुर्भाग्य है इसमें किसी का दोष नहीं। आप सब लोग भ्रम सुशील

और प्रेम के वश में हैं, इसलिए जो कुछ कहें सब उचित है।

दो०—राम मातु सुठि सरलचित मो पर प्रेमु विसेखि।
कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि॥ १८२॥

शब्दार्थ—सुठि = अत्यंत।

भावार्थ—(यदि कोई कहे कि कौशल्या ऐसा क्यों कहती हैं तो) कौशल्या जी राम जी की माता हैं, अत्यंत सरल चित्त की हैं, और मेरे ऊपर बड़ा प्रेम है। वे मेरी दीनता देखकर स्वाभाविक स्नेह के वश होकर ऐसा कहती हैं।

गुरु बिवेक सागर जग जाना। जिन्हहिं बिस्व कर-बदर समाना।
मो कहँ तिलक साजसज सोऊ। भए बिधि बिमुख बिमुख सबकोऊ॥

शब्दार्थ—विवेक सागर = अत्यंत विचारवान्। बिस्व = संसार कर = हाथ। बदर = बेर। सज = सजाते हैं।

भावार्थ—गुरु जी विवेक के समुद्र हैं (अत्यन्त विचारवान हैं) यह संसार जानता है, जिनके लिए सारा संसार हाथ में धरे बेर के समान है (अर्थात् संसार की सब बातें जानते हैं) वे भी मेरे लिए राज्य तिलक का सामान सजाते हैं (इससे जान पड़ता है कि) विधाता के प्रतिकूल हो जाने से सब लोग प्रतिकूल हो जाते हैं।

परिहरि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं।
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी।

शब्दार्थ—परिहरि = छोड़कर, सिवाय। कोउ = (सं० कोपि) कोई भी। कहिहि = कहेगा। मत (मंत्र) राय।

भावार्थ—राम और सीता के सिवाय संसार में कोई भी यह नहीं कहेगा कि मेरी राय नहीं थी (अर्थात् सब लोग यही कहेंगे कि भरत की ही राय से राम जी को बनबास हुआ) वह मैं सुख से सुनूँगा और सहूंगा, क्योंकि अन्त में वहाँ कीच होती ही है जहाँ पानी होता है।

डर न मोहिं जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिंन सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सियराम दुखारी।

शब्दार्थ—पोचू = बुरा । कर = का । दवारी = दावाग्नि । लगि = लिए।

भावार्थ—मुझे इसका डर नहीं है कि संसार मुझे बुरा कहेगा। मुझे परलोक का भी सोच नहीं है। हृदय में एकही असह्य दावाग्नि (जल रही) है कि मेरे लिए सीता और रामचन्द्र जी को दुःख सहना पड़ा।

जीवन लाहु लषन भल पावा। सबु तजि रामचरन मन लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥

शब्दार्थ—जीवन लाहु = जीवन लाभ, जन्मलेने का लाभ। भल = अच्छा। लावा = लगाया।

भावार्थ—लक्ष्मण ने जन्मलेने का अच्छा लाभ पाया, क्योंकि सबको त्याग कर रामचन्द्र जी के चरणों में मन लगाया। मेरा तो जन्म ही रामचन्द्र जी को वनवास दिलाने के लिए हुआ था, मैं अभागा झूठ ही क्या पछताता हूं।

दो०—आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिरु नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कइ जरनि न जाइ॥ १८३॥

शब्दार्थ—दारुन = कठिन। सिर नाइ = सिर नवा कर, प्रणाम करके।

भावार्थ—मैं अपनी कठिन दीनता सबको सिर नवाकर कहे देता हूं कि बिना रामचन्द्र जी के चरणों को देखे हृदय की जलन नहीं जा सकती।

आन उपाउ मोहिं नहिं सूझा। को जिय कइ रघुबर बिनु बूझा॥
एकइ आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥

शब्दार्थ—आन = (सं० अन्य) दूसरा। सूझा = (सं० शुद्ध) देख पड़ता है। बूझा = (सं० बुद्ध) जान सकता है। एकइ आँक = निश्चय। पाहीं = (सं० पार्श्व) पास।

भावार्थ—दूसरा उपाय मुझे नहीं देख पड़ता है। बिना रामचन्द्र जी के मेरे हृदय की बात कौन जान सकता है? (कोई नहीं) बस मेरा एक यही निश्चत मत है कि मैं प्रातःकाल प्रभु (रामचन्द्र जी) के पास को रवाना हूंगा।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहिं कारन सकल उपाधी॥

तदपि सरन सनमुख मोहिं देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी॥

शब्दार्थ—अनभल = बुरा। उपाधी = उत्पात।

भावार्थ—यद्यपि मैं बुरा और अपराधी हूं (क्योंकि) मेरे ही कारण सम्पूर्ण उत्पात हुआ है, तौ भी मुझे अपनी शरण में आया हुआ सामने देख कर रामचन्द्र जी सम्पूर्ण (अपराध) क्षमा करके विशेष कृपा करेंगे।

सीलु सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ।
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा।

शब्दार्थ—सील = शिष्टाचार। सुठि = (सुष्ठु) अत्यंत। सदन = घर। अरिहु क = शत्रु का भी। सिसु = अज्ञान। बामा = विरुद्ध।

भावार्थ—रामचन्द्र जी अत्यंत शीलवान्, संकोची और सरल स्वभाव के हैं, तथा कृपा और प्रेम के तो घर ही हैं (अर्थात् अत्यंत कृपालु और प्रेमी हैं) रामचन्द्र जी ने तो शत्रु की भी बुराई कभी नहीं की। मैं यद्यपि उनके विरुद्ध हूँ तो भी उनका अज्ञान सेवक हूँ।

तुम्ह पै पांच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी।
जेहि सुनि बिनय मोहिं जन जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी।

शब्दार्थ—पै = निश्चय। पांच = पंच। भल = भलाई। आसिष = आशीर्वाद। जन = दास। बहुरि = लौटकर।

भावार्थ—आप पंच लोग इसमें मेरी भलाई निश्चय मानकर सुन्दर वाणी से आज्ञा और आशीर्वाद दीजिये, जिससे मेरी विनय सुनकर और मुझे अपना दास जानकर रामचन्द्र जी राजधानी (अयोध्या) को लौट आवें।

दो०—जद्यपि जनम कुमातु तें मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहिं रघुबीर भरोस॥१८४॥

शब्दार्थ—सठ = दुष्ट। सदोष = दोषी। भरोस = भरोसा, विश्वास।

भावार्थ—यद्यपि मेरा जन्म बुरी माता (कैकेयी) से हुआ है और मैं दुष्ट सदा का दोषी हूँ तो भी मुझे अपना समझकर रामचन्द्र जी नहीं त्यागेंगे मुझे उनका भरोसा है।

भरत वचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे।
लोग वियोग विषम-विष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे।

शब्दार्थ—पागे = सने हुए। बिष-दागे = विष से जले हुए। मंत्र सबीज = प्रभाव शाली मंत्र, वह मंत्र जो तुरंत अपना प्रभाव दिखलावै।

भावार्थ—भरत जी के वचन सबको प्यारे लगे (क्योंकि) वे वचन रामचन्द्र जी के प्रेमरूपी अमृत से सने हुए थे। वियोग रूपी भीषण विष से जले हुए सब लोग मानों सबीज मंत्र सुनतेही जग गये (चैतन्य हो गये)

मातु सचिव गुरु पुर नर नारी। सकल सनेह विकल भए भारी॥
भरतहिं कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही॥

शब्दार्थ—सराहि सराही = बारम्बार बड़ाई करके। आही = है।

भावार्थ—माता कौशल्या, मंत्री, गुरु वशिष्ठ और नगर के स्त्री-पुरुष सब लोग प्रेम से अत्यंत व्याकुल हो गये। भरत जी की बारम्बार बड़ाई करके कहते हैं कि तुम्हारा शरीर रामचन्द्र जी के प्रेम की मूर्त्ति ही है।

तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू।
जो पावँरु अपनी जड़ताई। तुम्हहिं सुगाइ मातु कुटिलाई॥
सो सठ कोटिक पुरुष समेता। बसहि कलपसत नरक निकेता।
अहि अघ अवगुन मनि नहिं गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥

शब्दार्थ—पावँरु = (सं० पामर) नीच। सुगाइ = सन्देह करे। कोटिक = करोड़ों। पुरुष = पूर्वज। निकेता = घर। अहि = सर्प। अघ = पाप। दहई = जलाती है।

भावार्थ—हे प्यारे भरत! तुम ऐसा क्यों न कहो? क्योंकि तुम रामचन्द्र जी को प्रानों के समान प्यारे हो। जो नीच अपनी मूर्खता से तुम्हारी माता की कुटिलता के कारण तुम्हारे ऊपर सन्देह करे वह दुष्ट अपने करोड़ों पूर्वजों समेत नरकागार में सौ कल्प तक वास करे। (क्योंकि) सर्प के पाप और दुर्गुण को सर्पमणि नहीं ग्रहण करती, बल्कि विष को दूर करती है और दुख तथा दरिद्रता को जलाती है।

दो०—अवसि चलिअ वन राम पहँ भरत मंत्र भल कीन्ह।
सोक सिन्धु बूड़त सबहिं तुम्ह अवलंबनु दीन्ह ॥ १८५ ॥

शब्दार्थ—अवसि = अवश्यमेव। मंत्र = राय, विचार कीन्ह = विचारा है, सोचा है। अवलंबनु = सहारा।

भावार्थ—अवश्यमेव रामचन्द्र जी के पास वन में चलना चाहिए, भरत जी ने अच्छा विचार सोचा है। हे भरत! तुमने शोक समुद्र में डूबते हुए हम सब लोगों को एक सहारा दे दिया है।

भा सबके मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा।
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरत प्रान प्रिय भे सबही के।

शब्दार्थ—मोद = प्रसन्नता। घनु = बादल। धुनि = (सं० ध्वनि) आवाज, गर्जन। चातक = पपीहा। निरनउ = (सं० निर्णय) नीके = अच्छी तरह से, निश्चित।

भावार्थ—सबके हृदय में अत्यंत प्रसन्नता हुई, मानो बादल की गर्जना सुनकर पपीहा और मोर (प्रसन्न हुए हैं) प्रातःकाल चलने का निश्चय निर्णय समझकर भरत जी सभी को प्राण के समान प्यारे हो गये (यह निर्णय सबने पसंद किया)

मुनिहिं बंदि भरतहिं सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई ॥
धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सीलु सनेहु सराहत जाहीं ॥

शब्दार्थ—बंदि = (बंदना) प्रार्थना करके। सिर नाई = प्रणाम करके।

भावार्थ—मुनि बशिष्ठ जी की प्रार्थना कर और भरत जी को प्रणाम करके सब विदा माँग कर अपने अपने घर चले, और रास्ते में कहते हैं कि भरत का जन्म संसार में धन्य है। इस प्रकार भरत के शील और प्रेम की बड़ाई करते हुए चले जाते हैं।

कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलइ कर साजहिं साजू ॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥

कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू । को न चहइ जग जीवन लाहू ॥

शब्दार्थ—साजहिं साजू=सामान ठीक करते हैं। गरदनि मारी=गला काट लिया (अवधी मुहावरा)

भावार्थ—सब आपस में कहते है कि बड़ा कार्य हुआ। सब (रामचन्द्र जी के पास) चलने का सामान ठीक कर रहे हैं। जिसको घर में रखवाली के लिए रहने को कहते हैं वह जानता है कि मानो मेरा गला ही काट लिया। कोई कोई कहते हैं कि 'भाई ! किसी को अयोध्या में रहने के लिए मत कहो क्योंकि (रामचन्द्र जी का दर्शन कर) कौन अपने जीवन का लाभ नहीं लेना चाहता (अर्थात् सभी को राम दर्शन की अभिलाषा है)

दो०—जरउ सो सम्पति सदन-सुखु सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ ॥ १८६ ॥

शब्दार्थ—सदन=घर। सुहृद=मित्र। सहस=(सं० सहस्र) हजारों।

भावार्थ—वह सम्पति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता और भाई सब जल जायँ (अर्थात् किसी काम के नहीं हैं) जो रामचन्द्र जी के चरणों के संमुख होने में (प्रीति करने में) हजारों सहायता न करें।

अलंकार—तिरस्कार।

घर घर साजहिं वाहन नाना। हरष हृदय परभात पयाना ॥
भरत जाइ घर कीन विचारू। नगरु वाजि गज भवन भँडारू ॥
संपति सब रघुपति कइ आही। जौ बिनु जतन चलउँ तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पापसिरोमनि साइँ द्रोहाई ॥

शब्दार्थ—वाहन=सवारी। परभात=(सं० प्रभात) सवेरे, प्रातःकाल। पयाना=(सं० प्रयाण) चलना। बाजि=घोड़ा। गज=हाथी। भँडारू=(सं० भांडार) खज़ाना, कोष। पापसिरोमनि=सब पापों में श्रेष्ठ। साइँ द्रोहाई=मालिक का वैर।

भावार्थ—सब लोग अपने अपने घर में नाना प्रकार की सवारियाँ ठीक कर रहे हैं। सब के हृदय में हर्ष है कि प्रातःकाल रामचन्द्र जी के पास

चलना है। भरत जी ने (सभासे) घर पर जाकर विचार किया कि नगर, घोड़ा, हाथी, घर और कोष सब रामचन्द्र जी की सम्पत्ति है, यदि मैं इसकी रक्षा का उपाय किये विना ही चलूँ तो अन्त में मेरी भलाई नहीं है, क्योंकि, 'स्वामी से द्रोह करना' सब पापों से बढ़कर है।

(नोट) सब प्रतियों में 'साइँ दोहाई' पाठ है, जिसका अर्थ टीकाकारों ने 'स्वामी की सौगन्ध' लिया है। पर मेरे विचार से यह अर्थ असंगत सा है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि प्रतिलिपिकारों की असावधानी से 'साइँ द्रोहाई' का 'साइँ दोहाई' हो गया है। 'साइँ द्रोहाई' पाठ रहने से अर्थ अधिक स्पष्ट और सुसंगत हो जाता है।

करइ स्वामि हित सेवक सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥
अस विचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरमु न डोले॥

शब्दार्थ—हित = भलाई। सोई = वही। किन = चाहे। बोले = बुलवाये। निज धरमु न डोले = अपने धर्म में (सेवक धर्म में) अचल थे।

भावार्थ—चाहे कोई करोड़ों दोष लगावे पर तो भी जो स्वामी की भलाई करे वही सेवक है। ऐसा विचार कर भरत जी ने अच्छे सेवकों को बुलवाया, जो स्वप्न में भी अपने धर्म से चलायमान न हो सकते थे।

कहि सब मरमु धरमु सब भाखा। जो जेहि लायक सो तेहि राखा।
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरत सिधारे।

शब्दार्थ—मरमु = भेद (भला-बुरा, ऊँचा-नीचा)। भाखा = कहा। जेहि लायक = जिस कार्य के योग्य। तेहि = उस कार्य पर। राखा = रखाया, रक्षा की (रक्षा का भार लिया) सिधारे = गये।

भावार्थ—उन सेवकों से ऊँचा-नीचा समझाकर उनका धर्म बतलाया। जो जिस कार्य के योग्य था उसने उसकी रक्षा का भार लिया। सब यत्न करके और रक्षकों को नियुक्त करके, भरत जी राम-माता कौशल्या जीके पास गये।

दो०—आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकी सजन सुखासन जान॥ १८७॥

शब्दार्थ—आरत=दुखी। बनावन=सजाने के लिए। पालकी=(सं० पल्यंक) एक प्रकार की सवारी। सुखासन=सुख दायक बिस्तरे। जान=रथ।

भावार्थ—सब माताओं को दुखी जानकर प्रेम में चतुर भरत जी ने (कहारों से) पालकी सजाने और रथ पर सुखदायक बिस्तरे बिछाकर ठीक करने के लिए कहा।

चक चकई इव पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी॥
जागत सब निसि भयेउ बिहाना। भरत बोलाए सचिउ सुजाना।

शब्दार्थ—इव=समान। चहत प्रात=प्रातःकाल चाहते हैं। आरत भारी=अत्यंत दुखी। बिहाना=सबेरा।

भावार्थ—नगर के स्त्री-पुरुष सब चकवा-चकई के समान हैं, वे प्रातः काल चाहते हैं (अर्थात् सोचते हैं कि किस प्रकार सबेरा हो और हम चलें) उनका हृदय अत्यन्त दुखी है। सारी रात जागते जागते ही बीत गयी और सबेरा हो गया, तब भरत जी ने चतुर मंत्रियों को बुलवाया।

कहेउ लेहु सब तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहिं राजू।
बेगि चलहु सुनि सचिउ जोहारे। तुरत तुरँग रथ नाग सँवारे।

शब्दार्थ—तिलक-समाजू=राज तिलक का सामान। देब=देंगे। जोहारे=प्रणाम किया। तुरत=(सं० त्वरित) शीघ्र ही। तुरँग=घोड़ा। नाग=हाथी। सँवारे=सजाया।

भावार्थ—भरत जी ने मंत्रियों से कहा कि "राज तिलक का सामान ले लो। बन में मुनि जी रामचन्द्र जी को राज्य देंगे। शीघ्र ही चलो" यह सुनकर मंत्रियों ने प्रणाम किया, और शीघ्र ही हाथी, घोड़े और रथों को सजाया।

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ।
विप्रवृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना।

शब्दार्थ—अरुंधती=वशिष्ठ जी की स्त्री। अगिनि-समाऊ=यज्ञ की सामग्री।

भावार्थ—अरुंधती जी और यज्ञ की सामग्री सहित रथ पर चढ़कर पहले मुनिराज वशिष्ट जी चले, तत्पश्चात् नाना प्रकार की सवारियों में चढ़ कर सम्पूर्ण तप और तेज के खजाना ब्राह्मण गण चले।

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना।
सिविका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सबरानी।

शब्दार्थ—जाना = (सं० यान) रथ। पयाना = प्रस्थान। सिविका = (सं० शिविका) पालकी।

भावार्थ—नगर के सब लोगों ने रथ सजा सजा कर चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। सुन्दर पालकियों में, जिनका बखान (वर्णन) नहीं हो सकता, चढ़ चढ़ कर सब रानियां चलीं।

दो०—सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सबहिं चलाइ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब चले भरत दोउ भाइ।१८८।

शब्दार्थ—सौंपि = सुपुर्द करके। सुमिरि = स्मरण कर।

भावार्थ—पवित्र सेवकों को नगर सुपुर्द करके और आदर-पूर्वक सबको रवाना करके तब भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई राम और सीता जी के चरणों को स्मरण करके चले।

राम दरस-बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी।
बन सियराम समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहिं जाहीं।

शब्दार्थ—बस = वास्ते, लिए। करि करिनि = हाथी और हथिनी। तकि = लक्ष करके, देखकर। पयादेहि = (फारसी) पैदल ही।

भावार्थ—रामचन्द्र जी के दर्शन करने के लिये सब स्त्री-पुरुष ऐसे चले जा रहे हैं मानों (प्यासे) हाथी और हथिनी जल देखकर (पीने के लिये) चले जा रहे हैं। सीता और रामचन्द्र जी को वन में बसता हुआ मन में समझ कर छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत जी पैदल ही जा रहे हैं।

देखि सनेह लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥

जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु-बानी बोली॥

शब्दार्थ—अनुरागे = प्रेमासक्त हो गये। हय = घोड़ा। गय = हाथी। डोली = पालकी।

भावार्थ—भरत जी का प्रेम देखकर लोग अनुरक्त हो गये। सब लोग घोड़ा, हाथी, रथ त्याग कर जमीन पर उतर करके (पैदल ही) चलने लगे। (यह खरभर देखकर) कौशल्या जी भरत जी के पास गयीं, और पास में अपनी पालकी रखवा कर कोमल बाणी से बोलीं—

तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरे चलत चलिहिं सब लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥

शब्दार्थ—बलि = बलिहारी जाती हूं। कृस = (सं० कृश) निर्बल। मग = (सं० मार्ग) रास्ता।

भावार्थ— हे तात ! माता बलिहारी जाती है, रथ में चढ़ो, नहीं तो प्यारा परिवार दुःखी होगा, क्योंकि तुम्हारे (पैदल) चलने से सब लोग (पैदल) चलेंगे, पर सब के सब शोक से निर्बल हो गये हैं (पैदल) रास्ता चलने योग्य नहीं है।

सिर धरि बचन चरनसिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू॥

शब्दार्थ—सिर धरि = मानकर। तीर = तट।

भावार्थ—माता कौशल्या के बचनों को मानकर और उनके चरणों में सिर नवाकर (प्रणाम करके) दोनों भाई रथ में चढ़कर चलने लगे। पहले दिन तमसा नदी के किनारे विश्राम किया। और दूसरा निवास (डेरा) गोमती नदी के तट पर किया।

दो०—पय अहार फल असन एक, निसि भोजन एक लोग।
करत रामहित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग॥ १८६॥

शब्दार्थ—पय = दूध। अहार = भोजन। असन = भोजन। भोग = विषय विलास।

भावार्थ – कुछ लोग दिन में दूध पीते हैं और फल खाते हैं, कुछ लोग रात्रि में ही (केवल) भोजन करते हैं। इस प्रकार सब लोग रामचन्द्रजीके लिये सम्पूर्ण विषय-विलास और भूषणादि त्यागकर नेम और व्रत कर रहे हैं।

सई तीर बसि चले बिहाने। शृङ्गवेर पुर सब नियराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदय बिचारु करइ सविषादा॥

शब्दार्थ = बिहाने = (सं० विभात, प्रा० विहाण) प्रातःकाल। नियराने = समीप पहुँचे।

भावार्थ = सब लोग सई के तीर में रात्रि को वास कर प्रातःकाल चले। सब लोग शृङ्गवेरपुर (वर्तमान सिंगरौरा गाँव) के समीप पहुँचे। निषाद राज ने सब समाचार सुने तो वह दुःख से हृदय में विचार करने लगा।

कारन कवनु भरत बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं॥
जौ पै जिय न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्हि संग कटकाई॥

शब्दार्थ—कवनु = (कौन) क्या। कत = क्यों। कटकाई = सेना।

भावार्थ—क्या कारण है कि भरत जी वन को जा रहे हैं? मन में कुछ कपट भाव हैं (इसी से वन जाते हैं) यदि हृदय में कुटिलता न होती तो साथ में यह सेना क्यों ली है? (निषाद को यह भासता है कि भरत जी श्रीराम जी से युद्ध करने जा रहे हैं)

जानहिं सानुज रामहिं मारी। करउँ अकंटक राज सुखारी॥
भरत न राज नीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी॥

शब्दार्थ—अकंटक = निर्विघ्न। सुखारी = सुखी हो।

भावार्थ—भरत जी समझते हैं कि छोटे भाई लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जी को मार कर मैं निर्विघ्न हो सुख से राज करूँ। पर भरत जी ने (अच्छी) राजनीति हृदय में नहीं विचारी। (माता की करतूत से तो) तब इन्हें कलंक ही लगा होता, पर अब तो जीवन-हानि होगी (अर्थात् हम लड़कर इन्हें यहीं खतम कर डालेंगे)।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनिहारा॥
का आचरजु भरत अस करहीं। नहिं विष-बेलि अमिय फल फरहीं॥

शब्दार्थ—जुरहिं=इकट्ठे हों, जुड़ें। जुझारा=(सं० युद्धालु) योद्धा।

भावार्थ—(भरत ने तनक यह नहीं सोचा कि) यदि सम्पूर्ण सुर और असुर योद्धा भी (लड़ने के लिए) इकट्ठे हों, तो भी राम को जीतनेवाला कोई नहीं है। यदि भरत ऐसा (कुकृत्य) कर रहे हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? विष की लता में अमृत-फल नहीं फला करते (विष-फल ही फलते हैं—अर्थात् जिस कैकेयी ने राम को वनवास दिया उसका पुत्र यदि राम को मारने जाय तो आश्चर्य नहीं, यह बात अधिक संगत है)

दो०—अस विचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथ-बाँसहु बोरहु तरनि, कीजिअ घाटारोहु॥ १९०॥

शब्दार्थ—ग्याति=जाति के लोगों से, अपने सरदारों से। हथ बाँस=डाँड़, पतवार। तरनि=नाव। घाटा रोहु=(घट्टावरोध) घाट की छेंक।

भावार्थ—ऐसा विचार कर गुह राज ने अपने सरदारों से कहा कि सब लोग सजग हो जाओ, और डाँड़ पतवार तथा नावों को भी डुबा दो तथा घाट की राह छेंक लो।

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरइ के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥

शब्दार्थ—सँजोइल=सामग्री युक्त। मरइ के ठाटा ठाटहु=मरने का बंधान बांध लो, मरने के लिये तैयार हो जाओ। लोह लेना=युद्ध करना।

भावार्थ—सम्पूर्ण (लड़ाई की) सामग्री से युक्त हो जाओ, घाट को रोक लो, मरने के लिए तैयार हो जाओ। मैं संमुख होकर भरत से युद्ध करूँगा और जीते जी उन्हें गंगा के पार न होने दूँगा।

समरु मरन पुनि सुरसरि तीरा। रामकाजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बड़े भाग असि पाइअ मीचू॥

शब्दार्थ—समरु = रणक्षेत्र। छनभंगु = (क्षणभंगुर) क्षण में नष्ट होने वाला। असि = ऐसी। मीचू = (सं० मृत्यु) मौत।

भावार्थ—(इस कार्य में कितने लाभ हैं देखो) (एक तो) रणक्षेत्र में मरना है (दूसरे) गंगा जी का तट है। (तीसरे) इस क्षण में नाश होने वाले शरीर से राम का काज होता है, (चौथे) भरत रामचन्द्र जी के भाई और राजा हैं और मैं अत्यंत नीच मनुष्य हूं, बड़े भाग्य से ऐसी मृत्यु मिलती है।

अलंकार—समुच्चय (दूसरा) और अनुज्ञा।

स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दसचारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद-मोदक मोरें॥

शब्दार्थ—रारी = लड़ाई। जस धवलिहउँ = यश की चूनाकारी कराऊँगा, यश विस्तारूँगा। भुवन दस चारी = चौदहो लोक में। निहोरें = एहसान से, लिए। दुहूं हाथ मुद-मोदक मोरें = मेरे दोनों हाथों में प्रसन्नता के लड्डू हैं दोनों प्रकार से (इस लोक और पर लोक दोनों में) भलाई है। (दोनों हाथ लड्डू—मुहावरा है, इसका प्रयोग इसलोक और पर लोक दोनों सधजाने के समय किया जाता है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई है कि जब कोई सौभाग्यवती स्त्री की मृत्यु होती है तब स्मशान को ले जाते समय उसके दोनों हाथों में लड्डू दे दिये जाते हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि इसने इस लोक में भी पति सेवा करके आनन्दोपभोग किया और पति के सन्मुख ही इह लोक छोड़ कर परलोक चल बसी, इस लिए परलोक भी बन गया।

भावार्थ—स्वामी के कार्य के लिये रण में लड़ाई करूँगा। चौदहो भुवनों में यश फैलाऊँगा (अर्थात् त्रिलोक में हमारा यश होगा) रामचन्द्र जी के लिये मैं प्राण देने जा रहा हूँ, अतएव मेरे दोनों हाथों लड्डू हैं (अर्थात् इस लोक और परलोक दोनों में आनन्द ही आनन्द है)।

(नोट)—अगर मारा गया तो भी यश और अगर भरत को परास्त किया तो भी यश। यही दोनों हाथ के लड्डू हैं।

साधु समाज न जाकर लेखा।राम भगत महँ जासु न रेखा।
जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी-जौवन-बिटप-कुठारू।

शब्दार्थ—लेखा = गिनती। रेखा = चिन्ह, स्थान। जाय = व्यर्थ। जौवन-बिटप-कुठारू = यौवन रूपी वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ा।

भावार्थ—साधु-समाज में जिसकी गिनती नहीं है, राम के भक्तों में जिसका स्थान नहीं है, वह पृथ्वी का भार संसार में व्यर्थ ही जीता है, वह माता के यौवन रूपी वृक्ष के लिये कुल्हाड़ा के समान (नष्ट करने वाला) हुआ। (अर्थात् उसको जन्म देने से उसकी माता का यौवन व्यर्थ नष्ट हुआ)

अलंकार—परंपरित रूपक।

दो०—बिगत बिषाद निषाद पति सबहिँ बढ़ाइ उछाह।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत तरकस धनुष सनाह ॥१९१॥

शब्दार्थ—बिगत विषाद = दुःख नष्ट हो गया। उछाह = (सं० उत्साह)। तरकस = तूणीर। सनाह = ज़िरह बख्तर, शरीर-त्राण (कवच)।

भावार्थ—निषादराज का दुःख नष्ट हो गया उसने सबका उत्साह बढ़ाकर और रामचन्द्र जी का स्मरण करके शीघ्र ही (अपने सेवकों से तरकस, धनुष और कवच मँगवाया।

बेगिहि भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ।
'भलेहि नाथ' सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइँ करषा।

शब्दार्थ—बेगिहि = शीघ्र ही। सँजोऊ = सामग्री। रजाइ = आज्ञा। न कदराइ = डरे न। कोऊ = (सं० कोपि) कोई भी। करषा = (सं० कर्षण) क्रोध, उत्साह।

भावार्थ—हे भाइयो! शीघ्रता से, सब सामग्री इकट्ठी करो। आज्ञा सुनकर कोई डरे मत। सब हर्ष पूर्वक "बहुत अच्छा सरकार" कहते हैं, और परस्पर एक दूसरे का उत्साह बढ़ाते हैं।

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी॥
सुमिरि राम पद-पंकज पनहीं। भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनुहीं॥

शब्दार्थ—जोहारी = प्रणाम करके। सूर = वीर। रुचइ = अच्छी लगती है। रारी = लड़ाई। पनहीं = (सं० उपानह) जूता, पाद-त्राण। भाथी = (भाथा से स्त्री लिंग) तरकश। धनुहीं = धनुष।

भावार्थ—वे सब निषाद गुहराज को प्रणाम कर करके चले। वह रण में वीर हैं और उन्हें लड़ाई रुचती है। रामचन्द्र जी के चरण कमलों की पनहियों का स्मरण कर, तरकस बाँधकर धनुष की प्रत्यंचा चढ़ायी।

(नोट)—यहाँ 'भाथी' और 'धनुही' शब्द लिखने का भाव यह है कि वन निषादों के पास सुंदर राजसी ठाट बाट के तर्कस धनुषादि न थे, असुन्दर और छोटे छोटे थे।

अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं।
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े।

अँगरी = कवच। कूँड़ि = टोप (लोहे का)। बाँस = बल्लम। सेल = बरछा। ओड़न = ढाल। खाँड़े = तलवार। गगन = आकाश। छिति = पृथ्वी।

भावार्थ—वे कवच पहन कर सिर पर लोहे का टोप रखते हैं, फरसा, बल्लम, बरछा ठीक करते हैं। कुछ लोग जो ढाल तलवार चलाने में अत्यंत कुशल हैं, वे इतने उत्साह पूर्ण हैं मानो पृथ्वी को छोड़कर आकाश पर उछल जायेंगे।

निज निज साज समाजु बनाई। गुह राउतहिं जोहारे जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥

शब्दार्थ—साज-समाजु बनाई = अपना सम्पूर्ण सामान और टोली ठीक करके। गुह राउतहिं = गुहराज को।

भावार्थ—अपना सम्पूर्ण सामान और टोली ठीक करके उन लोगों ने जाकर गुहराज को प्रणाम किया। सुन्दर वीरों को देखकर गुह ने उन्हें (लड़ाई) योग्य समझा। तब सबका नाम ले लेकर उनका सम्मान किया।

दो०—भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहिं।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीर अधीर न होहिं॥ १९२॥

शब्दार्थ—धोख जनि लावहु = (मुहावरा) धोखा मत देना। सरोष = रोष पूर्वक, सोत्साह।

भावार्थ—हे भाइयो! धोखा मत देना आज मुझे बड़ा काम है। इसे सुनकर वे सुन्दर वीर उत्साह पूर्वक बोले—हे वीर अधीर मत हो। (हम आपके लिये जान लड़ा देंगे)

रामप्रताप नाथ बल तोरे। करिहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥
जीवत पाउ न पाछे धरहीं। रुंड मुंड मय मेदिनि करहीं॥

शब्दार्थ—कटकु = सेना। घोरे = (घोड़े)। पाउ = पैर। रुंड = धड़। मेदिनि = पृथ्वी।

भावार्थ—हे नाथ! रामचन्द्र जी के प्रताप और आप के बल से हम लोग उनकी सेना को बिना वीर और बिना घोड़े की कर देंगे (सब को मार डालेंगे) जीते जी पैर पीछे न रखेंगे। पृथ्वी को रुंड मुंडमय कर देंगे।

दीख निषाद नाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
एतना कहत छींक भई बाएँ। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ॥

शब्दार्थ—टोलू = मंडली, गुट। जुझाऊ = (सं० युद्धाय) सामरिक, युद्धसूचक। छींक = (सं० छिक्का)। सगुनिअन्ह = शकुन विचारने वालों ने। खेत सुहाएँ = क्षेत्र उत्तम है, अपनी जीत होगी।

भावार्थ—निषाद राज ने देखा कि अपनी मंडली अच्छी है (काफ़ी है) तब कहा कि जुझाऊ ढोल बजाओ। इतना कहते ही बायीं ओर छींक हुई। शकुन विचारने वालों ने कहा कि अच्छी दिशा में छींक हुई है।

बूढ़ एक कह सगुन विचारी। भरतहिं मिलिअ न होइहि रारी॥
रामहिं भरत मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस, बिग्रहु नाहीं॥

शब्दार्थ—मिलिअ = मेल होगा। रारी = लड़ाई। बिग्रहु = लड़ाई।

भावार्थ—एक वृद्ध शकुन विचार कर कहने लगा—शकुन ऐसा कहता है कि भरत से मेल होगा, लड़ाई न होगी, क्योंकि भरत जी रामचन्द्र जी को मनाने जा रहे हैं, सगुन ऐसाही कहता है कि लड़ाई न होगी।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा । सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सील विनु बूझे । बड़ि हित हानि जानि विनु जूझे ॥

शब्दार्थ—बूढ़ा = (सं० वृद्ध) । सहसा = जल्दबाज़ी में, शीघ्रता से । बिमूढ़ा = मूर्ख । बूझे = (सं० बुद्ध) जाने । जूझे = (सं० युद्ध) लड़ने से ।

भावार्थ—यह सुनकर गुहराज कहने लगा कि यह 'बुड्ढा अच्छा ('ठीक) कहता है । सचमुच मूर्ख लोग जल्दबाज़ी में काम करके फिर पछताते हैं । भरत जी का शील और स्वभाव जाने विना युद्ध करने से बड़ी हित-हानि है ।

दो०—गहहु घाट भट सिमिटि सब ,लेउँ मरम मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तब तस करिहउँ आइ ॥१९३॥

शब्दार्थ—घाट गहहु = घाट पर एकत्र रहो । सिमिटि = एकत्रित होकर । मरम = भेद । मध्य = उदासीन । गति = चाल, भाव ।

भावार्थ—सब वीर एकत्रित होकर घाट पर चलकर जमो । मैं जाकर उनसे मिलकर उनका भेद लूँ । उनका भाव मित्र का सा, शत्रु का सा अथवा उदासीन का सा है, यह जान कर तब वैसाही उपाय करूँगा ।

लखब सनेहु सुभाय सुहाएँ । वैर प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ ॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल, खग मृग मांगे ॥

शब्दार्थ—दुरइँ = छिपते हैं । दुराएँ = छिपानेसे । सँजोवन लागे = इकट्ठी करने लगे । खग = पक्षी ।

भावार्थ—उनका प्रेम उनके अच्छे भाव से समझ लूँगा (अर्थात् यदि वे अच्छे भाव से मिले तो समझ लूँगा कि वे युद्ध न करेंगे) क्योंकि वैर और प्रीति छिपाने से नहीं छिपते । ऐसा कहकर भेंट इकट्ठी करने लगे । गुहराज ने सेवकों से कंद, मूल, फल पक्षी और मृग मँगवाये ।

मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन आने ॥
मिलन-साजु सजि मिलन सिधाए । मंगलमूल सगुन सुभ पाये ॥

शब्दार्थ—मीन = मछली। पीन = पुष्ट। पाठीन = पढ़िना मछली। भार = बोझ। मिलन = भेंट।

भावार्थ—पुष्ट और पुरानी पढ़िता मछलियाँ भार भर भर कहार ले आये। भेंट का सामान एकत्रित करके भेंट करने के लिये चले, और वहाँ मंगलदायक अच्छा शकुन पाया (अर्थात् ज्ञात हो गया कि भरत जी रामचन्द्रजी के प्रेमी हैं (विरोधी नहीं)

देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहिं दंड प्रनामू॥
जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा। भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा॥

शब्दार्थ—दंड प्रनामू = दंडवत् प्रणाम, साष्टांग दंडवत्। बुझाइ = समझा कर।

भावार्थ—निषादराज ने उन लोगों को देखकर, दूर ही से अपना नाम कहकर वशिष्ठ जी को साष्टांग दंडवत् की। राम प्रिय समझ कर उन्होंने आशीर्वाद दिया। और भरत जी को भी उन्होंने समझा कर बताया (कि यह रामचन्द्र का सखा है)

राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा।
गाउँ जाति गुह नाम सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥

शब्दार्थ—स्यंदनु = रथ। उमगत = आनंदित होते हुए। महि लाई = पृथ्वी में रख कर।

भावार्थ—रामसखा सुनकर भरत जी ने रथ त्याग दिया। और उतर कर प्रेम से आनंदित होते हुए चले। अपना गाँव, अपनी जाति और अपना 'गुह' नाम सुनाकर पृथ्वी में मस्तक रखकर उसने भरत को प्रणाम किया।

दो०—करत दंडवत देखि तेहिं भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लषन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदय समाइ॥ १९४॥

भावार्थ—निषादराज को दंडवत करते देखकर भरत जी ने उसे हृदय से लगा लिया (और आनंदित हुए) मानो लक्ष्मण से भेंट हो गयी। उनके हृदय में प्रेम समाता नहीं।

भेंटत भरत ताहि अति प्रीती । लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ॥
धन्य धन्य धुनि मंगल मूला । सुर सराहि तेहि बरसहिं फूला ॥

शब्दार्थ—सिहाहिं = ईर्षा करते हैं । सराहि = सराहना करके, प्रशंसा करके ।

भावार्थ—भरत जी उसे अत्यंत प्रेम से भेंट रहे हैं । इसे देखकर लोग इस प्रेम-रीति की ईर्षा करते हैं (कि ऐसा रामप्रेम हम में क्यों न हुआ) चारो ओर से मंगलदायिनी "धन्य धन्य" ध्वनि हो रही है । देवता-गण उस निषादराज की सराहना करके पुष्प बरसाते हैं ।

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा । जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ॥
तेहि भरि अंक राम-लघु-भ्राता । मिलत पुलकपरिपूरित गाता ॥

शब्दार्थ—छाँह = छाया । सींचा = (पंजाबी में) जल । लेइअ सींचा = स्नान करते हैं । अंक = गोद । भरि अंक = हृदय से लगाकर । पुलक = रोमांच ।

भावार्थ—यह निषाद लोक रीति और बेद रीति सब प्रकार से नीच है, जिसकी छाया को स्पर्श करने से लोग स्नान करते हैं, उसे ही रामचन्द्र जी के छोटे भाई भरत हृदय से लगाकर मिल रहे हैं । उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमांच हो आया है ।

राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं ॥
एहँ तो राम लाइ उर लीन्हा । कुल समेत जगु पावन कीन्हा ॥

शब्दार्थ—जमुहाहीं = (सं० जृम्भा) जमुहाते हैं । समुहाहीं = (सं० संमुख) सामने आते हैं । एहँ = इसने । पावन = पवित्र ।

भावार्थ—जो लोग 'राम राम' कहकर जमुहाते हैं (आलस से भी राम नाम लेते हैं) उनके सामने पाप पुंज नहीं आते, इसने तो साक्षात रामचन्द्र जी को ही हृदय से लगा लिया है, और इस जग में इसने निज कुल समेत अपने को पवित्र कर लिया है (तब भरत जी इसका इतना सम्मान क्यों न करें) क्योंकि—

करमनाश जल सुरसरि परई । तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥

उलटा नाम जपत जग जाना। वालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

शब्दार्थ—करमनासा = कर्मनाशा नदी। (कर्मों का नाश करने वाली)। पौराणिक कथा है कि यह नदी त्रिशंकु की लार से बनी है। उलटा नाम = 'राम' को 'मरा'

भावार्थ—कर्मनाशा का जल गंगा में आकर पड़ता है (कर्मनाशा गंगा में मिली है) उस जल को कौन शिर पर नहीं धारण करता ? (सभी पवित्र मानते हैं) संसार जानता है कि उलटा नाम जपते जपते वाल्मीकि जी ब्रह्म के समान हो गये।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास (ऊपर की दो चौपाइयों में मिलकर)

दो०—स्वपच सवर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात॥ १९५॥

शब्दार्थ—स्वपच, सबर, खस, जमन, कोल, किरात = ये सब जंगली जातियों के नाम हैं। पाँवर = (सं० पामर) नीच।

भावार्थ—श्वपच, शवर, खस, यमन, कोल और किरात नाम्नी मूर्ख तथा नीच जंगली जातियाँ तक राम कहते ही परम पवित्र और त्रिभुवन में विख्यात हो जाती हैं (अतः निषाद के लिए इतना सम्मान पाना दुर्लभ नहीं)

नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई॥
रामनाम महिमा सुर कहहीं। सुनिसुनि अवध लोग सुखु लहहीं॥

शब्दार्थ—अचिरिजु = आश्चर्य।

भावार्थ—इसमें कोई आश्चर्य नहीं यह बात तो युग युगान्तर से ऐसीही चली आती है। किसे रामचन्द्र जी ने बड़प्पन नहीं दिया ? (सब को बड़प्पन दिया) इस प्रकार देवता रामचन्द्रजी के नाम की महिमा कह रहे हैं और अवधवासी जन इसे सुन सुनकर सुख पाते हैं।

राम सखहिं मिलि भरत सप्रेमा। पूंछी कुसल सुमंगल प्रेमा॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

शब्दार्थ—कुशल-षेमा = कुशल क्षेम। बिदेहू भा = अपनत्व भूल गया।

भावार्थ—भरत जी ने प्रेम पूर्वक निषादराज को भेंट कर उसकी कुशल-क्षेम और मंगल समाचार पूँछे। भरत जी का शील और स्नेह देखकर गुहराज उस समय अपनत्व भूल गया (प्रेम में मग्न होकर देह की सुध भूल गया)

सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा। भरतहिं चितवत एक टक ठाढ़ा।
धरि धीरज पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी।

शब्दार्थ—बाढ़ा = (सं० वृद्धि)। ठाढ़ा = (सं० स्थीय) खड़ा होकर।

भावार्थ—निषाद राज के मन में संकोच, स्नेह और प्रसन्नता की बाढ़ आ गयी, वह भरत जी को खड़ा खड़ा टकटकी लगाकर देखने लगा। पुनः धैर्य धारण करके और चरणों की वन्दना करके (प्रणाम करके) हाथ जोड़ कर प्रेम पूर्वक प्रार्थना करने लगा (कहने लगा)

कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी।
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें।

शब्दार्थ—पेखी = देखकर। लेखी = गनता हूं, मानता हूं। कुल = वंशज।

भावार्थ—आपके कुशलदायक चरण कमलों को देखकर मैं त्रिकाल (भूत, वर्तमान और भविष्य) में अपनी कुशल मानता हूं। हे प्रभु! अब आपके परम अनुग्रह से करोड़ों पीढ़ियों तक सब मंगल मेरे हो चुके (मेरी तो कुशल है ही, आपकी इस कृपा से करोड़ों पीढ़ियों तक मेरे वंश में मंगल होता रहेगा—सदैव सब लोग कहेंगे कि यह उसी निषाद का वंश है जिसे भरत ने भेंटा था।

दो०—समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जिअ जोइ।
जो न भजै रघुबीर-पद जग बिधि-बंचित सोइ॥ १९६॥

शब्दार्थ—करतूति = (सं० कर्तृत्व) कर्त्तव्य। कुलु = वंश। जोइ = देखकर, विचार कर। विधि-वंचित = ब्रह्मा से ठगा गया।

भावार्थ—मेरी नीच करतूतें और मेरा नीच वंश देखकर तथा रामचन्द्र

जी की महिमा को हृदय में विचार कर कि उन्होंने मुझे कैसा सम्मानित किया, जो जन रामचन्द्र जी के चरणों का भजन न करे, वह संसार में ब्रह्मा द्वारा ठगा गया है (महा अभागा है)

कपटी कायरु कुमति कुजाती। लोक वेद बाहेर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबहीं तें। भयेउँ भुवन-भूषन तबही तें॥

शब्दार्थ—कायरु = डरपोक। कुमति = दुर्बुद्धि। कुजाती = नीचवंश का। भुवन भूषन = संसार में श्रेष्ठ।

भावार्थ—मैं छली, डरपोक, दुर्बुद्धि और नीचवंश का हूं तथा लोक वेद से सब प्रकार से बाहर हूं, पर रामचन्द्र जी ने जबसे मुझे अपनाया, तभी से मैं संसार में श्रेष्ठ हो गया।

देखि प्रीति सुनि विनय सुहाई। मिलेउ बहोरि लषन लघु भाई॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारीं रानी॥

शब्दार्थ सुबानी = नम्र वचनों से (इसका अन्वय 'जुहारी' शब्द से करना चाहिये)

भावार्थ—निषाद राज की प्रीति देखकर और सुन्दर विनय सुनकर लक्ष्मण जी के छोटे भाई शत्रुघ्न जी ने उसे पुनः भेंटा। निषाद राज ने अपना नाम कहकर नम्रता पूर्वक सब रानियों को प्रणाम किया।

जानि लषन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सयलाख बरीसा॥
निरखि निषादु नगर नर नारी। भए सुखी जनु लषनु निहारी॥

शब्दार्थ—असीसा = आशीर्वाद। सय = सौ। निरखि = (सं० निरीक्षण) देखकर।

भावार्थ—सब रानियाँ उसे लक्ष्मण के समान समझकर आशीर्वाद देती हैं कि सुखी होकर तुम सौ लाख वर्ष तक जियो। अयोध्या के स्त्री पुरुष निषाद राज को देख कर ऐसे सुखी हुए, मानों लक्ष्मण ही को देखा (लक्ष्मण ही से भेंट हो गई)

कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लैचलेउ लेवाई॥

शब्दार्थ—रामभद्र = कल्याणकर्त्ता रामचन्द्र जी।

भावार्थ—सबलोग कहते हैं कि इसने अपना जीवन-लाभ पाया, क्योंकि इसने रामचन्द्रजी को अपने हाथों से हृदय में लगाकर भेंटा है। निषादराज अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर प्रसन्न मन से सबको अपने स्थानको लिवा ले चला।

दो०—सनकारे सेवक सकल चले स्वामि-रुख पाइ।
घर तरु-तर सर बाग बन बास बनाएन्हि जाइ॥१९७॥

शब्दार्थ—सनकारे = संकेत किया। रुख पाइ = मरज़ी समझ, इशारा पाकर। बास = डेरे।

भावार्थ—निषाद राजने सेवकों को संकेत किया, वे सब स्वामी का इशारा पाकर चले और लोगों के विश्राम के लिये घरों में, वृक्षों के नीचे, तालाबों के किनारे, बगीचों में और बन में जाकर डेरे बनाये।

सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेह बस अंग सिथिल तब।
सोहत दिए निषादहिं लागू। जनु तनु धरे बिनय अनुरागू।

शब्दार्थ—शृंगबेर पुर = (आधुनिक सिंगरौरा)। लागू दिए = निकट, साथ साथ।

भावार्थ—जब भरत जी ने शृंगबेर पुर को देखा, तब प्रेम के कारण उनके सम्पूर्ण अंग शिथिल हो गये। निषादराज के साथ साथ चलते हुए ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो विनय (निषाद) और अनुराग (भरत) शरीर धारण किये हुए शोभित हैं।

एहि बिधि भरत सेन सब संगा। दीख जाइ जग पावनि गंगा।
राम घाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू।

शब्दार्थ—मगनु = आनन्दित।

भावार्थ—इस प्रकार भरत जी ने सेना सहित जाकर जग पावनी गंगा जी

को देखा, और रामघाट (जिस घाट पर रामचन्द्र जी ने स्नान किया था) को प्रणाम किया, मन इतना प्रसन्न हो गया मानो स्वयं राम ही मिल गये।

करहिं प्रनाम नगर नर-नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥
करि मज्जनु माँगहि कर जोरी। रामचन्द्र पद-प्रीति न थोरी॥

शब्दार्थ—ब्रह्ममय वारि=विष्णु रूप पवित्र गंगा जल। मज्जनु=स्नान। न थोरी=अधिक।

भावार्थ—अयोध्या के स्त्री पुरुष सब गंगा जी को प्रणाम करते हैं और ब्रह्ममय जल देख देखकर प्रसन्न होते हैं। स्नान करके और हाथ जोड़ कर यह वरदान माँगते हैं कि रामचन्द्रजी के चरणों में हमारा अत्यंत प्रेम हो।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल-सुखद सेवक सुरधेनू॥
जोरि पानि वर माँगहु एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥

शब्दार्थ—रेनू=(सं० रेणु) धूलि कण। सुरधेनु=कामधेनु गाय। पानि=हाथ।

भावार्थ—भरत जी कहने लगे हे गंगे! तेरी रेणु सबको सुख देनेवाली और सेवक के लिए तो काम धेनु गाय ही है। मैं हाथ जोड़कर यही वर माँगता हूँ कि सीता और रामचन्द्र जी के चरणां में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो।

दो०—एहि विधि मज्जनु भरत करि गुरु अनुसासन पाइ॥
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लेवाइ॥ १९८॥

शब्दार्थ—अनुशासन=आज्ञा। नहानीं=स्नानकर चुकीं।

भावार्थ—इसप्रकार भरत जी स्नानकर, गुरु जी की आज्ञा पाकर और माताएँ स्नानकर चुकीं यह जानकर सबको डेरे पर लिवा ले चले।

जहँ तहँ लोगन डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा॥
गुरु सेवा करि आयसु पाई। राममातु पहिं गे दोउ भाई॥

शब्दार्थ—सोधु=खोज-खबर।

शब्दार्थ—जहाँ तहाँ लोगों ने डेरे डाले। भरत जी ने सबकी खोज

खबर ली। गुरु वशिष्ठ जी की सेवा करके और आज्ञा पाकर दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) राम माता कौशल्या के पास गये।

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननी सकल भरत सनमानी।
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहिं लीन्ह बोलाई॥

शब्दार्थ—चाँपि=दबाकर। चरन चाँपि=पैर दबाकर। आपु=स्वयं।

भावार्थ—पैर दबाकर और मीठी वाणी कहकह कर भरत जी ने सम्पूर्ण माताओं का सम्मान किया। फिर भाई शत्रुघ्न को माताओं की सेवा का भार देकर उन्होंने निषादराज को बुलवाया।

चले सखा कर सों कर जोरें। सिथिल सरीरु सनेहु न थोरें।
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥
जहँ सिय रामु लषनु निसि सोये। कहत भरे जल लोचन कोये।
भरत बचन सुनि भयेउ बिषादू। तुरत तहाँ लै गयेउ निषादू।

शब्दार्थ—सखा=निषादराज। करसों कर जोरे=हाथ से हाथ मिलाये हुए। न थोरें=अत्यंत। ठाउँ=स्थान। नेकू=थोड़ी, कुछ। जुड़ाऊ=शीतल करो। लोचन-कोये=(सं० लोचन कोण) आखों के कोने।

भावार्थ—(निषादराज के आ जाने पर) सखा के हाथ से हाथ मिलाये हुए भरत जी चले, अत्यंत प्रेम के कारण शरीर शिथिल हो गया। सखा से पूछते हैं कि मुझे वह स्थान दिखा दो जिससे मेरे नेत्र और मन की जलन कुछ शीतल हो जांय, जहाँ रात में सीता राम और लक्ष्मण सोये थे। कहते कहते भरत जी के नेत्रों में जल भर गया। भरत जी के वचन सुनकर निषाद राज को बड़ा दुःख हुआ, वह शीघ्र ही उन्हें वहाँ लिवा ले गया।

दो०—जहँ सिंसुपा पुनीत तरु रघुबर किय बिस्रामु।
अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु॥ १९६॥

शब्दार्थ—सिंसुपा=(सं०) शीशम। पुनीत=पवित्र। बिस्रामु=आराम। दंड प्रनामु=दण्डवत् प्रणाम, पृथ्वी पर लेट कर प्रणाम करना।

भावार्थ—जहाँ पर पवित्र शीशम का वृक्ष था (जिसके नीचे) रामचन्द्र

जी ने आराम किया था। अत्यंत प्रेम पूर्वक आदर के साथ भरत जी ने उसे दंड-प्रणाम किया।

(नोट)—'शिंशिपा' का अर्थ विविध विद्वान विविध प्रकार से करते हैं। ठीक प्रतीत नहीं होता कि कौन वृक्ष था। इस शब्द के तीन अर्थ मिलते हैं (१) अशोक (२) शीशम (३) शरीफा।

कुस साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन लाई॥
चरन-रेख-रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥

शब्दार्थ—कुस साथरी=कुशों की चटाई। प्रदच्छिन लाई=प्रदक्षिणा करके। आँखिन्हलाई=आँखोंमें लगाकर। बनइ न कहत=कहते नहीं बनता।

भावार्थ—रामचन्द्र जी की कुशा की सुन्दर चटाई देखकर भरत जी ने उसकी प्रदक्षिणा (फेरी) करके प्रणाम किया, और (रामचन्द्र जी के जो चरण-चिह्न वहाँ थे उन) चरण-चिह्नों की धूलि आँखों में लगाई। उनकी प्रीति की अधिकता कहते नहीं बनती।

कनक बिन्दु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखासन बचन सुबानी॥

शब्दार्थ—कनक बिन्दु=सोने के कण। दुइ चारिक=दो चार। लेखे=समझा। बिलोचन=दोनों नेत्र। संन=से।

भावार्थ—भरत जी वहाँ पर (सीता जी के वस्त्रों से झड़े हुए) दो चार सोने के कण देखे। उन्हें अपने सिर पर धारण किया और उन्हें सीता जी के समान समझा। दोनों नेत्र सजल हो गये, हृदय में बड़ी ग्लानि हुई। वे सखा निषादराज से सुन्दर वाणी से कहने लगे—

स्रीहत सीय बिरह दुति हीना। जथा अवध नर नारि मलीना।

शब्दार्थ—स्रीहत=शोभाहीन। दुतिहीना=चमक रहित।

भावार्थ—ये स्वर्ण कण सीता जी के विरह में शोभाहीन और चमक रहित हो गये हैं जैसे कि अयोध्या के पुरुष और स्त्री मलीन हैं।

पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोग जोग जग जेही।
ससुर भानुकुल भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावति पालू।
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं। जो बड़ होत सो राम बड़ाई।

शब्दार्थ—पटतर=समता। ससुर=(सं० श्वसुर)। भानुकुल भानु=सूर्यबंश में सूर्यवत् अर्थात् सूर्यवंश में श्रेष्ठ। सिहात=ईर्षा करते हैं। अमरावतिपालू=इन्द्र। गोसाईं=स्वामी, पति।

भावार्थ—(सीता जी का महत्व दर्शाते हैं) सीता जी के पिता जनक जी हैं उनकी समता किससे करूँ, क्योंकि भोग और जोग दोनों इस संसार में उनके हाथ में हैं। सीता जी के श्वसुर राजा साहब (दशरथ जी) सूर्यबंश में अत्यंत श्रेष्ठ थे, इन्द्र भी जिनकी ईर्षा करता था (कि हम दशरथ जी के समान क्यों न हुये) मेरे स्वामी रघुबंश में श्रेष्ट रामचन्द्र जी जिनके पति हैं (रामचन्द्र जी ऐसे हैं कि) जो बड़ा होता है वह रामचन्द्र जी के बड़प्पन से ही बड़ा होता है। (अर्थात् सीता जी के पिता, श्वसुर और पति सब अद्वितीय हैं)

दो०—पति देवता सुतीयमनि सीय-साथरी देखि।
बिहरत हृदउ न हहरि मम पबितें कठिन बिसेखि ॥२००॥

शब्दार्थ=पति देवता=पतिव्रता। सुतीय मनि=अच्छी स्त्रियों में भी मणिवत् श्रेष्ठ। साथरी=चटाई। न बिहरत=नहीं फटता। हृदउ=हृदय, छाती। हहरि=घबड़ाकर। पबि=वज्र।

भावार्थ—(स्वयं सीता जी कैसी हैं कि) सीता जी पतिव्रता और अच्छी स्त्रियों में भी श्रेष्ठ हैं उनकी कुश-चटाई देखकर भी मेरी छाती घबड़ाकर नहीं फट जाती, जान पड़ता है कि यह वज्र से भी अधिक कठिन है।

लालन जोगु लषन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे ॥
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। ताति बाउ तन लागि न काऊ ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ॥

शब्दार्थ—लालन जोगु=प्यार करने लायक। लोने=(सं० लावण्य) सुन्दर। अहहि न होने=न हैं और न भविष्य में होनेवाले हैं। दुलारे=(सं० दुःलालन) अत्यंत प्यारे। मृदु मूरति=सुकुमार शरीर। ताति=गरम। वाऊ=(सं० वायु) हवा। निदरे=(सं० निरादर) अनादर किया। कुलिस=(सं० कुलिश) वज्र।

भावार्थ—प्यार करने योग्य, लक्ष्मण के समान छोटा और सुन्दर भाई न हुए हैं न हैं और न होंगे। जो नगर के लोगों को प्रिय और पिता तथा माता को अत्यंत प्यारे तथा सीता और रामचन्द्र जी को प्राण-प्रिय हैं। उनका शरीर कोमल और स्वभाव अत्यंत मुलायम (सुशील) है। उनके शरीर में कभी गरम हवा भी नहीं लगी। ऐसे लक्ष्मण जी वन में सब प्रकार से विपत्ति सह रहे हैं, जान पड़ता है मेरी छाती ने करोड़ों वज्र का भी अनादर कर दिया है (क्योंकि इतने पर भी नहीं फटती)

अलंकार—व्यतिरेक।

राम जनमि जग कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुनसागर।
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाउ सबहिं सुख दाता।

शब्दार्थ—जनमि=उत्पन्न होकर। उजागर कीन्ह=प्रकाशित कर दिया। परिजन=कुटुंबी।

भावार्थ—रामचन्द्र जीने जन्म लेकर संसार को प्रकाशित कर दिया। वे रूप, शील और सब गुणों के समुद्र ही हैं (अर्थात् अत्यंत रूपवान्, शील-वान, सुखदायक और गुणी हैं) नगर के लोगों, कुटुंब, गुरु, पिता तथा माता सबको रामचन्द्र जी का स्वभाव सुख देनेवाला है।

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥
सारद कोटि, कोटि सत सेखा। करि न सकहिं प्रभु गुन-गन लेखा।

शब्दार्थ—बैरिउ=शत्रु भी। मिलनि=मिलना। बिनय=नम्रता। सेखा=शेषनाग। लेखा=गिनती।

भावार्थ—शत्रु भी रामचन्द्र जी की बड़ाई करते हैं। उनका बोलना,

मिलना और नम्रता मन को हरण करने वाले हैं। (मैं क्या कहूं) करोड़ों शारदा और सौ करोड़ शेषनाग भी रामचन्द्र जी के गुणों की गिनती नहीं कर सकते।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति।

दो०—सुख सुरूप रघुवंसमनि मंगल मोदु निधानु।
ते सोवत कुस डासि महि विधि गति अतिवलवानु॥२०१॥

शब्दार्थ—निधानु=खजाना। डासि=बिछाकर। विधि गति=विधाता की चाल।

भावार्थ—रघुवंश में श्रेष्ठ रामचन्द्र जी सुख के स्वरूप और मंगल तथा मोद के खजाने हैं (ऐसे रामचन्द्र जी) पृथ्वी पर कुश बिछाकर सोते हैं, विधाता की चाल अत्यंत वली है (जो चाहै सो कर सकता है)

रामसुना दुख कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवत राऊ॥
पलकनयनफनिमनिजेहिभाँती।जोगवहिंजननिसकल दिनराती॥
ते अब फिरत विपिन पदचारी। कंद-मूल-फल फूल अहारी॥

शब्दार्थ—काऊ=कभी। जीवनतरु=प्राण-वृक्ष। जोगवत=रक्षा करते थे। फनि=सर्प।

भावार्थ—रामचन्द्र जी ने अपने कानों से कभी दुःख का नाम सुना तक नहीं (देखने और पाने की बात ही क्या है?) राजा साहब अपने प्राण-वृक्ष की भाँति उनकी रक्षा करते थे। पलक जैसे नेत्रों की और सर्प जैसे मणि की रक्षा करता है, इसी प्रकार सब माताएँ रामचन्द्रजी की रातो दिन रक्षा करती थीं। वे ही राम अब बनमें पैदल घूम रहे हैं और कंद-मूल-फल-फूल आदि खाते हैं।

धिग कैकई अमंगल-मूला। भइसि प्रान-प्रियतम प्रतिकूला॥
मैं धिग धिग अघउदधि अभागी।सबु उतपात भयेउ जेहि लागी॥
कुल कलंकु करि सृजेउ विधाता।साइँ द्रोहि मोहिं कीन्ह कुमाता॥

शब्दार्थ—धिग=धिक्कार है। प्रान-प्रियतम=प्राण प्यारे। अघउदधि=पापका समुद्र,बड़ा पापी। जेहि लागी=जिसके कारण। करि=बनाकर। सृजेउ=उत्पन्न किया, बनाया। साइँ द्रोहि=स्वामी द्रोही।

भावार्थ—अमंगल की जड़ कैकेयी! तुझे धिक्कार है, क्योंकि तू प्राण प्यारे के भी विरुद्ध हुई। मुझे भी बारम्बार धिक्कार है, मैं पापका समुद्र (बड़ा पापी) और अभागा हूं क्योंकि सम्पूर्ण उपद्रव मेरे ही कारण हुआ। ब्रह्मा ने मुझे कुलका कलंक बनाकर पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामी द्रोही बना दिया।

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि विषादू॥
रामतुम्हहिंप्रियतुम्हप्रियरामहिं। यहनिरजोसुदोसुविधिवामहिं॥

शब्दार्थ—कत=क्यों। बादि=व्यर्थ। निरजोसु=(निश्चय) दृढ़ निश्चय, निचोड़ (अवधी) बिधिवामहिं=सरस्वती को।

भावार्थ—यह सुनकर प्रेम पूर्वक निषाद समझाने लगा—हे नाथ! आप व्यर्थ ही दुःख क्यों करते हैं। रामचन्द्रजी आपको प्यारे हैं और आप रामचन्द्र जी को प्यारे हैं। यह दृढ़ निश्चय है, उपद्रव का दोष सरस्वती को है।

(नोट)—यहाँ पर 'विधिवाम' का अर्थ 'सरस्वती' ही करना मुझे सुसंगत जँचता है। जैसा कि आगे के छंद से स्पष्ट है। आगे दोहा नं० २०७ में भरद्वाज जी स्पष्ट कहते हैं कि "गई गिरा मति धूति"।

छन्द—विधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रावरी॥
तुलसी न तुमसों राम प्रीतमु कहतुहौं सौंहैं किए।
परिनाम मंगलु जानि अपने आनिए धीरजु हिए॥

शब्दार्थ—विधि-बाम=(ब्रह्मा की स्त्री) सरस्वती। करनी=करतूत। बावरी=पागल। सराहन=प्रशंसा। रावरी=आपकी। सौंहैं=(सं० सौगंध) कसमें। हिए=हृदय में।

भावार्थ—सरस्वती की करतूत बड़ी कठिन है जिसने माता (कैकेयी)

को पगली कर दिया। (राम जी को वनवास से दुःख हुआ हो या आप की ओर से मन फिर गया हो वह बात भी नहीं है क्योंकि) उस रात (जिस रात यहाँ विश्राम किया था) रामचन्द्र जी आदर पूर्वक आपकी प्रशंसा बारम्बार करते थे। (तुलसीदास जी कहते हैं) आप के समान रामचन्द्र जी को और कोई प्यारा नहीं है, यह मैं क़सम खाकर कहता हूं। अतएव अन्त में मंगल होगा यह जान कर आप अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिये।

(नोट)—यहाँ तो स्पष्ट ही 'विधिवाम' का अर्थ 'सरस्वती' है। इस शब्द का अर्थ 'प्रतिकूल विधाता' भी लिया जा सकता है,।

सो०—अंतर जामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिअ करिअ विश्राम, यह विचार दृढ़ आनि मन ॥२०२॥

शब्दार्थ—कृपायतन = (कृपा = दया + आयतन = विस्तृत) बड़े कृपालु।

भावार्थ—रामजी अन्तर्यामी, संकोची, प्रेमी और बड़े कृपालु हैं। यह विचार अपने मनमें निश्चय करके आप चलिये और विश्राम कीजिये।

सखा वचन सुनि उर धरिधीरा। वास चले सुमिरत रघुवीरा ॥
यह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले विलोकन आरत भारी ॥

शब्दार्थ—वास = डेरा। सुधि = खबर। आरत = (सं० आर्त्त) दुखी।

भावार्थ—सखा निषादराज के वचन सुनकर और हृदय में धैर्य धारण करके रामजी को स्मरण करते हुए डेरे को चले। (राम जी ने शीशम वृक्ष के नीचे अमुक स्थान पर जाते समय विश्राम किया था) यह खबर पाकर अयोध्या नगर के नर नारी अत्यंत दुखी होकर उसे देखने के लिए चले।

परदखिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहिं खोरि निकामा ॥
भरि भरि वारि विलोचन लेहीं। वाम विधातहिं दूषन देहीं ॥

शब्दार्थ—परदखिना = (सं० प्रदक्षिणा) फेरी। खोरि = दोष। निकामा = खराब। वाम = कुटिल।

भावार्थ—प्रदक्षिणा करके सब लोग उस वृक्ष को प्रणाम करते हैं। और कैकेयी को दोष देते हैं कि बड़ी खराब है। उनके दोनों नेत्रों में जल

भर आता है और ये लोग कुटिल ब्रह्मा को दोष देते हैं (कि इसने राम जी को वनवास दिलवाया)

एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निवाहेउ नेहू॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहिं। को कहि सकइ विमोह विषादहिं॥

शब्दार्थ—सराहहिं=प्रशंसा करते हैं। नृपति=राजा। निबाहेउ=(सं० निर्वाह) निबाहा। आपु=अपने को। आपु निंदहिं=अपने को निंदते हैं, अपनी निंदा करते हैं।

भावार्थ—कुछ लोग भरत जी के प्रेम की प्रशंसा करते हैं, कोई कहता है कि राजा ने प्रेम का निर्वाह किया। सब लोग निषाद की प्रशंसा करके अपनी निंदा करते हैं। उन लोगों के विमोह और दुःख को कौन कह सकता है? (अर्थात् लोगों को बड़ा मोह और विषाद है)

एहि विधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा॥
गुरुहिं सुनाउ चढ़ाइ सुहाई। नई नाउ सब मातु चढ़ाई॥
दंड चारि महँ भा सब पारा। उतरि भरत तब सबहिं सँभारा॥

शब्दार्थ—भिनुसार=(सं० भानु सरण) प्रातःकाल। गुदारा=(फा० गुज़ारा) उतारा। गुदारा लागा=उतराई होने लगी। सुहाई=सुन्दर। दंड=घड़ी। सँभारा=सम्हाल की।

भावार्थ—इस प्रकार सब लोग रात में जगे। प्रातःकाल होतेही उतराई होने लगी। गुरु जी को सुन्दर नाव में बैठाकर सुन्दर नयी नाव में माताओं को बैठाया। चार ही घड़ी में सब लोग गंगा-पार हो गये। तब भरत जी ने उतर कर सबकी सँभाल की (अर्थात् यह देखा कि सब चीज़ें और सब लोग आ गये या नहीं)

दो०—प्रात-क्रिया करि मातु-पद वंदि गुरुहिं सिर नाइ।
आगे किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाइ॥ २०३॥

शब्दार्थ—प्रात क्रिया=शौच और संध्या आदि। बंदि=वंदना करके। सिर नाइ=प्रणाम करके।

भावार्थ—शौच और संध्या आदि से निवृत हो माताओं के चरणों को बंदनाकर और गुरु जी को प्रणाम करके निषादों को आगे किये हुये भरत जी ने सेना को चलाया।

कियेउ निषाद-नाथ अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। विप्रन्ह सहित गमनु गुरु कीन्हा॥

शब्दार्थ—अगुआई कियेउ = आगे कर लिया।

भावार्थ—भरत जी ने निषाद राज को (रास्ता दिखाने के लिये) सब से आगे कर दिया तब उसके पीछे माताओं की पालकियाँ चलाईं, फिर लघु भाई शत्रुघ्न को बुलाकर माताओं के साथ कर दिया और ब्राह्मण सहित गुरु जी चले।

आपु सुरसरिहिं कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लषन सहित सियरामू।
गवने भरत पयादेहि पाए। कोतल संग जाहिं डोरिआए॥

शब्दार्थ—सुरसरिहिं = गंगा जी को। गवने = चले। पयादेहि पाए = पैदल ही। कोतल = (बिना सवार का) घोड़ा। डोरिआए = हाथ में बाग पकड़े ले चलते हैं।

भावार्थ—तब भरत जी ने गंगा जी को प्रणाम किया। और लक्ष्मण सहित सीता राम का स्मरण किया। तत्पश्चात् पैदल ही चले। कोतल घोड़ा साथ में डोरिआये जारहे हैं (उस पर सवार नहीं हुए)।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
राम पयादेहि पाय सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥

शब्दार्थ—अस्व = (अश्व) घोड़ा। असवारा = (फा० सवार) चढ़िये। सिधाए = गये। गज = हाथी। बाजि = घोड़ा।

भावार्थ—सेवक बारम्बार कहते हैं कि हे नाथ! घोड़े पर चढ़िये। तब भरत जी कहते हैं कि राम जी तो पैदल ही गये, क्या हमारे ही लिए रथ, हाथी और घोड़े बने हैं?

सिर भरि जाउँ उचित अस मोरा। सबतें सेवक धरमु कठोरा॥

देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवकगन गरहिं गलानी॥

शब्दार्थ—सिरभरि = सिर के बल। गरहिं = गले जाते हैं, अत्यंत दुखी हैं।

भावार्थ—मुझे तो यह उचित है कि मैं सिर के बल जाऊँ (क्योंकि जहाँ स्वामी का पैर पड़े वहाँ सेवक का सिर पड़ना चाहिये) सेवक-धर्म सब धर्मों से कठिन है। भरत जी की दशा देखकर और मीठी वाणी सुनकर सब सेवक ग्लानि से गले जाते हैं (कि देखो भरत जी कैसा सेवक-धर्म का पालन कर रहे हैं हम लोगों से नहीं बन पड़ता)

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमँगि उमँगि अनुराग॥२०४॥

शब्दार्थ—पहर = (सं० प्रहर। कहँ = को। उमँगि उमँगि = उत्साहित होकर, मग्न होकर।

भावार्थ—भरत जी ने तीसरे पहर (दिन के २, ३ बजे के लगभग) प्रयाग में प्रवेश किया (प्रयाग की सीमा में पहुँचे) वे प्रेम में मग्न होकर "सीता राम सीता राम" कहते हैं।

झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओसकन जैसे॥
भरत पयादेहिं आए आजू। भयेउ दुखित सुनि सकल समाजू॥

शब्दार्थ—झलका = छाला, फफोला। पंकजकोस = कमल कोष में।

भावार्थ—भरत जी के पैरों में छाले कैसे झलक रहे हैं (दिखाई देते हैं) जैसे कमल कोष में ओसकण झलकते हैं। भरत जी आज पैदल ही आये हैं, यह सुनकर सम्पूर्ण समाज (प्रयाग के लोग) दुःखित हुए।

(नोट)—'पंकजकोश ओसकन जैसे, निहायत उत्तम उपमा है। पैरों का उपमान 'कमल' है, और 'झलके' ओसकण सम होते ही हैं।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाए। कीन्ह प्रनामु त्रिवेनिहिं आए॥
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने॥

शब्दार्थ—सविधि = विधानपूर्वक। सितासित = उज्ज्वल (गंगा) और श्याम (जमुना) महिसुर = ब्राह्मण।

भावार्थ—भरत जी ने खोज-खबर ली कि सब लोग स्नान कर चुके, तब सबको प्रणाम करके वे त्रिवेणी (संगम) पर आये और विधान पूर्वक उज्ज्वल और श्याम जलमें स्नान किया। ब्राह्मणों को दान देकर उनका सम्मान किया।

देखत स्यामल धवल हिलोरे। पुलक सरीर भरत कर जोरे॥
सकल काम-प्रद तीरथ राऊ। वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ॥

शब्दार्थ—स्यामल=नीली। धवल=उज्वल। हिलोरे=तरंगें। काम=कामना, इच्छा, अभिलाषा। काम-प्रद=कामना के देनेवाले, मनो कामना पूर्ण करनेवाले। तीरथ राऊ=(सं० तीर्थ राज) तीर्थों के राजा।

नीली और उज्वल, तरंगों को देखते ही भरत जी का शरीर गद्गद हो गया (सीता राम का स्मरण हो आने से) उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—हे तीर्थ राज! तुम सम्पूर्ण मनो कामनाओं को पूर्ण करने वाले हो, वेद में संसार में तुम्हारा प्रभाव प्रकट है।

माँगौं भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू।
असजिअ जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी।

शब्दार्थ—भीख=(सं० भिक्षा)। आरत=दुखी। काह=क्या, कौन। सुजान=सुन्दर ज्ञानवाले। जाचक=माँगने वाले, भिक्षुक।

भावार्थ—इस लिये मैं आज अपना धर्म (क्षत्रिय का कर्त्तव्य) छोड़कर तुमसे भीख माँगता हूं (क्षत्रियों का कर्त्तव्य भीख मांगना नहीं, बल्कि देना है)। "दुखी मनुष्य कौन सा कुकर्म नहीं करता?" (अर्थात् दुःखी को सभी कुकर्म करने पड़ते हैं) इस बात को हृदय में समझ कर ज्ञानवान् और अच्छे दानी संसार में याचकों की वाणी सफल करते हैं (उन्हें मुँह माँगा दान देते हैं; तुम भी हमें दो)

दो०—अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम सियराम-पद रति बरदान न आन॥ २०५॥

शब्दार्थ—रुचि = इच्छा। निरवान गति = मोक्ष। रति = प्रेम। आन = (अन्य) दूसरा।

भावार्थ—मुझे अर्थ, धर्म और काम की इच्छा नहीं है, मैं मोक्ष भी नहीं चाहता, (अर्थात् चारो फल अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष मुझे न चाहिए) बस केवल जन्म जन्म (प्रत्येक जन्म में) सीता और राम जी के चरणों में प्रेम हो, यही वरदान चाहता हूं, दूसरा कुछ भी नहीं।

जानहु राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही।
सीता राम चरन रति मोरे। अनु दिन बढ़उ अनुग्रह तोरे।

शब्दार्थ = जानहु = जानें। कुटिल = कपटी। कहउ = कहें। द्रोही = विरोधी। रति = प्रेम। मोरे = (मेरे हृदय में)। अनुदिन = प्रति दिन। बढ़उ = बढ़े। अनुग्रह = कृपा।

भावार्थ—चाहे राम जी मुझे कपटी समझें, चाहे लोग मुझे गुरु और स्वामी का विरोधी कहें, किन्तु मेरे हृदय में सीता और राम जी के चरण में तुम्हारीकृपा से प्रति दिन प्रेम बढ़े (यही चाहता हूं)

(नोट)—आगे तीन पंक्तियां तुलसी दास जी के वचन हैं।

जलदु जनम भरि सुरति विसारउ। जाँचत जलु पवि पाहन डारउ।
चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई।

शब्दार्थ—जलदु = (जल = पानी + द = देने वाला) बादल। सुरति = सुध। विसारउ = (सं० विस्मरण) विसरा दे, भुला दे। जाँचत = माँगने से। पवि = वज्र। पाहन = ओले। डारउ = गिरावे (बरसावे)। चातक = पपीहा। रटनि = रट ('पी कहाँ' 'पी कहाँ' पुकारना) घटि जाई = छोटा हो जायगा, नीचा गिना जायगा।

भावार्थ—(तुलसी दास कहते हैं) पपीहा की सुध चाहे बादल जन्म भर भुला दे, और जल माँगने से चाहे वज्र और पत्थर गिरावे, फिर भी पपीहा की रट घटने से वह छोटा गिना जायगा, (और इतने पर भी) प्रेम बढ़ने से सब प्रकार से उसकी भलाई है (इसी कारण भरत जी का यह वर

माँगना अति उत्तम बात हुई)

कनकहिं बानि चढ़इ जिमि दाहे। तिमि प्रियतम पद नेम निवाहे।
भरत बचन सुनि माँझ त्रिवेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी।

शब्दार्थ—कनकहिं = सोने में। बानि = (सं० वर्ण) आब, चमचमाहट। दाहे (सं० दग्ध) जलाने से, तपाने से। नेम = (सं० नियम)। निवाहे = निर्वाह करने से। माँझ = (सं० मध्य, प्रा० मज्झ अपभ्रंश मांझ, माँह, में आदि) में। देनी = (सं० दायिनी) देनेवाली।

भावार्थ—जिस प्रकार तपाने से सोने में चमक चढ़ती है, उसी प्रकार प्यारे (स्वामी) के चरणों में (प्रेम का) नेम निर्वाह करने से (तेज बढ़ता है)। भरत जी के वचन सुनकर त्रिवेणी के मध्य में सुन्दर मंगल की देने वाली मीठी वाणी हुई।

तात भरत तुम्ह सब विधि साधू। राम-चरन-अनुराग-अगाधू।
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं॥

शब्दार्थ—साधू = भले। अगाधू अनुराग = अत्यंत प्रेम।

भावार्थ—हे तात भरत! तुम सब प्रकार से साधु हो। रामजी के चरणों में तुम्हारा अत्यंत प्रेम है, तुम अपने मन में व्यर्थ ग्लानि करते हो। तुम्हारे समान राम को कोई भी प्रिय नहीं है।

दो०—तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि बेनिबचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥२०६॥

शब्दार्थ—तनु पुलकेउ = शरीर में रोमांच हो गया। हिय = (सं० हृदय प्रा० हिअय, हिय) हृदय।

भावार्थ—यह त्रिवेणी की अनुकूल वाणी सुनकर भरतजी के शरीर में रोमांच हो गया और हृदय में हर्ष हुआ "हे भरत! तुम धन्य हो! धन्य हो!" कहकर देवता हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं।

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परसपर मिलि दस पांचा। भरत सनेहु सीलु सुचि सांचा॥

शब्दार्थ—वैपानस = (सं०) तपस्वी = (यहाँ पर वानप्रस्थ) वटु = ब्रह्मचारी। गृही = गृहस्थ। उदासी = संन्यासी।

भावार्थ—तीर्थराज प्रयाग के निवासी ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सभी प्रसन्न हैं। दस-पाँच मनुष्य इकट्ठे होकर आपस में कहते हैं कि "भरत जी का प्रेम और शिष्टाचार पवित्र और सच्चा है।"

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिवर पहिं आए॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिवंत भाग निज लेखे॥

शब्दार्थ—गुन-ग्राम = गुण समूह। पहिं = पास।

भावार्थ—(इसके वाद) रामजी के सुन्दर गुण-गण सुनते हुए भरत जी भरद्वाज मुनि जी के पास आये। मुनि जी ने भरत को साष्टांग दंडवत करते देखा तब अपने भाग्य को मूर्तिमान् समझा (अर्थात् हमारे बड़े भाग्य से भरत के दर्शन हुए)

अलंकार—निदर्शना (दूसरी)

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु वैठे। चहत सकुच-गृह जनु भजि पैठे॥

शब्दार्थ—धाइ = दौड़कर। लाइ लीन्हें = लगा लिया। कृतारथ कीन्हे = इच्छासुफल करदी। नाइ सिरु = सिर नीचा किये हुए। भजि पैठे चहत = भाग कर छिप जाना चाहते हैं।

भावार्थ—मुनि भरद्वाज जी ने दौड़कर उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। आशीर्वाद देकर उन्हें कृतार्थ किया। मुनिजी ने आसन दिया, भरत जी उस पर सिर नीचा कियेहुए वैठ गये (उनकी दशा ऐसी थी) मानो वे भागकर संकोच के घर में छिप जाना चाहते हैं (उन्हें अत्यंत संकोच और लज्जा थी)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मुनि पूछब किछु एह बड़ सोचू। वोले रिषि लखि सीलु सँकोचू।
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। विधिकरतब पर किछु न बसाई॥

शब्दार्थ—लखि = लक्ष्य करके, समझकर, देखकर । सुधि = खबर । किछु न बसाई = कुछ वश नहीं चलता ।

भावार्थ—भरत जी को इस बात का बड़ा सोच है कि मुनि जी कुछ पूँछेंगे (कि राम जी को कैसे वनवास हुआ, कहाँ जा रहे हो आदि) किन्तु यह शील और संकोच देखकर ऋषि जी स्वयं बोले–हे भरत ! सुनो हमें सब समाचार मिल गया है, विधाता की करतूत पर किसी का कुछ वश नहीं चलता ।

दो०—तुम्ह गलानि जिअ जनि करहु समुझि मातु करतूति ।
तात कैकेइहिं दोषु नहिं गई गिरा मति धूति ॥ २०७ ॥

शब्दार्थ—जनि = मत, न । करतूति = (सं० कर्तृत्व) कार्य । गिरा = बाणी, सरस्वती । धूति गई = छल गई ।

भावार्थ—हे तात । तुम माता का कार्य समझकर हृदय में ग्लानि मत करो । इसमें कैकेयी का दोष नहीं है, सरस्वती ही उनकी बुद्धि को छल गई (बुद्धि पलट दी)

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ । लोकु वेद बुध संमत दोऊ ।
तात तुम्हार विमल जसु गाई । पाइहि लोकउ वेद बड़ाई ॥

शब्दार्थ—संमत = राय ।

भावार्थ—ऐसा (कि सरस्वती बुद्धि पलट गयी है) कहने से भी कोई अच्छा न कहेगा, पंडित लोगों की राय लोक और बेद दोनों में यही है, और तुम्हारा तो सुन्दर यश गाकर संसार और वेद बड़ाई पाते हैं (तुम्हारा दोप कहना एक दम असंतग है)

लोक वेद संमत सबु कहई । जेहि पितु देइ राजु सो लहई ॥
राउ सत्यव्रत तुमहिं बोलाई । देत राजु सुख धरम बड़ाई ॥

भावार्थ—लोक और बेद की यही राय है और सब लोग यही कहते हैं कि जिसे पिता दे वही राज्य पावे । सत्यव्रती राजा साहब बोलाकर यदि तुम्हें राज्य देते तो तुम्हें उसमें भी सुख, धर्म और बड़प्पन ही प्राप्त होता ।

राम गवनु वन अनरथ मूला। जो सुनि सकल विस्व भइसूला।
सोभावीवस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहु पछितानी॥

शब्दार्थ—अनरथ मूला = अनर्थ की जड़। सूला = पीड़ा। भावीवस = होनहार के कारण। अयानी = (सं० अज्ञानी) मूर्खा।

भावार्थ—रामजी का वन जाना ही सब अनर्थ की जड़ है जिसे सुनकर सारे संसार को पीड़ा हुई। वह भी होनहार के कारण ऐसा हुआ क्योंकि मूर्खा रानी ने कुचाल करके फिर अंत में पश्चात्ताप किया।

तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ सो अधम अयान असाधू।
करतेउ राजु त तुम्हहिं न दोषू। रामहिं होत सुनत संतोषू॥

शब्दार्थ—अलप = (अल्प) थोड़ा। अयान = मूर्ख। असाधु = कुटिल।

भावार्थ—वहाँ पर तुम्हारा थोड़ा भी अपराध जो कहे, वह अधम, अज्ञान और कुटिल है। यदि तुम राज्य भी करते, तो तुम्हें कोई दोष न होता, और इसे सुनकर रामजी को बड़ा संतोष होता।

दो०—अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहिं उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु॥ २०८॥

भावार्थ—हे भरत! अबतो तुमने बहुत ठीक किया, यही विचार तुम्हें उचित भी है। रामचन्द्र जी के चरणों का प्रेम ही संसार में सम्पूर्ण सुन्दर मँगलों की जड़ है।

सो तुम्हार धनु जीवन प्राना। भूरि-भाग को तुम्हहिं समाना॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन रामप्रिय भ्राता॥

शब्दार्थ—भूरि-भाग = बड़ा भाग्यवान।

भावार्थ—ऐसा रामजी के चरणों का स्नेह तुम्हारा धन, जीवन और प्राण है, इसलिए तुम्हारे समान बड़ा भाग्यवान और कौन है? (कोई नहीं) हे तात! यह तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि तुम दशरथ जी के पुत्र और रामजी के प्यारे भाई हो।

सुनहु भरत रघुवर मन माहीं। प्रेम पात्रु तुम सम कोउ नाहीं।
लषन राम सीतहिं अतिप्रीती। निसि सब तुम्हहिं सराहतबीती।

भावार्थ— हे भरत! सुनो रामचन्द्र जी के मन में तुम्हारे समान कोई भी प्रेम पात्र नहीं है। लक्ष्मण राम और सीता जी की तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रीति है क्योंकि (जिस रात वे यहाँ ठहरे थे) वह रात तुम्हारी प्रशंसा करते करते ही व्यतीत हो गयी थी (रात भर तुम्हारी ही प्रशंसा करते रहे)

जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुवर के। सुख जीवन जग जस जड़ नरके॥

शब्दार्थ—मरमु=भेद। मगन होहिं=आनंदित होते थे।

भावार्थ—प्रयाग में स्नान करते हमने उनका भेद जान लिया था, वे (तुम्हारे शरीर के समान यमुना का साँवला जल देखकर या संकल्प में 'भारतखंडे' में तुम्हारा नाम सुनकर) तुम्हारे प्रेममें मग्न हो रहे थे। तुम्हारे ऊपर रामचन्द्र जी का प्रेम इस प्रकार है, जिस प्रकार संसार में मूर्ख मनुष्य को जीवन के सुख का अधिक ध्यान रहता है।

अलंकार—उदाहरण।

यह न अधिक रघुवीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई॥
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू॥

शब्दार्थ—प्रनत कुटुंबपाल=शरणागतों के समूह के रक्षक।

भावार्थ—तुमको इतना प्यार करना यह रामचन्द्र जी की कोई बड़ी बड़ाई नहीं है। रामचन्द्र जी शरणागतों के समूह के पालक हैं। हे भरत! हमारे विचार से तुम तो मानो राम जी के स्नेह का शरीर ही धारण किये हुए हो (तुम्हारा शरीर ही राम प्रेममय है)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दो०—तुम कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति-रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु।२०९।

शब्दार्थ—रस=औषधि का एक भेद। (जैसे मृगांक-रस, चन्द्रोदय रस आदि) गनेसु=श्रीगणेश, आरम्भ।

भावार्थ—हे भरत! तुम्हारे लिए यह कलंक सा है, पर हम सब लोगों के लिए यह उपदेश है। रामचन्द्र जी की भक्ति रूपी रस की सिद्धि के लिए यह समय हम लोगों के लिये श्रीगणेश हुआ, (अर्थात् अब हमने राम जी की भक्ति करना तुमसे सीखा)

नव विधु विमल तात जसु तोरा। रघुवर किंकर कुमुद-चकोरा।
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग-नभ दिन दिन दूना।
कोक तिलोक प्रीति अति करिहीं। प्रभु-प्रताप रवि छबिहिं न हरहीं।
निसिदिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतब राहू।
पूरन राम सुप्रेम पियूषा। गुरु अपमान दोष नहिं दूषा॥
राम भगत अब अमिय अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू॥

शब्दार्थ—विधु=चन्द्रमा। किंकर=दास। कोक=चक्रवाक। पूरन= (पूर्ण) युक्त। पियूषा=अमृत।

भावार्थ—हे तात! तुम्हारा यश नवीन और स्वच्छ चंद्रमा है। रामचन्द्र जी के दास ही (उस चन्द्रमा के प्रेमी) कुमुद और चकोर हैं। यह (चन्द्रमा) सदा उदित रहेगा कभी अस्त न होगा। यह संसार रूपी आकाश में घटेगा नहीं, बल्कि दिन दिन दूना होगा। त्रिलोक रूपी चक्रवाक इससे प्रीति करेंगे। रामचन्द्र जी का प्रताप रूपी सूर्य इसकी छवि को हरण न करेगा (उसके कारण यह मंद न होगा) रातो दिन सर्वदा यह सबको सुख देगा, कैकेयी का कर्त्तव्य रूपी राहु इसे न ग्रसेगा। यह (चन्द्रमा) रामचन्द्र जी के सुन्दर प्रेम रूपी अमृत से युक्त है, यह गुरु का अपमान करने के दोष से दूषित न होगा। अब राम जी के भक्त इस चन्द्रमा के अमृत को पाकर भर पेट आनन्दित होंगे। तुमने तो पृथ्वीमें भी (अपने यश-चन्द्र से) अमृत सुलभ कर दिया। (अर्थात् तुम्हारा यश सबसे बढ़कर है, राम भक्त उसके प्रेमी हैं संसारमें वह नित्य-प्रति विस्तीर्ण होता जाता है। हमेशा इस यश को श्रवण कर सब लोग सुखी होंगे, कैकेयी के कुकृत्य के कारण

तुम्हारे यश में धब्बा नहीं लग सकता। राम के प्रति सुन्दर प्रेम होने से ही तुम्हारा इतना यश हुआ है। राम-भक्त अब तुम्हारा यश-गान कर अमर हो जायेंगे।

अलंकार—अधिक अभेद रूपक।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी।
दशरथ गुन-गन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं॥

दो०—जासु सनेह सकोच-बस राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ॥ २१०॥

शब्दार्थ—सुरसरि = गंगा जी। खानी = खानि, खजाना। हर = महादेव।

भावार्थ—(भरत जी के पूर्वज कैसे थे उसका वर्णन भरद्वाज जी करते हैं) हे भरत! देखो तुम्हारे पुरुषा भगीरथ जी गंगा जी को पृथ्वी में ले आये। ये गंगा जी ऐसी हैं कि स्मरण करते ही सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की खानि ही देने वाली हैं। तुम्हारे पिता राजा दशरथ जी ऐसे हुए कि उनके गुणों का वर्णन ही नहीं हो सकता। अधिक की तो बात क्या जिनके समता का भी संसार में कोई दूसरा नहीं है। क्योंकि जिनके प्रेम और संकोच के वशीभूत होकर स्वयं राम जी ही आकर प्रकट हो गये जिनके दर्शन से महादेव जी का हृदय और नेत्र कभी अघाते ही नहीं (संतुष्ट ही नहीं होते) (अर्थात् राजा भगीरथ केवल गंगा जी ही को लाये थे और तुम्हारे पिता उन्हीं को संसार में ले आये जिनके चरणों से गंगा जी की उत्पत्ति हुई)

कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम-प्रेम मृग-रूपा।
तात गलानि करहु जिअ जाए। डरहु दरिद्रहिं पारस पाए॥

शब्दार्थ—कीरति = (कीर्ति) यश। पारस = एक प्रकार का पत्थर जिसमें लोहा छुला देने से सोना हो जाता है।

भावार्थ—(और तुम कैसे हुए वह भी सुनो) तुमने यश रूपी अनुपम चन्द्रमा को उदय किया, जहाँ पर राम-प्रेममृग रूप से बसता है। हे तात!

तुम हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। पारस मणि को पाकर भी दरिद्रता से डरते हो (अर्थात् पारस पाने से फिर चाहे जितना सोना बना सकते हैं फिर दरिद्रता कहाँ)

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लषन राम सिय दरसनु पावा॥

शब्दार्थ—उदासीन = विरक्त।

भावार्थ—हे भरत! सुनो हम झूठ नहीं कहते हैं, क्योंकि हम लोग संसार से विरक्त हैं, तपस्वी हैं और वन में रहते हैं। हमने अपने सम्पूर्ण साधनों का सुन्दर फल, राम, सीता और लक्ष्मण जी का दर्शन पाया।

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा।
भरत धन्य तुम्ह जग-जसु जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ।

शब्दार्थ—जयऊ = जीत लिया है।

भावार्थ—उस फल (राम, सीता और लक्ष्मण के दर्शन) का फल तुम्हारा दर्शन मिला! प्रयाग सहित हमारा बड़ा भाग्य है। हे भरत! तुम धन्य हो!! तुम ने संसार के यश को अपने यश से जीत लिया है (सब से अधिक यश प्राप्त किया है) ऐसा कह कर मुनि जी प्रेम में मग्न हो गये।

अलंकार—कारणमाला और सार की संसृष्टि।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा॥

भावार्थ—भरद्वाज जी के वचन सुनकर और जितने सभासद थे आनन्दित हो गये। शाबाश कह कर देवता फूल बरसाने लगे। आकाश में और प्रयाग में धन्य धन्य की ध्वनि होने लगी। इसे सुन कर भरत जी प्रेम में मग्न हो रहे हैं।

दो०—पुलक गात हिय राम सिय सजल सरोरुह नयन।
करि प्रनाम मुनिमंडलिहिं बोले गदगद बयन॥ २११॥

शब्दार्थ—सरोरुह=कमल।

भावार्थ—भरत जी के शरीर में रोमाञ्च हो आया, हृदय में राम और सीता को स्मरण कर रहे हैं कमलवत् नेत्रों में जल भर गया। वे मुनि-मंडली को प्रणाम करके गद्गद वचनों से बोले।

मुनि समाजु अरु तीरथ राजू। साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू॥
एहि थल जौ किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई॥

शब्दार्थ—अघाइ अकाजू=बड़ा अकार्य हो, काम बिगड़ जाय। अघ=पाप।

भावार्थ—तीर्थ राज प्रयाग ऐसा पवित्र स्थान और मुनियों की समाज इसमें यदि सचमुच कोई शपथ करे तो उसका कार्य बिगड़ जाय, फिर इस स्थान पर यदि कुछ गढ़कर कहा जाय तो इसके समान पाप और नीचता और नहीं।

तुम्ह सर्वग्य कहौं सति भाऊ। उर-अंतरजामी रघुराऊ॥
मोहि न मातु करतब करसोचू। नहिं दुख जिअ जग जानिहि पोचू॥

शब्दार्थ—सतिभाऊ=सच्चे मन से। पोचू=नीच।

भावार्थ—आप तो सर्वज्ञ हैं मैं यह सच्चे मन से कहता हूं। मेरे हृदय की बात तो राम चन्द्र जी भली-भाँति जानते हैं। मुझे माता के कर्तव्य का शोच नहीं है और मुझे इस बात का भी हृदय में दुःख नहीं है कि संसार मुझे नीच कहेगा।

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए॥
राम बिरह तजि तन छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू॥

शब्दार्थ—सुकृत=पुण्य। तन=शरीर। छनभंगू=(सं० क्षणभंगुर) क्षणभर में नष्ट होनेवाला। प्रसंगू=कथा, बात।

भावार्थ—मुझे इसका भी डर नहीं है कि परलोक बिगड़ जायगा (मुझे स्वर्ग न मिलेगा नरक मिलेगा) पिता के मरने का भी शोक नहीं है। क्यों

कि उनके पुण्य और सुयश से सम्पूर्ण भुवन (त्रिभुवन) सुशोभित हो रहा है। उन्होंने लक्ष्मण और राम जी ऐसे (उत्तम) पुत्र पाये और राम जी के बिरह में अपना क्षणिक शरीर त्याग दिया, अतएव राजा साहब के लिए शोच करने की बातही यहाँ क्या है ? (उनके लिए शोच करना व्यर्थ है)

राम लषन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं

दो०—अजिन बसन, फल असन महि, सयन डासि कुस पात।
बसि तरुतर नित सहत हिम, आतप बरषा बात ॥ २१२ ॥

यहि दुख-दाह दहइ नित छाती। भूख न बासर नींद न राती ॥
यहि कुरोग कर औषधि नाहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं ॥

शब्दार्थ—पनहीं=(सं० उपानह) पदत्राण, जूता। अजिन=मृग चर्म। बसन=वस्त्र। असन=भोजन। सयन=सोना। कुस=घास। पात=पत्ता। हिम=जाड़ा। आतप=गर्मी। बात=वायु। दाह=जलन। बासर=दिन। औषधि=दवा। सोधेउँ=खोजा। बिस्व=संसार।

भावार्थ—राम, लक्ष्मण और सीता बिना जूतों के मुनि बेष बना कर बन में इधर उधर घूम रहे हैं। मृगचर्म पहनते हैं, फल खाते हैं, भूमि में घास और पत्ते बिछाकर सोते हैं, नित्य वृक्षों के नीचे बसकर (रात में डेरा डाल कर) जाड़ा, गर्मी, बरसात और हवा को सहते हैं, इसी दुःख की जलन से नित्य छाती जलती है। दिन में भूख और रात में निद्रा नहीं आती। इस कुरोग की दवा है ही नहीं मैंने सारा संसार खोज डाला, (इसी लिए मेरे मन में यह दृढ़ हो गया है कि इस बीमारी से मैं चंगा न होऊँगा)

मातु कुमत बढ़ई अघमूला। तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ॥
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू ॥
मोहि लगि यह कुठाटु तेहि ठाटा। घालेसि सब जग बारह बाटा ॥
मिटै कुजोग राम फिरि आए। बसइ अवध नहिं आन उपाए ॥

शब्दार्थ—कुमत=(कुमंत्र) बुरा विचार । अघमूला=पापी । हित=भलाई । बसूला=बढ़ई का एक औज़ार जिससे वह लकड़ी छीलता और बनाता है । कलि=पाप । कुकाठ=बुरी लकड़ी, (बबूर व बहेरा आदि की) कुजंत्रू=बुरायंत्र, बुरी खूँटी । कुठाटु=बुरा प्रबन्ध । ठाटा=सजाया, ठीक किया । जग=संसार (यहाँ पर अवध से ही तात्पर्य है क्योंकि किसी भी मनुष्य का संसार वहीं है जहाँ तक कि उससे सम्बन्ध रखने वालों की सीमा है) बारह बाटा=बारह मार्ग से, बारह प्रकार से । पहले भरत जी कह आये हैं "लषन (१) राम (२) सिय (३) कहँ बन दीन्हा । पठइ अमरपुर (४) पति हित कीन्हाँ ॥ लीन्ह विधवपन (५) अपजसु (६) आपू । दीन्हेउ प्रजहिं सोकु (७) संतापू (८) ॥ मोहिं दीन्ह सुखु (९) सुजसु (१०) सुराजू (११) । कीन्ह कैकई सबकर (१२) काजू ॥"

भावार्थ—माता (कैकेयी) का बुरा विचार ही पापी बढ़ई है । उसने हमारे हित को अपना बसूला बनाया और पाप रूपी कुकाष्ठ से खूँटी बनायी । उस खूँटी को उसने कुमंत्र पढ़कर अयोध्या में गाड़ा । यह सब कुठाट मेरे ही लिए किया गया है, इसने संसार को बारह मार्गों से नष्ट कर दिया । यह कुयोग रामचन्द्र जी के ही लौट आने पर मिटेगा । अन्य किसी भी उपाय से अयोध्या नहीं बस सकती । (तन्त्र विद्या में एक प्रयोग होता है कि अमुक नक्षत्र में नंगे होकर बहेरे की लकड़ी ले आवे फिर उस लकड़ी की खूँटी बनाकर उच्चाटन मंत्र पढ़कर जहाँ गाड़ दे वहाँ के निवासी वहाँ से भग जाते हैं और वह स्थान उजाड़ हो जाता है । इसी प्रयोग का रूपक यहाँ है)

अलङ्कार—रूपक ।

भरत वचन सुनि मुनि सुख पाई । सबहि कीन्हि बहु भाँति बड़ाई ॥
तात करहु जनि सोचु बिसेखी । सब दुखु मिटिहि रामपग देखी ॥

भावार्थ—भरत जी के वचन सुन कर मुनि भरद्वाज जी ने सुख पाया । सब लोगों ने भरत जी की बड़ाई की । मुनि जी ने कहा—हे तात ! तुम इतना अधिक सोच मत करो । रामचन्द्र जी के चरणों को देखतेही तुम्हारा सब दुख नष्ट हो जायगा ।

दो०—करि प्रबोधु मुनिवर कहेउ, अतिथि प्रेम प्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥ २१३ ॥

शब्दार्थ—प्रबोधु=तसल्ली, ढाढ़स । छोहु=कृपा ।

भावार्थ—मुनिवर भरद्वाज जी ने इस प्रकार ढाढ़स देकर कहा कि आज हमारे अतिथि हो और हम कंद, मूल, फल और फूल जो कुछ दें उसे कृपा पूर्वक स्वीकार करो।

(नोट)—भरत ने कहा था कि "भूख न बासर नींद न राती।" यह निमंत्रण उसी की परीक्षा है। भरत जी इस परीक्षा में पास हो गये, देखिये दोहा नं० २१६।

सुनि मुनि वचन भरत हिय सोचू। भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी॥

शब्दार्थ—गरुइ=(गुरु) भारी, महत्वपूर्ण। गिरा=वाणी। कर=हाथ।

भावार्थ—मुनि जी के वचनों को सुन कर भरत जी के हृदय में इस बात का सोच हुआ कि बुरे मौके पर मुझे बड़ा संकोच करना पड़ रहा है (कि प्रयाग ऐसे तीर्थ में जब कि हम व्रत रहते हैं ब्राह्मणों का अन्न खाना पड़ेगा) किन्तु फिर गुरु की वाणी को महत्व पूर्ण समझ कर उनके चरणों में प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बोले।

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यहु नाथ हमारा॥
भरत वचन मुनिवर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाये॥

शब्दार्थ—परम धरम=सब से बड़ा कर्तव्य। सिष=(शिष्य) चेले।

भावार्थ—हे नाथ! आप की आज्ञा को शिरोधार्य करके उसके अनुसार कार्य करना ही हमारा सब से बड़ा कर्तव्य है। भरत जी के वचन मुनिवर (भरद्वाज) जी के हृदय में बहुत अच्छे लगे। तब उन्होंने पवित्र सेवकों और शिष्यों को अपने पास बुलाया।

चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिरनाए। प्रमुदित निजनिज काजसिंधाए॥

शब्दार्थ—पहुनाई=आतिथ्य। आनहु जाई=ले आओ।

भावार्थ—भरत का आतिथ्य सत्कार करना चाहिए, इस लिए तुम लोग कंद, मूल और फल जाकर ले आओ। "बहुत अच्छा गुरु जी" कह कर उन लोगों ने प्रणाम किया और प्रसन्न होकर अपने अपने काम के लिए चले गये।

मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेउता। तसि पूजा चाहिअ जस देउता॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई। आयेसु होइ सो करहिं गोसाई

शब्दार्थ—पाहुन=अतिथि। नेउता=निमन्त्रित किया। अनिमादिक=अणिमा महिमा आदि सिद्धियाँ।

भावार्थ—मुनि जी को इसका सोच हुआ कि हमने बड़े भारी अतिथि को निमन्त्रित किया है इनका वैसा ही सत्कार भी होना चाहिए, क्योंकि जैसा देवता हो उसी के अनुसार उसकी पूजा भी होती है। यह मुनि जी का सोच सुन कर अणिमादिक ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ आयी और इन्होंने कहा हे स्वामी जैसी आज्ञा हो वैसा करें।

दो०—राम बिरह व्याकुल भरतु, सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु स्रम, कहा मुदित मुनिराज॥ २१४॥

भावार्थ—मुनिराज भरद्वाज जी ने प्रसन्न होकर कहा कि भरत जी अपने छोटे भाई शत्रुघ्न और सम्पूर्ण समाज सहित राम विरह से व्याकुल हैं, अतएव उनका आतिथ्य सत्कार करके श्रम (का दुःख) हरण करो।

रिधिसिधि सिर धरि मुनिवर बानी। बड़भागिनि आपुहिं अनुमानी
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम-लघुभाई
मुनिपद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू॥

शब्दार्थ—अनुमानी=जानकर। अतुलित=जिसकी तुलना का दूसरा कोई न हो, अद्वितीय।

भावार्थ—ऋद्धियों और सिद्धियों ने मुनिवर भरद्वाज जी की बात को शिरोधार्य किया और अपने को बड़ा भाग्यवान समझा। अब सिद्धियाँ

आपस में कहती हैं कि आज रामचन्द्र जी के छोटे भाई ही हमारे अद्वितीय अतिथि हुए हैं, अतएव मुनि जी के चरणों की वंदना करके वही कार्य आज करना चाहिए जिससे सम्पूर्ण राज समाज सुखी हो।

अस कहि रचे रुचिर गृह नाना। जो बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥
भोग-बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहिं अमर अभिलाखे॥
दासी दास साजु सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहिं मनु दीन्हे॥

शब्दार्थ—रुचिर=सुन्दर। बिलखाहिं=रोते हैं, लज्जित होते हैं। भोग=विषय सामग्री। विभूति=ऐश्वर्य। भूरि=अत्यन्त। अमर=देवता। साजु=सामान। मनहिं जोगवत रहहिं=मन का रुख देखा करते हैं, कि अब कुछ कहेंगे। मन दीन्हें=मन लगाकर।

भावार्थ—ऐसा कह कर उन्होंने अनेक सुन्दर घर बनाये जिन्हें देखकर देवताओं के बिमान भी लज्जित होते हैं। उन घरों में भोग और ऐश्वर्य की बहुत सी सामग्री भर दी है जिसे देख कर देवता भी अभिलाषा करते हैं (कि ऐसे घर हमारे भी होते) घरों में दासी और दास सब प्रकार का सामान लिये हुए आज्ञा पाने की बाट मन लगाकर जोहा करते हैं।

सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं॥
प्रथमहिं बास दिए सब केहीं। सुंदर सुखद जथा रुचि जेही॥

शब्दार्थ—पल=क्षण। बास=डेरा।

भावार्थ—सिद्धियों ने क्षण भर में सब साज-समान तैयार कर दिया। वहाँ ऐसा सुख था जो स्वर्ग में स्वप्न में भी नहीं है। सब से पहले सब को, जिसे जैसी रुचि थी, निवास स्थान दिये, जो सुन्दर और सुख देनेवाले थे।

दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहुँ, रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय-दायकु बिभव मुनिवर तपबल कीन्ह॥२१५॥

शब्दार्थ—सपरिजन=सकुटुम्ब। बिसमय-दायकु=आश्चर्यित करनेवाला।

भावार्थ—फिर भरत जी को सकुटुम्ब निवास करने की आज्ञा भरद्वाज जी ने दी कि इन घरों में ठहरिये (पुनः कवि कहता है कि यह) ब्रह्मा को भी

आश्चर्य चकित करने वाला ऐश्वर्य मुनि श्रेष्ट भरद्वाज जी ने केवल अपने तप बल से किया।

मुनि प्रभाउ जब भरत विलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ज्ञानी॥

शब्दार्थ—लोकपति = लोकों के स्वामी। विरति = वैराग्य।

भावार्थ—जब भरत जी ने मुनि जी का प्रभाव देखा तो उन्हें सम्पूर्ण लोकों के लोकपति (मुनि के समक्ष) छोटे जान पड़ने लगे। सुख की सामग्रियों का वर्णन नहीं हो सकता। उन्हें देखते ही ज्ञानी लोग अपना वैराग्य त्याग देते हैं।

आसन सयन सुबसन विताना। बन वाटिका विहँग मृग नाना॥
सुरभि फूल, फल अमिअसमाना। विमलजलासयबिविधविताना

शब्दार्थ—सयन = शैय्या। सुबसन = सुन्दर वस्त्र। बिताना = चँदवा। मृग = पशु। सुरभि = सुगन्ध। अमिअ = अमृत। जलालय = (सं० जलाशय) तालाव। बिधाना = प्रकार के।

भावार्थ—बिस्तर, शैय्या, सुन्दर वस्त्र, चँदवा, वन, वाटिका, पशु, पक्षी, सब नाना प्रकार के हैं। सुगन्ध मय फूल हैं और फल अमृत के समान मीठे हैं। स्वच्छ तालाब भी कई प्रकार के हैं।

असन पान सुचि अमित अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से॥
सुर सुरभी सुरतरु सब ही के। लखि अभिलाष सुरेस सची के॥

शब्दार्थ—असन = (सं० अशन) भोजन, खाना। पान = पीने की वस्तु। जमी = (यमी) संयमी, नेमी। सुर सुरभी = कामधेनु। सुरतरु = कल्पवृक्ष। सुरेस = इन्द्र। सची = इन्द्राणी।

भावार्थ—खाने और पीने के पदार्थ पवित्र और अमृत से बढ़कर हैं जिन्हें देख कर संयमी लोग भी सकुचाते हैं (कि हम ने व्यर्थ संयम किया, ऐसे पदार्थों का सेवन करना चाहिए) सभी के पास काम धेनु और कल्प-

वृक्ष हैं, इन्हें देखकर इन्द्र तथा इन्द्राणी के मन में (इस स्थल पर रहने की) अभिलाषा होती है ।

रितु बसन्त बह त्रिविध बयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चन्दन बनितादिक भोगा । देखि हरष बिसमय बस लोगा ॥

शब्दार्थ—बह = बहती है, चलती है । त्रिविध बयारी = तीन प्रकार की वायु, (शीतल, मन्द और सुगन्ध) । सुलभ = सरलता से पाने योग्य । पदारथ चारी = चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष,) स्रक = माला । बनिता = स्त्री । बिसमय = शोक, दुःख ।

भावार्थ—बसन्त ऋतु है, और शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु चलती है । सब को चारों पदार्थ सुलभ हैं । फूल माला, चन्दन, स्त्रियाँ आदि सब प्रकार की विषय सामग्री इकट्ठी है । इसे देख कर सब लोग हर्ष और शोक के वश में हो गये (अर्थात् यह सुन्दर साज देख कर हर्ष हुआ और राम-विरह के कारण या व्रतोपवास के प्रण के कारण शोक हुआ कि इन्हें भोग नहीं सकते)

दो०—संपति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार ।
तेहि निसि आस्रम-पींजरा, राखे भा भिनुसार ॥ २१६ ॥

शब्दार्थ—चक = चक्रवाक । खेलवार = खेलाड़ी । निसि = रात । आस्रम = स्थान, ऋष्याश्रम । भिनुसार = (सं० भानुसरण) सबेरा ।

भावार्थ—भरद्वाज कृत भोग-संपति चकई है और भरत चकवा हैं, मुनि भरद्वाज जी की आज्ञा ही खेलाड़ी है उसीने ऋष्याश्रम रूपी पींजड़ा में दोनों (चकवा-चकई) को उस रात में बन्द कर दिया है, सो वैसे ही सवेरा हो गया (रात में दोनों परस्पर मिले नहीं) । (ऐसी प्रकृति है कि चकवा-चकई कभी परस्पर रात में मिलते नहीं, वे अलग ही रहते हैं । सूर्योदय पर दोनों का मिलना होता है, यदि कोई खेलवाड़ी पींजड़े में भी बंद करे तो भी वे रात को मुँह फेर कर बैठ जायँगे । इसी प्रकार मुनि जी ने भरत की परीक्षा लेने के लिए जो भोग सम्पत्ति का आयोजन किया था

उसकी ओर भरत ने आँख उठा कर भी नहीं देखा ।)

अलङ्कार—रूपक ।

कीन्ह निमज्जनु तीरथ राजा । नाइ मुनिहिं सिरु सहित समाजा ॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी । करि दण्डवत विनय बहु भाखी ॥
पथ-गति कुसल साथ सब लीन्हें । चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें ॥

शब्दार्थ—निमज्जनु = स्नान । असीस = आशीर्वाद । दण्डवत = प्रणाम । विनय = प्रार्थना, विनती । भाखी = कही । पथ-गति कुसल = रास्ता जानने वाले । चितु दीन्हें = मन लगाये हुए ।

भावार्थ—भरत जी ने प्रयाग में स्नान किया और सम्पूर्ण समाज सहित मुनि को प्रणाम किया । तब मुनि जी की आज्ञा और आशिष पाकर उन्हें पुनः प्रणाम किया और बहुत तरह से विनती की । रास्ता जानने वाले लोगों को साथ ले सब को लिये हुए और चित्रकूट में मन लगाये हुए चले ।

राम सखा कर दीन्हें लागू । चलत देह धरि जनु अनुरागू ॥
नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया । प्रेम नेमु व्रतु धरम अमाया ॥
लखन-राम सिय पंथ कहानी । पूछत सखहिं कहत मृदु बानी ॥

शब्दार्थ—राम सखा = निषाद राज । कर = हाथ । कर दीन्हें लागू = हाथ पकड़े । अनुरागू = प्रेम । पदत्रान = जूता । अमाया = माया रहित, निश्छल ।

भावार्थ—निषादराज से हाथ मिलाए हुए भरत जी चल रहे हैं मानो प्रेम ही शरीर धारण करके चल रहा है । पैरों में जूते नहीं है और सिर पर छाता (छत्र) भी नहीं हैं । भरत जी का प्रेम नेम, व्रत और धर्म माया रहित (छलहीन) है । राम लक्ष्मण और सीताजी के मार्ग की कहानियाँ निषादराज से पूछते हैं और वह मीठी वाणी से कहता है ।

राम-बास थल बिटप बिलोके । उर अनुराग रहत नहिं रोके ।
देखि दसा सुर बरषहि फूला । भइ मृदु महि मगु मंगल मूला ।

शब्दार्थ=वास=विश्राम। थल=स्थान । विटप=वृक्ष । महि= पृथ्वी । मगु=मार्ग, रास्ता ।

भावार्थ—रामचन्द्र जी के विश्राम का स्थान या वृक्ष देखते ही हृदय में प्रेम रोकने से भी नहीं रुकता (उमड़ आता है) यह दशा देखकर देवता पुष्प बरसाते हैं। पृथ्वी मुलायम हो गयी और रास्ता मंगलमय हो गया।

दो०—किए जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयेउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात।२१७।

शब्दार्थ—जलद=बादल। बहइ=चलती है। बात=वायु, हवा।

भावार्थ—बादल छाया करते जाते हैं, और सुख देने वाली सुन्दर वायु चल रही है। ऐसा आनन्ददायक मार्ग रामचन्द्र जी के जाते समय भी नहीं हुआ था जैसा भरत जी के जाते समय हुआ।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू। भरत-दरस मेटा भव रोगू॥

शब्दार्थ—घनेरे=बहुत से। चितए=देखा था। हेरे=देखा था। परम-पद=मुक्ति। भव=सांसारिक बाधा (जन्म-मरण)

भावार्थ—रास्ते के जड़ जीव (वृक्ष, आदि) और चेतन जीव (मनुष्य पशु, पक्षी, कीड़े मकोड़े आदि) जिन्होंने रामचन्द्र जी को देखा था अथवा जिन्हें रामचन्द्र जी ने देखा था, वे सब मुक्ति के अधिकारी तो हो गये थे (पर अभी तक मुक्त हुए न थे) पर भरत जी के दर्शन ने उनका आवागमन का रोग भी मिटा दिया। (अर्थात् जीवन मुक्त बना दिया) तात्पर्य यह कि जिन जीवों ने राम के दर्शन पाये थे वे शरीर छोड़ने पर मुक्ति पाते, पर भरत के दर्शनों से वे इसी देह से जीवनमुक्त पद को प्राप्त हुए।

यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिन्हहिं रामु मन माहीं॥
बारक राम कहत जग जेऊ। होत-तरन-तारन नर तेऊ॥
भरत राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मग मंगलदाता॥
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं। भरतहिं निरखि हरषु हिय लहहीं॥

शब्दार्थ—वारक = एक बार। तरन-तारन = जो स्वयं तर जाय और दूसरों को भी तार सके। नर = मनुष्य।

भावार्थ—भरत जी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है जिन्हें रामचन्द्र जी मन में स्मरण करते हैं (वे रामचन्द्र जी भी कैसे हैं कि) एक बार जो कोई राम नाम संसार में कह देता है वह मनुष्य तरण-तारण हो जाता है। भरत जी तो रामचन्द्र जी को प्यारे हैं और फिर उनके छोटे भाई हैं, मार्ग मंगलदायक कैसे न हो ? (ऐसा होना ही चाहिये) ऐसा सिद्ध, साधु और श्रेष्ट मुनि लोग कहते हैं, और भरत जी को देखकर हृदय में आनंदित होते हैं।

देखि प्रभाउ सुरेसहिं सोचू। जग भल भलेहि, पोच कहुँ पोचू।
गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहिं भरतहिं भेंट न होई।

शब्दार्थ—सुरेस = इन्द्र। पोच = नीच।

भावार्थ—भरत का यह प्रभाव देखकर इन्द्र को सोच होने लगा (कि कहीं राम को लौटा ही न ले आवें तो फिर हमारा कार्य न होगा)संसार भले के लिये भला और बुरे के लिये बुरा है। उसने बृहस्पति जी से कहा हे नाथ ! कोई ऐसा उपाय करिये जिससे राम और भरत से भेंट ही न हो।

दो०—राम सँकोची प्रेम वस भरत सुप्रेम पयोधि।
वनी बात विगरन चहति करिअ जतनु छल सोधि।२१८।

शब्दार्थ—पयोधि = समुद्र। सोधि = ढूँढ़कर।

भावार्थ—(क्योंकि) रामचन्द्र जी संकोची और प्रेम के वश हैं, तथा भरत सुन्दर प्रेम के समुद्र ही हैं, इस लिये अब बनी बनायी बात बिगड़ना चाहती है। कोई छल ढूँढ़कर इसका यत्न कीजिये (कि राम और भरत से भेंट ही न हो। नहीं तो भरत के कहते ही राम जी अयोध्या लौट जायँगे)

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहस नयन बिनु लोचन जाने।
कह गुरु बादि छोभु छल छाँड़ू। इहाँ कपट करि होइहि भाँड़ू।

शब्दार्थ—सहस नयन = सहस्र नेत्र वाले, इन्द्र। लोचन = नेत्र। बादि = व्यर्थ। छोभु = दुःख। होइहि भाँडू = हँसी होगी।

भावार्थ—यह वचन सुनते ही देवताओं के गुरु (बृहस्पति) जी मुस्कराये और इन्द्र को सहस्र नेत्र वाला होते हुए भी विना नेत्रों का (अन्धा) समझा। बृहस्पति जी ने कहा—दुःख करना व्यर्थ है, छल को छोड़ दो। यहाँ पर कपट करने से हँसी होगी। (भरत के साथ छल करने से तुम्हारे कपट का भंडाफोड़ हो जायगा)

मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥
तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी॥

शब्दार्थ—उलटि परइ = (अवधी मुहावरा) उलट कर अपने ऊपर ही पड़ती है, अपनी ही बुराई होती है। सुरराया = (सुरराज) इन्द्र।

भावार्थ—हे सुरराज ! मायापति (रामचन्द्र जी) के सेवक के साथ माया करने से अपनीही बुराई होती है। तब (जब रामचन्द्र जी के साथ व्याकुल लोग आ रहे थे) रामचन्द्र जी का रुख पाकर कुछ किया था, अब कुचाल करने से हानि होगी।

सुनु सुरेश रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसानि न काऊ।
जो अपराध भगत कर करई। राम रोष-पावक सो जरई।

शब्दार्थ—रिसानि = क्रोध। रोष-पावक = क्रोधाग्नि।

भावार्थ—हे सुरेश ! सुनो रामचन्द्र जी का स्वभाव ऐसा है कि अपना अपराध करने से वे कभी रुष्ट नहीं होते, परन्तु जो भक्त का अपराध करता है वह राम जी की क्रोधाग्नि में जलता है।

लोकहु बेद विदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरवासा॥
भरत सरिस को राम सनेही। जगु जपु राम, राम जपु जेही॥

शब्दार्थ—इतिहासा = कथा। सरिस = समान।

भावार्थ—लोक और वेद में यह कथा प्रसिद्ध है। दुर्वासा ऋषि जी इस महिमा को भली भाँति जानते हैं। भरत जी के समान राम जी को और

कौन प्रिय है ? (कोई नहीं) क्योंकि संसार राम को जपता है और रामजी भरत को जपते हैं (भरत का स्मरण करते हैं)

दो०—मनहु न आनिअ अमरपति रघुबर-भगत अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख, दिनदिन सोक समाजु ॥२१९॥

शब्दार्थ—मनहु=मन में भी। अकाजु=बुराई। दिन दिन=नित्य-प्रति। सोक-समाजु=अत्यंत शोक।

भावार्थ—हे अमरपति ! राम जी के भक्त की बुराई मन में भी न लाना चाहिये, ऐसा करने से संसार में अपयश और परलोक में दुःख होता है। यह शोक प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है।

सुनु सुरेस ! उपदेसु हमारा। रामहिं सेवक परम पिआरा ॥
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥

शब्दार्थ—सुरेस=इन्द्र। बैर=शत्रुता।

भावार्थ—हे इन्द्र ! हमारा उपदेश सुनो, रामजी को सेवक बहुत प्रिय हैं। अपने सेवक की सेवा से वे सुख मानते हैं। और सेवक से बैर करने से अधिक बैर करते हैं (अर्थात् यदि सेवक का कोई थोड़ा अनिष्ट करें तो वे उसे उससे अधिक दंड देते हैं)

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू ॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥
तदपि करहिं सम-बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा।
अगुन अलेप अमान एक रस। राम सगुन भए भगत प्रेमबस।

शब्दार्थ—राग=प्रेम। रोषू=क्रोध। चाखा=पाता है। बिहारा=विचरण। अगुन=गुण रहित, निर्गुण। अलेप=माया रहित। अमान=जो तौला न जा सके, जो तर्का न जा सके। एक रस=एक सा।

भावार्थ—यद्यपि राम जी (निर्गुण ब्रह्म होने से) सम-स्वभाव के हैं, उनके हृदय में किसी प्रकार का प्रेम या क्रोध नहीं है, वे पाप-पुण्य और गुण-दोष को नहीं ग्रहण करते, तथा उन्होंने संसार में कर्म को ही प्रधान

कर दिया है कि जो जैसा करता है वैसाही फल पाता है, तो भी वे (सगुण होकर) भक्त और अभक्त हृदयोंके अनुसार ही उनमें सम या विषम रूप से विचरण करते हैं (अर्थात् जो भक्त होगा उस पर विशेष कृपा दृष्टि रहेगी) क्योंकि निर्गुण, माया रहित, अमान और एकरस रामचन्द्र जी केवल भक्तों के प्रेम के कारण सगुन हुए हैं।

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥

शब्दार्थ—रुचि = इच्छा, रुख। साखी = (साक्षी) गवाह।

भावार्थ—राम जी सदा सेवक की इच्छा पूर्ण करते हैं, वेद, पुराण, साधु और देवता इसके साक्षी हैं। ऐसा हृदय में समझकर कुटिलता छोड़ो और भरत जी के चरणों में सुन्दर प्रीति करो।

दो०—राम-भगत परहित निरत, परदुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें, जनि डरपहु सुरपाल॥२२०॥

शब्दार्थ—निरत = लीन, लगे रहनेवाले। भगत सिरोमनि = भक्तों में श्रेष्ठ। जनि = मत। डरपहु = डरो। सुरपाल = इन्द्र।

भावार्थ—हे सुरपाल ! (भरत जी कैसे हैं सो भी सुन लो) राम जी के भक्त, दूसरे की भलाई में रहने वाले, दूसरे के दुख से दुखी होनेवाले और दयालु हैं, अतएव भक्तशिरोमणि भरत जी से मत डरो (कि वे तुम्हारे लिए कुछ अनुचित कार्य करेंगे)

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयसु अनुसारी॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू॥

शब्दार्थ—सत्यसंध = सत्य को साधने वाले, सत्यवादी। राउर = तुम्हारा।

भावार्थ—रामजी (भी) सत्यसंध और देवताओं की भलाई करने वाले हैं, तथा भरत जी रामजी की आज्ञा का अनुसरण करनेवाले हैं। तुम स्वार्थ के कारण व्याकुल हो रहे हो। इसमें भरत जी का दोष नहीं है, यह तो तुम्हारा मोह है।

सुनि सुरवर सुरगुरु वरवानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥

शब्दार्थ—सुरवर=इन्द्र। सुरगुरु=बृहस्पति जी। प्रमोदु=प्रसन्नता। गलानी=दुःख। प्रसून=पुष्प। सुरराऊ=इन्द्र। लगे सराहन=प्रशंसा करने लगे।

भावार्थ—बृहस्पति जी की यह श्रेष्ठ वाणी सुनकर इन्द्र के हृदय में प्रसन्नता हुई और दुःख मिट गया। इन्द्र जी पुष्प बरसा कर और प्रसन्न होकर भरत के स्वभाव की प्रशंसा करने लगे।

यहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा॥

शब्दार्थ—सिहाहीं=लालयित होते हैं। उसासा=(सं० उच्छ्वास) आह भरी साँस। उमगत=उमड़ता है। पासा=(सं० पार्श्व) ओर।

भावार्थ—इस प्रकार भरत जी रास्ते में चले जा रहे हैं। उनकी दशा देखकर मुनि और सिद्ध लोग लालायित होते हैं। जब वे राम कहकर आह भरी साँस लेते हैं उस समय (ऐसा जान पड़ता है) मानो चारो ओर से प्रेम उमड़ रहा है।

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन प्रेमु न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहिं आए। निरखि नीरु लोचन जल छाये॥

शब्दार्थ—द्रवहिं=पिघलते हैं। द्रवीभूत होते हैं। कुलिस=वज्र। पषाना=(सं० पाषाण) पत्थर। पुरजन=नगर के लोग। नीरु=जल।

भावार्थ—भरत जी के वचन सुनकर वज्र और पत्थर भी द्रवीभूत होते हैं (अर्थात् वे बड़े करुणा-पूर्ण वचन कहते हैं) नगर के लोगों के प्रेम का तो वर्णन ही नहीं हो सकता। बीच में एक स्थान पर एक दिन वास करके यमुना जी के पास आये। उनका जल देखकर नेत्रों में जल छागया।

दो०—रघुबर-बरन बिलोकि बर- बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि-बिरह, चढ़े बिबेक जहाज॥ २२१॥

शब्दार्थ—वरन=(वर्ण) रंग । बर बारि=सुन्दर जल । बारिधि=समुद्र ।

भावार्थ—रामचन्द्र जी के रंग का यमुना जी का सुन्दर जल देखकर भरत जी सम्पूर्ण समाज सहित विरह के समुद्र में मग्न होते होते विवेक के जहाज पर चढ़ गये । (अर्थात् यमुना का जल देखकर उन लोगों को, राम का स्मरण करके, बड़ी करुणा हुई पर विवेक आ जाने से वे लोग सँभल गये)

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू । भयेउ समय सम सबहिं सुपासू ॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी । आईं अगनित जाहिं न बरनी ॥

शब्दार्थ—सुपासू=आराम । तरनी=नाव ।

भावार्थ—उस दिन यमुना जी के किनारे निवास करने से समयानुसार ही सबको आराम मिला । रात्रि में ही सब घाटों की बहुत सी नावें आईं जिन का वर्णन नहीं हो सकता ।

प्रात पार भए एकहि खेवा । तोषे राम सखा की सेवा ॥
चले नहाइ नदिहिं सिरु नाई । साथ निषाद नाथ दोउ भाई ॥

शब्दार्थ—खेवा=(सं० क्षेप, प्रा० केअ, खेव) वारी, उतारा । तोषे= संतुष्ट हुए

भावार्थ—प्रातःकाल सब लोग एक ही खेवे (वार) में पार हो गये । निषादराज की सेवा से सब लोग संतुष्ट हुए । स्नान करके और यमुना जी को प्रणाम करके निषादराज के साथ दोनों भाई चले ।

आगे मुनिवर बाहन आछे । राज समाज जाइ सब पाछे ॥
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे । भूषन बसन बेष सुठि सादे ॥

शब्दार्थ—बाहन=सवारी । पयादे=(फारसी) पैदल । भूषन= गहना । बसन=वस्त्र । सुठि=अत्यंत ।

भावार्थ—सबसे आगे मुनिवर वशिष्ठ जी अच्छी सवारी पर हैं, उनके पीछे सारा राज-समाज जा रहा है । राजसमाज के पीछे अत्यंत सादे गहने,

वस्त्र और वेष से दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) पैदल जा रहे हैं।

सेवक सुहृद सचिव सुतसाथा। सुमिरत लषनु सीय रघुनाथा।
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहं तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥

शब्दार्थ—सुहृद = मित्र। सचिव सुत = मंत्री पुत्र।

भावार्थ—दोनों भाई सेवक, मित्र और मंत्री पुत्रों के साथ राम लक्ष्मण और सीता का स्मरण कर रहे हैं। जहाँ जहाँ राम जी के विश्राम स्थानों को देखते हैं वहाँ वहाँ उन्हें प्रेम-पूर्वक प्रणाम करते हैं।

दो०—मगवासी नरनारि सुनि धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह बस मुदित जनमफल पाइ॥ २२२॥

शब्दार्थ—धाम = घर। धाइ = दौड़कर। सरूप = सौन्दर्य।

भावार्थ—मार्ग निवासी स्त्री-पुरुष (राज-समाज का जाना) सुनकर (तमाशा देखने के लिए घरका काम छोड़कर दौड़ते हैं और (भरतादिकों का) सौन्दर्य देखकर अपने जन्म का फल पाकर प्रेमवश प्रसन्न हो जाते हैं।

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। राम लषनु सखि होहिं कि नाहीं॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस समचाली॥

शब्दार्थ—पाहीं = से। बय = अवस्था। बपु = डील, क़द। बरन = रंग। रूपु = सुन्दरता।

भावार्थ—एक स्त्री दूसरी से प्रेमपूर्वक कहती है, हे सखि! ये राम-लक्ष्मण हैं या नहीं? क्योंकि इनकी अवस्था, क़द, रंग और सौन्दर्य वैसाही (राम-लक्ष्मण कासा) है, हे आली! इनका शील, प्रेम उन्हीं के सदृश है और चाल भी वैसी ही है।

बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्न मन मानस खेदा। सखि संदेह होइ एहि भेदा॥

शब्दार्थ—बेषु = भेष। अनी = सेना। चतुरंगा = चतुरंगिणी। मानस = मन। खेदा = दुःख।

भावार्थ—हे सखि ! (परन्तु) इनका भेष वैसा नहीं है, सीता संग में नहीं हैं आगे चतुरंगिणी सेना जा रही है। ये प्रसन्न मन नहीं हैं, (मन में दुःख है) हे सखि ! इस भेद से संदेह होता है (कि ये राम और लक्ष्मण नहीं हैं)

तासु तरक तियगन मनमानी। कहहिं सकल तोहिं सम न सयानी।
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर वचन तिय दूजी।

शब्दार्थ—सयानी = (सं०सज्ञानी) चतुर। सराहि = प्रशंसा करके। पूजी = (अवधी मुहावरा) तेरी वाणी सत्य और पूजने योग्य है, तू ठीक कहती है। दूजी = दूसरी।

भावार्थ—उसका तर्क सुनकर स्त्रियों ने मन में मान लिया (कि यह सत्य कह रही है) सब कहने लगीं तेरे समान चतुर (कोई) नहीं है (तू बड़ी चतुर है) । उसकी प्रशंसा करके और 'तू ठीक कहती है' कहकर दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली।

कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू। जेहि विधि राम-राज-रस भंगू।
भरतहिं सुमिरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी।

शब्दार्थ—राज-रस भंगू = राज मिलने में गड़बड़ होना। सुभागी = भाग्यवान्।

भावार्थ—उसने प्रेम पूर्वक सब कथा-प्रसंग कहा, जिस प्रकार राम जी को राज मिलने में गड़बड़ हुआ था। भरत को स्मरण करके उनकी प्रशंसा करने लगी कि उनका शील, प्रेम और स्वभाव बड़ा अच्छा है वे बड़े भाग्यवान् हैं।

दो०—चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं भरतसरिस को आजु ॥ २२३ ॥

शब्दार्थ—पयादे = पैदल। मनावन = मनाने, लौटा लाने।

भावार्थ—भरत जी पैदल चल रहे हैं, फल खाते हैं, पिता का दिया हुआ राज्य त्याग कर रामचन्द्र जी को लौटा लाने के लिए जा रहे हैं।

आज भरत के समान (भाग्यवान् और) कौन है ? (कोई नहीं)

भायप भगति भरत आचरनू । कहत सुनत दुख-दूषन-हरनू ।
जो किछु कहब थोर सखि सोई । राम बंधु अस काहे न होई ।

शब्दार्थ—भायप = भाईपन, भ्रातृत्व ।

भावार्थ—भरत जी का भ्रातृत्व, उनकी भक्ति, उनका आचरण ये सब कहने सुनने से दुख और दोष के हरनेवाले हैं । हे सखि ! भरत के लिए जो कुछ भी कहा जाय वह सब थोड़ा है । राम जी के भाई होकर ऐसे क्यों न हों ? (ऐसा ही होना चाहिए)

हम सब सानुज भरतहिं देखे । भइन्ह धन्य जुवती जन लेखे ।
सुनि गुन देखि दसा पछितार्हीं । कैकइ-जननि जोगु सुत नाहीं ।

शब्दार्थ—लेखे = गणना में ।

भावार्थ—हम सब अनुजसहित भरत जी को देखकर युवतियों की गणना में धन्य हो गयीं । भरत जी का गुण सुनकर और दशा देखकर और सब स्त्रियां पछताती हैं कि ये पुत्र कैकेयी ऐसी माता के योग्य नहीं हैं ।

कोउ कह दूषनु रानिहिं नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहिं जो दाहिन।
कहँ हम लोक वेद विधि हीनी। लघुकुल तिय करतूति मलीनी ।
बसहिं कुदेस कुगावँ कुठामा । कहँ एह दरसु पुन्य परिनामा ।
अस अनंदु अचिरिजु प्रतिग्रामा । जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ।

शब्दार्थ—बिधि = रीति । दाहिन = अनकूल । कुठामा = बुरे स्थान में । मरुभूमि = बालुकामय देश में । जामा = उत्पन्न हुआ ।

भावार्थ—कोई कहती है-रानी का भी दोष नहीं है, यह सब ब्रह्मा ने किया है जो हम लोगों के अनुकूल है (नहीं तो) कहाँ हम लोक और वेद की विधि से हीन, छोटे कुल की स्त्रियाँ, मलीन कर्मों वाली, बुरे देश बुरे ग्राम और बुरे स्थान में बसने वाली और कहां यह पुण्य का फल स्वरूप दर्शन ! (अर्थात् हम लोग इनके दर्शन के योग्य नहीं थीं । पर ब्रह्मा ने हमें ये दर्शन दिलाये) ऐसा आश्चर्य और आनंद प्रत्येक ग्राम में होता है,

मानों मरुदेश में कल्पवृक्ष उत्पन्न हो गया है (और लोग उसे देखकर आश्चर्य चकित एवं आनंदित हो रहे हैं)

दो०—भरत दरसु देखत खुलेउ मग-लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंहल वासिन्ह भयेउ विधिवस सुलभ प्रयागु॥२२४॥

शब्दार्थ—सिंहलवासी = सिंहल नामक द्वीप के वसनेवाले (सिंहल भारत के दक्षिण में है जिसे अब हिन्दी में लंका और अंग्रेजी में 'सीलोन' कहते हैं)।

भावार्थ—भरत जी का दर्शन करते ही मार्ग के निवासियों का भाग्य खुल गया, मानो सिंहल निवासियों के लिये संयोग से प्रयाग सुलभ हो गया हो (अब तो प्रयाग सिंहल वासियों के लिये सुलभ है पर तुलसीदास जी के समय में रेल न होने से दुर्गम था क्योंकि बीच का रास्ता दुर्लंघ्य है)।

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा।
तीरथ मुनि आस्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥

शब्दार्थ—सुरधामा = देवालय। निमजहि = स्नान करते हैं।

भावार्थ—अपने गुण के सहित रामजी की गुण-कथा सुनते हुए और रामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए भरत जी चले जा रहे हैं। तीर्थ, मुनि-आश्रम और देवालय देखकर (कहीं) स्नान करते और (कहीं केवल) प्रणाम करते हैं।

मनही मन माँगहिं वर एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू॥
मिलहिं किरात कोल बनवासी। वैषानस, बटु, जती, उदासी।

शब्दार्थ—वैषानस = (संस्कृत) तपस्वी। बटु = ब्रह्मचारी।

भावार्थ—अपने मन में यही वर माँगते हैं कि सीता राम के चरण कमलों में हमारा प्रेम हो। रास्ते में वनवासी कोल और किरात, तपस्वी, ब्रह्मचारी, यती तथा उदासी मिलते हैं।

करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही। केहि बन लषनु राम वैदेही॥

ते प्रभु समाचार सब कहहीं । भरतहिं देखि जनमफल लहहीं ॥

शब्दार्थ—जेहि तेही = जिससे तिससे, सभी से ।

भावार्थ—उन सबों को प्रणाम करके भरत जी पूछते हैं कि राम, लक्ष्मण और सीता किस वनमें हैं ? (आप जानते हैं ?) वे लोग रामचन्द्र जी का सम्पूर्ण समाचार कहते हैं और भरत जी को देखकर अपने जन्म का फल पाते हैं ।

जे जन कहहिं कुसल हम देखे । ते प्रिय राम लखन सम लेखे ॥
एहि विधि बूझत सबहिं सुबानी । सुनत राम बनवास कहानी ॥

शब्दार्थ—जन = मनुष्य । लेखे = समझते हैं ।

भावार्थ—जो मनुष्य कहते हैं कि हमने उन्हें (राम, लक्ष्मण, सीता को) कुशल पूर्वक देखा है, भरत जी उन्हें राम, लक्ष्मण और सीता के समान प्रिय समझते हैं । इस प्रकार रामचन्द्र जी के वनवास की कहानी मधुर वाणी से सबसे पूछते और सुनते (चले जा रहे) हैं

दो०—तेहि बासर बसि प्रात ही चले सुमिरि रघुनाथ ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ ॥२२१॥

शब्दार्थ—बासर = दिन ।

भावार्थ—उसदिन कहीं विश्राम करके दूसरे दिन प्रातःकाल रामचन्द्र जी को स्मरण करते हुए चले । रामजी के दर्शन की लालसा सबके हृदय में है और सबलोग भरत-सरिस ही (राम-प्रेम में व्याकुल) साथ में हैं ।

मंगल सगुन होहिं सब काहू । फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू ॥
भरतहिं सहित समाज उछाहू । मिलिहहिं रामु मिटिहि दुखदाहू ॥

भावार्थ—सबको मंगल शकुन होते हैं, और सुखद (पुरुष के दाहिने और स्त्रियों के बायें) आँखे और भुजाएँ फड़कती हैं । भरत सहित सम्पूर्ण समाज को आनन्द है । (सब इसका यही फल समझते हैं कि) रामजी मिलेंगे और दुःख की जलन मिट जायगी ।

करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेह सुरा सब छाके।
सिथिल अंग पग डगमग डोलहिं। विह्वल वचन प्रेम वस बोलहिं।

शब्दार्थ—सुरा = शराब। छाके = मतवाले बने।

भावार्थ—जिसके हृदय में जैसा भाव है वह वैसा ही मनोरथ करता हुआ सब लोग प्रेम रूपी शराब से मतवाले बने चले जा रहे हैं! अंग शिथिल हो गये हैं और रास्ते में पैर डगमगाते हैं (ठीक ठीक नहीं पड़ते) वे लोग प्रेमवश विह्वल वचन बोलते हैं।

राम सखा तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा।
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत वसहिं दोउ वीरा।

शब्दार्थ—सरित पय = पयस्विनी नदी। वीरा = भाई।

भावार्थ—निषादराज ने उस समय सहज ही शोभायमान पर्वत शिरोमणि कामदानाथ पर्वत को दिखाया। जिसके समीप पयस्विनी नदी के किनारे सीता समेत दोनों भाई बसते हैं।

देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकिजीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥

भावार्थ—देखकर सब लोग सीतापति रामचन्द्र की जय कहते हुए साष्टांग प्रणाम करते हैं। राज-समाज प्रेम में ऐसा मग्न है मानो रामचन्द्र जी अयोध्या लौट चल रहे हैं।

दो:—भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कविहिं अगम, जिमि ब्रह्मसुखु अह-मम मलिन जनेषु॥२२६।

शब्दार्थ—सेषु = शेषनाग। अह मम = अहंकार और ममता। जनेषु = मनुष्य को।

भावार्थ—भरत जी में उस समय जैसा प्रेम है वैसा शेषनाग भी नहीं कहसकते उसका कहना कवि के लिये उसी प्रकार अगम है, जैसे अहंकार और ममता से मलीन मनुष्य के लिए ब्रह्मसुख का वर्णन करना अगम है।

सकल सनेह सिथिल रघुबर के। गए कोस दुइ दिनकर ढरके।
जल थल देखि बसे, निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते।

शब्दार्थ—कोस = (सं० कोश)। दिनकर = सूर्य। ढरके = अस्त होने लगे। रघुनाथ-पिरीते = भरत जी।

भावार्थ—सब लोग रामचन्द्र जी के प्रेम में इतने शिथिल थे कि दो कोस जाते जाते सूर्य भगवान् अस्त होने लगे। तब जल और स्थल का सुपास देखकर (विचार कर) लोग एक जगह ठहर गये। रात बीत जाने पर भरत जी पुनः चले।

उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीय सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी॥
सुनि सियसपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोचबिमोचन॥

शब्दार्थ—रजनी = रात। अवसेषा—बीतते बीतते। रजनी अवसेषा = रात बीतते बीतते, तड़के। सपन = स्वप्न। तन ताए = शरीर तप्त है। आन अनुहारी = कुछ दूसरी ही तरह। सोचबिमोचन = शोच से छुड़ा देनेवाले।

भावार्थ—वहाँ (चित्रकूट में) रामचन्द्र जी रात बीतते बीतते (तड़के) जगे। सीता जी ने ऐसा स्वप्न देखा है। (से वे रामजी को सुनाती हैं कि हमने ऐसा देखा है) मानो भरत समाज सहित यहाँ आये हैं, उनका शरीर आप के वियोग से तप्त (दुखी, कृश) है। सब लोग मन-मलीन दीन और दुखी हैं। सासुओं को तो कुछ दूसरी ही दशा में (विधवा रूप में) देखा है। सीता जी का यह स्वप्न सुनकर रामजी के नेत्रों में जल भर गया और सोच से छुड़ा देनेवाले राम जी भी सोच के वश में हो गये (कि सब लोग हमें लौटा ले चलने को आरहे हैं क्या ?)

लषन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥

शब्दार्थ—नीक = अच्छा। कुचाह = बुरी खबर। पुरारि = महादेवजी।

भावार्थ—(रामजी ने लक्ष्मण से कहा) हे लक्ष्मण ! यह स्वप्न अच्छा नहीं है, कोई अत्यंत बुरी ख़बर सुनावेगा ।' ऐसा कह कर भाई सहित राम जी ने स्नान किया । महादेव जी का पूजन और साधुओं का सम्मान किया।

छन्द—सनमानि सुर मुनि वंदि बैठे उत्तर दिसि देखत भए ।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे विकल प्रभु आस्रम गए ॥
'तुलसी' उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे ।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

शब्दार्थ—नभ = आकाश । खग = पक्षी । मृग = पशु । भूरि = बहुत ।

भावार्थ—राम जी देवताओं का सम्मान करके और मुनियों की वंदना करके (अपने आश्रम में) बैठे और उत्तर दिशा की ओर देखने लगे । देखा कि आकाश में धूल उड़ रही है, बहुत से पशु पक्षी भाग रहे हैं और व्याकुल होकर रामजी के आश्रम में आरहे हैं । तुलसीदास जी कहते हैं, रामचन्द्रजी यह सब दशा देखकर उठे और कहा—क्या कारण है ? और हृदय में आश्चर्यान्वित होकर रह गये । इसी समय कोल और किरातों ने आकर सब समाचार सुनाया (कि भरत जी आ रहे हैं)

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलकभर ।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल ॥ २२७ ॥

शब्दार्थ—बैन = (सं० वचन प्रा० वयन, बैन) बात । प्रमोद = हर्ष । तन = शरीर । पुलक भर = रोमांचित हो गया । सरोरुह = कमल ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं—यह सुमंगल मय वचन सुनकर रामजी के मन में बड़ा हर्ष हुआ, शरीर रोमांचित हो गया और शरद कमल के सदृश (सुन्दर) नेत्र प्रेमाश्रु से भर गये ।

अलंकार—वाचक धर्म लुप्तोपमा—('सरद सरोरुह नैन' में)

बहुरि सोचबस भे सिय रवनू । कारन कवन भरत आगवनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी । सेन संग चतुरंग न थोरी ॥

शब्दार्थ—सिय रवनू = (सीतारमण) रामजी ।

भावार्थ—किन्तु रामजी पुनः सोच के वश हो गये और सोचने लगे कि भरत के आने का कारण क्या है ? पुनः एक मनुष्य ने आकर कहा कि उनके साथ बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना भी है।

सो सुनि रामहिं भा अतिसोचू । इत पितुवच उत बंधु सँकोचू॥
भरत सुभाउ समुझि मनमाहीं । प्रभुचित हित थिति पावत नाहीं ॥
समाधान तब भा यह जाने । भरतु कहे महँ, साधु, सयाने ॥

शब्दार्थ—पितु वच = पिता की आज्ञा । हित = प्रेम । समाधान = संतोष । साधु = अच्छे । सयाने = ज्ञानी ।

भावार्थ—यह सुनकर रामजी को बड़ा सोच हुआ । एक ओर पिता की आज्ञा थी और दूसरी ओर भाई का संकोच था । भरत का स्वभाव (प्रेमपूर्ण) समझ कर रामचन्द्र जी का चित्त प्रेम की स्थिति को पाता ही नहीं (कि किसका प्रेम निवाहें । पिता की आज्ञा मानें या भरत का कहना) किन्तु यह जानकर संतोष हुआ कि भरत हमारे कहने में हैं, सज्जन और ज्ञानी हैं (वे लौटा ले चलने के लिए हठ न करेंगे)।

लखन लखेउ प्रभु हृदय खँभारू । कहत समय सम नीति विचारू ॥
विनु पूछे किछु कहउँ गोसाईं । सेवक समय, न ढीठ ढिठाई ॥
तुम्ह सरवज्ञ सिरोमनि स्वामी । आपुनि समुझि कहउँ अनुगामी॥

शब्दार्थ—लखेउ = लक्ष्य किया । खँभारू = क्षोभ, खलबली, व्याकुलता ।

भावार्थ—लक्ष्मण जी ने राम जी के हृदय को क्षुब्ध देखा, तब वे समयानुसार नीति का विचार कहने लगे । हे स्वामी ! मैं बिना पूछेही कुछ कहता हूं । मैं आपका सेवक हूं और बिना पूछे ही कहने का समय है, इस लिए इस धृष्ट की धृष्टता को क्षमा कीजियेगा (सुअवसर पर यदि सेवक बिना पूंछे ही कुछ कहै तो उसे ढिठाई न समझना चाहिये) हे स्वामी ! आप तो सर्वज्ञों में श्रेष्ठ हैं (सब जानते ही हैं) पर मैं आपका अनुगामी हूं अपनी समझ की बात कहता हूं ।

दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जिअ, जानिअ आपु समान ॥ २२८ ॥

शब्दार्थ—सुहृद = सुन्दर हृदयवाले, सहृदय । निधान = खजाना । प्रतीत = विश्वास । आपु समान = अपने ही समान ।

भावार्थ—हे नाथ आप बड़े सहृदय और सरल चित्तवाले हैं, शील तथा स्नेह के तो आप खजाना ही हैं। आप अपने ही समान सब के ऊपर प्रेम और विश्वास करते हैं, परन्तु,

विषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोह बस होहिं जनाई ॥
भरत नीतिरत साधु सुजाना । प्रभुपद प्रेम सकल जग जाना ॥
तेऊ आजु राज पद पाई । चले धरम मरजाद मिटाई ॥

शब्दार्थ—प्रभुताई = स्वामित्व, बड़प्पन । होहिं जनाई = प्रगट होजाते हैं ।

भावार्थ—(किन्तु) मूढ़ विषयी जीव बड़प्पन पाकर मोह के कारण प्रकट हो जाते हैं (उनकी बुराई खुल जाती है) देखिये भरत जी नीतिवान हैं, सज्जन हैं, ज्ञानवान हैं और सारा संसार जानता है कि आपके चरणों में उनका प्रेम है परंतु वे भी आज राजपद पाकर धर्म-मर्यादा को नष्टकरके (उल्लंघन करके) चल रहे हैं ।

कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी । जानि राम बनवास एकाकी ॥
करि कुमंत्रु मन, साजि समाजू । आए करइ अकंटक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई । आए दल बटोरि दोउ भाई ॥

शब्दार्थ—कुबंधु = बुरा भाई । ताकी = देखकर, विचारकर । एकाकी = अकेला । कुमंत्रु = बुरी राय । अकंटक = निर्बाध्य । कोटि = करोड़ों । कलपि = कल्पना करके । दल = सेना । बटोरि = इकट्ठा करके ।

भावार्थ—(हमें जान पड़ता है) ये कुटिल, कुबंधु कुअवसर विचारकर, रामजी को बनवासी और अकेला जानकर, मन में कुमंत्रणा करके और सब सामान सजाकर (राम को मार कर) अबाध्य राज करने के अभिप्राय से आये हैं । करोड़ों प्रकार की कुटिल कल्पनायें करके दोनों भाई सेना इकट्ठी

करके आये हैं।

जौ जिअ होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली।
भरतहिं दोषु देइ को जाए। जग बौराइ राजपद पाए॥

शब्दार्थ—जौ=यदि। सोहाति=अच्छी लगती। बाजि=घोड़ा। गज=हाथी। आली=पंक्ति (आली का अन्वय रथ, बाजि और गज तीनों से होगा) जाए=व्यर्थ। बौराइ=पगला जाता है।

भावार्थ—यदि हृदय में कपट और कुचाल न होती तो रथों, घोड़ों और हाथियों की अवलियां किसे अच्छी लगतीं? (अर्थात् शुद्धभाव होने से यह सेनाका सामान साथमें न लाते) हाँ, भरत को व्यर्थ ही कौन दोष दे। संसार राजपद पाकर पगला जाता है।

दो०—ससि गुरुतिय-गामी नहुषु चढ़ेउ भूमिसुर-जान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम को बेनु समान॥ २२६॥

शब्दार्थ—ससि=चंद्रमा। भूमिसुर जान=ब्राह्मणों पर चलनेवाली सवारी।

भावार्थ—(राजपद या ऊँचापद पाने से) चन्द्रमा गुरुपत्नीगामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणों को पालकी में लगाकर उसपर चढ़कर चले। और वेणु लोक और वेद दोनों से विमुख होगया, उसके समान दूसरा कौन अधम है? (कोई नहीं)

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी। समर सरोष राममुख देखी॥

शब्दार्थ—सहसबाहु=सहस्रबाहु सुरनाथ=इन्द्र। रिपु=शत्रु। रिन=(सं० ऋण) कर्जा। रंच=थोड़ा सा। भलाई=अच्छा। निदरे=निरादर किया। असहाई=सहायता हीन। समर=रण। सरोष=क्रोध पूर्ण।

भावार्थ—सहस्राबाहु, इन्द्र और त्रिशंकु * किसे राजमद ने कलंक नहीं दिया (अर्थात् सब राजमद से कलंकित हो चुके हैं) भरत जी ने यह उपाय उचित ही किया है, क्योंकि शत्रु और ऋण को थोड़ा सा भी शेष न रखना चाहिए। पर भरत जी ने एक (कार्य) अच्छा नहीं किया, (वह यह कि) रामजी को सहायताहीन समझकर उनका निरादर किया (इस वनवास की अवस्था में उनसे लड़ने आ रहे हैं) वह भी आज उन्हें ज.न पड़ेगा जब वे राम जी का क्रोधपूर्ण मुख रण में देखेंगे।

एतना कहत नीतिरस भूला। रन-रस-बिटप पुलक मिस फूला॥
प्रभु पद बंदि सीसरज राखी। बोले सत्य सहज बल भाखी॥

शब्दार्थ—रन रस = वीररस। बिटप = वृक्ष। पुलक = रोमांच। मिस = बहाने से। बंदि = प्रणाम करके। रज = धूलि (चरणों की धूलि)। सहज = स्वाभाविक। भाखी = कहकर।

भावार्थ—इतना कहते कहते वे नीति को भूल गये। (लक्ष्मण को रोमांच हो आया) मानो वीर-रस रूपी वृक्ष रोमांच के बहाने फूल उठा है। रामजी के चरणों को प्रणाम करके और उनकी धूलि सिरपर रखकर वे अपने सच्चे और स्वाभाविक बल को कहते हुए बोले—

अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचरा न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मनमारे। नाथ साथ धनुहाथ हमारे॥

शब्दार्थ—उपचरा = (सं० उपचरण) (कु) व्यवहार किया, सताया। मन मारे = मन को दबाये हुए।

भावार्थ—हे नाथ! मेरे कहने को बुरा न मानियेगा (भरत ने हमारे साथ कम (कु) व्यवहार नहीं किया? (बहुत बुरा व्यवहार किया है) कहाँ तक सहें और मन को दबाये रहें। हम आपके साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में है (ऐसी अवस्था में मैं अब भरत का कुव्यवहार नहीं सह सकता)

---

* इनकी कथाएँ परिशिष्ट में देखिये।

दो०—छत्रिजाति रघुकुल जनम राम अनुग जग जान।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर नीच को धूरि समान॥ २३०॥

शब्दार्थ—अनुग = सेवक।

भावार्थ—मैं जाति का क्षत्रिय हूं, रघुकुल में (ऐसे ऊँचे कुल में हमारा) जन्म हुआ है, संसार जानता है कि मैं रामजी का सेवक हूं (फिर किसी का तैश कैसे देख सकता हूं क्योंकि) लात मारने से धूल भी सिर पर चढ़ती है जिसके समान कोई दूसरी वस्तु नीच है ही नहीं (फिर ऊँचों की तो बात क्या, उच्च कुलवाले अपमान कैसे सह सकते हैं)

अलंकार—समुच्चय (दूसरा)—

उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ वीर रस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटिभाथा। साजि सरासन सायकु हाथा॥

शब्दार्थ—रजायसु = आज्ञा। कटि = कमर। भाथा = तरकश। साजि सरासन = धनुष सजाकर प्रत्यंचा चढ़ाकर। सायकु = बाण।

भावार्थ—लक्ष्मण जी उठे और हाथ जोड़ कर आज्ञा माँगी। मानो वीर रस सोते से जाग पड़ा हो। सिर में (खुलीहुई) जटा बाँधी, तरकश कमर में कसा, धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई और हाथमें बाण ले लिया (लड़ने के लिए तैयार हो गये)

आजु राम सेवक जस लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई॥

शब्दार्थ—सिखावन देऊँ = (मुहावरा) दंड दूँ, मजा चखाऊँ। समर सेज = रण शैय्या। समर सेज सोवहु = रण शैय्या पर सोओ अर्थात् मर जाओ।

भावार्थ—आज मैं राम सेवक होने का यश लूँ (राम जी के कार्य के लिए प्राण दे दूँ) भरत को रण में दंड दूँ। राम जी के निरादर करने का फल पाकर दोनो भाई (भरत और शत्रुघ्न) रण शैय्या पर सोओ।

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करऊँ रिस पाछिलि आजू॥

जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातौं खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तउ मारउँ रन राम दोहाई॥

शब्दार्थ—समाजू=सामान। रिस—क्रोध। पाछिलि=पिछली। (भरत जी का गरुड़ का अवतार है, अतः शेषावतार लक्ष्मण से स्वभावतः वैर है)। करि निकर=हाथियों का समूह। दलइ=नष्ट करता है। मृगराजू=सिंह। लवा=बटेर। निपातौं=गिरा दूँ, मार डालूँ। खेता=(क्षेत्र) रण में।

भावार्थ—आज अच्छा सम्पूर्ण सामान इकट्ठा हो गया है। मैं अब पिछला क्रोध प्रकट करता हूं। जैसे सिंह हाथियों के समूह को नष्ट कर देता और जैसे बाज बटेर को (चंगुल में) लपेट लेता है, उसी प्रकार मैं भरत को सेना और भाई सहित तिरस्कार करके रण क्षेत्र में गिरा दूंगा (मार डालूंगा) यदि शंकर जी भी आकर सहायता करें तो भी राम की कसम इन्हें (भरत को) अवश्य मारूंगा।

दो०—अति सरोष माखे लषनु, लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान॥२३१॥

शब्दार्थ—सरोष=क्रोध पूर्वक। माखे=रुष्ट हुए। सपथ=प्रतिज्ञा। भभरि भगान चाहत=डर कर भाग जाना चाहते हैं।

भावार्थ—लक्ष्मण जी अत्यन्त क्रोध पूर्वक रुष्ट हुए, उनका क्रुद्ध रूप देखकर और सत्य प्रतिज्ञा सुनकर, सम्पूर्ण लोक भयभीत हो गये तथा लोक पाल डर कर भाग जाना चाहते हैं (कि अब लक्ष्मण जी प्रलय उपस्थित कर देंगे)।

जगु भय-मगन गगन भइ बानी। लषन बाहु बल बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकै को जाननि हारा॥
अनुचित उचित काजकिछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबकोऊ
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥

शब्दार्थ—भय-मगन=भयभीत है। गगन=आकाश। विपुल=अत्यन्त। सहसा=एकाएक। बुध=पण्डित।

भावार्थ—संसार भयभीत हो उठा, लक्ष्मण जी की भुजाओं के बल की खूब प्रशंसा करके आकाशवाणी होने लगी। हे तात! तुम्हारा प्रताप और प्रभाव कौन कह सकता है और कौन जानने वाला है। पर अनुचित और उचित जो कुछ भी कार्य हो उसे समझ बूझ कर करना चाहिए, तब सब लोग उसे अच्छा कहते हैं (नहीं तो बुरा कहते हैं) जो लोग सहसा कोई काम करके पीछे पछताते हैं, वेद और पण्डित उन्हें बुद्धिमान नहीं कहते।

सुनि सुर बचन लपन सकुचाने। रामसीय सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राज मदु भाई॥
सो अँचवत मातहिं नृप तेई। नाहिन साधु-सभा जिन्ह सेई॥
सुनहु लपन भल भरत सरीसा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

शब्दार्थ—सुर=देवता। अँचवत=(आचमन) पीने से। मातहिं=मतवाले हो जाते हैं। सरीसा=(सं० सदृश) समान। विधि प्रपच=संसार। दीसा=(सं० दृश्य) देखा।

भावार्थ—देवताओं के वचन सुनकर लक्ष्मण जी सकुचा गये, तब राम और सीता ने उनका आदर पूर्वक सम्मान किया और रामचन्द्र जी ने कहा हे तात! तुमने बड़ी अच्छी नीति कही। हे भाई! राज मद सब मदों से कठिन है पर उस मद को पीकर वेही राजा मतवाले हो जाते हैं जो अच्छे लोगों की सभा का सेवन नहीं करते (जो सत्सङ्ग में नहीं रहते) हे लक्ष्मण! सुनो, भरत ऐसा अच्छा मनुष्य हमने तो संसार में न सुना है और न देखा ही है।

दो०—भरतहिं होइ न राज मदु, बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ॥ २३२॥

शब्दार्थ—विधि हरि हर=ब्रह्मा, विष्णु, महेश। काँजी=खटाई। सीकर=बूँद। छीर सिन्धु=क्षीर सागर। बिनसाइ=बिगड़ सकता है।

भावार्थ—भरत को ब्रम्हा, विष्णु, महेश का पद पाने पर भी राजमद नहीं हो सकता (अयोध्या का राज्य किस गणना में है) क्या कभी खटाई की बूंदों से क्षीर सिंधु बिगड़ सकता है ? नहीं।

अलङ्कार—वक्रोक्ति से पुष्ट अर्थान्तरन्यास।

तिमिर तरुन तरनिहिं मकु गिलई। गगन मगु न मकु मेघहिंमिलई
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाँड़इ छोनी॥
मसक फूंक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृप मद भरतहिं भाई॥
लषन तुम्हारि सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना

शब्दार्थ—तिमिर = अन्धकार। तरुन तरनिहि = दोपहर के सूर्य को। मकु = चाहे। गिलई = खा जावे। गगन = आकाश। मगु = रास्ता। मेघहिं = बादल को। गोपद जल = गाय के खुर में जितना जल हो। बूड़हिं = डूब जाँय (बूड़ना शब्द वर्ण विपर्यय द्वारा डूबना से ही बना है) घटजोनी = अगस्त्य जी। बरु = चाहे। छोनी = पृथ्वी। मसक = मच्छड़। मेरु = देवताओं का पर्वत। सपथ = कसम। आना = कसम। सुचि सुबन्धु = अच्छा भाई।

भावार्थ—चाहे अन्धकार दोपहर के सूर्य को खा जाय, चाहे आकाश में बादलों को रास्ता न मिले, चाहे गाय के खुर इतने जल में (समुद्र का आचमन कर जाने वाले कुंभज) अगस्त्य ऋषि डूब जायँ, चाहे पृथ्वी अपनी स्वाभाविक क्षमा त्याग दे, और चाहे मच्छड़ की फूँक से मेरु पर्वत उड़ जाय। पर हे भाई भरत को राज मद नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण मैं तुम्हारी कसम और पिता जी की सौगन्ध खा कर कहता हूं कि भरत के समान पवित्र और अच्छा भाई (संसार में और) है ही नहीं।

अलङ्कार—असम्भव से पुष्ट अर्थान्तरन्यास।

सुगुन पीरु अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच विधाता॥
भरत हंस रवि बंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन वारी। निज जस जगत कीन्हि उँजियारी
कहत भरत गुन सील सुभाऊ। प्रेम-पयोधि मगन रघुराऊ॥

शब्दार्थ—षीर = (सं० क्षीर) दूध। मिलइ = मिलाकर। परपञ्च = (पाँच तत्वों का) संसार। विधाता = ब्रह्मा। तड़ागा = तालाब। पय = दूध। वारी = जल। उँजियारी = प्रकाश। पयोधि = समुद्र।

भावार्थ—हे तात! सुन्दर गुण दूध के समान हैं, और अवगुण जल के समान हैं, इन दोनों को मिला कर विधाता संसार की रचना करता है। भरत जी हंस के समान हैं और सूर्य वंश ही तालाब है (जिस में गुणाव-गुण रूप दूध और पानी भरा है) इस वंश में जन्म लेकर उन्हों ने (भरत रूपी हंस ने) गुण और दोष को अलग २ कर दिया। गुण रूपी दूध को तो ग्रहण कर लिया और अवगुण रूपी जल को त्याग दिया (हंस में ऐसी शक्ति होती है कि वह जल में मिले दूध को उसमें से निकाल देता है और पानी पानी रहने देता है)। इन्हों ने अपने यश से संसार में प्रकाश कर दिया। भरत के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करते करते रामचन्द्र जी प्रेम के समुद्र में गोता खाने लगे। (अर्थात् जिस प्रकार हंस दूध और जल मिले पदार्थ में से केवल दूध को ही ग्रहण करता है उसी प्रकार भरत ने सूर्य वंश में जन्म लेकर केवल गुणों को ही ग्रहण किया है अवगुणों को नहीं ऐसा कहते कहते प्रेम के मारे रामचन्द्र जी बेहोश हो गये)

अलङ्कार—परंपरित रूपक।

दो०—सुनि रघुवर बानी विवुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपानिकेतु॥ २३३॥

शब्दार्थ—विवुध = देवता। हेतु = प्रेम। कृपा निकेतु = कृपालु।

भावार्थ—रामचन्द्र जी की वाणी सुनकर और उनका भरत पर प्रेम देख कर सब देवता रामचन्द्र जी की प्रशंसा करने लगे कि 'राम जी ऐसा कृपालु स्वामी और कौन है?' (कोई नहीं)।

जौ न होत जग जनम भरत को। सकल-धरम-धुर धरनि धरत को॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥

शब्दार्थ—धुर = धुरा। धरनि = पृथ्वी। धरत को = कौन धारण करता। गाथा = कथा।

भावार्थ—(देवता कहते हैं) यदि संसार में भरत का जन्म न होता तो सम्पूर्ण धर्म की धुरा को कौन धारण करता ? (कोई नहीं) हे रामचन्द्र जी ! कवियों के लिए भी अगम्य भरत के गुणों की कथा तुम्हारे सिवा और कौन जान सकता है ? (कोई भी नहीं)

लषन राम सिय सुनि सुरबानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी।
इहाँ भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनी पुनीत नहाए॥

शब्दार्थ—सहाए = सेना।

भावार्थ—राम, लक्ष्मण और सीता जी ने देवताओं की यह वाणी सुनकर अतीव सुखपाया जो कहा नहीं जा सकता। इधर भरत जी ने अपनी सब सेना सहित पवित्र मंदाकिनी नदी में स्नान किया।

सरित समीप राखि सबलोगा। माँगि मातु-गुरु-सचिउ नियोगा॥
चले भरत जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथ लघु भाई॥

शब्दार्थ—सरित = नदी। समीप = पास (किनारे)। सचिउ = मंत्री। नियोगा = (संस्कृत) आज्ञा।

भावार्थ—नदी के किनारे सब लोगों को छोड़कर, माता गुरु और मंत्रियों से आज्ञा लेकर निषादराज और शत्रुघ्न के साथ भरत जी वहाँ चले जहाँ सीता और रामचन्द्रजी थे।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतर्क कोटि मन माहीं॥
राम-लषन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

शब्दार्थ—कुतर्क = बुरी तर्कनाएँ। नाऊँ = नाम। अनत = (सं० अन्यत्र) दूसरी जगह। ठाऊँ = स्थान।

भावार्थ—माता का कर्तव्य समझकर भरत जी सकुचाते हैं और मन में करोड़ों कुतर्कें करते हैं। (वे सोचते हैं कि) राम, लक्ष्मण और सीता मेरा नाम सुनकर उस स्थान से उठकर अन्यत्र न चले जायँ (कहीं हमारा मुख देखने से भी घृणा न करें)

दो०—मातु मते महुँ मानि मोहिं जो किछु कहहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर।२३४।

शब्दार्थ—मते महुं = विचार में, पक्ष में। थोर = थोड़ा।

भावार्थ—माता के पक्ष में मुझे जानकर वे जो कुछ भी कहें सो थोड़ा है। यदि वे अपने पक्ष में समझें तो मेरे पाप और अवगुणों को क्षमा करके हमारा आदर करेंगे।

जौ परिहरहिं मलिन मन जानी। जौ सनमानहिं सेवक मानी॥
मोरे सरन राम की पनहीं। राम सुस्वामि दोष सब जन हीं॥

शब्दार्थ—जौं = यदि। पनहीं = जूते। जन हीं = दासको ही।

भावार्थ—चाहे रामजी मुझे मलीन-मन का जानकर त्याग दें, चाहे सेवक मानकर आदर करें (ये दोनों बातें उनकी इच्छा पर निर्भर हैं) पर मुझे तो राम की जूतियों का ही भरोसा है (वे ही मुझे राम के पास पहुँचावेंगी) रामजी तो अच्छे स्वामी हैं, सम्पूर्ण दोष (मुझ) दास को ही हैं।

जग जस भाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन नवीना॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता॥

शब्दार्थ—जस-भाजन = यश के पात्र। चातक = पपीहा। मीना = मछली। नेम = नियम। गुनत = विचारते हुए।

भावार्थ—संसार में यश के पात्र पपीहा और मछली हैं, जो अपने नियम तथा प्रेम में नवीन एवं निपुण हैं। ऐसा मनमें विचारते हुए भरत जी रास्ते में चले जा रहे हैं, सकुच और स्नेह से उनके सम्पूर्ण अंग शिथिल हो गये हैं।

फेरति मनहिं मातु कृत खोरी। चलत भगतिबल धीरजधोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥

शब्दार्थ—फेरति = लौटाती है। कृत = की हुई। खोरी = खोटाई। धोरी = तीन बैलकी बैलगाड़ी का तीसरा बैल जो सब से आगे लगा रहता

है और बड़े जोर से गाड़ी को खींचता है। पथ = रास्ता। उताइल = उतावला। पाऊ = पैर।

भावार्थ—माता की की हुई खोटाई तो भरत जी को लौटाती है, पर वे भक्ति और धैर्य रूपी धोरी के बल आगे को चलते हैं। जब उन्हें रामचन्द्र जी के स्वभाव की याद पड़ती है तो रास्तेमें उनका पैर शीघ्रता से पड़ता है।

भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल-अलि गतिजैसी॥
देखि भरत कर सोच सनेहू। भा निषाद तेहि समय विदेहू॥

शब्दार्थ—जल अलि = पानी का भौंरा। गति = चाल। विदेहू = वेहोश।

भावार्थ—भरत जी की दशा उस समय कैसी है? (ऐसी है) जैसे जल के प्रवाह में जल-भँवर की चाल होती है (भँवर पहले कुछ पीछे हटता है और चक्कर देकर बराबर आगे बढ़ता जाता है भरत जी भी पीछे हटते हैं और फिर आगे बढ़ते जाते हैं) भरत जी का सोच और स्नेह देख कर निषाद उस समय वेहोश हो गया।

दो०—लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषाद।
मिटिहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनामु विषाद॥२३५॥

शब्दार्थ—गुनि = गणना करके, विचार कर।

भावार्थ—उस समय मंगल सूचक पक्षी बोलने लगे, उनकी बोली सुन कर और विचार कर निषाद कहने लगा कि सोच मिट जायेगा, हर्ष होगा, किन्तु पुनः अन्त में दुःख होगा।

सेवक वचन सत्य सब जाने। आस्रम निकट जाइ नियराने॥
भरत दीख बन सैल-समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥

शब्दार्थ—जाइ नियराने = निकट पहुंच गये। सैल = पर्वत। छुधित = भूखा। सुनाजू = सुन्दर अन्न (भोजन)

भावार्थ—भरत जी ने सेवक (निषाद) के सब वचन सत्य समझे। वे आश्रम के निकट पहुंच गये। भरत जी ने जब पर्वतों की श्रेणी देखी उस

समय वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो कोई भूखा सुन्दर अन्न (भोजन) पाकर प्रसन्न हो रहा है।

ईति भीति जस प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह भारी॥
पाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहि भरत गति तेहि अनुहारी॥

शब्दार्थ—ईति = कृषि विनाशकारी योग। (ईति ७ प्रकार की होती हैं—"अतिवृष्टिरना-वृष्टि मूषकाः शलभाः शुकाः। स्वचक्रं परचक्रं च सप्तेता ईतयः स्मृताः॥" भीति = डर। सुराज = अच्छा राज्य। अनुहारी = समान, सी।

भावार्थ—जैसे प्रजा ईति के डर से दुखी हो, तीनों तापों से और भारी भारी ग्रहों से पीड़ित हो और वह सुन्दर राजा और सुन्दर देश पाकर जिस प्रकार सुखी होती है, भरत की दशा ठीक उसी प्रकार की है।

रामवास वन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिउ बिराग बिबेक नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥
भट जम-नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदरि रानी॥
सकल अंग सम्पन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ॥

दो०—जीति मोह महिपाल दल सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुर सुख संपदा सुकालु॥ २३६॥

शब्दार्थ—भ्राजा = शोभित है। भट = वीर, सिपाही। सम्पन्न = पूर्ण। महिपाल = राजा। दल = सेना।

भावार्थ—राम जी के बसने से वन की सम्पत्ति इस प्रकार शोभा पारही है मानो प्रजा अच्छा राजा पाकर सुखी है। वैराग्य ही मंत्री है, विवेक राजा है, सुन्दर और पवित्र वन ही देश है, यम-नियम सिपाही हैं, पर्वत (कामदानाथ) राजधानी है, शान्ति ही बुद्धिमती, पवित्र और स्वरूपा रानी है। यह सुन्दर राजा सम्पूर्ण अंगों से भरा-पूरा है। राम जी के चरणों के आश्रित रहने का उसके मनमें चाव है। यह विवेक राजा मोह राजा को सेना-समेत

जीतकर नगर में अकंटक राज कर रहा है जिससे सुख सम्पत्ति और सुकाल चारों ओर व्याप्त है।

अलंकार—सांगरूपक।

वन प्रदेश मुनिवास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँगन खेरे॥
विपुल विचित्र बिहँग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना॥

शब्दार्थ—वन प्रदेश = वन प्रान्त। घनेरे = बहुत से। खेरे = छोटे छोटे गाँव, (पुरवे)। विपुल = बहुत।

भावार्थ—उस वन प्रान्त में मुनियों के जो बहुत से वासस्थान हैं वेही मानो पुर, नगर, गाँव और खेरे हैं। बहुत से विचित्र पक्षी और पशु यही प्रजा-समूह है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

खँगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निशान विविध विधि बाजहिं

शब्दार्थ—खँगहा = (सिंगवा) गैंडा। करि = हाथी। हरि = सिंह। बाघ = चीता। बराह = सुअर। महिप = भैंसा। वृष = बैल। विहाय = त्यागकर। निशान = बाजा।

भावार्थ—गैंड़ा, हाथी, सिंह, चीता, सुअर, भैंसा और बैल, इनका साज देखकर सराहने ही योग्य है। ये सब वैर त्याग कर एक संग जहाँ तहाँ चर रहे हैं मानो (यही विवेक राजा की चतुरंगिनी सेना है। झरने (जल) झर रहे हैं मतवाले हाथी गर्ज रहे हैं यही मानो नाना प्रकार के बाजे बज रहे हैं।

अलंकार—सांगरूपक। उत्प्रेक्षा

चक चकोर चातक सुक पिकगन। कूजत मंजु मराल मुदितमन॥
अलि गन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँओरा॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सबु समाजु मुद मंगल मूला॥

शब्दार्थ—चक = चक्रवाक। चातक = पपीहा। सुक = तोता। पिक = कोयल। कूजत = बोलते हैं। मंजु = सुन्दर। मराल = हंस। बिटप = वृक्ष।

भावार्थ—चक्रवाक, चकोर, पपीहा, तोता, कोयल और सुन्दर हंस प्रसन्न मनसे बोल रहे हैं, भौंरे गाते हैं, मोर नाचते हैं मानो सुराज में चारो ओर मंगल हो रहा है। लता, वृक्ष और तृण सब सफल और सफूल हैं, सम्पूर्ण समाज आनन्द और मंगल की जड़ ही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दो०—राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेमु।
तापस तप फल पाइ जिमि सुखी सिराने नेमु॥ २३७॥

शब्दार्थ—सिराने = समाप्त होने पर। नेमु = नियम, व्रत।

भावार्थ—रामजी के पर्वत की शोभा देखकर भरत के हृदय में अत्यंत प्रेम हुआ। (वे इतने सुखी हुए) जिस प्रकार तपस्वी व्रत को समाप्ति हो जाने पर तपका फल पाकर सुखी होता है।

अलंकार—उदाहरण।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहि बिटप बिसाला। पाकरि जम्बु रसाल तमाला॥

शब्दार्थ—धाई = दौड़कर। पाकरि = (सं० पर्कटी) पाकर। जम्बु = जामुन। रसाल = आम। तमाला = आबनूस, तेंदू।

भावार्थ—तब निषाद दौड़कर ऊँचे पर चढ़ गया और हाथ उठाकर भरत जी से कहा, हे नाथ! इन विशाल वृक्षों को देखिये, वहाँ पर पाकर जामुन, आम और आबनूस के वृक्ष हैं।

तिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मन मोहा।
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाँह सुखद सब काला।
मानहुँ तिमिर अरुन मय रासी। बिरची बिधि सकेलि सुखमा सी।

शब्दार्थ—बटु = बरगद। पल्लव = पत्ते। अबिरल = घनी। तिमिर = अंधकार। अरुन = लालिमा। सकेलि = इकट्ठी करके।

भावार्थ—उन्हीं वृक्षों के बीच में बरगद का वृक्ष शोभा दे रहा है। जो बड़ा सुन्दर और विशाल है तथा देखते ही मन को मोह लेता है। उसके पत्ते बड़े घने नीले हैं और फल लाल हैं। उसकी छाँह घनी है जो सब समय में सुख देनेवाली है। (ऐसा जान पड़ता है मानो) ब्रह्मा ने अन्धकार और लालिमा मय राशि इकट्ठी करके शोभा सी बना डाली है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

ए तरु सरित समीप गोसाईं। रघुवर परन कुटी जहँ छाई॥
तुलसी तरुवर विविध सुहाए। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लषन लगाए।
बट छाया बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई॥

शब्दार्थ—वेदिका = चौतरा। पानि = हाथ। सरोज = कमल।

भावार्थ—इन्हीं वृक्षों और नदी (मंदाकिनी) के पास जहाँ राम जी ने अपनी पर्णकुटी बनायी है (वहीं पर) तुलसी के नाना प्रकार के सुन्दर वृक्ष लगे हैं, कहीं कहीं सीता जी ने और कहीं कहीं लक्ष्मण ने लगाये हैं। बरगद की छाया में सीता जी ने अपने ही कर-कमलों से एक चौतरा बड़ा सुन्दर बनाया है।

दो०—जहाँ बैठि मुनि जन सहित नित सियराम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥२३८॥

शब्दार्थ—सुजान = ज्ञानवान्। आगम = शास्त्र। निगम = वेद।

भावार्थ—जहाँ पर मुनियों सहित सुजान सीताराम बैठकर सम्पूर्ण कथा, इतिहास, शास्त्र, वेद और पुराण सुनते हैं।

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगेउ भरत बिलोचन बारी।
करत प्रणाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई।

शब्दार्थ—बिटप = वृक्ष। बिलोचन = दोनों नेत्र। बारी = जल। प्रणाम करत = भुइँपरी करते हुए।

भावार्थ—निषादराज का बचन सुनकर और वृक्ष देखकर भरत जी के

दोनों नेत्रों में आँसू भर गये। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उनकी प्रीति को कहते हुए सरस्वती भी सकुचती हैं।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति।

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायेउ रंका॥
रज सिरधरि हिय नैनन्हिलावहिं। रघुवर मिलनसरिस सुखपावहिं

शब्दार्थ—अंका = चिह्न। रंका = दरिद्र। रज = धूल। लावहिं = लगते हैं।

भावार्थ—राम जी के चरण चिन्हों को देखकर वे प्रसन्न होते हैं मानो किसी दरिद्र मनुष्य को पारस-पत्थर मिल गया हो। धूल को सिर पर रखकर उसे हृदय और नेत्रों में लगाते हैं और रामजी के मिल जाने के ही समान सुख पाते हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन खग मृग जड़ जीवा॥
सखहिं सनेह विवस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला।

शब्दार्थ—अतीवा = अत्यंत। मृग = पशु। खग = पक्षी। जड़ जीवा = वृक्षादि। कहि = बतलाकर, दिखलाकर।

भावार्थ—भरत जी की अत्यंत अकथ दशा (राम के प्रति अथाह प्रेम) देखकर पशु, पक्षी और वृक्षादि (सम्पूर्ण चराचर) प्रेम में मग्न हो गये। प्रेम के विवश हो जाने के कारण निषाद को भी रास्ता भूल गया। तब सुमार्ग बतलाकर देवता ऊपर से पुष्प बरसाते हैं।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

शब्दार्थ—अनुरागे = अनुरक्त हो गये। भूतल = पृथ्वी में। भाउ = (सं० भव) जन्म।

भावार्थ—(इस दशा को) देखकर सिद्ध और साधक अनुरक्त हो गये। (वे लोग भरत जी के) स्वाभाविक स्नेह की प्रशंसा करने लगे।

और कहते हैं कि यदि पृथ्वी पर भरत का जन्म न होता तो सम्पूर्ण अचरों को सचर और चरों को अचर कौन करता ?

(नोट)—वृक्षों से शब्द निकलने लगा, पत्थर पसीज उठे, यही अचरों का सचर होना है।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति।

दो०—प्रेम अमिअ मन्दर बिरह भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधुहित कृपासिंधु रघुबीर ॥ २३६ ॥

शब्दार्थ—अमिअ = अमृत। मन्दर = मंदराचल पर्वत। पयोधि = समुद्र।

भावार्थ—कृपासागर रामचन्द्र जी ने भरत जी रूपी गंभीर समुद्र को विरह रूपी मंदराचल द्वारा मथकर देवता और साधुओं के लिए प्रेम रूपी अमृत उत्पन्न किया। (अर्थात् मंदराचल द्वारा मथे जाने पर जैसे अमृत उत्पन्न हुआ था वैसेही राम-विरह के कारण भरत के हृदय में प्रेम उमड़ रहा है)

अलंकार—रूपक—

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लषन सघन बन ओटा।
भरत दीख प्रभु आश्रम पावन। सकल सुमंगल-सदन सुहावन।

शब्दार्थ—जोटा = जोड़ी। ओटा = आड़ से।

भावार्थ—निषाद सहित भरत और शत्रुघ्न की मनोहर जोड़ी को लक्ष्मण जी ने घने जंगल की आड़ के कारण न देख पाया। भरत ने राम जी का पवित्र आश्रम देखा जो सम्पूर्ण मंगल का घर और सुहावना है।

करत प्रवेसु मिटे दुख-दावा। जनु जोगी परमारथु पावा॥
देखे भरत लषन प्रभु आगे। पूछे बचन कहत अनुरागे॥

शब्दार्थ—दावा = दावाग्नि। परमारथु = मोक्ष। अनुरागे = प्रेमपूर्वक।

भावार्थ—आश्रम में प्रवेश करते ही भरत जी के दुख की दावाग्नि मिट गयी (ऐसा सुख हुआ) मानो योगी को मोक्ष की प्राप्ति हो गयी। भरतजी

ने लक्ष्मण को रामजी के आगे देखा, वे पूछे जाने पर प्रेम पूर्वक कुछ बात कह रहे थे (रामजी कुछ पूँछ रहे थे, लक्ष्मण जी उसका उत्तर दे रहे थे)

सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे। तून कसे कर सर धनु काँधे॥
वेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥

शब्दार्थ—कटि = कमर। मुनिपट = भोजपत्र के कपड़े। तून = तरकस। कर = हाथ। सर = वाण। काँधे = (सं० स्कंध) कंधा। वेदी = चौतरा।

भावार्थ—(भरत जी देख रहे हैं कि लक्ष्मण जी) सिर में जटा और कमर में वल्कल वस्त्र बाँधे (पहने) और तरकस कसे हैं, हाथ में वाण लिये हैं और धनुष कंधे पर है। चौतरे पर मुनि और साधुओं की मंडली में सीता सहित रामचन्द्र जी शोभित हैं।

वलकल वसन जटिल तनुस्यामा। जनु मुनिभेस कीन्ह रतिकामा॥
कर कमलनि धनु सायक फेरत। जिअ की जरनि हरत हँसि हेरत॥

शब्दार्थ—वलकल वसन = छाल के वस्त्र। जटिल = जटा बाँधे हुए। सायक = वाण। फेरत = घुमाते हैं। हेरत = देखते ही।

भावार्थ—रामजी छाल के वस्त्र पहने हैं, जटा बाँधे हुए हैं और उनका शरीर साँवला है। मानो रति और कामदेव ने मुनियों का वेष बनाया है। रामजी अपने कर कमलों से धनुष और वाण को घुमा रहे हैं। वे एक बार हँसकर देखते ही हृदय की जलन हर लेते हैं।

दो०—लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंदु॥ २४०॥

शब्दार्थ—लसत = शोभापाते हैं।

भावार्थ—सुन्दर मुनि-मंडली के बीच में सीता और रामजी इस प्रकार शोभा पाते हैं मानो ज्ञानसभा के बीच में भक्ति और स्वयं सच्चिदानंद शोभा पाते हों।

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुखगन॥

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट को नाईं ॥

शब्दार्थ—पाहि = रक्षा करो । लकुट = लकड़ी । नाईं = (सं० न्याय) समान ।

भावार्थ—निषाद और छोटे भाई सहित भरत मन में मग्न हो गये। उन्हें हर्ष शोक और सुख-दुख सब भूल गया । वे—"हे नाथ ! हमारी रक्षा करो, हे नाथ ! हमारी रक्षा करो" कहकर पृथ्वी पर लकुट की भाँति गिरपड़े।

अलंकार—उपमा ।

वचन सप्रेम लषन पहिचाने । करत प्रनामु भरत जिअ जाने ॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा । उत साहिब सेवा बरजोरा ॥

शब्दार्थ—बंधु = भाई । सरस = बढ़कर । साहिब = स्वामी । बरजोरा = भारी ।

भावार्थ—लक्ष्मण जी ने भरत के प्रेमपूर्ण वचनों को पहचान लिया और समझ लिया कि भरत प्रणाम करते हैं। एक ओर भाई का प्रेम सबसे बढ़कर था। दूसरी ओर भारी-स्वामि-सेवा थी लक्ष्मण जी असमंजस में पड़ गये।

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकवि लषन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ॥

शब्दार्थ—गुदरत = (फा० गुज़र से) छोड़ते । गति = दशा । भनई = कहता है । चढ़ी = ऊँचे गयी हुई । चंग = पतंग ।

भावार्थ—(भाई से) न तो मिलते ही बनता है और न (स्वामि सेवा) छोड़ते बनती है। कोई सुकविही लक्ष्मण के मन की दशा कह सकता है—उन्होंने अपना सम्पूर्ण भार सेवा पर ही छोड़ दिया जैसे खूब चढ़ी हुई पतंग को खेलाड़ी सँभालता है, उसी प्रकार लक्ष्मण ने अपने मन को सँभाला।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ।
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥

शब्दार्थ—पट = वस्त्र। निषंग = तरकस।

भावार्थ—लक्ष्मण जी ने माथा नवा कर प्रेमपूर्वक राम जी से कहा हे नाथ ! भरत जी प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनकर रामजी प्रेम से अधीर होकर उठे कहीं उनका वस्त्र गिरा है, कहीं तरकस गिरा, कहीं धनुष गिरा और कहीं तीर गिर गया।

दो०—बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपा निधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरेउ सबहिं अपान।२४१

शब्दार्थ—बरबस = (बलवश) बलपूर्वक। लाये = लगाया। मिलनि = भेंट। अपान = अपनत्व।

भावार्थ—राम जी ने भरत को बलपूर्वक उठा लिया और हृदय से लगाया। भरत और राम जी का भेंटना देखकर सब को अपनत्व भूल गया।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कवि कुल अगम करममनबानी
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई।

शब्दार्थ—अहमिति = अहंकार।

भावार्थ—(राम और भरत के) मिलने की प्रीति कैसे कही जा सकती है, क्योंकि वह कवियों के लिये मन कर्म और वाणी (सब प्रकार) से अगम है। दोनों भाई परम प्रेम से पूर्ण हैं। वे लोग अपने मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार (अन्तः करण चतुष्टय) को भी भूल गये हैं।

कहहु सो प्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि-मति अनुसरई॥
कविहिं अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहिं नट नाचा

शब्दार्थ—आखर = अक्षर, शब्द। अनुहरि = अनुसरण करके। ताल = बाजा के शब्द का अंदाजा।

भावार्थ—कहो उस प्रेम को कौन प्रकट करे ! (अर्थात् कोई उस प्रेम को कही नहीं सकता, क्योंकि जब मिलनेवाले अपनत्व को ही भूल गये

हैं) कवि की बुद्धि किस छाया का अनुसरण करे ? क्योंकि कवि को अर्थ और शब्दों का ही सच्चा बल है, जैसे नट ताल की गति का अनुसरण कर के नाचता है। (अर्थात् ताल देने वाला जैसी ताल देगा वैसा ही नट नाचेगा, वैसे ही जो शब्द कवि को मिलेंगे उसी को लेकर वह कोई बात कह सकेगा, यदि उस दशा के वर्णन के शब्द ही न मिलें तो कवि क्या करें ?)

(नोट) बहुत ही सुन्दर लक्षणामूलक व्यंग है।

अगम सनेह भरत रघुबरको। जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को॥
सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती। बाजु सुराग कि गाँड़र ताँती॥

शब्दार्थ—बाजु = बजेगा। गाँडर = तृण।

भावार्थ—भरत और राम जी का प्रेम अगम है जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, और महादेव जी का भी मन नहीं जा सकता। उस प्रेम का मैं दुर्बुद्धि किस प्रकार वर्णन करूं क्या तृण की ताँत से कहीं सुन्दर राग बजेगा ? (अर्थात् यदि बढ़िया ताँत न लगा कर कोई तिनके की ताँत लगा कर सारंगी से अच्छा राग निकालना चाहे तो वह नहीं निकल सकता, उसी प्रकार मुझ से उसका वर्णन नहीं हो सकता)

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति (पूर्वार्द्ध में) तुल्ययोग्यता (उत्तरार्द्ध में)

मिलनि बिलोकि भरत रघुबरकी। सुरगन सभय धुकधुकी धरकी॥
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे॥

शब्दार्थ—धुकधुकी = छाती। सुरगुरु = बृहस्पति जी। जड़ = मूर्ख। प्रसून = पुष्प।

भावार्थ—राम और भरत का मिलना देखकर देवता भयभीत हो गये उनकी धुकधुकी धड़कने लगी। तब बृहस्पति जी ने उन्हें समझाया। (समझाने से वे) मूर्ख जगे (सचेत हुए) और पुष्प बरसा कर भरत जी की प्रशंसा करने लगे।

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाग भेंटे भरत लछिमन करत प्रणाम ॥ २४२ ॥

शब्दार्थ—रिपुसूदनहिं=शत्रुघ्न से। भूरिभाग=अत्यंत भाग्यशाली।

भावार्थ—राम जी ने प्रेम पूर्वक शत्रुघ्न से मिलकर केवट को भेंटा। लक्ष्मण के प्रणाम करने पर अत्यन्त भाग्यशाली भरत जी ने उन्हें भी भेंटा।

भेंटेउ लषन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई।
पुनि मुनि गन दोउ भाइन्ह वंदे। अभिमत आसिष पाइ अनन्दे॥

शब्दार्थ—ललकि=उत्साहित होकर। उरलाइ लीन्ह =हृदय से लगा लिया। बंदे=प्रणाम किया। अभिमत=मनोभिलषित। अनंदे=आनन्दित हुए।

भावार्थ—लक्ष्मण जी ने उत्साहित होकर छोटे भाई (शत्रुघ्न) को भेंटा। फिर निषाद को हृदय से लगा लिया। तत्पश्चात् दोनों भाइयों (भरत और शत्रुघ्न) ने मुनियों को प्रणाम किया और मनोभिलषित आशिर्वाद पाकर आनन्दित हुए।

सानुज भरत उमँगि अनुरागा। धरि सिर सिय-पद-पदुम परागा।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर-कमल परसि बैठाए॥

भावार्थ—सब छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत जी ने प्रेम से उमँग कर सीता जी के चरण कमलों की धूलि को सिर पर धारण किया। बारम्बार प्रणाम करते हुए दोनों भाइयों को सीता जी ने उठाया और अपने कर कमलों से उनके सिर को स्पर्श करके (माथे पर हाथ फेर कर) बैठाया।

सीय असीस दीन्ह मनमाहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच, उर अपडर बीता॥

शब्दार्थ—सानुकूल=प्रसन्न। निसोच=सोच रहित। अपडर= अपनी ओर से डरना। बीता=नष्ट हो गया।

भावार्थ—सीता ने मन में ही आशीर्वाद दिया। वे प्रेम में इतनी

निमग्न हो गयीं कि उन्हें अपने शरीर की भी सुध नहीं रही। भरत जी ने जब सब प्रकार से सीता को प्रसन्न देखा तो वे सोच रहित हो गये और उनका अपडर नष्ट हो गया।

कोउ किछु कहइन कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन, निज गति छूँछा॥
तेहि अवसर केवट धीरजु धरि। जोरि पानि विनवत प्रनाम करि॥

शब्दार्थ—छूँछा=हीन। निज गति छूँछा=अपनी चाल से हीन है, अचंचल है, स्थिर है। पानि=हाथ।

भावार्थ—कोई कुछ कहता नहीं और न कोई कुछ पूछताही है। प्रेम से परिपूर्ण मन अपनी चाल से हीन हो गया है (सब का मन स्थिर है) उस समय केवट धैर्य धारण करके और हाथ जोड़ तथा प्रणाम करके विनय करने लगा।

दो०—नाथ साथ मुनि नाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आए विकल वियोग॥ २४३॥

भावार्थ—हे नाथ! मुनि नाथ वशिष्ठ जी के साथ माताएँ, सम्पूर्ण पुर के लोग, सेवक सेनापति और मंत्री सब लोग आप के वियोग से व्याकुल होकर आये हैं।

सील सिंधु सुनि गुरु आगमनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू॥
चले सप्रेम राम तेहिं काला। धीर-धरम-धुर दीनदयाला॥

शब्दार्थ—रिपुदमनू=शत्रुघ्न।

भावार्थ—शील सागर रामचन्द्र जी ने गुरु जी का आगमन सुनकर शत्रुघ्न को सीता के समीप रखा और धैर्य तथा धर्म की धुरा को धारण करनेवाले दीनदयाल रामचन्द्र जी उस समय प्रेमपूर्वक चले।

गुरुहिं देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनामु करन प्रभु लागे॥
मुनिवर धाइ लिये उर लाई। प्रेम उमँगि भेंटे दोउ भाई॥

शब्दार्थ—सानुज=अनुज (भरत) सहित। अनुरागे=अनुरक्त हुए। धाइ=दौड़कर।

भावार्थ—गुरु जी को देख कर अनुज सहित रामचन्द्र जी बड़े अनुरक्त हुए और उन्हें दंड प्रणाम करने लगे। वशिष्ठ जी ने दौड़कर हृदय से लगा लिया और प्रेम से उमँग कर दोनों भाइयों को भेंटा।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू ॥
राम सखा रिषि वरवस भेंटा। जनु महि लुठ़त सनेह समेटा।

शब्दार्थ—पुलकि=रोमांचित हो। दंड प्रनामू=पृथ्वी पर लोट कर साष्टांग दंडवत। रामसखा=निषाद, केवट। लुठ़त=लोटता हुआ। समेटा=बटोर लिया।

भावार्थ—प्रेम से रोमांचित हो केवट ने अपना नाम कहकर दूर से वशिष्ठ मुनि को साष्टांग प्रणाम किया। मुनि जी रामसखा निषाद को जबर्दस्ती गले लगाया मानों प्रेम पृथ्वी पर लोट रहा था उसे वशिष्ठ जी ने बटोर लिया।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर वरषहिं फूला।
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। वड़ वशिष्ठ सम को जग माहीं॥

शब्दार्थ—निपट=अत्यंत।

भावार्थ—रामचन्द्र जी की भक्ति सुमंगल की जड़ ही है ऐसा कह कर और निषाद की सराहना करके देवता-गण आकाश से पुष्प बरसाते हैं। (वे कहते हैं देखो तो) इस (निषाद) के समान कोई अत्यंत नीच मनुष्य नहीं और वशिष्ठ जी के समान संसार में बड़ा कौन है। (कोई नहीं, सो उन्होंने भी इसे बलपूर्वक भेंटा, अतएव रामभक्ति सुमंगलों की मूल है)

जेहि लखि लषनहुँ ते अधिक मिले मुदित मुनि राऊ।
सो सीता-पति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाऊ ॥ २४४ ॥

शब्दार्थ—मुदित=प्रसन्न होकर, सीतापति=रामचन्द्र जी।

भावार्थ—जिस (निषाद) को देखकर मुनिराज वशिष्ठ जी प्रसन्न होकर लक्ष्मण से भी अधिक (प्रेम पूर्वक) मिले। यह सब रामचन्द्र जी के भजन का प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है।

आरत लोग राम सब जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भाय रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी॥

शब्दार्थ—आरत=(आर्त्त)। भाय=भाव, विचार। रुचि=इच्छा, अभिलाषा। राखी=पूर्ण की।

भावार्थ—(जब) करुणाकर सुजान, भगवान रामचन्द्र जी ने सब लोगों को दुखी जाना (तब) जो जो जिस भाव का इच्छुक था उसे उसकी वैसी ही (उसी प्रकार) इच्छा पूर्ण की (उसी भाव से मिले जिस जिस भाव का वह उपासक था)

सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू।
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं॥

शब्दार्थ—पल=क्षणमात्र, बहुत शीघ्र। दाहू=जलन। घट=घड़ा। कोटि=करोड़ों। रवि=सूर्य। छाहीं=छाया, प्रतिबिम्ब।

भावार्थ—अनुज (लक्ष्मण) सहित पल भरमें सब से मिल कर उन लोगों के दुःख और कठिन जलन को नष्ट कर दिया। (पल भर में ही राम जी सब से कैसे मिले यह शंका यदि कोई करे तो कहते हैं) यह राम जी के लिये कोई बड़ी बात नहीं है, जैसे घड़े करोड़ों होते हैं पर उन सबमें एक ही सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है (उसी प्रकार राम एक होते हुए भी भावनानुसार सबके पास प्रतिबिम्ब से मौजूद थे)

अलंकार—उदाहरण।

मिलि केवटहिं उमंगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा।
देखी राम दुखित महतारीं। जनु सुवेलि अवली हिम मारीं॥

शब्दार्थ—उमंगि अनुरागा=प्रेम से आनन्दित होकर। महतारीं=माताएँ। सुवेलि अवली=सुन्दर लताएँ। हिम=पाला। मारीं=नष्ट की हुई।

भावार्थ—अयोध्या निवासी जन केवट से प्रेम पूर्वक मिलकर अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं। राम जी ने दुखित माताओं को देखा (वे ऐसी उदास थीं) मानो पाला मारी हुई सुन्दर लताएँ हैं।

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय-भगति मति भेई।
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिरधरिखोरी॥

शब्दार्थ—भेई=भिगो दिया, सराबोर कर दिया। पग परि=प्रणाम करके। विधि सिर धरि खोरी=ब्रह्मा को दोष देकर।

भावार्थ—सबसे पहले राम जी कैकेयी से मिले और अपनी सरल एवं स्वाभाविक भक्ति से उसकी बुद्धि को सराबोर कर दिया। पुनः पैर पड़ कर और समय, कर्म तथा ब्रह्मा को दोष देकर उसका प्रबोध किया (उसे समझाया कि मुझे वनवास समय, कर्म और ब्रह्मा के कारण हुआ है तुम्हारे कारण नहीं)

दो०—भेंटी रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु॥ २४५॥

शब्दार्थ—करि प्रबोधु=समझाकर। परितोषु=संतोष। अम्ब=माता। ईस=ईश्वर।

भावार्थ—रामचन्द्र जी ने सब माताओं को समझा कर संतुष्ट किया और उन्हें भेंटा। कहा—हे माता! संसार ईश्वर के आधीन है, किसी को दोष न दीजिये।

गुरु-तिय पद बन्दे दुहुँ भाई। सहित विप्र तिय जे सँग आईं॥
गंग गौरि सम सब सनमानी। देहिं असीस मुदित मृदु बानी॥

शब्दार्थ—बन्दे=बन्दना की, प्रणाम किया। गौरि=पार्वती।

भावार्थ—जो ब्राह्मण की स्त्रियाँ संग में आई थीं उन समेत दोनों भाइयों ने गुरु पत्नी अरुन्धती जी के चरणों में प्रणाम किया और गंगा तथा पार्वती के समान सब का सम्मान किया। वे सब प्रसन्न होकर मीठी वाणी से आशीर्वाद देती हैं।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे प्रेम व्याकुल सब गाता॥

शब्दार्थ—अंका=गोद, हृदय । रंका=गरीब । जननी=माता, कौशिल्या जी।

भावार्थ—प्रणाम करके (दोनों भाई) सुमित्रा जी के हृदय में लग गये (और इस प्रकार प्रेम से भेंट की) मानो किसी अत्यन्त गरीब ने (साक्षात्) संपत्ति को ही भेंटा हो। तत्पश्चात् दोनों माता कौशल्या के चरणों पर गिर पड़े प्रेम से उनके सम्पूर्ण अंग व्याकुल हो गये।

अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए॥
तेहि अवसरु कर हरप विपादू। किमि कवि कहइ मूक जिमि स्वादू॥

शब्दार्थ—सनेह सलिल=प्रेमाश्रु। मूक=गूँगा। स्वादू=जायका।

भावार्थ—माता कौशिल्या ने बड़े प्रेम से उन्हें हृदय में लगा लिया और नेत्रों के प्रेमाश्रु से उन्हें सराबोर कर दिया। उस समय का हर्ष और दुःख कवि किस प्रकार कह सकता है, जिस प्रकार कोई गूँगा भोजन का स्वाद कैसे बता सकता है।

अलंकार—समुच्चय (प्रथम), वक्रोक्ति, उदाहरण।

मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ। गुरुसन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि तकि उतरे लोगू॥

शब्दार्थ—सन=से। धारिअ पाऊ=पधारिये, चलिये। नियोगू=आज्ञा। तकितकि=देख देख कर। उतरे=डेरा किया।

भावार्थ—रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण सहित माता से मिल कर बशिष्ठ जी से कहा कि (हमारे स्थान पर) पधारिये। पुर निवासी लोग वशिष्ठ जी की आज्ञा पाकर जल और स्थल को देख देखकर (विचार करके) उतरे (डेरा डाला)

दो०—महिसुर मंत्री मातु गुरु गने लोग लिये साथ।
पावन आश्रम गमन किए भरत लषन रघुनाथ॥ २४६॥

शब्दार्थ—महिसुर=ब्राह्मण। गने=गिने गिनाये, थोड़े से, मुख्यमुख्य।
भावार्थ—ब्राह्मण, मंत्री, माताएँ और गुरु आदि गिने गिनाये लोगों को साथ में लेकर रामचन्द्र जी ने भरत और लक्ष्मण सहित पवित्र आश्रम (कामता नाथ पर्वत) के लिये प्रस्थान किया।

सीय आइ मुनिवर पग लागी। उचित असीस लही मन मांगी॥
गुरुपतिनिहिं मुनि तियन्ह समेता। मिली प्रेम कहि जाइ न जेता॥

शब्दार्थ—लागी=स्पर्श किये, छुए। लही=पायी। जेता=जितना।
भावार्थ—(आश्रम में पहुँचते ही) सीता जी ने आकर मुनिवर वशिष्ठ जी के चरण छुये और उचित तथा मनचाहा आशीर्वाद पाया। मुनिपत्नियों सहित सीता जी गुरु पत्नी (अरुंधती जी) से (इतने) प्रेम से मिलीं जो कहा नहीं जा सकता।

बंदि बंदि सिय पग सबही के। आसिर बचन लहे प्रिय जी के॥
सासु सकल जब सीय निहारी। मूंदे नयन सहमि सुकुमारी॥

शब्दार्थ—बंदि बंदि=प्रणाम करके। आसिर बचन=(आशीर्वचन) आशीर्वाद। लहे=पाये। सहमि=डरकर।
भावार्थ—सब के चरणों को प्रणाम कर के सीता जी ने हृदय को प्रिय लगने वाले आशीर्वाद पाये। जब सीता जी सब सासुओं को (वैधव्य वेष में) देखा तो डर कर सुकुमारी सीता ने नेत्र मूंद लिये।

परी बधिक बस मनहुँ मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली।
तिन्ह सियनिरखि निपट दुखपावा। सो सब सहिअ जो दैउ सहावा

शब्दार्थ—बधिक=बहेलिया। मराली=हंसिनी। करतार=विधाता। निपट=अत्यंत। दैउ=भाग्य।
भावार्थ=(सीता जी इतना डर गयीं) मानो बहेलिये के वश में कोई हंसिनी पड़ गयी है (और वह डरती है) (सीता जी सोचती हैं कि) विधाता ने कौन सी कुचाल की ? (जो इन्हें विधवा रूप में देख रही हूं, राजा साहब परलोक चले गये क्या ?) इन्होंने भी सीता को (तपस्विनी

वेष में) देखकर अत्यंत दुख पाया (और कहा) भाग्य जो कुछ सहावे सब सहना ही होगा।

जनक सुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा।
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई॥

शब्दार्थ—नील नलिन = श्याम कमल। लोयन = नेत्र।

भावार्थ—तब जानकी जी धैर्य धारण करके और श्याम कमल से (सुन्दर) नेत्रों में जल भर कर सब सासुओं से जाकर मिलीं। उस समय वे इतना रोने लगीं मानो) पृथ्वी में करुणा ही छा गयी हो।

दो०—लागि लागि पग सवनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं प्रेम बस रहिअहु भरी सोहाग॥ २४७॥

शब्दार्थ—लागि लागि = छू छू कर। रहिअहु भरी सोहाग = सौभाग्य से भरी पूरी रहोगी, सौभाग्यवती होओगी।

भावार्थ—सीता जी सब के चरण छू छू कर अत्यंत प्रेम से भेंटती हैं। वे लोग प्रेम के वश होकर हृदय में आशीर्वाद देती हैं कि तुम सौभाग्यवती रहो)

विकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहिं कहेउ गुरु ज्ञानी।
कहि जगगति मायिक मुनिनाथा। कही कछुक परमारथ गाथा॥

शब्दार्थ—मायिक = मायापूर्ण। जगगति = संसार की चाल। परमारथ = परलोक सम्बन्धी। गाथा = कथा।

भावार्थ—सीताजी और सब रानियाँ प्रेमसे व्याकुल हो गयीं तब ज्ञानी वशिष्ठ जी ने सबको बैठने के लिए कहा। (सब के बैठ जाने पर) उन्होंने मायापूर्ण संसार की चाल बतायी और फिर कुछ परलोक सम्बन्धी बातें कहीं।

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा।
मरनहेतु निज नेह विचारी। भे अति विकल धीर-धुरधारी॥

शब्दार्थ—कर = का। सुरपुर = स्वर्ग। धुर = धुरा।

भावार्थ—(यह सब कहने के पश्चात् वशिष्ठ जी ने) राजा का स्वर्ग-वास सुनाया, जिसे सुनकर रामचन्द्र जी को दुस्सह दुःख हुआ। अपने प्रेम को (राजा के) मरने का कारण विचार कर (जान कर) धैर्य की धुरा को धारण करने वाले रामचन्द्र जी भी अत्यंत व्याकुल हो गये।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लषन सीय सब रानी।
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू॥

शब्दार्थ—कुलिस=वज्र। राज=राजा। अकाजेउ=नष्ट हुए, मरे।

भावार्थ—वज्र सी कठोर कटु वाणी सुनते ही लक्ष्मण, सीता और सब रानियाँ रोने लगीं। सम्पूर्ण समाज शोक से इतना व्याकुल हो गया मानो राजा दशरथ जी आज ही मरे हों।

मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥
ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जल काहु न लीन्हा॥

शब्दार्थ—सुसरित-मन्दाकिनी। नहाए=स्नान किया। निरंबु=निर्जल।

भावार्थ—तब वशिष्ठ जी ने राम जी को समझाया। और सम्पूर्ण समाज सहित मंदाकिनी में स्नान किया। उस दिन रामजी ने निर्जल व्रत किया। मुनि जी के कहने पर भी किसी ने उस दिन जल नहीं ग्रहण किया।

दो०—भोरु भए रघुनंदनहिं जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सब सादर कीन्ह॥२४८॥

शब्दार्थ—भोरु=प्रातःकाल।

भावार्थ—प्रातःकाल होने पर बशिष्ठ जी ने रामजी को जो कुछ आज्ञा दी उसे उन्होंने श्रद्धा और भक्ति से आदर पूर्वक पूर्ण किया।

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥
सुद्ध सो भयेउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस॥

शब्दार्थ—पुनीत=पवित्र। पातक=पाप। तम=अंधकार। तरनी=

(सं० तरणि) सूर्य। पावक=अग्नि । तूला=रुई । संमत=राय । सुरसरि=गंगा ।

भावार्थ—वेद में जैसा वर्णन किया गया है उस प्रकार पिता की क्रिया करके पाप रूपी अन्धकार के (नाश के) लिए सूर्य (सदृश) रामचन्द्र जी पवित्र हुए। जिसका नाम पाप रूपी रुई के (जला डालने के) लिए अग्नि सा है और स्मरण करने से सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों को देनेवाला है वे ही रामजी शुद्ध हुए, यह साधुओं की राय है, जैसे तीर्थों में गंगाजी का आह्वान किया जाता है।

सुद्ध भएँ दुइ वासर वीते। वोले गुरु सन राम पिरीते॥
नाथ लोग सव निपट दुखारी। कंद मूल फल अंवु अहारी॥
सानुज भरतु सचिउ सव माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥

शब्दार्थ—वासर=दिन। निपट=अत्यंत। अंवु=जल। सचिउ=मंत्री। जाता=वीतता है।

भावार्थ—शुद्ध होने पर जव दो दिन वीत गये (तव) प्यारे रामचन्द्र जी ने गुरु जी से कहा—हे नाथ ! सव लोग कंद, मूल, फल और जल का भोजन करके अत्यंत दुःख पा रहे हैं। अनुज सहित भरत, मंत्री और सव माताओं को देखकर मुझे एक पल एक युग के समान व्यतीत होता है।

सव समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ, अमरावति राऊ॥
वहुत कहेउँ सव कियेउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाईं

शब्दार्थ—समेत=सहित। पुर=नगर (अयोध्या) धारिअ पाऊ=पधारिये, जाइये। अमरावति=स्वर्ग। राऊ=राजा। ढिठाई (सं० धृष्टता)।

भावार्थ—सवके सहित पुर (अयोध्या) के लिये प्रस्थान कीजिये, क्योंकि आप यहाँ हैं और राजा साहव स्वर्ग में हैं (अयोध्या सूनी हो रही होगी, मैंने वहुत कहा और आपसे धृष्टता की। जैसा आप उचित समझें, हे स्वामी ! आप वैसा ही करें।

दो०—धर्म सेतु करुणायतन कस न कहहु अस राम ।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहिं विश्राम ॥ २४६॥

शब्दार्थ—धर्मसेतु=धर्म के पुल (धर्म रक्षक) । करुणायतन = करुणा के घर बड़े कारुणीक ।

भावार्थ—हे राम ! तुम धर्म रक्षक और बड़े कारुणिक हो, तब ऐसा क्यों न कहो ? (तुम्हारे लिये ऐसा करना उचित ही है) पर लोग दुखित हैं, वे दो दिन आपका दर्शन करके तब कहीं विश्राम (आराम) पावेंगे ।

अलंकार—सम (दूसरा) ।

राम वचन सुनि सभय समाजू । जनु जलनिधि महुँ विकल जहाजू ।
सुनि गुरु गिरा सुमंगल मूला । भयेउ मनहुँ मारुत अनुकूला ॥

शब्दार्थ—जलनिधि = समुद्र । गिरा = वाणी । मारुत = वायु ॥

भावार्थ—राम जी के वचन सुनकर सम्पूर्ण समाज (ऐसा) व्याकुल हो गया मानो समुद्र में जहाज व्याकुल (डूबने या टकराने के खतरे से) हो । पर मंगल मूल गुरु वशिष्ट जी की (ऐसी अच्छी) वाणी सुनकर (वे लोग ऐसे प्रसन्न हो गये) मानो वायु अनुकूल चलने लगा हो ।

(नोट) पहले जहाज मस्तूल में वादबान चढ़ाकर हवा के सहारे चलाये जाते थे ।

पावनि पय तिहुँ काल नहाहीं । जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं ॥
मंगल मूरति लोचन भरि भरि । निरखहिं हरषि दंडवत करि करि

शब्दार्थ—पावनि = पवित्र । पय = पयस्विनी नदी । तिहुँ काल = प्रातः, दोपहर, सायं । नहाहीं = स्नान करते हैं । अघओघ = पाप समूह । नसाहीं = नष्ट हो जाते हैं । मंगल मूरति = रामचन्द्र जी ।

भावार्थ—सब लोग पवित्र पयस्विनी में त्रिकाल स्नान करते हैं जिसे देखते ही पाप समूह नष्ट हो जाते हैं । वे लोग हर्ष से बारम्बार प्रणाम करके और मंगल-मूर्ति = रामचन्द्र जी को नेत्र भर (खूब अच्छी तरह) देखते हैं ।

राम सैल वन देखन जाहीं । जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं ॥
झरना झरहिं सुधा सम वारी । त्रिविधि ताप हर त्रिविधि वयारी ॥

शब्दार्थ—सैल = पर्वत (कामता नाथ) सुधा = अमृत । वारी = जल । त्रिविधि ताप = त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) । त्रिविधि वयारी । तीन प्रकार की वायु (शीतल , मंद, सुगन्ध) ।

भावार्थ—सब लोग राम जी के पर्वत और वन को देखने जाते हैं। जहाँ सम्पूर्ण सुख हैं, संपूर्ण दुख नहीं हैं। वहाँ झरने अमृत समान (स्वच्छ और मीठा) जल झरते हैं । त्रितापों को हरनेवाली शीतल, मंद, सुगन्ध वायु बहती है ।

विटप बेलि तृन अगनित जाती । फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं । जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥

शब्दार्थ—विटप = वृक्ष । बेलि = लता । जाती = प्रकार की । प्रसून = फूल । पल्लव = पत्ते । सिला = पत्थर की चट्टानें । पाहीं = से ।

भावार्थ—नाना भाँति के वृक्ष, लताएँ और तृण हैं और फल, फूल पत्ते भी बहुत प्रकार के हैं । सुन्दर चट्टानें (पड़ी) हैं । सुख देनेवाली वृक्षों की छाया है । उस वन की छवि कौन वर्णन कर सकता है । (कोई नहीं)

दो०—सरनि सरोरुह जल-बिहँग कूजत गुंजत भृंग ।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग ॥ २५० ॥

शब्दार्थ—सरनि = तालावों में । सरोरुह = कमल । जल विहँग = पनडुब्बी, हंस, बगुला, चक्रवाक आदि । कूजत = बोलते हैं । भृंग = भौंरा । बैर बिगत = वैर भाव त्याग कर । बिहरत = घूमते हैं । बिपिन = वन । मृग = पशु । विहंग = पक्षी ।

भावार्थ—तालावों में कमल (फूले) हैं । जब पक्षी बोलते और भौंरे गुंजार कर रहे हैं । वैरभाव को त्यागकर जंगल में नाना प्रकार के पशु और पक्षी घूम रहे हैं ।

कोल किरात भिल्ल बनवासी । मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी ॥

भरि भरि परन पुटी रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥
सबहिं देहिं करि विनय प्रनामा। कहि कहि स्वादु भेदु गुन नामा॥

शब्दार्थ—मधु = शहद। सुचि = पवित्र (स्वच्छ) सुधा = अमृत। परन पुटी = दोनों। रूरी = सुन्दर। अंकुर = फलों के कठोर बीजों के भीतर की गूदी, जैसे गरी, वादाम, पिस्ता, अखरोट की मींगी इत्यादि। जूरी = अँटिया, गट्ठे।

भावार्थ—वनवासी कोल किरात और भिल्ल सुन्दर और स्वच्छ मधु (शहद) जो स्वाद में अमृत के समान मीठी है सुन्दर दोने वनाकर उसी में भरभर ले आते हैं, और कन्द, मूल फल और अंकुर आदि की अँटिया विनय तथा प्रणाम करके सब को देते हैं। उनके स्वाद भेद, गुन और नाम भी वतलाते हैं।

देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥
कहहिं सनेह मगन मृदुवानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥

शब्दार्थ—मोल = मूल्य, कीमत। दोहाई = कसम। सुकृती = पुण्यवान। प्रसादा = प्रसन्नता से।

भावार्थ—लोग (उन सब वस्तुओं का) बहुत सा मूल्य देते हैं, पर वे नहीं लेते और लौटाने पर उन्हें राम की कसम खिलाते हैं। वे स्नेह में मग्न होकर मीठी वाणी से कहते हैं कि सज्जन तो केवल प्रेम की ही पहचान को मानते हैं (हम आप से प्रेम करते हैं आप हमारी वस्तुएँ लौटाये देते हैं) आप पुण्यवान् हैं और हम नीच निषाद हैं। रामचन्द्र जी के प्रसाद से हमें आपका दर्शन मिला है। (नहीं तो आपके दर्शन हमें दुर्लभ थे)।

हमहिं अगम अति दरस तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनिधारा॥
रामकृपालु निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिय जस राजा॥

शब्दार्थ—मरु धरनि = मरु भूमि में, वालुकामय देश में। देवधुनि =

गंगा जी। नेवाजा = कृपा की।

भावार्थ—हमारे लिये आप का दर्शन पाना अत्यंत कठिन है। जैसे मरुभूमि में गंगा जी की धारा का मिलना कठिन है। कृपालु रामचन्द्र जी ने तो निषाद के ऊपर (भी) कृपा की। तब कुटुम्ब और प्रजा को भी वैसा होनाही चाहिये, जैसा राजा हो। (अर्थात् आप लोग भी हमारे ऐसे नीच मनुष्यों पर कृपा कीजिये।

अलंकार—उदाहरण, सम (दूसरा)

दो०—एह जिअ जानि सँकोचु तजि, करिय छोहु लखि नेहु॥
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु॥२५१॥

शब्दार्थ—छोहु = ममता, मोह, कृपा। करन लगि = करने के लिए।

भावार्थ—ऐसा हृदय में जान कर संकोच त्याग कर हमारा प्रेम देखकर हमारे ऊपर कृपा कीजिये और हमें कृतार्थ करने के लिए फल, साग और अंकुर आदि ग्रहण कीजिये।

तुम्ह प्रिय पाहुन बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहिं गोसाईं। ईंधन पात किरात मिताईं॥

भावार्थ—पाहुन = (सं० प्राघूर्ण) अतिथि। पगुधारे = पधारे, आये। ईंधन = जलाने की सामग्री। मिताई = मित्रता।

भावार्थ = आप ऐसे प्यारे अतिथि वन में पधारे हैं पर हम लोगों के भाग्य आप लोगों की सेवा करने योग्य नहीं है। हे स्वामी हम आप को क्या दे सकते हैं? ईंधन और पत्ते यही किरातों की मित्रता से मिल सकते हैं (कोई उत्तम वस्तु नहीं)

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीव-गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥

शब्दार्थ—बासन = पात्र, बर्तन। बसन = वस्त्र। घाती = घातक।

भावार्थ—यही हमारी अत्यन्त बड़ी सेवा है कि हम लोग आप के बर्तन और वस्त्र नहीं चोरा लेते? हम लोग बड़े मूर्ख जीव हैं और जीवों

की हिंसा करने वाले हैं। कुटिल हैं बुरी चाल के हैं, दुर्बुद्धि हैं और नीच जाति के हैं।

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि, नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनन्दन दरस प्रभाऊ॥

शब्दार्थ—निसि बासर=रातो दिन। पट=वस्त्र। कटि=कमर। अघाहीं=सन्तुष्ट होते।

भावार्थ—हम लोग रातो दिन पाप ही करते हैं (तो भी) कमर में वस्त्र और पेट से सन्तुष्ट नहीं होते (अर्थात् इतने पर भी न कपड़े-लत्ते पूरे मिलते हैं न भोजन ही) हम लोगों में स्वप्न में भी धर्म बुद्धि कभी क्यों कर हो सकती है। परन्तु यह (आप से जो इतनी विनय कर रहे हैं) रामचन्द्र जी के दर्शन का प्रभाव है।

जबतें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥

भावार्थ—हम लोगों ने जब से प्रभु रामचन्द्र जी के चरण कमलों को देखा है, तब से हमारे दुःसह दुख और दोष मिट गये हैं। उनके बचन सुन कर अयोध्या निवासी लोग प्रेम में अनुरक्त हो गये और उनके भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

छं—लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुख पावहीं॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लन की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंस मनि की लोह लै लौका तिरा॥

शब्दार्थ—निदरहिं=निरादर करते हैं, निन्दा करते हैं। गिरा=वाणी, बातें। लौका=तूँबा, कद्दू। तिरा=तैरने लगा।

भावार्थ—सब लोग उनके भाग्य की प्रशंसा करने लगे और प्रेम के वचन सुनाने लगे। (अयोध्या निवासी कोल भिल्लों की) बातें, मिलन और सीता राम के चरणों में प्रेम देख कर सुख पाते हैं। वे स्त्री-पुरुष

कोल भिल्लों की वाणी सुनकर अपने प्रेम की निन्दा करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि रघुवंश में मणिवत् श्रेष्ठ रामचन्द्र जी की कृपा से लोहा भी लौका को पाकर तैरने लगा।

(नोट)—यहाँ लौका सम रामकृपा है जो स्वयं तारन तरन है, और लोहा सम कोल भील हैं जो उस कृपा से प्रेमी और शुद्ध सुभाव के हो गये।

अलङ्कार—उल्लास (प्रथम)

सो०—विहरहिं वन चहुँ ओर, प्रति दिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर, भए पीन पावस प्रथम ॥ २५२ ॥

शब्दार्थ—विहरहिं = घूमते हैं। दादुर = मेढ़क। पीन = मोटे, पुष्ट। पावस = वर्षारंभ।

भावार्थ—सब लोग आनन्दित होकर प्रति दिन वन में चारों ओर घूमते हैं। जैसे बरसात के प्रथम जल से मेढ़क और मोर पुष्ट होकर इधर उधर विचरते और आनन्दित होते हैं।

अलङ्कार—उदाहरण।

पुर नर नारि मगन अति प्रीती। वासर जाहिं पलक सम बीती ॥
सीय, सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरस सेवकाई ॥

शब्दार्थ—वासर = दिन। पलक = निमेषमात्र, (शीघ्र)। सरस = बढ़कर।

भावार्थ—नगर के स्त्री-पुरुष प्रेम में अत्यन्त मग्न हैं। दिन पलक के समान (अत्यन्त शीघ्र) बीत जाते हैं। सीता जी अनेक रूप धर कर आदर पूर्वक सासुओं की अत्यन्त सेवा करती हैं (अर्थात् जितनी सासुएँ हैं सीता जी ने उतने ही रूप बनाये हैं)

लखा न मरमु राम विनु काहू। माया सब सिय माया-माहू ॥
सीयसासुसेवा बसकीन्ही। तिन्हलहिसुख सिखआसिप दीन्ही ॥

शब्दार्थ—लखा = लक्ष्य किया, जाना। मरमु = भेद। माया = माया कृत रचना, सृष्टि के जीव। माहू = (सं० मध्य, प्राकृत—मज्झ, माँझ, माँह-अवधी-माँहुं) में। सिख = शिक्षा। आसिप = आशीर्वाद।

भावार्थ—इस (सीता जी के अनेक वेष धारण करने के) भेद को राम जी के सिवाय और किसी ने नहीं जाना। क्यों कि अन्य सब माया सीता जी की माया में (अन्तर्गत) हैं। (भाव यह है कि जिस बात को सीता जी छिपाना चाहें उसे माया रचित जीव कैसे जान सकता है। राम जी माया से परे हैं, अतः उन्हों ने जाना) सीता जी ने सासुओं को अपनी सेवा से वश में कर लिया। उन्हों ने सुख पाकर शिक्षा और आशीर्वाद दिया।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई
अवनि जमहिं जाँचति कैकेई। महि न बीचु विधि मीचु न देई॥

शब्दार्थ—कुटिल रानि=कैकेयी। पछितानि=पश्चात्ताप किया। अघाई=अत्यन्त। अवनि=पृथ्वी। जमहिं=यम से। जाँचति=मागती है। महि=पृथ्वी। बीचु=स्थान। विधि=व्यवस्था। मीचु=मृत्यु (यमराज)

भावार्थ—सीता सहित दोनों भाई राम और लक्ष्मण को सरल देखकर कुटिल रानी कैकेयी ने खूब पश्चाताप किया। वह पृथ्वी और यमराज से याँचना करती है—माँगती है (कि पृथ्वी फट जाय मैं उसमें समा जाऊँ, या यमराज मुझे मार डालें) पर पृथ्वी स्थान नहीं देती (नहीं फटती) और न मृत्यु ही (यमराज ही) मरण की व्यवस्था देते हैं।

(नोट)—यहाँ पर "महि न बीचु विधि मीचु न देई" का अन्वय यों समझनाः—महि बीचु न देई, मृत्यु विधि न देई। यहाँ महि, और मृत्यु को कर्त्ता—और बीचु और विधि को कर्म समझना चाहिये। यदि 'विधि' का अर्थ ब्रह्मा लिया जाय तो अर्थ असङ्गत हो जायगा।

अलङ्कार—यथा संख्य।

लोकउ वेद विदित कवि कहहीं। राम विमुख थल नरक न लहहीं।
इ संसउ सब के मन माहीं। राम गवन विधि अवध कि नाहीं॥

शब्दार्थ—बिमुख=विरुद्ध। थल=स्थान। संसउ=संशय।

भावार्थ—संसार में और वेद में विदित है और कवि कहते हैं कि राम विमुख मनुष्य को नरक में भी स्थान नहीं मिलता। सब लोगों के मन में

इस बात का सन्देह है कि हे बिधाता। राम जी अयोध्या चलेंगे या नहीं?

दो०—निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरतु बिकल सुठि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहिं सलिल सँकोच॥२५३॥

शब्दार्थ—सुठि = अत्यन्त। नीच = नीचे के, तल के। कीच = कीचड़, पंक। मीनहिं = मछली को। सलिल = जल। सँकोच = कमी।

भावार्थ—भरत जी को न रात में निद्रा लगती है न दिन में भूख। वे सोच से अत्यन्त व्याकुल हैं जैसे तल के कीच के बीच पड़ जाने से मछली जल की कमी से व्याकुलता होती है।

अलंकार—उदाहरण।

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति-भीति जस पाकत साली॥
केहिबिधि होइ राम अभिषेकू। मोहिं अवकलत उपाउ न एकू॥

शब्दार्थ—मिस = बहाना। ईति = सात ईतियाँ होती हैं पहले लिख आये हैं। भीति = डर। पाकत = पकते ही। साली = धान। अवकलत न = सूझता नहीं।

भावार्थ—समय ने माता के बहाने (मेरे साथ) कुचाल की (अर्थात् राम को वनवास दे दिया)। जैसे धान पर पकते ही ईति की भीति आ पड़े। राम जी का तिलक किस प्रकार हो? मुझे एक भी उपाय नहीं सूझता।

अवसि फिरिहिंगुरुआयसु मानी। मुनिपुनिकहव राम रुख जानी॥
मातु कहेहु बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ॥

शब्दार्थ—फिरहिं = लौटेंगे। रुख = मरजी। करबि = करेगी।

भावार्थ—राम जी गुरु जी की आज्ञा मान कर अवश्य लौटेंगे। पर मुनि जी राम जी की मरजी जान कर ही कुछ कहेंगे। माता (कौशिल्या) के कहने से भी रामचन्द्र जी लौटेंगे पर क्या राम माता (लौटने के लिए) कभी हठ करेंगी? (नहीं)

मोहिं अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता।

जौ हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू ॥

शब्दार्थ—अनुचर = पीछे चलने वाला, दास। केतिक बात = कितनी पहुँच, क्या गणना। वाम = उल्टा, टेढ़ा। हरगिरि = महादेव जी का पर्वत कैलाश। गुरु = गरू, वजनी।

भावार्थ—मुझ दास की क्या गिनती है। (मुझे कौन पूछता है) उस पर भी मेरे लिये यह कुसमय है और ब्रह्मा भी टेढ़ा है। यदि मैं हठ ही करूँ तो बड़ा भारी कुकर्म होगा। क्योंकि सेवक धर्म कैलाश पर्वत से भी गुरुतर है। (अर्थात् कैलाश चाहे उठा लिया जाय पर सेवक-धर्म का वहन नहीं हो सकता) स्वामी से किसी बात के लिये हठ करना दासत्व को तिलाँजलि देना है।

(नोट) रावण ने कैलाश तो उठा लिया था, पर राम-सेवकाई का भार नहीं उठा सका—यथा, 'होय भजन नहिं तामस देहा'।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहिं रैनि बिहानी ॥
प्रात नहाइ प्रभुहिं सिर नाई। बैठत पठये रिषय बोलाई ॥

शब्दार्थ—जुगुति = उपाय। रैनि = रात्रि। बिहानी = व्यतीत हो गयी। बोलाई पठये = बुलवा भेजा।

भावार्थ—एक भी युक्ति मन में स्थिर नहीं हुई (कोई उपाय न सूझा) भरत जी को सोचते सोचते ही रात बीत गयी। प्रातःकाल स्नान करके और रामचन्द्र को प्रणाम करके बैठने ही को थे कि ऋषि मंडली ने भरत जी को वशिष्ठ के डेरे पर बोला भेजा।

(नोट)—भरत जी ऋषियों को अपने स्थान पर बुला भेजें यह अर्थ हमको अनुचित जँचता है। इसी से हमने ऐसा अर्थ किया है।

दो०—गुरु पद-कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
विप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ ॥ २५४ ॥

शब्दार्थ – महाजन = बड़े लोग। जुरे = एकत्रित हुए।

भावार्थ—(भरत जी ने वशिष्ठ के डेरे पर जाकर) गुरु वशिष्ठ जी के

चरण कमलों में प्रणाम किया और उनकी आज्ञा पाकर बैठे (इसी बीच) ब्राह्मण, महाजन, मंत्री तथा सभासद सब आकर वहाँ एकत्रित हो गये।

(चित्रकूट में भरत-वशिष्ठ गोष्ठी)

(नोट) यह प्रसंग बड़ाही गंभीर है। एक एक 'विशेषण' पर भारी व्याख्या हो सकती है। परन्तु हमें इस टीका को बहुत बढ़ाना इष्ट नहीं।

बोले मुनिवर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना।
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा राम स्ववस भगवानू।

शब्दार्थ—धरम-धुरीन = धर्म की धुरा को धारण करने वाले। स्ववस = स्वतंत्र। भगवान् = ईश्वर, छः ऐश्वर्यों से युक्त। यथा—पोषणं भरणाधारं शरण्यं सर्व व्यापकं। कारुण्य षड्भिः पूर्णौः रामस्तु भगवान् स्वयं।

भावार्थ—मुनिवर वशिष्ठ जी समयानुसार बोले—हे सभासद और ज्ञानवान भरत! सुनो, सूर्यवंश में सूर्यवत श्रेष्ठ और धर्म की धुरा को धारण करने वाले, राजा, राम जी स्वतंत्र और भगवान् हैं (वे अपने मन की ही करेंगे। उनके ऊपर किसी का वश नहीं चल सकता)

सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। रामजनमु जग मंगल हेतू॥
गुरु पितु मातु वचन अनुसारी। खल-दलु दलन देव हितकारी॥

शब्दार्थ—सत्यसंध = सत्य को साधने वाले, सत्यवादी। श्रुतिसेतू = वेद की मर्यादा। दलु = समूह। दलन = नाशकर्ता।

भावार्थ—राम जी सत्यवादी और वेद की मर्यादा के रक्षक हैं, राम जन्म संसार के मंगल के लिए हुआ है (अयोध्या ही के मंगल के लिए नहीं) वे गुरु, पिता, माता के बचनों का अनुसरण करनेवाले, खल-मंडली का नाश करने वाले और देवताओं के हितकारी हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु।
विधि हरि हर ससि रवि दिसिपाला। माया जीव करम कुलिकाला।
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोगसिद्धि निगमागम गाई।
करि विचार जिअ देखहु नीके। राम रजाइ सीस सबही के।

शब्दार्थ—परमारथ = मोक्ष । जथारथु = (यथार्थ) ठीक ठीक । कुलि = सम्पूर्ण । अहिप = शेषनाग । (पाताल देश के राजा से मतलब है) महिप = भूमि के राजा । निगमागम = वेद-शास्त्र । नीके = भली-भांति । रजाइ = आज्ञा । सीस सबहीके = सब लोग मानते हैं

भावार्थ—नीति और प्रीति, परमार्थ और स्वार्थ इसे रामजी के समान और कोई ठीकठीक जानता ही नहीं । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्र, सूर्य, दिग्पाल, माया, जीव, कर्म, सम्पूर्ण काल, सर्पराज और राजा आदि जहाँ जहाँ प्रभुत्व है तथा योग आदि की सिद्धियाँ वेदों-शास्त्रों ने वर्णन की हैं, उन सबको हृदय में भली-भाँति विचार करके देखिये तो जान पड़ता है कि राम जी की आज्ञा सभी को मान्य है (अतः मेरा मत यह है कि)

दो०—राखें राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ ॥२५५॥

शब्दार्थ—रजाइ = आज्ञा । रुख = मर्जी । संमत = राय ।

भावार्थ—(इस लिए) रामजी की आज्ञा और मर्जी के रखने से (उसी के अनुसार कार्य करने से) हम सब लोगों की भलाई हो सकती है (इस बात को भली भाँति) समझ कर अब सब आप ज्ञानवान लोग मिलकर कोई राय ठीक कीजिये ।

(नोट)—वशिष्ठ के इस कथन का भाव यह है कि रामजी से अयोध्या लौट चलने के लिए कहना मेरी सम्मति से अनुचित है । कम से कम मैं तो न कहूंगा । यह कथन उसका जवाब है जो भरत जी ने सोचा था कि "अवशि फिरैं गुरु आयसु पाई" ।

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू । मंगल-मोद-मूल मगु एकू ॥
केहिविधि अवधचलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥

शब्दार्थ—मगु = मार्ग ।

भावार्थ—राम जी का राज्य-तिलक (इस समय हम) सबके लिये सुखद है (पर समस्त त्रिलोक के लिये नहीं) मंगल तथा आनन्द का मूल-

स्वरूप यही एक मार्ग है (वनगमन) अतएव रामचन्द्र जी किस प्रकार अयोध्या लौट चलें इसका समझ करके उत्तर दीजिये, वैसा उपाय कियाजाय (अर्थात् स्वार्थी न बनिये, त्रिलोक का उपकार होने दीजिये)

सब सादर सुनि मुनिवर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥

शब्दार्थ—नय=नीति। सानी=सनी हुई, परिपूर्ण। भोरे=भोले, स्तब्ध।

भावार्थ—मुनिवर वशिष्ट जी की नीति, परमार्थ और स्वार्थ से परिपूर्ण वाणी सादर सुनकर सब लोग स्तब्ध हो गये, किसी को कोई उत्तर नहीं सूझता। (तब गुरु जी को) प्रणाम करके हाथ जोड़कर भरत जी बोले—

भानुवंस भे भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे ॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ विधाता ॥

शब्दार्थ—घनेरे=बहुत से।

भावार्थ—(हे गुरु जी ! सुनिये) सूर्यवंश में बहुत से राजा हुए हैं, वे (भी साधारण नहीं) एक से एक बड़े हुए हैं। जन्म के लिए सब को पिता माता थे (अर्थात् उन्हें माता-पिता ने उत्पन्न अवश्य किया था) और कर्मों का शुभाशुभ फल भी ब्रह्मा उन्हें देता ही था। किन्तु—

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। असि असीस राउरि जगु जाना॥
सोइ गोसाइँ विधि गति जेइँ छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

शब्दार्थ—दलि=नष्ट करके। कल्याना सजइ=कल्याण करती है। असि=ऐसी। राउरि=आपकी। गति=चाल। छेकी=रोक दी थी। टेक जो टेकी=जो ठान ठान लिया।

भावार्थ—दुःखों को नष्ट करके सम्पूर्ण कल्याण करता है ऐसा आप का आशीर्वाद है—यह संसार जानता है। महाराज ! आप वही स्वामी हैं न ? जिसने ब्रह्मा की भी गति रोक दी थी। (फिर जब आप ने) जो टेक ठान ली है, उसे कौन टाल सकता है ? (कोई नहीं)

(नोट)—वशिष्ठ ने कौन सी विधि गति छेंकी ? (१) त्रेता युग को दूसरा नंबर दिलाया, (२) राजा सिंधुमणि को कन्या से पुरुष बनाया।

दो०—बूझिअ मोहिं उपाउ अब, सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेह मय वचन गुरु, उर उपजा अनुराग ॥ २५६ ॥

शब्दार्थ—बूझिअ=पूछते हैं। उपजा=उत्पन्न हुआ।

भावार्थ—अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं? यह सब मेरा अभाग्यहै। ये प्रेम-पूर्ण वचन सुनते ही गुरु वशिष्ठ जी के हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया।

तात बात फुरि, राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहु नाहीं।
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबसु जाता *

शब्दार्थ—फुरि=सत्य। कृपाहीं=कृपा से ही। बुध=पण्डित। जाता=नष्ट होते।

भावार्थ—(वशिष्ठ जी ने कहा हे तात! तुम्हारी बात सत्य है। पर यह सब जो मैं कर लेता था वह सब) राम कृपा से ही (क्योंकि) राम जी के विरुद्ध स्वप्न में भी कहीं सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। हे तात! मैं एक बात कहने में (थोड़ा सा) सँकोच करता हूँ—पण्डित लोग सर्वस्व नष्ट होता देख कर आधा त्याग देते हैं (आधे का ही ग्रहण करते हैं।)

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई *। फेरिअहि लखन सीय रघुराई *।
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता *। भे प्रमोद परिपूरन गाता ॥

शब्दार्थ—कानन=वन।

भावार्थ—तुम दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) वन को जाओ और राम, सीता तथा लक्ष्मण जी को लौटा दो। ये सुबचन सुन कर दोनों भाई हर्षित हो गये औव आनन्द से सम्पूर्ण शरीर परिपूर्ण हो गया।

मन प्रसन्न तन तेज बिराजा। जनु जिये राउ, राम भए राजा ॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम सुख दुख सब रोवहिं रानी ॥

---

* ये चरण राजापुर वाली प्रति में नहीं हैं।

शब्दार्थ—तन = शरीर । राउ = राजा दशरथ ।

भावार्थ—(भरत और शत्रुघ्न का) मन प्रसन्न था और शरीरमें तेज विराजमान था मानों राजा दशरथ जी जी गये और राम जी राजा हो गये । (अर्थात् इन बातों के हो जाने से जो प्रसन्नता-होती वैसी ही प्रसन्नता उन्हें हुई) । (तब वशिष्ठ जी ने कहा यह सब तो ठीक है । कि) लोगों को बड़ा लाभ होगा और हानि कम होगी पर रानियों को सुख और दुख दोनों बराबर ही होगा, वे रोवेंगी ।

कही भरतु मुनि कहा सो कीन्हे । फलु जग जीवन अभिमत दीन्हें ॥
कानन करउँ जनम भरि बासू । एहि तें अधिक न मोर सुपासू ॥

शब्दार्थ—अभिमत = मन चाहा । सुपासू = भलाई ।

भावार्थ—भरत जी कहने लगे—हे मुनि जी आप ने जो कहा है उसके करने से संसार के लोगों को मन चाहा पदार्थ देने का फल होगा । (चौदह वर्ष तो बहुत कम है) मैं जन्म भर बन में निवास करूँगा । इससे बढ़ कर मेरे लिए और कोई भलाई (की बात) हो नहीं सकती ।

दो०—अंतरजामी रामु सिय, तुम्ह सरबग्य सुजान ।
जौ फुर कहउँ त नाथ निज, कीजिअ बचन प्रवान ॥ २५७ ॥

शब्दार्थ—अंतर जामी = हृदय की जानने वाले । फुर = सत्य । प्रवान कीजिअ = प्रमाणित कीजिये ।

भावार्थ—हे नाथ ! राम और सीता हृदय की (बात) जानने वाले हैं और आप भी सर्वज्ञ तथा ज्ञानवान हैं, यदि मैं सत्य कहता होऊँ, तो आप अपने वचनों को प्रमाणित कीजिये (अर्थात् राम, लक्ष्मण, सीता को लौटाइये मैं बन जाऊँ)

भरत बचन सुनि देखि सनेहू । सभा सहित मुनि भयेउ बिदेहू ॥
भरत महा महिमा जलरासी । मुनिमति ठाढ़ि तीर अबला सी ॥
गा चह पार जतन बहु हेरा । पावति नाउ न बोहित बेरा ॥
अउर करहि को भरत बड़ाई । सरसी सीपि कि सिन्धु समाई ॥

शब्दार्थ—विदेहू=बेहोश, मग्न। जलरासी=समुद्र। अबला=स्त्री। हेरा=विचारा। बोहित=जहाज़। बेरा=(बेड़ा) सरसी=छोटी तलैया।

भावार्थ—भरत के वचन सुन कर और उनका प्रेम देखकर सभा सहित मुनि जी विदेह (मग्न) हो गये। भरत जी की बड़ी महिमा एक जलराशि है उसके तीर पर मुनि जी की बुद्धि अबला (स्त्री) के समान खड़ी है। वह पार जाना चाहती है, बहुत से उपाय सोचे (पर उसे पार जाने के लिए) नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं मिलता। (अर्थात् जिस प्रकार कोई अबला निर्जन में एक जलराशि के किनारे खड़ी होकर पार जाने का उपाय सोचकर नाव, जहाज और बेड़े के अभाव में किसी प्रकार उसे तै नहीं कर सकती, ठीक उसी प्रकार मुनि वशिष्ठ जी अपनी बुद्धि से भरत के अन्तस्तल के विचारों को थहाने लगे पर उन्हें उसका पार और थाह का कुछ पता ही न लगा उन्हों ने भरत को मन, वचन और कर्म से शुद्ध ही पाया) और कौन भरत की बड़ाई कर सकता है? (कोई नहीं) जब वशिष्ठ जी ही हार गये तो दूसरे में क्या ताब है? क्या तालाब की सीपी में समुद्र समा सकता है? (नहीं, समुद्र भरने के लिए कोई बड़ी भारी वस्तु चाहिए)

अलङ्कार—रूपक, उपमा, ललित।

भरत मुनिहिं मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥

भावार्थ—मुनि वशिष्ठ जी के मन में भरत जी बड़े अच्छे लगे (कसौटी पर कसने से खरे निकले) तब सम्पूर्ण समाज सहित मुनि राम के पास गये। राम जी ने प्रणाम करके सुन्दर आसन दिया। वशिष्ठ जी की आज्ञा पाकर सब लोग बैठे।

(चित्रकूट का प्रथम दरबार)

बोले मुनि वरु वचन विचारी। देस-काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सर्बग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥

शब्दार्थ—अनुहारी=अनुसार, योग्य, मुताबिक। निधाना=खजाना।

भावार्थ—वशिष्ठ जी, देश काल और अवसर के अनुकूल विचार कर बचन बोले—हे राम! सुनो, तुम सर्वज्ञ और सुजान हो तथा धर्म, नीति गुण एवं ज्ञान के खजाना हो।

दो०—सब के उर अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहिअ उपाउ॥ २५८॥

शब्दार्थ—उर अंतर = हृदय में।

भावार्थ—तुम सब के हृदय में बसते हो और (सु) भाव, कुभाव को जानते हो। अतएव, नगर निवासियों का, माताओं का और भरत का जिस कार्य से हित हो वैसा ही उपाय कहिये।

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥

शब्दार्थ—आरत = दुखी। सूझ = दिखाई देता है। दाऊ = दाँव।

भावार्थ—(क्यों कि) दुखी लोग (कोई बात) कभी विचार कर नहीं कहते, जुवाड़ी को सदा अपना ही दाँव सूझता है। बशिष्ठ जी के वचन सुनकर रामचन्द्र जी ने कहा हे नाथ! आप ही के हाथों सब उपाय है (आप चाहे जैसा करें आप चाहें तो हमें वन में रख सकते हैं)

अलङ्कार—दृष्टान्त (पूर्वार्द्ध में)

सब कर हित रुख राउर राखे। आयसु किए मुदित फुर भाखे।
प्रथम जो आयसु मो कहँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई॥

शब्दार्थ—रुख = मर्जी। फुर = सत्य। भाखे = कहने से।

भावार्थ—आप की ही मर्जी के अनुसार चलने से, आप की आज्ञा पालन करने से और प्रसन्न होकर सत्य कहने से ही सब का हित है। (इसलिए) पहले मुझे जो आज्ञा हो उस शिक्षा को मैं शिरोधार्य मानकर उसके अनुसार कार्य करूँ।

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई॥
कह मुनि राम सत्य तुम भाखा। भरत-सनेहु बिचारु न राखा॥

शब्दार्थ—घटिहि = करेगा ।

भावार्थ—फिर हे स्वामी ! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब प्रकार से आप की सेवा करेगा । (आप की बात पूर्ण करेगा) तब मुनि ने कहा—हे राम ! तुम ने सब सत्य कहा, किन्तु भरत के प्रेम का विचार बिल्कुल नहीं किया ।

तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी । भरत-भगति-बस भइ मति मोरी ॥
मोरे जान भरत रुख राखी । जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥

शब्दार्थ—बहोरिबहोरी = बारम्बार । मोरे जान = मेरे विचार से । साखी = साक्षी ।

भावार्थ—इसलिये मैं बारम्बार कहता हूं कि भरत की भक्ति के वश में मेरी बुद्धि हो गयी है । मेरे विचार से भरत का रुख रखकर जो कुछ किया जायगा, वह शुभ ही होगा शंकर जी इसके साक्षी हैं । (मैं असत्य नहीं कहता)

दो॰—भरत विनय सादर सुनिअ, करिअ विचारु बहोरि ।
करब साधुमत लोकमत, नृप-नय निगम निचोरि ।२५९।

शब्दार्थ—साधुमत = सज्जनों के कथनानुसार । निगम = वेद । निचोरि = भली भांति मनन करके ।

भावार्थ—(पहले केवल) आदर सहित भरत की विनय सुनिये और फिर उस पर विचार करिये । तत्पश्चात् साधु मत, लोकमत राजनीति, और वेद मत का खूब मनन करके जो करना उचित जान पड़े सो करियेगा ।

गुरु अनुरागु भरत पर देखी । राम हृदय आनंदु बिसेखी ॥
भरतहिं धरम धुरंधर जानी । निज सेवक तन मानस बानी ॥
बोले गुरु आयसु अनुकूला । बचन मंजु मृदु मंगल मूला ॥

शब्दार्थ—अनुरागु = प्रेम । मृदु = मुलायम ।

भावार्थ—गुरु वशिष्ठ जी का प्रेम भरत पर देखकर राम जी के हृदय में विशेष आनन्द हुआ । भरत को धर्म-धुरंधर जानकर और मन वचन

कर्म से अपना सेवक समझ कर राम जी गुरु जी की आज्ञा के अनुकूल ही सुन्दर मुलायम और मंगलदायक वचन बोले।

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयेउ न भुवन भरत सम भाई॥
जे गुरु पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ वेदहुँ बड़ भागी॥
राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥

शब्दार्थ—सपथ=सौगन्ध, कसम। दोहाई=कसम। अंबुज=कमल।

भावार्थ—(वशिष्ठ जी से कहा) हे नाथ। आपकी शपथ और पिता जी के चरणों की सौगंध, पृथ्वी में भरत के समान कोई दूसरा भाई नहीं हुआ। जो गुरु के चरण—कमलों के प्रेमी होते हैं वे लोक में, वेद में बड़े भाग्यवान होते हैं। इसलिए जिन भरत पर आप का इतना प्रेम है; उनके भाग्य को कौन बता सकता है? (कोई नहीं).

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥

शब्दार्थ—बदन=मुख। अरगाई=(अलगाई) चुप।

भावार्थ—अपने से छोटा भाई जानकर मेरी बुद्धि सकुचती है, क्योंकि मैं भरत के मुख पर (सम्मुख ही) भरत की बड़ाई कर रहा हूं। भरत जो कुछ कहें उसी में भलाई है। ऐसा कह कर रामजी चुप हो गये।

दो०—तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।
कृपा सिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कइ बात॥ २६०॥

भावार्थ—मुनि वशिष्ठ जी ने भरत से कहा—हे तात! सम्पूर्ण संकोच त्याग कर कृपा सागर प्यारे भाई राम जी से अपने हृदय की बात कहो।

सुनि मुनि वचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल, अघाई॥
लखि अपने सिर सब छरुभारू। कहि न सकहिं किछु,करहिं बिचारू

शब्दार्थ—अघाई=(सं० अघाय) संतुष्ट हो। छरुभारू=छरोभार, संपूर्ण भार।

भावार्थ—मुनि जी के वचन सुन कर और राम जी का रुख पाकर (भरत जी) संतुष्ट हो गये कि गुरु और स्वामी हमारे अनुकूल हैं। अपनेही ऊपर सम्पूर्ण छरोभार देख कर भरत जी कुछ कह नहीं सकते। विचार कर रहे हैं। (कि क्या कहूं ?)

पुलक शरीर सभा भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहउँ मैं काहा॥

शब्दार्थ—पुलक = रोमाँच। नीरज = कमल। काहा = क्या।

भावार्थ—भरत जी के शरीर में रोमाँच हो गया, वे सभा में खड़े हुए कमलवत् नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाने लगे। उन्हों ने कहा—मेरा कहना तो मुनि जी ने ही निबाह दिया, उससे अधिक मैं कह ही क्या सकता हूं ?

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेखी। खेलत खुनस न कबहूं देखी॥

शब्दार्थ—कोह = क्रोध। काऊ = कभी। खुनस = क्रोध।

भावार्थ—मैं अपने नाथ का स्वभाव जानता हूं (अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मेरे ऊपर तो विशेष कृपा और प्रेम करते हैं, लड़कपन में) खेलते समय कभी इनका क्रोध नहीं देखा।

सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जिअ जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोहीं॥

शब्दार्थ—सिसुपन = लड़कपन। मन भंगू न कीन्ह = चित्त नहीं दुखाया। जोही = देखी।

भावार्थ—मैंने लड़कपन से आप का संग नहीं छोड़ा, इन्हों ने भी मेरा चित कभी नहीं दुखाया। मैंने प्रभु की कृपा-रीति हृदय में (भली भाँति) विचार ली है। हारने पर भी मुझे खेल में जिता देते थे।

दो०—महूँ सनेह सकोच बस, सनमुख कहे न बयन।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम-पियासे नयन॥२६१॥

शब्दार्थ—बयन = वचन। तृपित = तृप्ति।

भावार्थ—मैंने भी स्नेह और संकोच वश सम्मुख कोई बात नहीं कही, आज तक इन प्रेम पिपासु नेत्रों की दर्शन से तृप्ति नहीं हुई।

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिसु पारा॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। आपनि समुझि साधु सुधि कोभा

शब्दार्थ—दुलार=प्यार। बीचु पारा=फरक डाल दिया, भेद कर दिया। मिसु=बहाना। सुधि=(सं० सुधी) पंडित।

भावार्थ—विधाता हमारे प्यार को नहीं सह (देख) सका। उस नीच ने माता के बहाने (उन्ही प्रिय राम जी से) फरक डाल दिया। यह कहना भी आज मुझे शोभा नहीं देता, क्योंकि अपनी समझ से कौन सज्जन और पंडित नहीं हुआ (अर्थात् अपनी समझ से सभी अपने को पण्डित और अच्छा समझते हैं)

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली।
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक ताली॥

शब्दार्थ—मंदि=बुरी। कोदव=(सं० कद्रन्न) एक मोटा अनाज। सुसाली=सुन्दर धान। मुकता=मोती। प्रसव=उत्पन्न करेगी। संबुक=सीपी। ताली=तालाब वाली।

भावार्थ—माता बुरी है और मैं अच्छा और सुचाली हूं ऐसा हृदय में ले आना करोड़ों कुचाल के बराबर है, क्या कोदो की बाली में सुन्दर धान फल सकता है ? क्या तालाब की सीपी से मोती उत्पन्न हो सकता है ? (नहीं) अर्थात् जैसा कारण होगा वैसा ही कार्य होगा, जैसी माँ होगी वैसा ही बेटा भी होगा। कैकेयी हमारी माता जब बुरी है तो मैं भी बुरा हूं। अच्छा कदापि हो नहीं सकता।

सपनेहु दोस कलेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समुझे निज अघ परिपाकू। जारेउँ जाय जननि कहि काकू॥

शब्दार्थ—उदधि=समुद्र। अवगाहू=अथाह। अघ=पाप। परिपाकू=फल। जारेउँ=जलाया। जाय=व्यर्थ। काकू=व्यंग।

भावार्थ—स्वप्न में भी किसी का दोष या किसी को क्लेश नहीं है। मेरा ही अभाग्य रूपी समुद्र अथाह है। विना अपने पापों का फल समझे मैंने व्यर्थ ही व्यंग कह कर माता को जलाया। (अर्थात् यह सब हमारे अभाग्य से ही हो रहा है इसमें दोष किसी का नहीं है, माता को हमने जो कोसा था वह भी व्यर्थ ही था)

हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा॥
गुरु गोसाइँ साहिब सियरामू। लागत मोंहि नीक परिनामू॥

शब्दार्थ—हेरि = खोज कर। गोसाइँ = इन्द्रियों का संचालक अर्थात् क्रिया का प्रेरक। साहिब = मालिक। नीक = अच्छा।

भावार्थ—मैं मन से सब ओर देख कर हार गया। एकही प्रकार से हमारा भलेही भला हो सकता है। हमारे गुरु, कर्म प्रेरक और मालिक (जो कुछ हैं सब) सीता राम हैं, इसी से हमें परिणाम अच्छा जान पड़ता है।

दो०—साधु सभा गुरु प्रभु निकट, कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ॥ २६२॥

शब्दार्थ—साधु = सज्जन। सति भाउ = सत्य भाव से, सच्ची भावना से। प्रपन्चु = छल। फुर = सत्य।

भावार्थ—सज्जनों की सभा में, गुरु जी एवं स्वामी के समीप इस सुन्दर (मन्दाकिनी के तीर या चित्रकूट ऐसे पवित्र) स्थान पर सत्य भाव से मैं कहता हूं। मैं प्रेम से कहता हूं या छल से (हमारा यह कथन) झूठा है या सच्चा है इसे मुनि जी या स्वयं रामचन्द्र जी जानते हैं। (अर्थात् सज्जनों की सभा में और अपने गुरुजनों के रहते हुए कोई असत्य बात नहीं कह सकता, यदि इस में किसी को संदेह हो तो हमारे हृदय को गुरु जी और राम जी पहचानते हैं, हमारे मन की बात जानते हैं)

भूपति मरन प्रेमु पनु राखी। जननी कुमति जगत सब साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जुर पुर नर नारी॥

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहउँ सब सूला॥

शब्दार्थ—साखी = साक्षी, गवाह । जुर = ज्वर । महीं = मैं ही । सूला = दुःख ।

भावार्थ—राजा साहब अपने प्रेम के प्रण को रखकर (निर्वाह करके) मर ही गये। संसार साक्षी है कि हमारी माता दुर्बुद्धि है। (विधवा हो जाने से) माताएँ व्याकुल देखी जातीं हैं। नगर के स्त्री-पुरुष असह्य ज्वर (विपत्ति) से जलते हैं। इन सब अनर्थों का मूल कारण मैं ही हूं। ऐसा सुन कर और समझ कर मैं सब दुःख सहता हूं।

सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनिभेष लषन सिय साथा॥
बिन पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि, रहेउँ एहि घाएँ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयेउ न बेहू॥

शब्दार्थ—पानहिन्ह = जूते, पादत्रान। पयादेहि पाएँ = पाँव पैदल। रहेउँ = जीता रहा। घाएँ = घाव से। बेहू = (सं० वेध) छेद।

भावार्थ—यह सुन कर कि रामचन्द्र जी मुनि वेप में लक्ष्मण और सीता के साथ बन चले गये हैं, उनके पैरों में पादत्रान भी नहीं हैं और वे पैदल ही गये हैं, शंकर साक्षी हैं मैं इस घाव के लगने पर जीता रहा। पुनः निषाद का (अपूर्व, अनुपम) स्नेह देख कर भी मेरा वज्र के समान कठोर हृदय नहीं फटा।

अब सब आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबुइ सहाई॥
जिन्हहिं निरखिमगसाँपिनि बीछी। तजहिं विषमविष तामसतीछी
दो०—तेइ रघुनन्दनु लषनु सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावइ काहि॥२६३॥

शब्दार्थ—सबुइ = सब कुछ। निरखि = (सं० निरीक्ष्य) देखकर। बीछी = (सं० वृश्चिक) तामस तीछी = तमोगुण की तीक्ष्णता। अनहित = बुरे। तनय = पुत्र। दैव = ब्रह्मा, विधाता या भाग्य। काहि = किसे।

भावार्थ—अब सब मैंने आकर अपनी आंखों से देखा। मेरा जड़ जीव

जीते जी सब कुछ मुझे सहावेगा। जिन्हें देखकर मार्ग में नागिनें और बीछियाँ अपने कठिन विष को और अपनी तमो गुण की तीक्ष्णता को त्याग देती हैं (अर्थात् बुरे मनुष्य भी जिन्हें देख कर अपनी बुराई त्याग देते हैं) ऐसे राम, लक्ष्मण और सीता जिसे बुरे लगे उसके पुत्र के सिवाय और किसे विधाता असह्य दुःख सहावेगा? (अर्थात् ऐसे अच्छे राम, लक्ष्मण और सीता जिसे बुरे लगे उसीके पुत्रको यह सब दुःख सहना होगा)

अलङ्कार—सम (दूसरा)

सुनि अति विकल भरत-बर-बानी। आरति प्रीति विनय नयसानी
सोक मगन सब सभा खँभारू। मनहुँ कमल वन परेउ तुषारू॥

शब्दार्थ—आरति = दुःख। नय = नीति। सानी = सनी हुई, परिपूर्ण। खँभारू = चिंता, व्याकुलता। तुषारू = पाला।

भावार्थ—अत्यन्त व्याकुल भरत जी की सुन्दर वाणी को जो दुःख, प्रीति, नम्रता और नीति से परिपूर्ण थी, सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गये (सब को बड़ा दुःख हुआ) सभा में ऐसी व्याकुलता फैली मानो कमल वन में पाला पड़ गया है। (और कमल मुरझा गये हैं)

कहि अनेक विधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित वचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव वन चन्दू॥

शब्दार्थ—पुरानी = (पुराणीय) पुराणों की या प्राचीन। प्रबोधु कीन्ह = समझाया, ढाढ़स दिया।

भावार्थ—ज्ञानी मुनि वशिष्ठ जी ने बहुत प्रकार की पुराणों की कथाएँ कह कर भरत को समझाया (ढाढ़स दिया) तब सूर्यवंश रूपी कुमुद के लिये चन्द्रमा के समान (प्रफुल्लित करने वाले) रामचन्द्र जी उचित वचन बोले—

तात जाय जिअ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीनिकाल तिभुवन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥

शब्दार्थ—जाय = व्यर्थ। गलानी = दुःख। गति = चाल। मत =

विचार। पुन्यसिलोक=(सं० पुण्यश्लोक) यशस्वी। तर=नीचे।

भावार्थ—हे तात! तुम व्यर्थ ही हृदय में ग्लानि कर रहे हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन समझो। हमारे विचार से त्रिकाल (भूत, भविष्य, वर्तमान) और त्रिभुवन (मर्त्य, स्वर्ग, पाताल) में जितने पुण्यश्लोक (पुण्यात्मा) हैं वे तुम से नीचे हैं। (अर्थात् तुम्हारे समान अच्छा कोई न हुआ है, न हैं, न होगा)

उर आनत तुम पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोषु देहिं जननिहिं जड़ तेई। जिन गुरु साधु सभा नहिं सेई॥

शब्दार्थ – जड़=मूर्ख। गुरु=बड़े लोग।

भावार्थ—हृदय में भी तुम्हारे ऊपर कुटिलता का विचार आरोप करने से लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। जो माता को दोष देते हैं, वे भी मूर्ख हैं, उन्होंने कभी बड़े लोगों की या अच्छे लोगों की सभा में भाग नहीं लिया है। (अर्थात् उसमें सम्मिलित होकर उसकी बातें हृदयंगम नहीं की हैं)

दो०—मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नाम तुम्हार॥२६४॥

शब्दार्थ—प्रपंच=सांसारिक भ्रमजाल। भार=बोझा, समूह।

भावार्थ—हे भरत! तुम्हारा नाम मात्र स्मरण करने से (मनुष्य के) पापों और भ्रमजाल के समूह नष्ट हो जायेंगे, और सम्पूर्ण अमंगल भी मिट जायँगे। लोक में उसका सुयश होगा और परलोक में सुख मिलेगा। (अतएव तुम्हारे ऊपर तो संदेह करना व्यर्थ है)

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥
तात कुतरक करहु जनि जाए। बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराए॥

शब्दार्थ—राउरि=तुम्हारी। कुतरक=व्यर्थ के तर्क। जनि=मत दुरइ=छिपता है। दुराए=छिपाने से।

भावार्थ—मैं स्वभाव से (बनावटी नहीं) शंकर को साक्षी देकर यह

सत्य बात कहता हूं कि हे भरत ! भूमि तुम्हारी ही रक्खी रह सकती है (नहीं तो नष्ट हो, जायगी) हे तात ! तुम व्यर्थ ही अपने मन में कुतर्क करते हो, बैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपता ।

(नोट)—श्री राम जी के कथन का भाव यह है कि अगर तुम हठ करके मुझे लौटा ले जाओगे, तो मैं लौट चलूंगा। पर भूमि का पाप-भार कैसे उतरेगा। अतः तुम लौटाने का आग्रह न करके भूमि की रक्षा करो, क्योंकि इस समय तुम्हीं भूपाल हो । आगे देखिये—"अब सुर काज भरत के हाथा" ।

मुनिगन निकट विहँग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं।
हित अनहित पसु पंछिउ जाना। मानुप तनु गुन ग्यान निधाना॥

शब्दार्थ—मृग = हरिण । बाधक = बाधा पहुंचाने वाले । बधिक = वध करने वाले । पराहीं = (सं० पलायन) भागते हैं । पंछिउ = पक्षी भी ।

भावार्थ—मुनियों के पास पक्षी और हरिण जाते हैं, पर बाधा पहुंचाने वाले और वध करने वालों को देखकर वे भाग जाते हैं । अपना भला और बुरा पशु-पक्षी भी जानते हैं, मनुष्य का शरीर तो गुण और ज्ञानका खजाना ही है (अर्थात् मनुष्य तो अपना हित अनहित भली भाँति जानते ही हैं)

अलंकार—काव्यर्थापत्ति ।

तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके। करउँ काह असमंजस जीके॥
राखेउ राउ सत्य मोहिं त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम पनु लागी॥

शब्दार्थ—नीके = भली भाँति । असमंजस = दुविधा ।

भावार्थ—हे तात ! मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूं, पर क्या करूँ हृदय में बड़ा असमंजस हो रहा है । राजा साहब ने मुझे त्याग कर सत्य को रखा और (हमारे) प्रेम—प्रण के निर्वाह के लिए शरीर तक को छोड़ दिया ।

तासु बचन मेटत अति सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥

तापर गुरुमोहिं आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा

शब्दार्थ—मेटत = उल्लंघन करने में।

भावार्थ—उनके वचनों को उल्लंघन करने में मुझे बड़ा सोच होता है, उससे भी अधिक तुम्हारा संकोच है। तिस पर भी गुरू जी ने आज्ञा दी है। (कि भरत जो कहें सो करो अतएव) तुम जो कहो मैं उसे ही अवश्यमेव करना चाहता हूं।

अलंकार—व्यक्ताक्षेप।

दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर-बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥२८५॥

भावार्थ—मन को प्रसन्न करके और संकोच छोड़कर तुम जो कहो वही मैं आज करूँ। सत्यवादी रामचन्द्र जी के वचनों को सुनकर सम्पूर्ण समाज सुखी हुआ। (उन्हें आशा हुई कि भरत के कहने से राम जी लौट चलेंगे)

सुरगन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥
बनत उपाउ करत किछु नाहीं। राम सरन सब गे मन माहीं॥

शब्दार्थ—सुरराजू = इन्द्र। अकाजू होन चाहत = काम बिगड़ने चाहता है।

भावार्थ—देवताओं सहित इन्द्र भयभीत होने लगे। वे सोचते हैं कि अब काम बिगड़ने चाहता है। उनसे कुछ भी उपाय करते नहीं बनता। सब मन ही मन राम जी की शरण गये।

बहुरि बिचारि परसपर करहीं। रघुपति भगत-भगतिबस अहहीं
सुधि करि अंबरीष दुरवासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा॥

शब्दार्थ—अहहीं = हैं। सुधि करि = स्मरण करके। सुरपति = इन्द्र। निपट = अत्यंत।

भावार्थ—फिर वे परस्पर विचार कर कहने लगे कि राम जी भक्तों की भक्ति के वश में हैं। अंबरीष और दुर्वासा की कथा का स्मरण करके

देवता और इन्द्र अत्यन्त निराश हो गये (कि भरत ज़ी के कहते ही राम जी अयोध्या लौट जायंगे और हम दुख सहते रहेंगे ।)

सहे सुरन्ह बहु काल विषादा । नरहरि किए प्रगट प्रहलादा ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा । अब सुरकाज भरत के हाथा ॥

भावार्थ—नरहरि = नृसिंह । धुनि माथा = माथा पीटकर, दुखी होकर ।

भावार्थ—(देवता कहते हैं) देवताओं ने पहले भी बहुत समय तक दुःख सहे थे (पर जब कुछ न कर सके) तब प्रह्लाद ने ही नृसिंह भगवान को प्रकट करके हमारा दुख दूर किया था । सब कान के पास लग लग कर और दुखी होकर कहते हैं कि अब तो देवताओं का कार्य भरत के ही हाथ में है । (रावणबध ही देवताओं का अभीष्ट कार्य है)

आन उपाउ न देखिय देवा । मानत राम सुसेवक सेवा ॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं । निज गुनसील राम बस करतहिं

शब्दार्थ—आन = (अन्य) दूसरा । मानत = स्वीकार करते हैं ।

भावार्थ—हे देव ! अन्य कोई उपाय दिखाई ही नहीं देता । रामजी तो सुसेवक की सेवा को ही मानते हैं (दूसरे की तो बात सुनते ही नहीं) इसलिये प्रेमपूर्ण हृदय से सब लोग भरत का ही स्मरण करो, जिन्होंने अपने गुण और शील से राम जी को वश में कर लिया है ।

दो०—सुनि सुर मत सुरगुरु कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु ।
सकल सुमंगल मूल जग, भरत चरन अनुरागु ॥ २६६ ॥

शब्दार्थ—सुरमत = देवताओं का बिचार । सुरगुरु = बृहस्पति जी ।

भावार्थ—देवताओं की यह राय सुन कर बृहस्पति जी ने कहा यह बहुत अच्छा है (इसके करने में तुम्हारा बड़ा भाग्य है । क्योंकि भरत के चरणों का प्रेम संसार के सुन्दर मंगलों की जड़ है ।

सीतापति सेवक सेवकाई । कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥
भरत भगति तुम्हरे मन आई । तजहु सोच बिधि बात बनाई ॥

शब्दार्थ—सय = सौ ।

भावार्थ—सीतापति रामजी के सेवक की सेवा सौ काम धेनुओं के समान अच्छी है। यदि तुम्हारे हृदय में भरत की भक्ति आई है तो सम्पूर्ण सोच छोड़ दो ब्रह्मा ने ही बात बना दी है।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभाय विवस रघुराऊ॥
मन थिर करहु देव डर नाहीं। भरतहिं जानि राम परिछाहीं॥

शब्दार्थ—देव पति = इन्द्र। परिछाहीं = (प्रतिछाया) छाँह।

भावार्थ—हे इन्द्र ! भरत का प्रभाव तो देखो ? कि राम जी उनके सहज स्वभाव के वश में है। हे देव ! मन को स्थिर करो कोई डर नहीं है। भरत को तुम राम जी की छाँह समझो (अर्थात् जैसे छाया मनुष्य की अनुगामिनी होती है उसी प्रकार भरत भी वही करेंगे जो राम जी चाहते हैं)

सुनि सुरगुरु-सुर-संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहिं सँकोचू॥
निज सिरभार भरतु जिअ जाना करत कोटि विधिउरअनुमाना॥

भावार्थ—इधर तो वृहस्पति और देवताओं का मत सुनकर अन्तर्यामी राम जी को वड़ा संकोच है। उधर भरत ने जव अपने ही सिर पर सम्पूर्ण भार देखा तो वे करोड़ों प्रकार के अनुमान करने लगे (कि क्या कहूं ?)

करि विचार मन दीन्ही ठीका। राम रजायसु आपन नीका॥
निज पन तजि राखेउ पन मोरा। छोहु सनेह कीन्ह नहिं थोरा॥

शब्दार्थ—दीन्ही ठीका = निश्चय किया।

भावार्थ—भरत जी ने मन में विचार कर यह निश्चय किया कि राम जी की ही आज्ञा का पालन करने से मेरा (अपना) भला है। राम जी ने अपने प्रण को छोड़ कर मेरे प्रण को रखा, यह कम छोह और स्नेह नहीं किया।

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब विधि सीतानाथ।
करि प्रनामु वोले भरतु जोरि जलज-जुग हाथ॥२६७॥

शब्दार्थ—अमित = बहुत। जलज = कमल। जुग = दोनों।

भावार्थ—राम चन्द्र जी ने सब प्रकार से मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया है (यह सोचकर) प्रणाम करके और दोनों कर कमलों को जोड़कर भरत जी बोले।

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी॥
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मनकलपित सूला॥

शब्दार्थ—का = क्या। अंबुनिधि = समुद्र। सूला = पीड़ा।

भावार्थ—हे स्वामी! अब मैं क्या कहूं और (आप से) क्या कहवाऊँ। आप तो कृपा सागर और अन्तर्यामी हैं। गुरु को प्रसन्न और स्वामी को अनुकूल देखकर मेरे मलिन मन की कल्पित पीड़ा नष्ट हो गयी (अर्थात् मैंने जो हृदय में नाना प्रकार की बातें सोची थीं वह व्यर्थ था)

अपडर डरेउँ न सोच समूले। रबिहिं न दोषु देव दिसि भूले॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधिगति बिषम काल कठिनाई॥
पाँव रोपि सब मिलि मोहिं घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥

शब्दार्थ—अपडर = झूठ-मूठ का डर या अपनी ओर से डरना। समूले = समूल, सकारण। पाँवरोपि = प्रण करके। घाला = नष्ट कर दिया। पाला = पूर्ण किया।

भावार्थ—(अब मुझे मालूम होता है कि) मैं मिथ्या डर से डरता था और मेरा सोच भी सकारण नहीं था। यदि कोई दिशा भूल जाय तो इसमें सूर्य को क्या दोष है (अर्थात् यदि मैं इस प्रकार सोच करता था तो इस में आप का कोई दोष नहीं मुझे ही भ्रम था) मेरे अभाग्य ने, माता की कुटिलता ने, विधाता की टेढ़ी चाल ने और काल की कठिनता ने मिल कर और प्रण करके (दृढ़ता पूर्वक) मुझे नष्ट कर दिया, किन्तु (इतने पर भी) प्रणतपाल (आप) ने अपने प्रण को पूर्ण किया (अर्थात् मुझे बचाया, आपने कोरा जवाब नहीं दिया)

यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु बेद बिदित नहिं गोई॥

जगु अनभल, भल एकु गोसाईं । कहहु होइ भल कासु भलाई ॥
देव देउतरु सरिस सुभाऊ । सनमुख विमुख न काहुहि काऊ ॥

शब्दार्थ—गोई=छिपी । कासु = किसके । देउतरु = कल्पवृक्ष ।

भावार्थ—यह आपकी कोई नयी रीति नहीं है । लोक में और वेद में विदित है छिपी नहीं है । संसार बुरा है, एक स्वामी ही भले हैं । आपही बताइये कि किसके करने से मेरी भलाई हो सकती है ? हे देव ! आप का स्वभाव तो कल्पवृक्ष के समान है जो कभी नतो किसी के सन्मुख (अनुकूल) है और न किसी के विमुख (प्रतिकूल) है

दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि सब सोच ।
मागत अभिमत पाव जग राउ रंक भल पोच ॥ २६८ ॥

शब्दार्थ—समनि = नष्ट करने वाली । अभिमत = मन चाहा । राउ = राजा । रंक = दरिद्र । पोच = बुरा, नीच ।

भावार्थ—जो मनुष्य उस (कल्पवृक्ष) के निकट जाकर उस वृक्ष को पहचान लेता है (तथा उसके नीचे विश्राम करता है) तो उसकी छाया ही सम्पूर्ण सोच को नष्ट कर देती है । (वहाँ कोई भले-बुरे, नीचे ऊँचे का विचार नहीं है) राजा, दरिद्र, भला बुरा सम्पूर्ण संसार मागते ही मनचाहा पदार्थ पाता है ।

लखि सब विधि गुरु स्वामि सनेहू । मिटेउ छोभ नहिं मन संदेहू ॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई । जन हित प्रभु चित छोभु न होई ॥

शब्दार्थ—छोभ = व्याकुलता । करुनाकर = कृपा की खानि, कृपालु ।

भावार्थ—सब प्रकार से गुरु और स्वामी का स्नेह देखकर हमारा दुःख दूर हो गया, मन से संदेह भी जाता रहा (कि राम जी हमसे बोलेंगे या हमारा नाम सुनते ही भाग जायँगे) हे करुणाकर ! अब आप वही कीजिये जिससे इस दास के लिए आपके चित्त में किसी प्रकार का क्षोभ न हो ।

जो सेवकु साहिबहिं सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ॥

सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ विहाई॥

शब्दार्थ—साहिबहिं = स्वामी को। हित = भलाई। पोची = नीच। विहाई = छोड़कर।

भावार्थ—जो सेवक स्वामी को संकोच में डाल कर अपनी भलाई चाहे उसकी बुद्धि नीच है अर्थात् वह नीच बुद्धि का है। सेवक की भलाई तो इसी में है कि वह स्वामी की सेवा संपूर्ण सुखों और लोभों को छोड़कर करे।

स्वारथु नाथ फिरे सबही का। किए रजाइ कोटि विधि नीका॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृति फल सुगति सिंगारू॥

शब्दार्थ—फिरे = लौटने से। रजाइ = आज्ञा। नीका = भला। सारू = तत्व।

भावार्थ—(यद्यपि) आपके लौटने से सबका स्वार्थ (सधता) है (पर) आप की आज्ञा का पालन करना उससे करोड़ों गुणा अच्छा है। यही स्वार्थ और परमार्थ का निचोड़ है यही सम्पूर्ण पुण्यों का फल और मुक्ति का शृंगार है।

देव एक विनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनमाना।

भावार्थ—हे देव! मेरी एक विनय सुन लीजिये फिर जैसा उचित हो वैसा करियेगा। मैं तिलक का सम्पूर्ण सामान सजाकर ले आया हूं, यदि आप का मन माने तो (हमारे परिश्रम को) सुफल कीजिये।

दो०—सानुज पठइअ मोहिं बन कीजिअ सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ॥ २६९॥

शब्दार्थ—सबहिं सनाथ कीजिअ = सबको सनाथ कीजिये, जाकर अयोध्या में राज कीजिए। नतरु = नहीं तो।

भावार्थ—हे नाथ! अनुज (शत्रुघ्न) सहित मुझे बन में भेजिये और

आप अयोध्या में जाकर राज कीजिये, नहीं तो दोनों भाई (लक्ष्मण और शत्रुघ्न) को लौटा दीजिये मैं आपके साथ वन को चलूँ।

नतरु जाहिं वन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥

भावार्थ—(यदि यह भी स्वीकार न हो) नहीं तो हम तीनों भाई वन को जायँ और आप सीता जी सहित लौट जायँ (अथवा) जिस प्रकार आप का मन प्रसन्न हो, हे करुणा-सागर ! आप वही करें।

देव दीन्ह सब मोहिं अभारू। मोरे नीति न धरम विचारू॥
कहउँ वचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥

शब्दार्थ—अभारू = आभार, बोझा। आरत = दुःखी। चेतू = चैतन्यता।

भावार्थ—आपने मुझपर ही सम्पूर्ण आभार दे दिया है (कि जो भरत कहें वही करने में अच्छा है पर) मेरे नीति और धर्म का कुछ भी विचार नहीं है। मैं अपने स्वार्थ के लिए सम्पूर्ण बातें कहता हूं, क्योंकि आर्त मनुष्य के चित्त में चैतन्यता नहीं होती (वह यह नहीं विचार सकता कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं)

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन-उदधि अगाधू। स्वामि-सनेह सराहत साधू॥

शब्दार्थ—रजाई = आज्ञा। उदधि = समुद्र। साधू = सज्जन।

भावार्थ—स्वामी की आज्ञा सुनकर जो सेवक उत्तर दे, उसे देखकर लज्जा भी लज्जित हो जाती है। (अर्थात् वह बड़ा निर्लज्ज होता है) मैं इसी अवगुण का अगाह समुद्र हूं और आपके प्रेम की सराहना तो साधु लोग करते हैं (अर्थात् मैं आपकी अवज्ञा करता हूं इसलिए बुरा हूं आप सब प्रकार भले हैं)

अलंकार—अत्युक्ति (लाज लजाई में)

अब कृपालु मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाहि न पावा॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥

शब्दार्थ—मत = विचार । सपथ = सौगंध, कसम । सतिभाऊ = सच्चेभाव से ।

भावार्थ—हे कृपालु अब तो मुझे वही विचार अच्छा लगता है जिससे आपके मन को किसी प्रकार का संकोच न हो (अर्थात् आप संकोच में पड़कर मेरे मन की कोई बात करने पर न उतारू हो जाँय) आपके चरणों की कसम खाकर मैं सच्चेभाव से कहता हूँ कि संसार की भलाई के लिये एक ही उपाय है (कि आप जो करें सो संकोच छोड़कर करें)

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब ।
सो सिर धरि धरि करहिंसब मिटिहि अनट अवरेब ॥२७०॥

शब्दार्थ—अनट = (सं० अनृत) अनीति, उपद्रव । अवरेब = खिंचाव, पेंच (उलझन)

भावार्थ—आप प्रसन्न मन से संकोच त्यागकर जिसे जो आज्ञा देंगे वह आप की आज्ञा को शिरोधार्य करेगा । इससे सबके मन में जो गड़बड़ी वा उलझन है वह दूर हो जायगी ।

भरत वचन सुचि सुनि हिय हरषे । साधु सराहि सुमन सुरवरषे ॥
असमंजस वस अवध निवासी । प्रमुदित मन तापस वनवासी ॥

शब्दार्थ—सुचि = पवित्र । साधु = शावाश । सुमन = पुष्प असमंजस = दुविधा ।

भावार्थ—भरत जी के पवित्र वचन सुनकर देवता हृदय में प्रसन्न हुये, 'शावास ! शावाश !! कह कर भरत की सराहना करते हुये पुष्प बरसाये । अयोध्या निवासी दुविधा में पड़ गये कि (अब राम जी क्या कहते हैं) वनवासी तपस्वी मनमें प्रसन्न हुये (कि रामजी अब कह देंगे कि हम नहीं जायँगे तो उनके रहने से रक्षा होगी ।

(इति प्रथम दरबार)

चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची । प्रभुगति देखि सभा सब सोची ॥
जनक दूत तेहि अवसर आए । मुनि वसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए ॥

शब्दार्थ—गति=दशा। बेगि=शीघ्र।

भावार्थ—संकोची रामचन्द्र जी चुपचाप ही रह गये (कुछ कहा नहीं) उनकी यह दशा देकर सम्पूर्ण सभा सोच करने लगी। इसी समय राजा जनक के दूत आये। (उनके आने का समाचार) सुनकर वशिष्ठ मुनि जी ने उन्हें अपने पास सभा में ही बुलवाया।

करि प्रनामु तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे॥
दूतन्ह मुनिवर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥

शब्दार्थ—निपट=अत्यंत। विदेह=राजा जनक।

भावार्थ—उन्हों ने प्रणाम करके रामचन्द्र जी को देखा, पर उनका वेश देखकर अत्यंत दुखी हुये। दूतों से वशिष्ठ मुनिने यह बात पूछ कि विदेह (राजा जनक) की कुशल कहो (अर्थात् वे मजे में हैं या नहीं ? क्योंकि अयोध्या में इतना बड़ा कठोरता का वीभत्स तांडव नृत्य हो गया और उन्हें खबर नहीं मिली।)

(नोट) 'विदेह' शब्द में यहाँ अति गूढ़ व्यंग है (वह यह कि राजा जनक सचमुच विदेह ही हैं, उन्हें संसार की कुछ खबर ही नहीं है। समधियाने में इतना बड़ा उपद्रव हो गया, पर उन्होंने अपने दामादों को खबर तक न ली)

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चर बर जोरे हाथा।
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं॥

शब्दार्थ—चर वर=श्रेष्ठ दूत। साईं=स्वामी को।

भावार्थ—उन श्रेष्ठ दूतों ने यह गूढ़ व्यंग सुनकर सकुचा कर वसिष्ठ जी को प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर कहा—हे स्वामी (आपका आदर पूर्वक (हमारे) स्वामी को पूछना (विदेह कह कर संबोधन करना ही) कुशल का कारण हो गया, नहीं (तो कुशल नहीं थी) अर्थात् आपने हमारे राजा को जो 'विदेह' कहा यही उनके कुशल पूर्वक रहने का एक कारण बन गया नहीं तो फिर आज इस संसार में न होते, अयोध्या का दुख सुनकर मर ही गये होते।

दो०—नाहित कोसलनाथ के साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध विशेष तें जगु सब भयो अनाथ ॥२७१॥

शब्दार्थ—कोसल नाथ=कोशल देश के स्वामी राजा दशरथ।

भावार्थ—नहीं सो कुशल तो कौशलाधिपति (महाराज दशरथ) के साथही चली गई। उनके चलेजाने से सारा संसार (कुशल रहित) अनाथ हो गया और मिथिला देश तथा अयोध्या तौ विशेष रूप से अनाथ हो गये।

(नोट)—यहाँ 'कोशलनाथ' शब्द भी अति गूढ़ भाव सूचक है। अर्थात् कुशल के नाथ (दशरथ) ही न रहे तो कुशल कैसी। यदि हमारे राजा 'विदेह' न होते तो आज संसार में कुशल का अभाव ही होता।

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोक बस बौरा ॥
जेहि देखे तेहि समय विदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू ॥

शब्दार्थ—जनकौरा=(सं० जनक पुर से) जनकपुर वाले। बौरा= पागल।

भावार्थ—कोशलाधिपति (राजा दशरथ) की गति (मरण) सुनकर जनक पुर के सब लोग शोक वश पागल होगये। जिसने उस समय विदेह को देखा उनमें से किसी को भी उनका विदेह नाम सत्य नहीं जँचा? अर्थात् सबको उनका नाम ठीक न जान पड़ा (जनक जी उस शोक में इतने व्याकुल हो गये कि उनका विदेहपना लुप्त हो गया) संदर्भ यह है कि विदेह पर सुख दुःख का प्रभाव न पड़ना चाहिये। पर जनक पर दुःख का प्रभाव पड़ा, अतः प्रमाणित हुआ कि वे विदेह न थे।

रानि-कुचालिसुनतनरपालहिं। सूझनकिछुजसमनिबिनुब्यालहिं॥
भरत राज रघुबर बनबासू। भा मिथिलेसहिं हृदय हरासू ॥

शब्दार्थ—ब्याल=सर्प। हरासू=(सं० ह्रास) दुःख।

भावार्थ—रानी (कैकेयी) की कुचाल सुनते राजा जनक इतने व्याकुल हो गये जैसे बिना मणि के सर्प को कुछ सूझता ही नहीं। भरत

को राज्य और रामचन्द्र जी को वनवास हुआ, यह समाचार पाकर मिथिलेश राजा जनक के हृदय में बड़ा दुःख हुआ।

नृप बूझेउ बुध सचिउ समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह किछु कोऊ॥

शब्दार्थ—बूझेउ=पूछा। बुध=पंडित।

भाशार्थ—राजा साहब ने पंडित और मंत्रि मंडल से पूछा कि आप लोग विचार कर कहिये कि हमें आज क्या करना उचित है? दोनों समाज (सब लोग) अयोध्या की दशा सोचकर दुविधा में पड़ गये। आप चलिए या यहीं रहिये कोई कुछ कहता ही नहीं।

नृपहि धीर धरि हृदय विचारी। पठए अवध चतुर चर चारी॥
बूझि भरत सतभाउ कुभाऊ। आयेहु वेगि न होइ लखाऊ॥

शब्दार्थ—चर=जासूस। लखाऊ=लक्ष्य।

भावार्थ— तब राजा ने ही धैर्य धारण कर और हृदय में विचार कर अयोध्या में चार चतुर गुप्तचर भेजे (और उनसे कहा कि) तुम लोग भरत के सच्चेभाव और दुर्भाव का पता लगा कर शीघ्र ही चले आना कि कोई लक्ष्य न कर सके।

दो०—गए अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहिं भरत, चार चले तिरहूति॥ २७२॥

शब्दार्थ - तिरहूति=(सं० त्रै आहुति) जहाँ पर तीन आहुति (यज्ञ) की जाय। मिथिला।

भावार्थ—वे गुप्तचर अयोध्या गये और वहाँ भरत की चाल और उनका कर्तृत्व देखा। जब भरत चित्रकूट के लिए चले तो वे चारो दूत जनकपुर की ओर गये।

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति वरनी॥
सुनि गुरु परिजन सचिउ महीपति। भे सब सोच सनेह विकलमति॥

शब्दार्थ—करनी = कार्य। बरनी = कही।

भावार्थ—दूतों ने आकर जनक समाज में भरत के कार्य का अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया। उसको सुन कर गुरु (सदानन्द जी) कुटुम्ब, मन्त्री, राजा सब लोगों की बुद्धि सोच और स्नेह से व्याकुल हो गई अर्थात् सब लोगों को कुछ ज्ञान ही नहीं रहा)

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गज रथ बहु जान सँवारे॥

शब्दार्थ—सुभट = वीर। साहनी = सेना। हय = घोड़ा। गज = हाथी। जान = सवारी।

भावार्थ—तब राजा साहब ने धैर्य धारण कर और भरत की बड़ाई करके सुभटों और सेना को बुलवाया। घर (प्रासाद), नगर और देस में रक्षकों को रखकर, हाथी, घोड़े, रथ आदि बहुत सी सवारियाँ सजायीं।

दुघरी साधि चले ततकाला। किय बिस्रामु न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा॥

शब्दार्थ—दुघरी साधि = द्विघटिका महूर्त्त विचार कर (दिशा शूल इत्यादि के दिनों में भी दुघड़ी साइत से यात्रा होती है)। भोरहिं = प्रातःकाल ही।

भावार्थ—सब लोग द्विघटिका सायत विचार कर तत्काल ही चले आये। राजा साहब ने रास्ते में कहीं विश्राम भी नहीं किया। आज सवेरे ही प्रयाग में सब लोग स्नान करके यमुना उतर कर रहे।

खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायेउ माथा॥
साथ किरात छसातक दीन्हें। मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हें॥

शब्दार्थ—खबरि = समाचार।

भावार्थ—(उसी समय) हे नाथ! हमें समाचार लेने के लिए भेजा है। ऐसा कह कर उन्होंने पृथ्वी में मस्तक झुकाया (प्रणाम किया)। मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने छ सात किरातों को साथ देकर उन दूतों को शीघ्र

ही बिदा किया। (मार्ग बताने के लिए किरातों को साथ में भेजा था)

दो०—सुनत जनक आगवनु सबु, हरषेउ अवध समाज।
रघुनंदनहि सकोचु बड़, सोच बिबस सुर राजु॥ २७३॥

भावार्थ—जनक जी का आगमन सुन कर सम्पूर्ण अयोध्या के लोग हर्षित हुए (कि राम जी जनक जी के कहने से अवध लौटेंगे या दो चार दिन और रहना होगा) रामचन्द्र जी को बड़ा संकोच हुआ कि देखो जनक जी क्या कहते हैं, कहीं लौटने की जिद तो न करेंगे ?) और इन्द्र बहुत दुखित हुआ (कि जनक जी जो कहेंगे उसे राम जी मिटा नहीं सकते कहीं संकोच में लौट गये तो हमें राक्षसों द्वारा बड़ी विपत्ति सहनी होगी)

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषनु देई॥
अस मन आनि मुदित नरनारी। भयेउ बहोरि रहब दिन चारी॥

शब्दार्थ—गरइ=गली जाती है (मुहावरा) बहुत सकुचा रही है।

भावार्थ—कुटिल कैकेयी ग्लानि से गली जा रही है। वह किस से कहे और किस को दोष दे (अर्थात् जनक कैकेयी के कृत्य सुन कर सब से उसकी निन्दा करेंगे यही बात उसे असह्य हो रही है) अयोध्या-निवासी स्त्री-पुरुष यह मन में विचार कर प्रसन्न हैं कि अब पुनः चार दिन (कुछ समय) रहना होगा (जनक के आने से वे लोग चार दिन यहाँ रहेंगे ही हमें भी रहने का मौका मिलेगा और राम जी के सत्सङ्ग का आनन्द लूटेंगे)

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सब कोऊ॥
करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनपति गौरि पुरारि तमारी॥
रमा-रमन पद बन्दि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥

शब्दार्थ—बासर=दिन मज्जनु=स्नान। गनपति=गणेश। गौरी=पार्वती। पुरारी=महादेव जी। तमारी=सूर्य। रमा-रमन=विष्णु।

भावार्थ—इस प्रकार वह दिन भी बीत गया। दूसरे दिन प्रातःकाल सब लोग स्नान करने लगे। सब स्त्री-पुरुष स्नान करके गणेश पार्वती, महादेव सूर्य और विष्णु की पूजा करते हैं और फिर उनके चरणों की बन्दना कर

(पुरुप) अंजुलि और (स्त्री) अंचल को जोड़ कर विनती करते हैं। (यहाँ पर गनपति, गौरि, पुरारी, तमारी और रमारमन से तुलसी दासजी पंजदेवो पासना का भाव दिखलाया है) सनातन धर्म में इन्हीं पाचों देवताओं के उपासक होते हैं।

राजा राम जानकी रानी। आनँद अवधि, अवध रजधानी॥
सुवस वसउ फिरि सहित समाजा। भरतहिं रामु करहु युवराजा॥
एहि सुख सुधा सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू॥

शब्दार्थ—अवधि = सीमा। सुवस = (स्ववश) स्वतन्त्र। सुधा = अमृत। लाहू = (लाभ)

भावार्थ—राम जी राजा हों, जानकी जी रानी हों, तथा आनन्द की सीमा (जिससे बढ़कर आनन्द कहीं न मिले) ऐसी अयोध्या उनकी राज धानी हो। अयोध्या फिर से सम्पूर्ण समाज सहित स्वतंत्र रूप से वसे। राम जी भरत को युवराज बनावें। हे देव ! इस सुख रूपी अमृत से सब का सिंचन कर के संसार में जन्म लेने का लाभ हमें दीजिये।

दो०—गुरु समाज भाइन्ह सहित, राम राजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिअ माँग सब कोउ॥२७४॥

शब्दार्थ—अछत = (सं० अस्ति) रहते।

भावार्थ—गुरु, समाज और भाइयों सहित राम जी का राज्य अयोध्या नगर में हो। अयोध्या में राम जी के राजा रहते ही हम लोग मरें, यही सब लोग (देवताओं से विनय करके) माँगते हैं।

सुनि सनेह मय पुर जन बानी। निंदहिं जोग विरति मुनि ज्ञानी॥
एहि विधि नित्य करम करि पुरजन। रामहिं करहिं प्रनामु पुलकि तन

शब्दार्थ—विरति = वैराग्य। पुलकि तन = रोमांचित शरीर से।

भावार्थ—नगर निवासियों की प्रेममय वाणी सुन कर ज्ञानी मुनि लोग योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं (अर्थात् योग वैराग्य में हम लोग भगवान को नहीं पाते और ये लोग भगवान के लिए देवताओं से

प्रार्थना कर रहे हैं) इस प्रकार पुर के लोग विधि पूर्वक अपना नैत्यिक कर्म करके रोमांचित शरीर से जाकर राम जी को प्रणाम करते हैं।

ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरस निज निज अनुहारी॥
सावधान सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥

शब्दार्थ—अनुहारी=अनुकूल, अनुसार।

भावार्थ—उच्च, (कुलीन), नीच और मध्यम सब प्रकार के स्त्री पुरुष अपने अनुसार राम जी का दर्शन पाते हैं। राम जी सावधानी के साथ सब का सम्मान करते हैं; वे सब कृपा निधान राम जी की प्रशंसा करते हैं।

लरिकाइहिं ते रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥
सील सँकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥

शब्दार्थ—बानी=(बानि) आदत, स्वभाव।

भावार्थ—लड़क पन से ही राम चन्द्र जी की यह बानि रही है कि वे प्रीति को पहचान कर नीति का पालन करते हैं। राम जी शील और संकोच के तो समुद्र ही हैं (अर्थात् बड़े शीलवान और संकोची हैं) तथा सुन्दर मुख वाले, सुन्दर नेत्रों वाले और सरल स्वभाव के हैं (यहाँ मुख से तात्पर्य मधुर भाषी और सुलोचन से अभिप्राय प कृपा दृष्टि रखने वाले)

कहत राम गुन-गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे॥
हम सम पुन्यपुञ्ज जग थोरे। जिन्हहिं राम जानत करि मोरे॥

भावार्थ—राम जी के गुण-गण को कहते वे लोग प्रेम में अनुरक्त हो गये और सब के सब अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगे कि हमारे समान संसार में बहुत कम ऐसे पुण्यात्मा हैं जिन्हें राम अपना कर के जानते हैं। (अर्थात् और लोगों को राम जी अपना कह कर नहीं मानते जानते, पर हमलोगों को अपना कहते हैं, कि ये मेरे नगर के हैं, मेरे कुटुम्ब के हैं आदि)

दो०—प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रविकुल-कमल-दिनेसु॥२७५॥

शब्दार्थ—संभ्रम=सादर।

भावार्थ—प्रेम में मग्न हुए सब लोगों ने उस समय मिथिलेश राजा जनक को आते सुना। तब सम्पूर्ण सभा सहित सूर्यवंशी रूपी कमल (को प्रफुल्लित करने) के लिये सूर्यवत् रामजी सादर उठे। (कि चल कर उन्हें कुछ आगे से ही लिया जाय)

भाइ सचिउ गुरु पुरजन साथा। आगे गवनु कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिवरु दीख जनक नृप जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥

भावार्थ—भाई, मंत्री, गुरु और कुटुम्ब के लोगों के साथ रामचन्द्रजी आगे चले। (इधर) राजा जनक ने जब गिरिवर (कामतानाथ) को देखा तभी उसे प्रणाम करके रथ को त्याग दिया, (पैदल चलने लगे)

राम दरस लालसा उछाहू। पथस्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुवर वैदेही। विन मन तन दुख सुख सुधि केही॥

शब्दार्थ—लेस=(लेश) थोड़ा। सुधि=खबर।

भावार्थ—रामजी के दर्शन की लालसा के उत्साह में किसी को मार्ग के परिश्रम का थोड़ा सा भी क्लेश नहीं है। क्योंकि मन तो सब का वहाँ है जहाँ राम और सीता हैं और फिर बिना मन के तन के दुख और सुख की सुध किसको हो सकती है ? (किसी को नहीं) अर्थात् मन ही को सुख और दुख का अनुभव होता है, वह है ही नहीं तो किस बात का दुख और किस बात का सुख।

आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेममति माँती॥
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥

शब्दार्थ—माँती=मतवाली।

भावार्थ—इस प्रकार जनक जी चले आ रहे हैं प्रेम के मारे सम्पूर्ण समाज सहित उन बुद्धि मातवाली हो गयी है। सब लोग निकट आ गये तो सब बड़े अनुरक्त हो गये और आदरपूर्वक परस्पर मिलने लगे।

लगे जनक मुनि-जन-पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनन्दन॥
भाइन्ह सहित राम मिलि राजहिं। चले लेवाइ समेत समाजहिं॥

भावार्थ—जनक जी वशिष्ठ और चित्रकूट निवासी मुनिजनों के पदों की वन्दना करने लगे। राम जी ने भी (जनकपुरवासी सतानन्दादि) ऋषियों को प्रणाम किया। भाइयों सहित राम जी राजा जनक से मिलकर उन्हें समाज सहित लिवा कर चले।

दो०—आश्रम सागर सांतरस पूरन पावन-पाथ।
सेन मनहुं करुना-सरित लिए जाहिं रघुनाथ ॥ २७६ ॥

शब्दार्थ—सागर=समुद्र। पाथ=जल।

भावार्थ—राम जी का आश्रय ही समुद्र है जो शांतरसरूपी पवित्र जल से पूर्ण (लबालब) भरा है। उसमें मिलाने के लिए मानो यह सेना (समाज) रूपी करुणा-सरिता रामचन्द्र जी लिए जा रहे हैं।

अलङ्कार—रूपक से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

बोरति ज्ञान विराग करारे। वचन ससोक मिलत नद नारे ॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भंगा ॥

शब्दार्थ—बोरति=डुबाती है। करारे=नदी के किनारे जो पानी की सतह से बहुत ऊँचे होते हैं। नारे=नाला। उसास=ऊर्ध्वश्वास, आह भरी सांस। समीर=वायु। तरङ्गा=लहर। तट=किनारा। भंग=नष्ट।

भावार्थ—(यह करुणा नदी) ज्ञान और वैराग्य रूपी करारों को डुबा रही है। शोकपूर्ण वचन ही इस में बड़े नद और नाले आकर मिलते हैं, सोच से जो आह भरी साँस लोग लेते हैं वही नदी में वायु के वेग से उठने वाली लहरें हैं। यह किनारे के धैर्य रूपी वृक्षों को नष्ट कर रही है (गिरा रही है)

बिषम बिखाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ अइकि नहिं आवा ॥

शब्दार्थ—तोरावति=(सं० त्वरावती) तेज़। अवर्त=(सं० आवर्त) चक्कर, बारम्बार आना। बुध=पंडित। खेना=चलाना (नावका)। अइकि=अनुमान।

भावार्थ—भारी विषाद ही तीव्र धारा है। भय और भ्रम ही भँवर का अपार चक्कर है। पंडित इसके केवट हैं, विद्या ही बड़ी नाव है। वह केवट नाव चला नहीं सकता, क्योंकि उसे (नाव और धारा की चाल का) अंदाज नहीं लग रहा है।

(नोट)—कहाँ कितना पानी है, किधर से नाव ले जाना चाहिये, इस प्रकार के अंदाज लगाने को केवट लोग 'अड़कना' कहते हैं। वही शब्द गोस्वामी जी ने यहाँ प्रयोग कर दिया है।

वनचर कोल किरात विचारे। थके विलोकि पथिक हियहारे॥
आस्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥

शब्दार्थ—थके=थक गये। उदधि=समुद्र। अंबुधि=समुद्र।

भावार्थ—वनवासी कोल किरात जो विचारे पथिक थे वे तो देखकर स्तब्ध रह गये और हृदय से हार गये। यह नदी जब आश्रम रूपी सागर में जाकर मिली (तो ऐसा कोलाहल मचा) मानो समुद्र अकुला उठा है।

सोक विकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरज लाजा॥
भूप रूप गुन शील सराही। रोवहिं सोकसिंधु अवगाही॥

शब्दार्थ—अवगाही=डूबकर, निमग्न होकर।

भावार्थ—दोनों राज समाज (अयोध्या और मिथिला निवासी) शोक से विकल हैं। (वे इतने व्याकुल हैं कि उन्हें) धैर्य और लज्जा का ज्ञान भी नहीं रह गया है। सब लोग राजा दशरथ के रूप, गुण और शील की प्रशंसा करके शोक समुद्र में डूबे रो रहे हैं (अर्थात् सब लोग शोक से बहुत ही व्याकुल हैं)

अलंकार—रूपक।

(नोट)—पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि इस स्थान का यह करुणासरित और शोकसिंधु का रूपक हिन्दी साहित्य भर में अद्वितीय है। तुलसी दास जी की आदत है कि जहाँ किसी भाव की अगम्य गंभीरता,

गुरुता और प्रबलता प्रगट करना होता है वहाँ वे समुद्र के रूपक से काम लेते हैं। यह ढंग गोस्वामी जी की अतुल्य प्रतिभा का परिचायक है।

छन्द—अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकइ सरित सनेहकी॥

शब्दार्थ—बाम=प्रतिकूल। बिदेह=राजा जनक। तरि सकइ=पार कर सके।

भावार्थ—सब स्त्री पुरुष शोक समुद्र में निमग्न होकर (शोक संकुल होकर) और अत्यंत व्याकुल होकर सोचते हैं। वे लोग ब्रह्मा को दोष देकर क्रोध पूर्वक कहते हैं कि उस प्रतिकूल विधाता ने क्या किया? देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनिलोग राजा जनक की दशा देखकर कहते हैं कि कोई भी ऐसा सामर्थवान् नहीं है जो प्रेम की सरिता को पार कर सके (जब राजा जनक ऐसे लोग उसमें डूबते हैं तो साधारण मनुष्यों की क्या हकीकत जो उसे पार कर सकें)

दो०—किये अमित उपदेश जहँ तहँ लोगन्ह मुनि बरन्ह।
धीरज धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन॥ २७७॥

भावार्थ—मुनिवरों ने जहाँ तहाँ लोगों को नाना प्रकार के उपदेश दिये, वशिष्ठ जी ने राजा जनक से कहा कि महाराज! आप धैर्य धारण करें।

जासु ग्यानरवि भवनिसि नासा। बचनकिरन मुनिकमल बिकासा॥
तेहि कि मोह ममता नियराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई॥

शब्दार्थ—भव निसि=संसार रूपी रात्रि।

भावार्थ—जिसके ज्ञानरूपी सूर्य से संसाररूपी रात्रि नष्ट हो जाती है और (उस ज्ञानरवि की) वचन रूपी किरणों से मुनि रूपी कमल विकसित होते हैं, क्या मोह और ममता उसके पास आ सकती हैं? (नहीं)

यह तो सीता राम के प्रेम की महत्ता है (कि राजा जनक भी उसमें मोहित हो गये) (अर्थात् जो इतना ज्ञानवान है कि संसार का माया-जाल उसके सामने तुच्छ है, जिसके वचनों को सुनकर मुनि भी आनंदित होते हैं वह सांसारिक ममता के फंदे में फँसकर इस प्रकार व्याकुल हो, यह असंभव है। पर सीताराम प्रेम में वह शक्ति है कि उसने ऐसे राजा जनक को भी मोहित कर ही तो दिया।

अलंकार—रूपक।

बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग वेद बखाने।
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू।

शब्दार्थ—सरस=सरसता है, लहराता है।

भावार्थ—विषयी साधक और सिद्ध तीन प्रकार के सयाने जीव संसार में वेद ने कहे हैं। पर रामजी का प्रेम जिसके मन में सरसता है (अर्थात् जिसका मन राम प्रेम से परिपूर्ण है) उसी का साधु सभा में बड़ा आदर होता है (दूसरे का नहीं)

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू।
मुनि बहु बिधि बिदेह समुझाए। रामघाट सब लोग नहाए।

शब्दार्थ—करनधार=मल्लाह, खेनेवाला। जलजानू=(जल+यान)= जहाज़।

भावार्थ—रामजी के प्रेम से रहित ज्ञान भी नहीं शोभा पाता (अर्थात् यदि ज्ञान है और रामप्रेम नहीं तो वह किसी काम का नहीं, अतएव विदेह यद्यपि ज्ञानवान थे पर उनमें राम प्रेम भी होना आवश्यक था। यदि ऐसा न होता तो उनका ज्ञान व्यर्थ ही था) जैसे बिना मल्लाह जहाज नहीं शोभा पाता (जहाज का मल्लाह के बिना शोभा पाना तो दूसरी बात है वह नष्ट भ्रष्ट हो जाता है, इसी प्रकार राम प्रेम रहित ज्ञान नष्ट हो जाता है) बशिष्ठ जी ने जनक जी को बहुत प्रकार से समझाया तब लोगों ने जाकर रामघाट में स्नान किया।

सकल सोक संकुल नर नारी। सो बासर बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कवन बिचारू॥

शब्दार्थ—संकुल=युक्त। बासर=दिन। अहारू=भोजन।

भावार्थ—सब स्त्री-पुरुष शोक से युक्त (शोकाकुल) थे। वह दिन निर्जल बीत गया। प्यारे कुटुम्बियों का कौन बिचार करें, पशु, पक्षी और मृगों तक ने भोजन नहीं किया।

अलंकार—काव्यर्थापत्ति (दूसरी अर्द्धाली में)

दो०—दोउ समाज निमिराज रघुराज नहाने प्रात।
बैठे सब बर बिटप तर मन मलीन कृस गात॥ २७८॥

शब्दार्थ—निमिराज=जनक। रघुराज=रामचन्द्र जी। बर बिटप=बरगद का वृक्ष। कृस गात=दुर्बल शरीर।

भावार्थ—जनक-समाज और राम-समाज दोनों ने प्रातःकाल स्नान किया। सब बरगद के वृक्ष के नीचे बैठे थे, इनका मन मलीन था और शरीर दुबला था।

(नोट)—इस दोहे के पूर्वार्द्ध में यतिभंग दोष प्रत्यक्ष है।

जे महिसुर दसरथ पुरबासी। जे मिथिलापति नगर निवासी।
हंस-बंस गुरु जनक पुरोधा। जिन्ह जग-मगु परमारथ सोधा।
लगे कहन उपदेश अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका।

शब्दार्थ—महिसुर=(महि=पृथ्वी+सुर=देवता) पृथ्वी के देवता, ब्राह्मण। हंस-बंस=सूर्यवंस। पुरोधा=(सं० पुरोधस्) पुरोहित। मगु=मार्ग। सोधा—खोजा।

भावार्थ—जो ब्राह्मण दशरथ जी के नगर (अयोध्या) के रहने वाले थे वे और जो राजा जनक के नगर (मिथिला) के रहने वाले थे वे तथा सूर्य वंश के गुरु वशिष्ठ मुनि जी एवं जनक जी के पुरोहित सतानंद जी जिन्होंने संसार का मार्ग और परमार्थ का मार्ग खोजा था (अर्थात् जो लोकाचार

और परमार्थ के तत्व को जानते थे) वे अनेक उपदेश देने लगे, वह उपदेश धर्म, नीति, वैराग्य और विचार से परिपूर्ण था।

कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समुझाई सब सभा सुबानी।
तब रघुनाथ कौसिकहिं कहेऊ। नाथ कालि जलबिनु सब रहेऊ।
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयेउ बीति दिन पहर अढ़ाई।

शब्दार्थ—कौसिक=विश्वामित्र जी। पुरानी=(सं० पुराणीय) पुराणों की।

भावार्थ—विश्वामित्र जी ने भी पुराणों की कथाएँ कह कह कर सब सभा को सुन्दर वाणी से समझाया, तब रामचन्द्र जी ने विश्वामित्र जी से कहा, हे नाथ! कल सब लोग बिना जल के ही रहे हैं (अतएव खाने पीने का प्रबन्ध होना चाहिए)। मुनि ने कहा—रामजी उचित कह रहे हैं. देखो आज भी ढाई पहर दिन बीत गया। (अब सब लोग जाकर कुछ खायें, पीयें।)

रिषिरुख लखि कह तिरहुतिराजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू॥
कहा भूप भल सबहिं सुहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥

शब्दार्थ—तिरहुतिराजू=राजा जनक। अनाजू=अन्न।

भावार्थ—ऋषि का रुख देखकर राजा जनक ने कहा—यहाँ पर अन्न खाना उचित नहीं (फलाहार करना चाहिए)। राजा ने अच्छी बात कही यह सबको भला लगा। सब लोग आज्ञा पाकर स्नान करने के लिए चले।

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।
लै आये बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार॥ २७२॥

शब्दार्थ—फल=ऋतुफल। फूल=कई प्रकार के फूल भी खाये जाते हैं जैसे अगस्त, कचनार आदि। दल=पत्ते (तुलसी, मूली, शाकादि)। मूल=जड़ (सकरकंद आदि) विपुल=बहुत सा.। काँवरि=बहँगी। भार=बोझ (जितना बोझ एक आदमी उठा सके उसे भार कहते हैं)।

भावार्थ—उसी समय बनबासी कोल किरात आदि अनेक प्रकार के फल, फूल, पत्ते मूल बहुत सा काँवरि में भर भर कर ले आये।

कामद् भे गिरि राम प्रसादा । अवलोकत अपहरत बिषादा ॥
सर सरिता वन भूमि विभागा । जनु उमगत आनँद अनुरागा ॥

शब्दार्थ—कामद = कामना दायक । प्रसादा = कृपा, प्रसन्नता । अप-हरत = हरण करते हैं ।

भावार्थ—राम जी की कृपा से (चित्रकूट के) पर्वत कामना दायक हो गये हैं । (उनसे जो कुछ माँगा जाय देते हैं) देखते ही वे दुःख को हरण कर लेते हैं । तालाब, नदी, बन तथा अन्य भूमि-खंडों में मानो आनंद और प्रेम उमड़ रहा है अर्थात् उनको देखने से आनंद प्राप्त होता है और प्रेम बढ़ता है

बेलि बिटप सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि अनुकूला ।
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू । त्रिविधि समीर सुखद सबकाहू ॥

शब्दार्थ—बेलि = लता । बिटप = वृक्ष । खग = (ख = आकाश + ग गमन करने वाला) आकाश में गमन करने वाला, पक्षी । मृग = (मृ = पृथ्वी + ग = गमन करने वाला) पृथ्वी में गमन करने वाला, पशु । अलि = भौंरा । अनुकूला = मन के मुताबिक़, जैसा चाहिए वैसा । उछाहू (सं० उत्साह) आनन्द । समीर = वायु ।

भावार्थ—जितनी लताएँ और जितने वृक्ष हैं । सब फल और फूल से युक्त हैं, पशु-पक्षी भौंरे भी अनुकूल ही बोल रहे हैं । उस समय बन में बड़ा आनंद था सबको सुख देने वाली त्रिविध (शीतल, मंद, सुगंध) वायु बह रही थी ।

नोट—यद्यपि समय ग्रीष्म ऋतु का था फिर भी वन प्रदेश, नदी कूल और पर्वत-माला के कारण वायु शीतल, मंद, सुगन्ध ही चलती थी ।

जाइ न बरनि. मनोहरताई । जनु महि करति जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई । राम जनक-मुनि आयसु पाई ॥
देखि देखि तरुवर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥

शब्दार्थ—मनोहरताई=सौन्दर्य। पहुनाई=आतिथ्य। उतरन लागे=डेरा करने लगे।

भावार्थ—वन का सौन्दर्य कहा नहीं जा सकता मानों पृथ्वी राजा जनक का आतिथ्य कर रही है। तव सब नगर के लोग स्नान करके, राम जी, जनक जी और मुनि वशिष्ठ जी की आज्ञा पाकर अच्छे अच्छे वृक्ष देखकर प्रेम पूर्वक जहाँ-तहाँ अपना डेरा डालने लगे।

दल फल मूल कंद विधि नाना। पावन सुन्दर सुधा समाना॥
दो०—सादर सब कहँ राम गुरु पठये भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुरु लगे करन फलहार॥२८०॥

शब्दार्थ—दल=पत्ते। कंद=मीठी जड़ें। रामगुरु=वशिष्ठ जी।

भावार्थ—दल, फल, मूल और कंद नाना प्रकार के जो पवित्र सुन्दर और खाने में अमृत तुल्य (मीठे) थे वशिष्ठ जी ने भार में भर भर कर आदर पूर्वक सबके लिए भेज दिये। वे नगर निवासी, पितर, देवता, अतिथि और गुरु की पूजा करके फलाहार करने लगे।

एहि विधि वासर वीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सियरामुफिरबभलनाहीं॥

शब्दार्थ—वासर=दिन। निरखि=(सं० निरीक्ष्य) देखकर।

भावार्थ—इस प्रकार चार दिन बीत गये। सब स्त्री-पुरुष रामजी को देखकर सुखी थे। दोनों राज समाजों के मन में ऐसी रुचि थी कि बिना सीताराम के लौटना ठीक नहीं है।

सीता राम संग बनवासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू॥
परिहरि लषन राम बैदेही। जेहि घर भाव बाम विधि तेही॥

शब्दार्थ—अमरपुर=स्वर्ग। सुपासू=सुविधा पूर्ण, आनन्द दायक। परिहरि=छोड़कर। वाम=प्रतिकूल।

भावार्थ—सीताराम जी के संग में वनवास करोड़ों स्वर्ग के समान

आनंद दायक है। राम, लक्ष्मण और सीता जी को छोड़कर जिसे घर भाता है, उसे विधाता प्रतिकूल है।

दाहिन दइउ होइ जब सबहीं। राम समीप बसिय बन तबहीं॥
मंदाकिनि मज्जनु तिहुँकाला। राम दरसु मुद मंगल माला॥

शब्दार्थ—दइउ दाहिन होइ=(मुहावरा) विधाता दाहिना हो जाय (अनुकूल हो जाय) मज्जनु=स्नान।

भावार्थ—जब सबको विधाता अनुकूल हो जाय तभी राम जी के समीप वन में निवास हो सकता है (नहीं तो-नहीं) यहाँ पर त्रिकाल मंदाकिनी का स्नान और आनन्द तथा मंगलों का समूह राम-दर्शन होगा।

अटनु रामगिरि बन तापस थल। असनु अमिअसमकंदमूलफल
सुख समेत संवत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहि जाता॥

शब्दार्थ—अटनु=घूमना, भ्रमण। रामगिरि=कामतानाथ पर्वत। असनु=भोजन। संवत=वर्ष। दुइसाता=चौदह।

भावार्थ—यहाँ पर पर्वतों, वनों और तपस्वियों के स्थलों में घूमना होगा अमृत के समान (मीठे) कंद, मूल और फल खाने को मिलेंगे। यहाँ तो चौदह वर्ष सुख पूर्वक पल के समान व्यतीत हो जायँगे। लोगों को इनका बीतना जान भी न पड़ेगा। (आनन्द में समय शीघ्र बीतता जान पड़ता है)।

दो०—एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ असभागु।
सहज सुभाय समाज दुहुँ राम चरन अनुरागु॥ २८१॥

भावार्थ—वे सब लोग कहते हैं कि हम इस सुख के योग्य नहीं हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ हैं (जो रामजी के साथ वन में रह सकें) इस प्रकार दोनों राज समाजों का राम जी के चरणों में स्वाभाविक प्रेम है।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं।
सीयमातु तेहि समय पठाई। दासी देखि सुअवसरु आई।

शब्दार्थ—पठाई=भेजी हुई।

भावार्थ—इस प्रकार सब लोग मनोरथ करते हैं (और ऐसी प्रेम पूर्ण बातें करते हैं जो सुनतेही मन को हर लेती हैं। इसी समय सीता जी की माता (सुनयना) की भेजी हुई दासी (कौशल्या आदि रानियों से मिलने का) सुन्दर अवसर देखकर आ गयी। (उसने बताया कि समय भेंट करने योग्य है)।

सावकास सुनि सब सिय सासू। आयेउ जनक राज रनिवासू।
कौसल्या सादर सनमानो। आसन दिये समय सम आनी।

शब्दार्थ—सावकास=छुट्टी का समय। आनी=लाकर।

भावार्थ—'अवकाश है' यह सुनकर राजा जनक का रनिवास सीता जी के सासुओं के पास मिलने के लिये आया। कौशल्या जी ने (जनक जी) की रानियों का आदरपूर्वक सम्मान किया और लाकर समयानुसार आसन दिये।

सीलु सनेह सरस दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा
पुलकसिथिल तनुबारि विलोचन। महिनख लिखन लगीं सब सोचन

शब्दार्थ—द्रवहिं=द्रवीभूत होते हैं, पिघलते हैं। कुलिस=वज्र।

भावार्थ—दोनों ओर शील और स्नेह अधिक है। उन्हें देखकर और उनका (रोना) सुनकर कठोर वज्र भी द्रवीभूत हो जाते हैं (अर्थात् उनके मुख मलीन तथा वे करुणस्वर से रुदन कर रही हैं) उनके शरीर में रोमांच है और वह शिथिल हैं तथा दोनों नेत्रों में जल भरा है। वे सब रानियां अपने (पैर के) नखों से पृथ्वी पर लिखने और सोच करने लगीं।

(नोट) 'पैर के नख से पृथ्वी पर कुछ रेखाएं बनाना' सोच करने की एक मुद्रा है, स्त्रियों के संबंध में ही इसका प्रयोग होता है। सीता जी के संबंध में भी कहा गया है—'चारु चरन नख लेखति धरनी'।

सब सिय-राम प्रेम किसि मूरति। जनु करुना बहु वेप विसूरति।

सीयमातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पयफेनु फोर पबि टाँकी।

शब्दार्थ—बिसूरति=शोक कर रही है। बाँकी=टेढ़ी, विचित्र, कुटिल। पयफेनु=दूध का फेना। पबि=वज्र। टांकी=टंकी, छेनी।

भावार्थ—वे सब सीता-राम के प्रेम की मूर्ति के समान हैं (वे ऐसा सोच कर रही हैं) मानो करुणा ही बहुत से वेष धारण करके शोक कर रही है। सीता जी की माता (सुनयना) ने कहा—'बिधाता की बुद्धि बड़ी कुटिल है जो वज्र को छेनी से दूध के फेन को फोड़ना चाहती है। (सुकुमारों पर भयंकर विपत्ति डाल देता है)

अलंकार—उत्प्रेक्षा और ललित।

दो०—सुनिअ सुधा देखिअ गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥२८२॥

शब्दार्थ—सुधा=अमृत। गरल—विष। काक=कौआ। उलूक=उल्लू। बक=बगुला। मानस=मानसरोवर। सकृत=एक। मराल=हंस।

भावार्थ—सुनने में तो अमृत आता है पर देखने में विष ही दीख पड़ा, सब कार्य कठिन ही हैं (अर्थात् भली बात तो सुनी ही जाती है बुरी चट-पट हो जाती है-हम लोगों ने राम राज्याभिषेक सुना था, पर हो गया राम वनवास और साथ ही दशरथ स्वर्गवास) ठीक है—जहाँ तहाँ कौआ, उल्लू, बगुला, बहुत से देख पड़ते हैं पर हंस तो एक केवल मानसरोवर में ही निवास करता है (कम ही होते है)

अलंकार—ललित।

सुनि ससोक कह देवि सुमित्रा। बिधिगति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल केलि सम बिधि मति भोरी।

शब्दार्थ—गति=चाल। सृजि=बनाकर, उत्पन्न करके। हरइ=नष्ट करती है। केलि=खेलवाड़। भोरी—पागल, भोली।

भावार्थ—इसे सुनकर सुमित्रा देवी सशोक हो कहने लगीं कि विधाता

की गति बड़ी विपरीत और विचित्र है, जो पहले बनाकर पालना है और पुनः उसे नष्ट कर देता है। (जान पड़ता है) विधाता की बुद्धि लड़कों के खेल की तरह भोली है (अर्थात् जैसे बच्चे पहले कोई खिलौना बनाते हैं फिर उसकी रक्षा करते हैं फिर तोड़ डालते हैं उसी प्रकार ब्रह्मा भी करता है)

कौसल्या कह दोष न काहू। करम बिवस दुख सुख छति लाहू।
कठिन करमगति जान बिधाता। जो सुभ असुभ करम फलदाता।

शब्दार्थ—छति = (क्षति) हानि। लाहू = लाभ।

भावार्थ—कौशल्या जी ने कहा कि इसमें किसी का दोष नहीं है। कर्म के वश दुख-सुख और हानि-लाभ होता है। कठिन कर्म की गति को ब्रह्मा ही जानता है जो अच्छे बुरे कर्मों का फल देने वाला है।

ईस रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय बिषहु अमी के।
देवि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि-प्रपंच सब अचल अनादी।

शब्दार्थ—रजाइ = आज्ञा। सीस सबही के = सब के सिर पर है (मुहावरा) सब मानते हैं। बादी = व्यर्थ। प्रपंच = माया जाल।

भावार्थ—ईश्वर की आज्ञा उत्पत्ति, स्थिति, लय, विष और अमृत सभी को माननी पड़ती है। हे देवि! आप ममता के कारण व्यर्थ सोचकर रही हैं, विधाता का सब मायाजाल अचल और अनादि है।

भूपति जियब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी॥
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि, अवध पति रानी॥

शब्दार्थ—हित-हानी = स्वार्थ की हानि। सुकृति अवधि = पुण्यात्माओं की सीमा, जिससे बढ़कर दूसरा पुण्यात्मा न हो।

भावार्थ—राजा साहब का जीना और मरना हृदय में बिचार कर हम लोग जो सोच करते हैं यह हे सखि! अपने हित की हानि देखकर है। सीता जी की माता ने कहा—आप पुण्यात्माओं की सीमा और अयोध्या के स्वामी की रानी हैं इसलिए आप की सुन्दर वाणी सत्य है।

दो०—लषनु रामु सिय जाहिं बन भल परिनाम न पोचु ।
गहबर हिय कह कौसिला, मोहि भरत कर सोचु ॥२८३॥

शब्दार्थ—पोचु=बुरा । गहबरि=(सं० गह्वर) गद्गद ।

भावार्थ—गद्गद हृदय से कौशल्या ने कहा—राम, लक्ष्मण और सीता बन जायँ उसका फल अच्छा होगा बुरा नहीं, पर मुझे तो भरत का बड़ा सोच है कि कहीं राम के बियोग में वह शरीर न छोड़ दें)

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी । सुत सुतबधू देवसरि बारी ॥
राम सपथ मैं कीन्हि न काऊ । सो करि कहउँ सखी सतिभाऊ ॥

शब्दार्थ—प्रसाद=प्रसन्नता, कृपा । देवसरि बारी=गंगा जल ।

भावार्थ—महादेव जी की कृपा से और आपके आशीर्वाद से हमें पुत्र और पुत्रबधू दोनों ही गंगा जल के समान (पवित्र) प्राप्त हुए हैं । मैंने रामकी सौगन्ध कभी नहीं की पर आज रामकी शपथ करके सच्चे भाव से मैं कहती हूं ।

भरत सील गुन बिनय बड़ाई । भायप भगति भरोस भलाई ॥
कहत सारदहु कइ मति हीचे । सागर सीप कि जाहिं उलीचे ॥

शब्दार्थ—विनय=नम्रता । भायप=भाईपन, भ्रातृत्व । भरोस=विश्वास । हीचे=हीच खाना (मुहावरा है) अशक्त है । उलीचे=(सं० उल्लुंचन) पानी बाहर करना ।

भावार्थ—भरत के शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भ्रातृत्व, भक्ति, विश्वास और भलाई आदि को कहते सरस्वती की बुद्धि भी अशक्त हो जाती है (तो फिर मैं क्या कहूं ?) क्या सीपी से समुद्र उलीचे जा सकते हैं ? अर्थात् जैसे सीपी से समुद्र उलीचा जाना असंभव है वैसे मैं भी भरत के गुण नहीं कह सकती) ।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति, बक्रोक्ति, दृष्टान्त की संसृष्टि ।

जानेउ सदा भरत कुल दीपा । बार बार मोहिं कहेउ महीपा ॥

कनक कसे मनि पारिखि पाए। पुरुष परिखिअहि समय सुभाए॥

शब्दार्थ—कुल दीपा = वंश में दीपकवत्, कुल श्रेष्ठ। कनक = सोना पारिखि = (सं० परीक्षा) जाँच।

भावार्थ—मुझसे बारम्बार राजा साहब ने कहा था कि भरत को सदा कुल श्रेष्ठ समझना। सोना को (कसौटी पर) कसने से और मणि की परीक्षा करने से (उसकी असलियत जान पड़ती है)। इसी प्रकार पुरुष की परीक्षा समय पड़ने से और स्वभाव से होती है।

अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक, सनेह सयानप थोरा॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी॥

शब्दार्थ—सयानप = चतुराई।

भावार्थ—आज शोक और प्रेम के कारण मेरा ऐसा कहना अनुचित और अचतुरता है। यह गंगा जी के समान कौशल्या जी की पवित्र वाणी सुनकर सब रानियाँ प्रेम से व्याकुल हो गयीं।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देवि मिथिलेसि।
को बिबेकनिधि बल्लभहिं तुम्हहिं सकइ उपदेसि॥२८४॥

शब्दार्थ—बल्लभहिं = प्यारी को।

भावार्थ—तब कौशल्या जी ने धैर्य धारण करके कहा हे मिथिलेश देवि सुनो, विवेक सागर (राजा जनक) की प्यारी तुम्हें कौन उपदेश दे सकता है? (अर्थात् आप से कुछ अधिक कहना व्यर्थ है आप थोड़े में ही सब समझ जायँगी)

रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई॥
रखिअहि लषन, भरत गवनहिं बन। जौ यह मत मानइ महीप मन।
तौ भल जतन करब सुबिचारी। मोरे सोच भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहे नीक मोहिं लागत नाहीं।

शब्दार्थ—राय सन=राजा से। गूढ़=छिपा।

भावार्थ—हे रानी ! आप अवसर पाकर राजा (जनक) जी से अपनी तरह समझा कर कहना। (अर्थात् जैसे आप अपनी बातें उन्हें समझाती हैं उस प्रकार समझाइयेगा, हमारे शब्दों में मत कहियेगा) वे लक्ष्मण को रख छोड़ें और (उनके स्थान पर) भरत को भेज दें। यदि यह विचार राजा साहब के मन माने (रुचे) तो भली प्रकार विचार पूर्वक इसका यत्न करियेगा, क्योंकि मुझे भरत का बड़ा सोच है। भरत के मन में (राम के प्रीति) छिपा प्रेम है, इस लिये उनके रहने से मुझे भलाई नहीं दीख पड़ती (अर्थात् यदि भरत रह जायगा तो वह प्रेमाधिक्य से कहीं पागल न हो जाय)

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइँ मगन करुनरस रानी।
नभ प्रसून झरि धन्यधन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध योगी मुनि।

शब्दार्थ—प्रसून=फूल, पुष्प।

भावार्थ—सब रानियाँ कौशल्या जी का स्वभाव और उनकी सरल-सुन्दर वाणी सुनकर करुणा रस में निमग्न हो गयीं। (अर्थात् खूब जोरों से रोने लगीं) आकाश से पुष्प बरसने लगे और 'धन्य धन्य' की ध्वनि होनेलगी। (इसे देखकर) सिद्ध, योगी और मुनि स्नेह से शिथिल हो गये।

सबु रनिवास बिथक लखिरहेऊ। तब धरिधीर सुमित्रा कहेऊ।
देवि दंड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सप्रीती।

शब्दार्थ—बिथक=स्तब्ध। दंड=घड़ी। जुग=(युग) दो।

भावार्थ—सम्पूर्ण रनिवास इसे देखकर स्तब्ध हो गया। तब सुमित्रा ने धैर्य धारण करके कहा—हे देवि ! दो घड़ी रात बीत गयी (सोने का समय हो गया) इसे सुनकर कौशल्या जी प्रेम पूर्वक उठीं।

दो०—बेगि पाउ धारिअ थलहिं कह सनेह सति भाउ।
हमरे तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय॥ २८५॥

भावार्थ—कौशल्या जी ने स्नेहपूर्वक सच्चे भाव से (जनक रनिवास से) कहा—कि आप लोग अपने स्थान को पधारें। हमारे तो अब ईश्वर का आश्रय है, या राजा जनक जी सहायक हैं।

अलंकार—विकल्प।

लखि सनेह सुनि वचन विनीता। जनकप्रिया गहि पाय पुनीता।
देवि उचितअसि विनय तुम्हारी। दसरथ घरनि राम महतारी।

शब्दार्थ—घरनि=पत्नी।

भावार्थ—स्नेह देखकर और विनीत वचनों को सुनकर जनक जी की पत्नी (सुनयना) ने कौशल्या जी के पवित्र पैरों को स्पर्श किया और कहा—हे देवि ! आपकी यह विनय उचितही है, क्योंकि आप दशरथ जी की पत्नी और राम जी की माता हैं। (योग्य लोगों के सम्बन्धी भी योग्य होते हैं फिर माता और पत्नी में तो योग्यता का विशेषांश आ जाता है)

अलंकार—सम (दूसरा)

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरिसिर तिनु धरहीं।
सेवक राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेस भवानी।

शब्दार्थ—प्रभु=बड़े लोग। धूम=धूआँ। तिनु=तृण।

भावार्थ—बड़े लोग अपने छोटों का भी आदर करते हैं जैसे अग्नि अपने शिर पर धुआँ और पर्वत अपने शिर पर तृण धारण करते हैं। (अर्थात् राजा तो आप से छोटे हैं आप बड़ी हैं इससे उनका भी आदर करती हैं) राजा साहब (जनक जी) तो कर्म, मन वाणी से आपके सेवक हैं (सहायक होना तो बड़ी भारी बात है। सहायक के लिए जो आप ने कहा— सो) आपके सहायक तो शिव-पार्वती सर्वदा हैं (राजा क्या सहायता करेंगे ?)

अलंकार=दृष्टान्त।

रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै॥
रामु जाइ बन करि सुरकाजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥

शब्दार्थ—रउरे = आप के। अंगजोगु = सहायता के योग्य।

भावार्थ—आपकी सहायता के योग्य संसार में कौन है? (कोई नहीं) (राजा साहब की सहायता की बात जो आपने कही सो) क्या दीपक की सहायता से सूर्य की शोभा है? (नहीं। अर्थात् आपकी सहायता कौन कर सकता है)। (राम जी के बारे में जो आप ने कहा सो) राम जी तो बन में जाकर देवताओं का कार्य करेंगे और वहाँ से अयोध्या को लौट कर अचल राज्य करेंगे।

अलंकार—वोक्रक्ति से पुष्ट दृष्टान्त।

अमर नाग नर रामबाहु-बल। सुख बसहहिं अपने अपने थल।
यह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनिभाखा।

शब्दार्थ—अमर = देवता। नाग = पातालवासी। मुधा = असत्य।

भावार्थ—देवता, नाग और मनुष्य सब राम जी के बाहुबल से सुख पूर्वक अपने अपने स्थान में बसेंगे। यह सब तो याज्ञवल्क्य जी ने (पहले ही) कह रखा है। हे देवि! मुनियों का कहा हुआ असत्य नहीं होता (इस लिये इसे सत्य मानो)

दो०—अस कहि पग परि प्रेम अति सियहित विनय सुनाइ।
सिय समेत सिय मातु सब चलीं सुआयसु पाइ ॥२८६॥

भावार्थ—ऐसा कहकर और अत्यंत प्रेम पूर्वक पैरों पड़कर तथा सीता के लिए बिनय करके (अर्थात् आज सीता को हमारे यहां भेज दें तो बड़ा अच्छा हो) कहकर तब सीताजी की माता सीता सहित आज्ञा पाकर चलीं।

प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही। जो जेहि जोग भाँति तेहि तेही।
तापस बेष जानकी देखी। भेसबु बिकल बिषाद बिसेखी।

शब्दार्थ—परिजन = कुटुम्ब।

भावार्थ—सीता जी अपने प्यारे कुटुम्ब से जो जिस योग्य था उससे उसी भाँति मिलीं। तपस्विनी के वेष में सीता जी को देखकर सब लोग दुःख से अत्यंत व्याकुल हो गये।

जनक राम-गुरु आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई।
लीन्ह लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की।

शब्दार्थ—राम गुरु = वशिष्ठ जी। पाहुनि = अतिथि।

भावार्थ—(इधर) जनक जी वशिष्ठ जी की आज्ञा पाकर चले और अपने स्थान में आकर सीता जी को देखा। जनक जी ने सीता को हृदय से लगा लिया। (सीता जी आज) जनक जी के प्रेम और प्राण की पवित्र अतिथि थीं।

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयेउ भूप मन मनहु प्रयागू॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। तापर राम प्रेम-सिसु सोहा॥
चिरजीवी मुनि ग्यान विकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु॥
मोह मगन मति नहिं विदेह की। महिमा सिय रघुवर सनेह की॥*

शब्दार्थ—अंबुधि = समुद्र। बटु = अक्षय वट। सिसु = बच्चा (बाल मुकुंदजी) चिरजीवी मुनि = मारकण्डेय ऋषि।

(विशेष) यहां पर तुलसीदास जी ने माया प्रलय का रूपक बांधा है। इस प्रलय के समय प्रयाग का अक्षयवट बच जाता है और सम्पूर्ण संसार महा सागर में लीन हो जाता है।

भावार्थ—जनक जी के हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ने लगा। उनका मन ही मानो प्रयाग हो गया जहाँ पर उन्होंने सीताप्रति प्रेम रूपी अक्षय वट को बढ़ते हुए देखा। (जिस अक्षय वट के पत्ते पर) राम प्रेम रूपी बच्चा (बालमुकुन्द लेटा हुआ) शोभित था। जनक जी का व्याकुल ज्ञान ही चिरंजीवी मारकंडेय मुनि है, जिसने डूबते डूबते राम प्रेम रूपी (बालमुकुन्द) का अवलम्बन पा लिया। (अर्थात् जिस प्रकार प्रलय का दृश्य देखने की इच्छा होने पर मारकण्डेय जी समुद्र में तैरते तैरते अक्षय वट के एक पत्ते पर सोये हुए भगवान् के बाल रूप का अवलंब पाकर स्थिर चित्त हुए थे। उसी प्रकार जनक जी के हृदय में जो सीता प्रेम का उद्वेग हुआ तो वे उसमें डूबने उतराने लगे। उनका ज्ञान मोह में परिणत होने को था

* कथा परिशिष्ट में देखिये।

कि राम के ऐश्वर्य रूप का ध्यान आया और तब सीता और राम को अनादि शक्ति और ईश्वर समझ कर (बेटी दामाद का भाव छूट गया) तब उन्हें सान्त्वना मिली। राजा जनक जी की बुद्धि ममता में नहीं मग्न हो गयी, बल्कि यह सीता राम के प्रेम की महिमा है (कि उसमें जनक जी भी डूब रहे थे)

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट सांगरूपक।

(नोट)—यहाँ रूपक का बड़ा ही समुचित प्रयोग हुआ है, कोई अन्य रूपक यहाँ जनक जी की मानसिक परिस्थिति का दिग्दर्शन भी न करा सकता।

दो॰—सिय पितु-मातु सनेह-बस बिकल न सकी सँभारि।
धरनिसुता धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि ॥२८७॥

शब्दार्थ—धरनि सुता = पृथ्वी की पुत्री (सीता जी का जन्म पृथ्वी से हुआ था) यह शब्द साभिप्राय है।

भावार्थ—सीता जी भी प्रेम से व्याकुल हुए माता और पिता के संसारी प्रेम को देखकर अपने को सँभाल न सकीं (लीलाभाव से व्याकुलता प्रगट की पर) धरणि सुता होने के कारण (सीता जी ने) समय और धर्म को विचार कर (स्वयं) धैर्य धारण किया।

अलंकार—सम।

तापस बेष जनक सिय देखी। भयेउ प्रेम परितोषु बिसेखी॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सब कोऊ॥

शब्दार्थ—परितोषु = संतोष। धवल = उज्ज्वल।

भावार्थ—तपस्विनी के वेष में सीता जी को देखकर जनक जी के हृदय में विशेष रूप से प्रेम और परितोष हुआ। उन्होंने कहा—हे पुत्रि! तुमने दोनों कुलों को पवित्र किया। संसार के सब लोग तेरे समुज्वल यश का वर्णन सदा किया करेंगे।

अलंकार—आशिष (केशव के मत से)

जिति सुरसरि कीरतिसरि तोरी। गवनु कीन्ह विधि अंड करोरी।
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहि किए साधु समाज घनेरे॥

शब्दार्थ=सुरसरि=गंगा जी। विधि अंड=ब्रह्मांड। करोरी=करोड़ों। अवनि थल=पृथ्वी पर स्थान। घनेरे=बहुत से।

भावार्थ—हे पुत्रि! तेरी कीर्ति सरिता ने गंगा को भी जीतकर करोड़ों ब्रह्मांड में गमन किया है। गंगा ने इस पृथ्वी पर तीन स्थानों को बड़ा महत्व दिया है (हरिद्वार प्रयाग, गंगा-सागर संगम) * पर तेरी कीर्ति सरिता ने तो बहुत से साधुसमाज को महान बनाया है (अर्थात् तुम्हारी कीर्ति त्रिलोक में विदित है, सम्पूर्ण साधु उसका गान करते हैं)

अलंकार—अधिक अभेद रूपक।

पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुचि महि मनहुँ समानी॥
पुनि पितु-मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥

शब्दार्थ—महि=पृथ्वी। समानी=प्रविष्ट हो गयी। हित=हित करके, सप्रेम।

भावार्थ—जनक जी तो स्नेहमय और सुन्दर वाणी से सत्य बात कह रहे हैं, पर सीता जी इसे सुनकर इतनी सकुच रही हैं मानो सकुच कर पृथ्वी में (पुनः) समा गयीं। माता-पिता ने फिर उन्हें हृदय से लगा लिया और हितकारक तथा सुन्दर शिक्षा और आशीर्वाद दिया।

कहति न सीय सकुचि मनमाहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं।
लखि रुख रानि जनायेउ राऊ। हृदय सराहत सील सुभाऊ।

शब्दार्थ—बसब=रहना, बसना। रजनी=रात।

भावार्थ—सीता जी मन में सकुच कर कुछ कहती नहीं (पर सोच रही हैं कि यहां रात में रहना ठीक नहीं है) रानी ने रुख देखकर राजा जनक

---

* हरिद्वारे प्रयागे च गंगा सागर संगमे।
सर्वत्र दुर्लभा गंगा त्रिस्थानेषु सुदुर्लभा॥

से इस बात को जनाया (कहा) वे सीता जी के शील और स्वभाव की हृदय में प्रशंसा करने लगे।

दो०—बार बार मिलि भेंट सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि।२८८।

शब्दार्थ—समयसिर = ठीक समय पाकर (यह अवधी मुहावरा है) सुवानि = सुन्दर स्वभाव वाली। सयानि = ज्ञानवती (इस लिये कि मुनासिब मौका देखकर भरत की चर्चा छेड़ी)

भावार्थ = बारम्बार सीता से मिल भेंटकर उन्हें सम्मान पूर्वक विदा किया। तब सयानी और सुस्वभावा सुनयना ने ठीक समय पाकर भरत जी की वह चर्चा छेड़ी (जो कौशल्या जी ने राजा से कहने को कही थी)

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससिसारू॥
मूंदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥

शब्दार्थ—सोन = सोना (स्वर्ण)। सुधा = अमृत। ससिसारू = चन्द्रमा का सार पदार्थ।

भावार्थ—राजा जनक ने सुगंधित सोने और चन्द्रमा से निचोड़े हुए अमृत के समान (परमोत्तम) भरत का व्यवहार सुनकर अपने सजल नेत्रों को मूंद लिया, उनके शरीर में रोमांच हो आया, वे प्रसन्न मन से भरत के सुयश की प्रशंसा करने लगे।

(नोट)—"सोन सुगंध सुधा ससि सारू," इस टुकड़े के अनेक लोग भिन्न भिन्न अर्थ करते हैं, और अनेक शंकाएं और समाधान भी किये जाते हैं, पर हमें यही अर्थ ठीक जँचता है, कारण यह कि इस अर्थ में व्यतिरेकालंकार से पुष्ट निदर्शनालंकार का बड़ा ही अच्छा निर्वाह होता है। ऐसे मौक़े पर निदर्शनालंकार का ही प्रयोग समुचित समझा जा सकता है।

सावधानसुनु सुमुखिसुलोचनि। भरतकथा भव-चंध विमोचनि।
धरम राजनय ब्रह्म विचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू।
सो मति मोरि भरत महिमाहीं। कहइ काह छलि छुवति न छाहीं।

शब्दार्थ—सावधान=एकाग्र चित्त होकर। विमोचनि=छुड़ा देने वाली। राजनय=राजनीति। प्रचारू=(सं० प्रचरण) प्रवेश।

भावार्थ—हे सुमुखि, सुनयने! सावधान होकर सुनो। भरत की कथा सांसारिक बन्धन से छुड़ा देने वाली है। धर्म, राजनीति और ब्रह्म विचार इन स्थानों में बुद्धि के अनुसार मेरा प्रवेश है। सो मेरी बुद्धि भरत की महिमा की छाया को छल करके भी स्पर्श नहीं कर सकती. उसे कहे क्या? (अर्थात् भरत की महिमा बहुत बड़ी है उनके में कुछ कहने का साहस ही नहीं कर सकता)

बिधि,गनपति अहिपति सिव नारद। कबि,कोबिद,बुध बुद्धि बिसारद॥
भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू॥

शब्दार्थ—अहिपति=शेषनाग। करतूती=(सं० कर्तृत्व)। रुचि=स्वाद।

भावार्थ—ब्रह्मा, गणेश, शेषनाग, शंकर, नारद, कवि, विद्वान पंडित और बुद्धिमान सब लोगों को भरत के चरित्र, यश, कर्त्तव्य, धर्म, शील और गुण का सुन्दर ऐश्वर्य समझने में और सुनने में सुखदायक है। वह वैभव पवित्रता में गंगा का और स्वाद में अमृत का भी निरादर करता है। (अर्थात् बड़ा पवित्र और रुचिदायक है)

अलंकार—ललितोपमा।

दो०—निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरतु भरतु सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेरु सम कबिकुल मति सकुचानि॥२८९॥

शब्दार्थ—निरवधि=सीमारहित, बहुत।

भावार्थ—असंख्य गुणवाले और अनुपमेय पुरुष भरत को भरत के ही समान जानो। क्या सुमेरु को एक सेर (के पत्थर टुकड़े) के समान कहा जा सकता है? (नहीं, यदि ऐसा कोई कवि कहे तो) उस कवि की बुद्धि अवश्य सकुचेगी।

. अलंकार—अनन्वय, वक्रोक्ति, और संबंधातिशयोक्ति।

अगम सबहिं बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी।
भरतअमितमहिमासुनुरानी। जानहिंरामु न सकहिं बखानी।

शब्दार्थ—बरबरनी = सुन्दर वर्ण वाली (सम्बोधन) गमु = चलना। धरनी = पृथ्वी। अमित = बहुत।

भावार्थ—भरत की महिमा का वर्णन करना हे बरवर्णी ! सब के लिए अगम है, जैसे जल हीन पृथ्वी पर मछली नहीं चल सकती (उसी प्रकार कोई भरत महिमा नहीं कह सकता) हे रानी ! सुनो, भरत की महिमा अमित है (यहां तक कि) राम जी जानते तो हैं, पर कह नहीं सकते।

अलंकार—उदाहरण।

बरनि सप्रेम भरतअनुभाऊ। तिय जियकी रुचि लखि कह राऊ।
बहुरहिं लषनु भरत बन जाहीं। सबकर भल सबके मन माहीं।
देवि ! परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी।

शब्दार्थ—अनुभाऊ = अपना निश्चित अनुभव या उत्तम भाव। जाइ नहिं तरकी = विचारी नहीं जा सकती।

भावार्थ—राजा जनक जी ने प्रेम पूर्वक भरत के विषय में अपना निश्चित अनुभव कहकर और सुनयना के हृदय की रुचि देखकर कहा—"लक्ष्मण लौटें और भरत बन जायँ" यह सबके मन में है और इससे सबका भला है, परन्तु हे देवि ! भरत और रामजी की प्रीति तथा प्रतीति तो विचारी ही नहीं जा सकती (कि कितनी है, अतएव उसके विषय में कुतर्क व्यर्थ ही है)

भरत अवधि सनेह ममता की। जद्यपि राम सींव समता की॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

शब्दार्थ—सींवँ = सीमा। न निहारे = नहीं ताका, नहीं देखा।

भावार्थ—यद्यपि रामजी समता की सीमा हैं (सब को सम देखते हैं) परन्तु भरत भी प्रेम और ममता की अवधि हैं (अर्थात् भरत के हृदय में राम प्रति प्रेम और ममता भी कम नहीं है) परमार्थ, स्वार्थ और सम्पूर्ण सुख इन्हें तो भरत ने अपने मन में स्वप्न में भी नहीं देखा। हमें तो भरत जी का यही विचार देख पड़ता है कि राम-चरण में प्रेम करना ही साधन है और वही सिद्धि है।

दो०—भोरेहु भरत न पेलिहहिं, मनसहुँ राम रजाइ।
करिअ न सोच सनेह बस, कहेउ भूप बिलखाइ ॥२९०॥

शब्दार्थ—भोरेहु=भूल कर भी, धोखे से भी। पेलिहहिं=टालेंगे। मनसहुं=मन से भी। बिलखाइ=(सं० विलक्ष्य) विशेष रूप से लक्ष्य कराके, खूब समझा कर।

भावार्थ—राजा जनक ने रानी को खूब समझाकर कहा कि—भरत जी भूल कर भी मन से रामजी की आज्ञा को नहीं टालेंगे। प्रेम के कारण सोच मत करो। (जो राम कहेंगे वही भरत करेंगे, सोच करना व्यर्थ है)

(नोट) 'बिलखाइ' का अर्थ 'रोकर' वा 'व्याकुल होकर' करना अनर्थ करना है। राजा जनक का रोना वा व्याकुल होना संभव ही नहीं, क्योंकि वे 'विदेह' हैं।

राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहिं पलक सम बीती ॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ-न्हाइ सुर पूजन लागे ॥

शब्दार्थ—गनत=विचारते हुए। दंपतिहिं=(सं० दंपती) स्त्री पुरुष को (राजा जनक और सुनयना को) पलक=एक पल।

भावार्थ—राम और भरत जी के गुणों का प्रेमपूर्वक वर्णन करते हुए दंपति को रात एक पल के समान बीत गयी (अर्थात् रात का बीतना जान ही नहीं पड़ा)। प्रातःकाल दोनों राज-समाज जगे और स्नान कर करके देवताओं की पूजा करने लगे।

गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई ॥

नाथ भरत पुरजन महतारी। सोक बिकल बनवास दुखारी ॥
सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू ॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रउरे हाथा ॥

शब्दार्थ—गे = गये। पहिं = पास।

भावार्थ—रामचन्द्र जी स्नान करके गुरु जी के पास गये और चरणों की वंदना करके तथा गुरु जी का रुख पाकर बोले—हे नाथ ! भरत, कुटुंब के लोग और मातायें सब शोक से व्याकुल और वनवास से दुखी हैं। मिथिलेश राजा जनक भी अपने समाज सहित बहुत दिन से क्लेश सह रहे हैं। हे नाथ ! आप जैसा उचित समझें वैसा करें। सब का हित आप ही के हाथ में है। (अर्थात् हमारा हित भी आप जानते ही हैं, हमें संकोच में न डालिये, सबको आज्ञा दीजिये वे लौट जायँ)

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सीलसुभाऊ।
तुम्ह बिनु राम सकलसुखसाजा। नरक सरिस दुहुँराजसमाजा॥

भावार्थ—ऐसा कह कर राम जी अत्यन्त सकुचे। वशिष्ठ जी उनका शील और स्वभाव देखकर गद्‌गद् हो गये और कहा—हे राम ! तुम्हारे बिना दोनों राज समाजों के लिए सम्पूर्ण सुख की सामग्री नरक के समान (दुःखद) है।

दो०—प्रान प्रान के जीव के जिव, सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह जिन्हहिं तिन्हहिं बिधिवाम।२९१।

शब्दार्थ—प्रान के प्रान = प्राणों के मूल कारण।

भावार्थ—हे राम ! तुम प्राण के भी प्राण, जीव के भी जीव, सुख के भी सुख हो, हे तात ! तुम्हें त्याग कर जिन्हें घर अच्छा लगता है, उन्हें (समझना चाहिये कि) ब्रह्मा प्रतिकूल है।

अलंकार—अत्युक्ति।

सो सुख धरमु करमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं रामप्रेम परधानू॥

शब्दार्थ—भाऊ=प्रेम।

भावार्थ—वह सुख, धर्म और कर्म जल जाय जहाँ राम जी के चरण कमलों में प्रेम न हो। वह योग, कुयोग है, वह ज्ञान अज्ञान है जहाँ राम-प्रेम प्रधान न हो।

अलंकार—तिरस्कार।

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही। तुम्ह जानहु जिअ जो जेहि केही॥
राउर आयसु सिर सबही के। बिदित कृपालहिं गति सब नीके॥
आपु आस्रमहिं धारिअ पाऊ। भयेउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥

शब्दार्थ—जी=हृदय। नीके=भली भाँति। धारिअ पाऊ=पधारिये।

भावार्थ—सब का हृदय तुम्हारे बिना दुखी है और तुम्हीं से सुखी है, जिसके हृदय में जो बात है सो आप अपने जी में जानते ही हैं (अर्थात् हम आप के अनुकूल हैं या नहीं यह बात आप जानते ही हैं) आपकी आज्ञा सबको माननीय है (जो आप कहेंगे सो सब करेंगे) कृपालु (आप) को तो सब बातें भलीभाँति ज्ञात हैं। अब आप अपने आश्रम को पधारिये। हमसे जो कुछ बन पड़ेगा उपाय करेंगे। ऐसा कहकर मुनिराज वशिष्ठ जी प्रेम के कारण शिथिल हो गये।

करि प्रनामु तब राम सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए॥
राम बचन गुरु नृपहिं सुनाए। सील सनेह सुभाय सुहाये॥
महाराज अब कीजिअ सोई। सबकर धरम सहित हित होई॥

शब्दार्थ—सिधाए=गये।

भावार्थ—तब राम जी प्रणाम करके गये। वशिष्ठ जी भी धैर्य धारण करके जनक जी के पास आये। राम जी की बातें वशिष्ठ जी ने जनक जी को सुनाईं जो स्वभावतः शील और स्नेह से शोभित थीं। वशिष्ठ जी ने कहा—महाराज! अब आप वही (उपाय) करें जिससे सब का धर्म सहित हित हो (अर्थात् सब के मन की बात हो तथा किसी को धर्म न छोड़ना पड़े—छिपा भाव है कि राम जी को जिसमें पिता का वचन न भंग करना पड़े)

दो —ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल ।
तुम्ह बिन असमंजस समन को समरथ एहि काल ॥२९२॥

शब्दार्थ—सुजान=चतुर । असमंजस=दुविधा । समन=नष्ट करने वाला ।

भावार्थ—हे राजन् ! आप ज्ञान वान, चतुर, पवित्र धर्मपाल, धैर्यवान और नरपाल हैं, अतएव आपके सिवाय इस असमंजस को नष्ट करने में इस समय और कोई समर्थ नहीं है ।

सुनि मुनि वचन जनक अनुरागे । लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे ॥
सिथिल सनेह गुनत मन माहीं । आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं ॥

शब्दार्थ—गति=दशा, अवस्था । बिरागे—विरक्त हो गये । गुनत=विचारते है ।

भावार्थ—वशिष्ठ जी के वचनों को सुन कर जनक जी ज्ञान और विराग की अवस्था से विरक्त हो गये, अर्थात् उनका ज्ञान और वैराग्य जाता रहा । वे स्नेह से शिथिल होकर मन में विचारते हैं कि हम ने यहाँ आकर अच्छा काम नहीं किया (न आते तो अच्छा था)

रामहिं राय कहेउ वन जाना । कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना ॥
हम अब वन ते वनहिं पठाई । प्रमुदित फिरब विवेक बड़ाई ॥

शब्दार्थ—प्रवाना कीन्ह=प्रमाणित किया ।

भावार्थ—राजा दशरथ जी ने राम को बन जाने के लिए कहा और स्वयं प्रिय प्रेम को प्रमाणित किया (राम के बिरह में शरीर छोड़ दिया) और हम अब वन तक आकर उन्हें वनवास ही को भेजकर अपने विवेक को बढ़ा कर (नष्ट करके) आनन्द पूर्वक लौटेंगे । (अर्थात् हमें यहाँ से राम जी को लौटाल ले चलना चाहिये था सो होगा नहीं, तब हम विवेकी कैसे कहावेंगे)

तापस मुनि महिपति गति देखी । भए प्रेम बस विकल विसेखी ॥
समउ समुझि धरि धीरज राजा । चले भरत पहिं सहित समाजा ॥

भावार्थ—तपस्वी, और मुनि गण राजा जनक की ऐसी गति देख कर प्रेम के कारण अत्यन्त व्याकुल हुए। पर समय को समझ कर आपत्ति काल जान कर राजा जनक ने धैर्य धारण किया और अपने समाज सहित भरत जी के पास को चले।

(नोट) 'महिपति' शब्द यहाँ पर बड़ा चमत्कार दिखला रहा है। परिकरांकुर अलंकार की अनोखी छटा है।

(भरत-जनक गोष्ठी)

भरत आइ आगे भइ लीन्हें। अवसर सरिस सुआसन दीन्हें॥
तात भरत कह तिरहुति राऊ। तुम्हहिं विदित रघुवीर सुभाऊ॥

शब्दार्थ—आगे भइ लीन्हे=आगे आकर स्वागत किया। तिरहुति राऊ=राजा जनक।

भावार्थ—भरत जी ने (राजा जनक को आता सुनकर) आगे आकर उनका स्वागत किया और लेकर समयानुसार सुन्दर आसन पर बैठाया। राजा जनक जी कहने लगे—हे तात भरत! तुम तो राम जीके स्वभाव को भली भाँति जानते हो (कि वे बड़े संकोची हैं)

दो०—राम सत्य व्रत धरम रत, सब कर सील सनेहु।
संकट सहत सँकोच वस, कहिअ जो आयसु देहु॥ २९३॥

शब्दार्थ—सत्य व्रत=सत्यवादी। धरम रत=धर्म में लीन, धर्मिष्ठ। संकट=कष्ट। आयसु=अनुमति।

भावार्थ—राम सत्यवादी, और धर्मिष्ट हैं परन्तु सब के शील और स्नेह से संकोचवश कष्ट सहते हैं, अतएव जो तुम अनुमति दो वह मैं उनसे कहूं।

सुनि तन पुलकि नयन भरि वारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुल गुरु सम हित माय न बापू॥

शब्दार्थ—वारी=जल।

भावार्थ—इसे सुनते ही भरत के शरीर में रोमांच हो आया नेत्रों में आँसू भर कर वे भारी धैर्य धारण करके बोले—हे प्रभो ! आप तो हमारे प्रिय तथा पूज्य पिता के समान हैं। और यहीं हमारे कुल गुरु बशिष्ठ जी भी मौजूद हैं जिनके समान हितकारी मेरे माता-पिता भी नहीं हैं, अर्थात् पिता सम आप हैं और माता-पिता दोनों से बढ़ कर बशिष्ठ जी हैं ।

कौसिकादि मुनि सचिउ समाजू। ज्ञान अंबुनिधि आपुन आजू॥
सिसु सेवक आयसु अनुगामी। जानि मोहिं सिख देइअ स्वामी॥

शब्दार्थ—कौसिक=विश्वामित्र। अंबुनिधि=समुद्र।

भावार्थ—यहाँ पर विश्वामित्र आदि मुनि और मंत्रियों का समाज उपस्थित है, तथा स्वयं आप जो ज्ञान के समुद्र हैं उपस्थित हैं (मैं अधिक क्या कहूं ?) हे स्वामी ! इस शिशु को आप सेवक और आज्ञा का अनुगामी (मानने वाला) समझ कर मुझे शिक्षा दीजिये (कि मैं क्या करूँ)। भरत के कथन का तात्पर्य यह है कि आप उलटी बात कह रहे हैं, मैं आप को क्या अनुमति दूँ। आप, गुरु बशिष्ठ, विश्वामित्र और समस्त मंत्रिमंडल यहाँ उपस्थित हैं, आप बुजुर्ग हैं, आप सब लोग सलाह करके मुझे शिक्षा दीजिये कि मैं क्या करूँ—इस समय मेरा कर्तव्य क्या है ?

एहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर॥
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता॥

शब्दार्थ—मौन=गूँगा। बाउर=पगला, बावला। बदन=मुख।

भावार्थ—इतनी बड़ी समाज में इस पुण्य स्थान पर, और आप ऐसे बुद्धिमान के प्रश्न पर मुझे मौनही रहना अच्छा है, क्यों कि मेरा मन दुःखित है, अतः मेरी बात पागलपन की सी होगी। मैं अपने छोटे मुख से जो बड़ी बात कह डालूँ (जो कहना उचित नहीं) तो हे तात ! विधाता को मेरे प्रतिकूल समझ कर मुझे क्षमा कीजियेगा। (मैं यह निवेदन करता हूं कि)

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा धरमु कठिन जगु जाना॥

स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू। बैरु अंध, प्रेमहि न प्रबोधू॥

शब्दार्थ—आगम = शास्त्र। निगम = वेद।

भावार्थ—वेद शास्त्र और पुराणों में प्रसिद्ध है, तथा सारा संसार जानता है कि सेवाधर्म बड़ा कठिन है (साथ ही) स्वामि-धर्म और स्वार्थ से विरोध है (अर्थात् स्वामि धर्म और स्वार्थ साधन दोनों साथ साथ नहीं सधते; बैर तो अन्धा होता है, और प्रेम को कुछ ज्ञान नहीं रहता अर्थात् बैर और प्रेम दोनों मनुष्य को हतबुद्धि बना देते हैं, अतः चाहे मुझे राम का विरोधी समझिये चाहे प्रेमी, दोनों दशाओं में मेरा कथन ठीक न होगा, अतः मुझ से कुछ न कहलाइये, वरन्।

दो०—राखि राम रुख धरमव्रतु, पराधीन मोहिं जानि।
सब के संमत सर्व हित, करिअ प्रेम पहिचानि॥ २६४॥

शब्दार्थ—सब के संमत = सब के मत से।

भावार्थ—राम जी का रुख, और धर्म व्रत को रख कर (अर्थात् उसके अनुसार चलकर) सब की राय ले, सब का हितकारक कार्य सब के प्रेमको पहचान कर और मुझे पराधीन जान कर कीजिये। (अर्थात् आप लोग राम जी के अनुकूल कार्य करें उनके धर्म को और उनके व्रत को न टूटने दें, पर सबकी राय ले लें और सब का हित समझ लें, सब का प्रेम भी पहचान लें, तब जो उचित समझें सो कार्य करें, मैं तो पराधीन हूं। तात्पर्य यह है कि मैं अपने को दोषी समझता हूं, और राम जी मुझे अपना प्रेमी समझते हैं। यदि मेरी बात सत्य है तो भी, और यदि राम जी की बात सत्य है तो भी, मैं हतविवेक प्रमाणित होता हूं (बैर अंध प्रेमहिं न प्रबोधू), अतः मेरा कथन ठीक न होगा, आप लोग जो उचित समझिये सो कीजिये।

(नोट)—भरत जी के इन वचनों का तात्पर्य बड़ा ही गूढ़ है। जिस प्रकार चाहिये और जितने चाहिये व्यंग निकालते चले जाइये। सब ठीक उतरेंगे। अतः गोसाईं जी इन वचनों को आगे "अति अद्भुत बानी" कहते हैं।

भरत वचन सुनि, देखि सुभाऊ। राज समाज सराहत राऊ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथ अमित अति आखर थोरे॥

शब्दार्थ—मृदु=मुलायम। मंजु=सुन्दर। अमित=बहुत।

भावार्थ—भरत जी के वचनों को सुन कर और उनके वचनों के सुन्दर भावों को देखकर समाज सहित राजा जनक उनकी प्रशंसा करने लगे। भरत जी की वाणी सुगम भी है और अगम भी हैं, मुलायम, सुन्दर और कठोर भी हैं। इनमें अर्थ तो बहुत सा है, पर अक्षर बहुत थोड़े से है (अर्थात् थोड़े में ही भरत जी ने बहुत सी बातें कह डालीं।)

अलंकार—विरोधाभास।

(नोट)—सुगम—'राम रुख तथा धर्म-व्रत राम कर काम कीजिये' ये वचन सुगम हैं सरल है।

अगम—'सबके संमत' ये वचन अगम है, क्योंकि सब की एक सम्मति हो नहीं सकती।

'सर्वहित'—ये वचन मृदु हैं, क्योंकि सबका हित चाहना बड़ी उत्तम वृत्ति है।

मैं पराधीन हूं=ये वचन मंजु हैं।

'प्रेमपहिचानि'—ये वचन कठोर हैं—भाव यह है कि तुम विदेह हो, तुम मेरा और राम का प्रेम कैसे जान सकते हो—प्रेम मार्ग में मूर्ख हो।

ज्यों मुख मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अद्भुत बानी॥
भूपु भरतु मुनि साधु समाजू। गे जहँ बिबुध-कुमुद द्विजराजू॥

शब्दार्थ—मुकुर=शीशा, आरसी, ऐना। पानी=हाथ में। गहि न जाइ=पकड़ा नहीं जाता। बिबुध=देवता। द्विजराजू=चन्द्रमा।

भावार्थ—जैसे मुख ऐने में रहता है और ऐना हाथ में रहता है, परन्तु ऐने के भीतर का प्रतिबिम्ब नहीं पकड़ा जा सकता, ठीक इसी प्रकार भरत जी की भी वाणी है (अर्थात् जो कुछ वे कह रहे है सब ठीक, पर उसका पालन करना अत्यन्त कठिन है) राजा जनक, भरत, वसिष्ठ

जी तथा अन्य साधु लोग वहां गये, जहां देवतारूपी कुमुदों (कुईं जो रात को फूलती है) के (प्रसन्न करने के) लिए चन्द्रमावत् श्री रामचन्द्र जी विराजमान थे। (अर्थात् सब लोग राम जी के पास गये)

(नोट)—गोस्वामी जी की चतुराई समझने योग्य है। यहाँ सूचित कर दिया कि आगे जो दरबार होगा उसमें राम जी "विबुध कुमुद द्विज-राज" ही प्रमाणित होंगे—अर्थात् देवगण के उद्धार हेत वनगमन ही निश्चित करेंगे, लौटकर अयोध्या को न जायेंगे।

सुनिसुधि सोच विकल सबलोगा। मनहुँ मीनगन नव जलजोगा।
देव प्रथम कुलगुरु गति देखी। निरखि विदेह सनेह विशेखी।
राम भगति मय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे।
सब कोउ राम प्रेम मय पेखा। भए अलेख-सोच वस लेखा।

शब्दार्थ—सुधि=समाचार, खबर। मीन=मछली। नवजल जोगा=नये जल के संयोग से, वर्षा के प्रथम पानी से उत्पन्न 'मांजा' खाकर मछलियां व्याकुल हो जाती हैं। हहरि=हाय करके। अलेख=अलिखित, बे प्रमाण, बहुत। लेखा=देवता।

भावार्थ—यह समाचार पाकर सब लोग सोच से व्याकुल हो गये, मानों मछलियां नये जल के संयोग से व्याकुल हैं (जब वर्षा में पहले पहल जल गिरता है तो जल में फेन सा उतराने लगता है। मछलियाँ उसे खाद्य पदार्थ जान खा जाती हैं, पर पीछे उसके कारण व्याकुल होकर मर तक जाती हैं। इसी फेन को मांजा भी कहते हैं, यही 'नवजल जोगा' है) देवताओं ने पहले कुलगुरु वशिष्ट जी की दशा देखी (तो वे भरत की प्रीति में मस्त थे) पुनः उन्होंने जनक जी को देखा तो वहां भी विशेष रूप से राम-स्नेह ही पाया (अर्थात् जनक जी को भी अपने अनुकूल न पाया) भरत जी को देखा तो वे रामभक्ति में लीन थे। स्वार्थी देवता तो (इसे देख कर) हाय करके हार मान गये (कि अब हम क्या करें, ये लोग तो राम को लौटा ले जाना चाहते हैं) और समाज में जो लोग थे उन्हें भी राम

जी के प्रेम से परिपूर्ण देखकर देवतागण तो अत्यन्त शोक बश हो गये (देवताओं को बड़ा दुःख हुआ)

(नोट)—देवता अन्तर्यामी होते हैं। उन्होंने देख लिया कि सब लोग राम को लौटाल ले जाने पर ही उद्यत हैं, अथवा देवता स्वार्थी हैं, अतः उन्हें ऐसा ही अनुमान हुआ।

दो०—रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंचमिलि नाहिं त भयेउ अकाजु ॥२९५॥

शब्दार्थ—सुरराजु=इन्द्र। प्रपंचहिं=माया को। पंच मिलि=सब लोग मिल करके। अकाजु=(सं० अकार्य) हानि। हरज।

भावार्थ—इन्द्रदेव सोचकर कहने लगे कि राम जी तो स्नेह और संकोच के बश में हैं, अतएव सब लोग मिल करके माया की रचना करो नहीं तो काम विगड़ने चाहता है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि ! देव सरनागत पाही।
फेरि भरतमति करि निजमाया। पालु विबुधकुल करि छलछाया।

शब्दार्थ—पाही=रक्षा करो। फेरि=पलटाकर। छाया करि=रक्षा करके।

भावार्थ—देवताओं ने शारदा को स्मरण करके उनकी प्रशंसा की और कहा हे देवि ! देवगण आपकी शरण में हैं रक्षा करो। अपनी माया करके भरत की बुद्धि को फेर दो। इस प्रकार छल करके देवताओं की बात रखो और उनके ऊपर अपनी छाया करो।

विबुध विनय सुनि देवि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़जानी।
मो सन कहहु भरत-मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू।

शब्दार्थ—विबुध=देवता। सहस=(सहस्र) हजार।

भावार्थ—देवताओं की विनय सुनकर और उन्हें स्वार्थी तथा मूर्ख जानकर चतुरा सरस्वती बोलीं—हे इन्द्र तुम मुझसे कहते हो कि भरत की

बुद्धि को फेर दो, क्या तुम्हें हजार आंखों से भी सुमेरु (पर्वत) नहीं देख पड़ता ? (अर्थात् एक आँख से भी सुमेरु देखा जा सकता है इसी प्रकार तुम्हें जानना चाहिए कि भरत की महिमा कितनी है, तुम हजार नेत्र वाले होकर भी उसे नहीं देख सकते—आश्चर्य है ।

बिधि हरिहर माया बड़ि भारी । सोउ न भरतमति सकइ निहारी ।
सो मति मोहिं कहत करु भोरी । चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ॥

शब्दार्थ—भोरी = पगली । चँदिनि = चाँदनी । चंडकर = सूर्य ।

भावार्थ—(मेरी तो बिसात क्या) ब्रह्मा, विष्णु और महेश की माया जो बड़ी भारी होती है वह भी भरत की मति को (फेरने की कौन कहे) देख तक नहीं सकती । भरत की ऐसी बुद्धि को तुम कहते हो कि धोखे में डाल दो क्या चाँदनी सूर्य की चोरी कर सकती है ? (अर्थात् जो चाँदनी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित चंद्रमा की ज्योति है वह सूर्य को चुराना चाहे तो यह त्रिकाल में असम्भव है । ठीक उसी तरह मैं भरत की बुद्धि में कोई हेर फेर नहीं कर सकती)

अलंकार—काव्यार्थापति, वक्रोक्ति, अर्थान्तरन्यास ।

भरत हृदय सियराम निवासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनिप्रकासू ।
असकहि सारदगइ बिधि लोका । बिबुधबिकल निसिमानहु कोका ।

शब्दार्थ—तिमिर = अंधकार । तरनि = सूर्य । विधिलोक = ब्रह्मलोक । बिबुध = देवता । निसि = रात । कोक = चक्रवाक ।

भावार्थ—भरत के हृदय में सीताराम का निवास है । क्या वहाँ अंधकार जासकता है जहाँ सूर्य का प्रकाश हो ? (अर्थात् भरत जी के हृदय में राम बसते हैं मैं किसी प्रकार उन पर अपनी माया चला नहीं सकती क्योंकि जिसके हृदय में राम रहते हैं उसके विचार एक से होते हैं बदलते नहीं) ऐसा कहकर सरस्वती जी ब्रह्मलोक को चली गयीं । तब देवता लोग ऐसे घबड़ाये जैसे रात में चक्रवाक व्याकुल होता है । (चक्रवाक—चकवा, चकई रात में बियुक्त रहते हैं)

दो०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल भय, भ्रम, अरति, उचाटु॥२९६॥

शब्दार्थ—कुठाटु=कुप्रबन्ध। माया प्रपंच=माया जाल। अरति=दुःख। उचाटु=उच्चाटन।

भावार्थ—स्वार्थी और मलीन मन देवताओं ने बुरी राय करके बुरा प्रबन्ध किया। उन्होंने अपना भारी माया जाल फैलाया, जिससे लोगों के मन में भय, भ्रम, दुःख और उच्चाटण होने लगा।

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सब काजु अकाजू।
गए जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रघुकुल दीपा।

शब्दार्थ—सुरराजू=इन्द्र। रघुकुल दीपा=रघुवंश में दीपवत् अर्थात् श्रेष्ठ।

भावार्थ—यह कुचाल करके देवराज इन्द्र सोचते हैं कि हमारा कार्य या अकार्य सब भरत के हाथ में हैं (अर्थात् भरत चाहें तो राम जी को रोक सकते हैं, नहीं लिवा ले जा सकते हैं) राजा जनक राम जी के पास गये, रघुवंश में श्रेष्ठ राम जी ने सबका सम्मान किया।

(दूसरा दरबार)

समय समाज धरम अविरोधा। बोले तब रघुवंश-पुरोधा॥
जनक भरत संवाद सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥

शब्दार्थ—अविरोधा=अनुकूल। रघुवंश पुरोधा=वशिष्ट जी। कहाउति=कथन, वक्तव्य। सुनाई=सुनाकर।

भावार्थ—तब रघुवंश के पुरोहित वशिष्ट जी समय, समाज और धर्म के अनुकूल बोले। उन्होंने जनक और भरत का संवाद सुनाकर भरत जी का सुन्दर वक्तव्य कह सुनाया।

तात राम जस आयसु देहू। सो सबु करइँ मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुगपानी। बोले सत्य सरल मृदुबानी॥

शब्दार्थ—जस=जैसा। मत=बिचार, राय। जुग=दोनों।

भावार्थ—हे तात राम! हमारी राय तो यह है कि तुम जैसी आज्ञा दो वैसा सब लोग करें। इसे सुनकर रामचन्द्र जी दोनों हाथ जोड़कर सत्य, सरल और नम्र वाणी बोले—

विद्यमान आपुन मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥

शब्दार्थ—विद्यमान=उपस्थित रहते। आपुन=आपके। भदेसू=भद्दा।

भावार्थ—हे नाथ! आपके और मिथिलेश जी के उपस्थित रहते, मेरा कहना सब प्रकार से भद्दा है। आप की और राजा साहब (जनक) की जो आज्ञा हो—आपकी सौगंध—वही ठीक और मान्य है। (अर्थात् जो आप और जनक जी कहेंगे उसी को सब मानेंगे, मैं भी मानूँगा)

दो०—राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न उतरु देत॥ २९७॥

शब्दार्थ—सपथ=सौगंध। उत्तर=जवाब।

भावार्थ—राम जी की यह सौगंध सुनकर वशिष्ट जी और जनक जी सभा समेत सकुच गये। सब लोग भरत जी का मुख देखने लगे, किसी से कुछ उत्तर नहीं देते बनता।

सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरज भारी॥
कुसमउ देखि सनेह सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥*

शब्दार्थ—सँभारा=सँभार लिया। बिंधि=विन्ध्याचल पर्वत। घटज=(घट=घड़ा+ज=पैदा होने वाला) घड़े से पैदा होने वाले अगस्त्यजी। (विशेष) एक बार विन्ध्याचल सूर्य का मार्ग रोकने के लिये बढ़ रहा था। वह इतना बड़ा कि शंका होने लगी कि यह सूर्य को छिपा देगा। तब अगस्त्य जी ने उसे निवारण किया था जिससे वह बढ़ न सका।

भावार्थ—भरत जी ने जब देखा कि सभा संकोच में पड़ी है कुछ उत्तर

---

* कथा परिशिष्ट में देखिये।

नहीं देती, तो रामबंधु (भरत) ने हृदय में भारी धैर्य धारण किया और कुअवसर देखकर अपने बढ़ते हुए प्रेम को सँभाला (उस प्रेम को बढ़ने नहीं दिया, वहीं दबा दिया) जैसे बढ़ते हुये विन्ध्याचल को अगस्त्य जी ने निवारण किया था (रोका था)

अलंकार—उदाहरण।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुनगन जगजोनी।
भरत बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला।*

शब्दार्थ—कनक-लोचन = हिरण्याक्ष। छोनी = पृथ्वी। हरी = छीन ली थी। जगजोनी = ब्रह्मा। बराह = शूकर। बिसाला = भारी। अनायास = बिना श्रम। उधरी = उद्धार किया।

(विशेष) हिरण्याक्ष एक बार पृथ्वी हर ले गया था। तब भगवान् ने बाराहावतार लेकर उसका उद्धार किया था। इसी कथा को लेकर यहां रूपक बांधा गया है।

भावार्थ—जब शोक रूपी हिरण्याक्ष ने, मति रूपी पृथ्वी को हर लिया (अर्थात् शोक के कारण किसी की बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही थी कि राम जी की बात का क्या उत्तर दें) उस समय विमल गुणों के विधाता रूपी भरत के विवेक रूपी बाराह ने अनायास ही उसका उद्धार किया (अर्थात् जिस प्रकार हिरण्याक्ष द्वारा पृथ्वी हरण होने पर बाराह होकर भगवान ने उसका उद्धार किया था, उसी प्रकार शोक के कारण जो सबकी बुद्धि मंद पड़ गयी थी उसे भरत जी ने अपने विवेक से फिर पहले की ही अवस्था में कर दिया, अर्थात् भरत जी जो कुछ बोले उससे लोगों का शोक जाता रहा और शोक से संतप्त बुद्धि शान्त होगयी)

(नोट)—यहां "विमल गुण गण जगजोनी" ये शब्द मेरी सम्मति से 'भरत' का विशेषण हैं। इसके अर्थ में विद्वानों के मत भिन्न भिन्न हैं।

अलंकार—परंपरित रूपक।

---

* विशेष कथा परिशिष्ट में देखिये।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥

शब्दार्थ—निहोरे=विनय की। छमब=क्षमा कीजियेगा। बदन=मुख। मृदु=मुलायम।

भावार्थ—भरत जी ने सबको प्रणाम करके हाथ जोड़े और राम जी, राजा जनक, वशिष्ठ जी तथा अन्य सज्जनों से विनय की कि आज मैं अत्यन्त अनुचित (बात) कह रहा हूं, इसे आप क्षमा कीजियेगा। मेरा मुख तो मृदु है पर वचन इससे कठोर निकलते हैं।

अलंकार—विषम।

हिय सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥

शब्दार्थ—सारदा=सरस्वती, वाणी। मानस=हृदय। नय=नीति। भारती=वाणी। मंजु=सुन्दर। मराली=हंसिनी।

भावार्थ—भरत जी ने हृदय में स्मरण किया तो सुन्दर वाणी मानस से मुखारविंद में आगई (अर्थात् जो कुछ विचार हृदय में थे वे वाक्य रूप में मुख में आगये—केवल कहने की देर रह गयी) भरत जी की वह वाणी विमल विवेक, धर्म और नीति से युक्त सुन्दर हंसिनी के समान है।

अलंकार—रूपक, वाचकलुप्तोपमा (उत्तरार्द्ध में)

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराजु॥२६८॥

शब्दार्थ—निरखि=(सं० निरीक्षन) देखकर, विचार कर।

भावार्थ—भरत जी ने पहले विवेक दृष्टि से स्नेह-शिथिल समाज को देखा, फिर सीता और राम जी का स्मरण कर तथा सबको प्रणाम करके बोले—

प्रभु! पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परम हित अन्तरजामी।
सरल सुसाहिब सील निधानू। प्रनतपाल सरबग्य सुजानू।

समरथ सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन अघहारी।
स्वामि! गोसाइंहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं साँइँ द्रोहाई।

शब्दार्थ—सुहृद = मित्र। गुनगाहकु = गुन ग्रहण करने वाले। अघ = पाप। गोसाइँ = मालिक। दोहाई = (द्रोहाई) द्रोह।

भावार्थ—हे प्रभु! आप हमारे पिता, माता, मित्र, गुरु और स्वामी हैं। आप पूज्य, परम हितैषी और अन्तर्यामी हैं। आप बड़े सरल, और शीलवान् स्वामी हैं। आप प्रनतपाल, सर्वज्ञ और चतुर हैं, आप समर्थ और शरणागतों के हितुआ हैं। आप गुनों को ग्रहण करने वाले, और अवगुण तथा पाप को हरण करने वाले हैं। हे स्वामी! आप अपने ही उपमान हैं (आप का दूसरा उपमान है ही नहीं) और स्वामी से द्रोह करने में अपने समान मैं ही हूं (मैं ऐसा स्वामी द्रोही हूं कि मेरे समान दूसरा है ही नहीं)

(नोट)—खूब स्मरण रखना चाहिए कि तुलसीदास जी ने इस कांडमें 'दोहाई' शब्द 'द्रोह' के अर्थ में कई जगह प्रयोग किया है।

अलंकार—तुल्ययोगिता, उल्लेख और अनन्वय।

प्रभु पितु वचन मोहवस पेली। आयेउँ इहां समाज सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिअ, अमरपद, माहुर, मीचू॥
राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सब विधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

शब्दार्थ—मोहवस = गलती से। पेली = टालकर। सकेली = बटोरकर, एकत्रितकरके। पोच = बुरा। अमिअ = अमृत। माहुर = विष। मीचू = मृत्यु। ढिठाई = धृष्टता।

भावार्थ—क्योंकि मैं मोह वश होकर आपकी और पिता जी की आज्ञा टालकर तथा संपूर्ण समाज एकत्रित करके यहाँ आया (यही स्वामि द्रोहाई का प्रमाण है)। संसार में भले बुरे, ऊँचे-नीचे अमृत और अमरत्व तथा विष और मृत्यु (सभीवस्तुएं हैं, पर) राम जी की आज्ञा को कोई मनसे भी टाल दे ऐसा व्यक्ति तो मैंने नतो देखा न सुना। सो मैंने सब प्रकार से

धृष्टता की (कि आपकी आज्ञा का उल्लंघन करके यहाँ आया) फिर भी आपने मेरी धृष्टता को धृष्टता न मानकर उसे स्नेह और सेवकाई मान लिया (ऐसा कौन स्वामी करेगा, क्या यह स्वामी द्रोह नहीं है)

(नोट)—रामजी ने सुमंतद्वारा भरत को संदेसा भेजा था—"कहब सँदेस भरत के आये। नीति न तजब राजपद पाये"। यही रामाज्ञा है कि राज्य करना, और दशरथ जी का वचन है कि "देउँ भरत कहँ राज बजाई" सो दोनों की आज्ञाएं मैंने भंग की हैं, इससे बढ़कर और 'स्वामिद्रोह' क्या होगा। आज्ञा उलंघन करना ही सेवक वा पुत्र के लिये महा पाप है।

दो०—कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहुँओर ॥ २९९ ॥

शब्दार्थ=भलाई=भलमनसाहत। दूषन=दोष। चारु=सुन्दर।

भावार्थ—हे नाथ! आपने अपनी कृपा और भलमनसाहत से मेरा भला ही किया कि मेरे दोष भी भूषण समान हो गये, तथा मेरा यश चारो ओर फैल गया (आपके वचनों से ही लोगों ने जाना कि भरत एक अच्छा भाई और उत्तम सेवक है)

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत विदित निगमागम गाई ॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहे आए। सकृत प्रनाम किए अपनाए ॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने ॥

शब्दार्थ—सुबानी=सुन्दर स्वभाव। निगमागम=वेदशास्त्र। निसील=जिसमें शील न हो। निरीस=अनाथ। निसंकी=शंका हीन, असंक। सकृत=एक बार।

भावार्थ—आपकी रीति, सुन्दर स्वभाव और बड़प्पन संसार में विदित हैं और वेद तथा शास्त्रों में उसका बखान किया है। क्रूर, कुटिल, खल, दुर्बुद्धि, कलंकी, नीच, शील हीन, अनाथ और अशंक मनुष्यों को भी शरण में आया सुनकर और केवल एक बार प्रणाम करने से ही आपने अपना

लिया है। फिर उनके दोषों को देखकर भी कभी हृदय में उनका विचार नहीं किया, और उनके गुणों को सुनकर ही साधु समाज में उनके उन गुणों का बखान किया है (आपमें इतनी दयालुता है)

(नोट)—दोषों का देखकर भी उनकी ओर ध्यान न देना, और सुने सुनाये गुणों की प्रशंसा करना, बड़े महत्व की बात है। भक्तों को स्मरण रखना चाहिये कि यही रामजी की प्रथम बिशेषता है।

को साहिब सेवकहिं नेवाजी। आपु समान साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने॥

शब्दार्थ—नेवाजी = कृपा करके (फारसी शब्द 'निवाज़िश' से बना है)

भावार्थ—कौन ऐसा मालिक है जो सेवकों पर इतनी कृपा करे कि अपने समान ही उनका सब साज सजा दे (कोई नहीं) आप अपने कर्तृत्व को तो स्वप्न में भी नहीं समझते, पर सेवक को संकोच न हो इसी का सोच आपके हृदय में बराबर बना रहता है।

(नोट) राम जी की यह दूसरी विशेषता है।

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत, सुक पाठ प्रवीना। गति गुन नट पाठक आधीना॥

शब्दार्थ—कोपी = (सं०—कः अपि) कोई भी। भुजा उठाइ = बाँह उठाकर—(प्रण करने की मुद्रा) पन रोपि कहउँ = निश्चय पूर्वक कहता हूं। सुक = तोता। गति = नाच। गुन = पाठ प्रवीणता।

भावार्थ—ऐसे स्वामी तो आप ही हैं (कि सेवक को अपने समान का बना दें और कोई कष्ट न होने दें) दूसरा तो कोई नहीं है। मैं बाँह उठा कर निश्चय पूर्वक इस बात को कहता हूं। पशु नाचता है और तोता पढ़ने में चतुर हो जाता है। सो पशु की नाचने की गति और सुग्गे की पाठ-प्रवीणता ये दोनों नट और पढ़ानेवाले के अधीन हैं। (अर्थात् नट डोरी को जैसे जैसे घुमावेगा पशु (बंदर, भालु आदि) उसी प्रकार नाचेगा, तथा तोते को पढ़ानेवाला जो कुछ सिखावेगा वह वही पढ़ेगा। परन्तु

प्रशंसा होती है पशु और सुग्गे की, इसी प्रकार सेवकों के सारे यश और विभव का कारण हैं तो वास्तव में आप, पर प्रशंसा होती है दासों की।

अलंकार—यथासंख्य।

दो०—यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिर मौर।
को कृपालु विनु पालिहै, विरदावलि वरजोर॥ ३०० ॥

शब्दार्थ—सुधारि=ठीक करके। जन=भक्त। सिरमौर=श्रेष्ठ। विरदावलि=बाना। बरजोर=बड़ा जबर्दस्त।

भावार्थ—इसी प्रकार (जिस प्रकार नट पशुओं को और पाठक तोतों को) सुधार कर और सम्मान करके आपने दासों को साधुओं में श्रेष्ठ कर दिया है, अतएव कृपालु (आप) के अतिरिक्त इस बड़ी ज़बरदस्त विरदावली का पालन अन्य कौन करैगा? (कोई नहीं)

अलंकार—उदाहरण और वक्रोक्ति।

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा॥

शब्दार्थ—बाल सुभाएँ=बाल स्वभाव से। बाएँ लाइ=न मान कर। हेरि=देखकर।

भावार्थ—शोक से, स्नेह से अथवा बाल स्वभाव से (जिस से समझिये तिस से) मैं आप की आज्ञा का उल्लङ्घन करके यहाँ आया। तब भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर (अपने बड़प्पन पर विचार करके) सब प्रकार से मेरी बुराई को गुण ही मान लिया।

देखेउँ पाँय सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़े समाज विलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू॥

शब्दार्थ—चूक=भूल, गलती।

भावार्थ—(यहाँ आकर) मैंने इन सुमङ्गल-मूल चरणों का दर्शन पाया और स्वामी को सहज ही अनुकूल पाया। इस बड़ी समाज में अपने भाग्य को भी देखा कि मेरी चूक तो बड़ी भारी है पर मालिक प्रेम ही करते

है (इससे चढ़ कर सौभाग्य और क्या हो सकता है)

अलङ्कार—व्याघात ।

कृपा अनुग्रहु अंबु अघाई । कीन्हि कृपा निधि सब अधिकाई ॥
राखा मोर दुलार गोसाईं । अपने सील सुभाय भलाईं ॥

शब्दार्थ—कृपा = अकारण प्रेम । अनुग्रहु = अंगीकार करना, अपना बनाना । अम्बु = जल । अघाई = अघा गये, मैं सन्तुष्ट हो गया । दुलार = (सं दुःलालन) प्यार ।

भावार्थ—हे कृपानिधि ! मैं आप की कृपा और आप के अनुग्रह से अघा गया (खूब तृप्त हो गया) यह सब बात आपने अपनी अधिकता (बड़ाई) से की है (क्योंकि मेरे ऊपर कृपा करना न्यायतः उचित नहीं था दंड देना आवश्यक था) हे स्वामी आपने अपने शील, और अपनी सुन्दर भावना, अपनी भलमनसाहत से ऐसा किया है (मैं तो इन बातों का अधिकारी न था)

(नोट)—अन्य प्रतियों में 'अम्बु' के स्थान में 'अङ्ग' पाठ है । पर मुझे यही पाठ उत्तम जँचता हैं ।

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई । स्वामि समाज सकोच विहाई ॥
अविनय विनय जथारुचि वानी । छमव देव अति आरत जानी ॥

शब्दार्थ—ढिठाई = धृष्टता । विहाई = छोड़ कर । आरत = दुखी ।

भावार्थ—हे नाथ ! मैं ने स्वामी और समाज का सब संकोच छोड़ कर बड़ी भारी धृष्टता की है । मेरी विनयपूर्ण या अविनयमय वाणी को हे देव ! मुझे दुखी जानकर क्षमा करें । (मैं दुखी हूं, मैं नम्र या कठोर जैसा बन पड़ेगा कहूंगा, आप क्षमा करिगेगा क्योंकि "रहत न आरत के चित चेतू" ।)

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहिं, बहुत कहब बड़ि खोरि ।
आयसु देइअ देव अब, सबुइ सुधारिअ मोरि ॥ ३०१ ॥

शब्दार्थ—सुहृद = भला । सुजान = चतुर । खोरि = दोष ।

भावार्थ—हे देव ! भले और चतुर मालिक से बहुत कहना भी बड़ा दोष है। आप मुझे आज्ञा देकर मेरा सब कुछ सुधारिये (अर्थात् आपकी आज्ञा मानने में ही मेरी भलाई है आप मुझे आज्ञा दीजिये)

प्रभु-पद-पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुखसींवँ सुहाई॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥

शब्दार्थ—पदुम=कमल। पराग=धूल। दोहाई=सौगन्ध। सुकृत =पुण्य।

भावार्थ—मैं प्रभु की चरण-कमल रज की सौगन्ध, जो सत्य, पुण्य और सुख की सुन्दर सीमा है, करके अपने हृदय की बात जो मुझे जागते सोते तथा स्वप्न में भी रुचती है कहता हूं।

(नोट) मेरी सम्मति से "सत्य सुकृति सुख सींव सोहाई" ये शब्द 'दोहाई' के विशेषण हैं 'पराग' के नहीं जैसा अन्य टीकाकारों ने माने हैं।

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावइ देवा॥

शब्दार्थ—प्रसादु=प्रसन्न होकर दी हुई वस्तु। जन=दास।

भावार्थ—स्वाभाविक स्नेह से सब स्वार्थ, छल और चारो फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष,) तक को भी त्याग कर स्वामी की सेवा करना (यही मेरे हृदय की रुचि है) हे देव ! आज्ञा के समान स्वामी की और कोई सेवा नहीं है, यह दास भी वही प्रसाद पावे (अर्थात् आप मुझे जो आज्ञा दें मैं उसके अनुसार कार्य करूँ)

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेह न सो कहि जाई॥

शब्दार्थ—बिलोचन=दोनों नेत्र। बारी=जल। गहे=पकड़ लिए।

भावार्थ—ऐसा कह कर भरत जी प्रेम में अत्यन्त मग्न हो गये। शरीर में रोमांच हो आया और दोनों नेत्रों में जल भर आया। उन्हों ने अकुला कर राम जी के चरण-कमल पकड़ लिए। वह समय और वह स्नेह कहा नहीं जा सकता।

कृपासिंधु सनमानि सुवानी। बैठाए समीप गहि पानी॥
भरत विनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥

शब्दार्थ—पानी=हाथ।

भावार्थ—कृपासिंधु रामचन्द्र जी ने सुवाणी से आदर पूर्वक भरत जी को हाथ पकड़ कर अपने पास बैठाया। भरत की बिनय सुन कर और उनका स्वभाव देखकर सम्पूर्ण सभा और राम जी स्नेह से शिथिल हो गये।

छन्द—रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी।
मन महुँ सराहत भरत-भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहिं प्रसंसत विबुध वरषत सुमन मानस मलिन से।
'तुलसी' विकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

शब्दार्थ—मिथिला धनी=मिथिला के स्वामी, राजा जनक। घनी=बड़ी। सुमन=पुष्प। निशागम=संध्या समय। नलिन=कमल।

भावार्थ—राम जी, सम्पूर्ण साधु-समाज, वशिष्ठ जी और राजा जनक सब स्नेह से शिथिल हो गये। ये लोग मन में भरत के भ्रातृत्व और भक्ति की घनी महिमा की खूब प्रशंसा करते हैं। देवता भी भरत जी की प्रशंसा करते हैं और मलीन मन से पुष्प-वृष्टि करते जाते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि भरत के ये वचन सुनकर सब लोग ऐसे व्याकुल हैं जैसे रात्रि आने के समय संकुचित होते हुए कमल बेचैन होते हैं।

सो०—देखि दुखारी दीन दुहुँ समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत॥ ३०२॥

शब्दार्थ—मघवा=इन्द्र। मुए=मरे हुए को।

भावार्थ—दोनों राज समाजों के स्त्री-पुरुषों को दुखी और दीन देखकर महा मलीन (मनवाला) इन्द्र मरे हुए को भी मार कर मंगल चाहता है (अर्थात् एक तो लोग यों ही व्याकुल हैं दूसरे इन्द्र उन पर अपनी माया डालना चाहता है)

कपट-कुचालि सींवँ सुरराजू। पर-अकाज प्रिय आपन काजू॥

काक समान पाक रिपु रीती । छली मलीन कतहुँ न प्रतीती ॥

शब्दार्थ—सुर राजू=देवराज इन्द्र। पर अकाज=दूसरे का बुरा। काक=कौआ। पाकरिपु=इन्द्र। प्रतीती=विश्वास।

भावार्थ—देवराज इन्द्र कपट और कुचाल की तो सीमा ही हैं (अर्थात् इन्द्र के समान कपटी और कुचाली और कोई नहीं) उन्हें दूसरे का अकार्य (बुरा) और अपना कार्य (भला) प्रिय है। (अर्थात् इन्द्र दूसरे का बुरा और अपना भलाही किया करते हैं) इन्द्र की रीति कौवे के समान है, यह बड़ा छली और मलीन है, इसे किसी पर विश्वास ही नहीं होता।

प्रथम कुमत करि कपटु सकेला। सो उचाटु सब के शिर मेला॥
सुर माया सब लोग विमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे॥

शब्दार्थ—कपटु सकेला=कपट एकत्र किया। उचाटु=उच्चाटन। सब के सिर=सब के ऊपर। मेला=डाल दिया। अतिसय=अत्यन्त।

भावार्थ—पहले उसने कुमन्त्र करके कपट एकत्र किया था। अब मौका पाकर सब के ऊपर उच्चाटन डाल दिया (उच्चाटन प्रयोग किया) सब लोग देवताओं की माया से मोहित तो हो गये, परन्तु राम प्रेम से उनका कोई बड़ा बिछोह नहीं हुआ (अर्थात् माया में मोहित हो जाने पर भी उन्हें राम प्रेम भूला नहीं)

भए उचाट बस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सुहाहीं॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित-सिंधु संगम जिमि बारी॥

शब्दार्थ—रुचि=इच्छा। सदन=घर। मनोगति=मनकी चाल। संगम=मिलाप। वारी=जल।

भावार्थ—सब लोग उच्चाटन के वश में हो गये हैं, उनका मन स्थिर नहीं है (चित डावाँडोल है) क्षण भर में वन की इच्छा होती है और क्षण भर बाद घर भाने लगता है (कभी राम के साथ रहने की इच्छा होती है कभी घर लौट जाने की) इस दुविधामय मनोवृत्ति से प्रजा बड़ी दुखी है, जैसे नदी और समुद्र संगम का जल इधर उधर हुआ करता है,

अर्थात् जिस प्रकार नदी और समुद्र संगम का जल कभी इधर कभी उधर आया जाया करता है उसी प्रकार प्रजा कभी यहाँ रहने और कभी घर जाने के लिए व्याकुल हो उठती है)

दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं । एक एक सन मरम न कहहीं ॥
लखि हिय हँसिकह कृपा निधानू ॥ सरिस स्वान मघवान जुवानू ॥

शब्दार्थ - दुचित = दुचित्तापन । सरिस = समान । स्वान = कुत्ता । मघवान = इन्द्र । जुवानू = युवा ।

भावार्थ—वे लोग दुचित्तापन से कहीं भी संतोष नहीं पाते । एक दूसरे से अपना मर्म (मन की गुप्त बात) नहीं कहते (कि भाई ! इस प्रकार चित्त व्याकुल हैं) कृपा निधान रामचन्द्र जी ने यह देख कर हृदय में हँस कर कहा—कि कुत्ता, इन्द्र और युवा समान वृत्ति वाले होते हैं ।

दो०—भरतु जनकु मुनिजन सचिउ, साधु सचेत बिहाइ ।
लागि देव माया सबहिं, जथा योग जन पाइ ॥ ३०३ ॥

शब्दार्थ—सचेत = चैतन्य, सज्ञान ।

भावार्थ—भरत, जनक, मुनि-गण, मंत्री, साधु और चैतन्य लोगों को छोड़ कर सब को देव माया लगी । जो जैसा था उसपर देव माया वैसे ही रूप से लगी (अर्थात् जो अधिक मूर्ख था उस पर इस माया का बड़ा प्रभाव पड़ा जो कुछ चैतन्य था उसको कम लगी)

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे । निज सनेह, सुरपति छल भारे ॥
सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री । भरत भगति सब कइ मति जंत्री ॥

शब्दार्थ—महिसुर = ब्राह्मण । जंत्री = ताला लगा दिया ।

भावार्थ—कृपा सागर राम जी ने लोगों को अपने स्नेह और इन्द्र के छल से अत्यन्त दुखी देखा । सभा, राजा, जनक, वशिष्ठ जी, ब्राह्मणों और मंत्रियों की बुद्धि पर भरत जी की भक्ति ने ताला लगा दिया (अर्थात् किसी को कुछ सूझता ही नहीं कि क्या कहें)

रामहिं चितवत चित्र लिखे से । सकुचत बोलत बचन सिखे से ॥

भरत प्रीति नति विनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥

शब्दार्थ—चितवत=देखते हैं। चित्र लिखे से=चित्र के समान। सिखे से=सिखाये हुए के समान। नति=नम्रता।

भावार्थ—सब लोग चित्रवत राम की ओर देख रहे हैं। वे संकुचित होते हैं और सिखाये हुए के समान वचन बोलते हैं (अर्थात् ऐसी बातें बोलते हैं मानो इन्हें रट कर आये हैं) भरत जी की प्रीति, नम्रता, विनय और बड़प्पन सुनने में तो सुख देने वाले हैं पर इनका वर्णन करना कठिन है।

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी।

शब्दार्थ—लवलेसू=कणमात्र। हुलसी=हुलसित हुई, उत्पन्न हुई।

भावार्थ—जिसकी भक्ति का लवलेश मात्र देखकर मुनि गण और राजा जनक (ऐसे लोग) प्रेम मग्न हैं, उसकी महिमा 'तुलसी' (तुच्छता बोधक शब्द) कैसे कह सकता है? उनकी स्वाभाविक भक्ति से हमारे हृदय में सुबुद्धि अवश्य उत्पन्न हो गयी है (पर कहने का सामर्थ्य नहीं है)

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबि कुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मतिगति बालवचन की नाईं॥

शब्दार्थ—कानि=मर्यादा। रुचि=इच्छा। नाईं=(न्याय) समान।

भावार्थ—मेरी मति अपने को छोटी और भरत की महिमा को बड़ी जान कर और कवियों की मर्यादा की कानि मानकर सकुच गयी है। वह उस महिमा के गुण नहीं कह सकती यद्यपि हृदय में कहने की अत्यंत रुचि है। मेरी मतिकी गति बच्चों की बातों की तरह हो गयी है। (अर्थात भौचक सी है कुछ कहते नहीं बनता)

दो०—भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोर कुमारि॥
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि॥३०४॥

शब्दार्थ—बिमल=निर्मल, स्वच्छ। चकोर कुमारि=चकोरी। जन=दास। नभ=आकाश।

भावार्थ—भरत जी का निर्मल यश निर्मल चन्द्रमा है और सुन्दर बुद्धि ही चकोरी है (जो इस विमल चन्द्र को) दासों के विमल हृदयरूपी आकाश में उदित देखकर एकटक देख रही है। (अर्थात् जिस प्रकार आकाश में उदित चन्द्रमा को उदित हुआ देखकर चकोरी उसे एकटक देखा करती है उसीप्रकार भरत का यश देखकर सुबुद्धि स्तब्ध है वह कुछ कह नहीं सकती उस पर मोहित हो गयी है)

भरत सुभाउ न सुगम निगमहू। लघुमति चापलता कवि छमहू॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीयराम पद होइ न रत को॥

शब्दार्थ—निगम = वेद। लघुमति = छोटी बुद्धि। सतिभाउ = सच्चा भाव। रत = लीन।

भावार्थ—भरत जी के स्वभाव का वर्णन वेद के लिए भी सुगम नहीं है, मैं तो छोटी बुद्धि का हूं कवि-गण मेरी चंचलता को क्षमा करेंगे। भरत जी के सच्चे भाव को कहते सुनते कौन सीता-राम-पद में लीन नहीं होता (अर्थात् भरत जी की कथा सुनकर सभी सीता और रामके पदोंमें प्रेम करने लगते हैं)

सुमिरत भरतहिं प्रेमु राम को। जेहि न सुलभ तेहि सरिस वाम को॥
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की॥
धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर॥
देस कालु लखि समय समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू॥
बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनामु सुनत ससि रसु से॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक वेद विद प्रेम प्रवीना॥

शब्दार्थ—बाम = टेढ़ा। जन = दास। जी = हृदय। धरम धुरीन = धर्म की धुरा धारण करने वाले। नय नागर = नीति-निपुण। बानि सरबसु से = बाणी के लिए सर्वस्व से अर्थात् सरस्वती की शोभा। ससि रसु = अमृत। विद = जानने वाले।

भावार्थ—भरत जी का स्मरण करने से रामजी का प्रेम जिसे सुलभ न हो

उसके समान वाम (अभागी) कौन है? (कोई नहीं)। दयालु राम जी ने सबकी दशा देखी। चतुर रामजी भक्त के हृदय की बात जान गये। तब धर्मधुरीण, नीति निपुण तथा सत्य, प्रेम, शील और सुखके समुद्र एवं नीति और प्रीति का पालन करने वाले रामचन्द्रजी देश, काल अवसर और समाज को विचार कर, सरस्वती के शृंगार के समान, वचन बोले, जो परिणाम में हितकारक और सुनने में अमृत के समान (मधुर) थे—हे तात भरत! तुमतो धर्मधुरीण, लोक वेद के पंडित और प्रेम में प्रवीण हो।

दो०—करम वचन मानस विमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु समाज लघुबंधु गुन कुसमउ किमि कहि जात॥३०५॥

शब्दार्थ—मानस = मन। गुरु समाज = बड़ों का समाज।

भावार्थ—हे तात! तुम कर्म, वचन और मनसे स्वच्छ हो, तुम्हीं स्वयं अपने समान हो (तुम्हारा उपमान और नहीं है) यह बड़े लोगों का समाज है. और कुसमय है, इस अवसर पर छोटे भाई के गुण कैसे कहे जा सक्ते हैं? (अर्थात् इस समय तुम्हारी बड़ाई करना उचित नहीं है तुम बड़े अच्छे हो)

जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध-पितु कीरति, प्रीती॥
समउ, समाज लाज गुरुजनकी। उदासीन, हित, अनहित मनकी॥

शब्दार्थ—तरनिकुल = सूर्यवंश। सत्यसंध = सत्य को साधने वाले।

भावार्थ—हे तात! तुम सूर्यवंश की रीति, सत्यसंध पिता जी की कीर्ति और प्रीति, समय, समाज और बड़े लोगों की लाज, तथा उदासीन और मित्र शत्रु आदि सबके मनकी बात जानते ही हो।

तुम्हहिं विदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहिं सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥

शब्दार्थ—करमू = कर्तव्य।

भावार्थ—तुम्हें सब का कर्तव्य भी ज्ञात है। अपना और मेरा परम

हित और धर्म भी तुम जानते हो। यद्यपि मुझे तुम्हारा सब प्रकार से भरोसा है, तो भी मैं अवसर के अनुसार कुछ कहता हूं।

तात! तात बिनु बात हमारी। केवल कुल गुरु कृपा सुधारी॥
नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सब होत खुआरू॥

शब्दार्थ—तात = (संबोधन) तात = पिता । नतरु = नहीं तो। खुआरू = (फारसी ख्वार) = नष्ट।

भावार्थ—हे तात! पिता जी के विना हमारी बात केवल कुलगुरु (वशिष्ठजी) की कृपा ने ही सुधारी है। नहीं तो प्रजा, नगरनिवासी लोग तथा हम लोगों सहित सारा कुटुम्ब सभी नष्ट हो जाते।

जो बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥

शब्दार्थ—अथव = (सं० अस्त) अस्त हो जाय, डूब जाय। दिनेसू = सूर्य।

भावार्थ—यदि विना समय के ही सूर्य डूब जाय तो कहो संसार में किस को क्लेश नहीं होगा? (सभी को क्लेश होगा) इसी प्रकार का उत्पात विधाता ने किया (अर्थात् कुसमय में ही पिता जी, जो सूर्यवंश में सूर्यवत थे, स्वर्गवासी हुए) किन्तु वशिष्ठ जी और मिथिलेश जी ने सबकुछ बचा लिया (किसी को क्लेश नहीं होने दिया)

दो०—राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुरु प्रभाउ पालिहि सबहिं भल होइहि परिनाम॥३०६॥

शब्दार्थ—पति = प्रतिष्ठा।

भावार्थ—सम्पूर्ण राज काज, लज्जा; प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन और गृह सबको गुरु जी का प्रभाव ही पालेगा। परिणाम भला ही होगा (घबड़ाओ मत)

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरु प्रसाद रखवारा॥
मातु-पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधरु सेसू॥

शब्दार्थ—प्रसाद = प्रसन्नता, कृपा। रखवारा = रक्षण करने वाला। निदेसू = आज्ञा। सेसू = शेषनाग।

भावार्थ—सम्पूर्ण समाज सहित तुम्हारा और हमारा घर और वनमें गुरु जी का प्रसाद ही रक्षक है। (अर्थात् गुरु जी की कृपा से सबकी रक्षा होगी, हम भी कुशल से रहेंगे तुम भी कुशल से रहोगे) माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा ही सम्पूर्ण धर्मरूपी पृथ्वी को धारण करने के लिए शेषनागवत् है। (अर्थात माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा मानने से अपने धर्म का निर्वाह स्वयं हो जाता है, इसमें अड़चन पड़ती ही नहीं, क्योंकि उनकी आज्ञा ही इसधर्म को दृष्टिकोण में रखकर होती है)

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥
साधन एक सकल सिधि देनी। कीरति, सुगति, भूतिमय बेनी॥

शब्दार्थ—तरनि कुल = सूर्यवंश। भूति = ऐश्वर्य। बेनी = त्रिवेणी।

भावार्थ—हे तात! वही तुम भी करो और मुझ से भी कराओ, तथा सूर्यवंश के पालक बनो (अर्थात् बड़ों की आज्ञा तुम मानो—पिता का कहा करो मुझे भी उसी के अनुसार करने दो—तुम राज्य करो, मैं वन में रहूं, इस प्रकार सूर्यवंश का पालन करो) (बड़ों को आज्ञा-पालन की) एक ही साधना सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाली और कीर्ति, सुन्दर गति तथा ऐश्वर्य की त्रिवेणी है (अर्थात् इसके करने से कीर्ति होगी, सुन्दर गति मिलेगी और ऐश्वर्य बढ़ेगा)

सो बिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी॥
बाँटिय बिपति सबहिंमिलि भाई। तुमहिंअवधिभरिबड़िकठिनाई॥

शब्दार्थ—अवधि = मियाद।

भावार्थ—यह विचार कर और भारी संकट सहकर तुम प्रजा और कुटुम्ब को सुखी करो। यद्यपि मैं जानता हूं कि तुमको इससे अवधि भर (चौदह वर्ष तक) बड़ी कठिनाई होगी, तो भी हे भाई! उचित ऐसाही है कि सब लोग मिलकर इस विपति को बाँट लें (थोड़ा थोड़ा कष्ट सब सहें)

जानि तुम्हहिं मृदु कहउँ कठोरा। कुसमउ तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठायं सुबंधु सहाये। ओड़ियहि हाथ असनि के घाये॥

शब्दार्थ—मृदु = मुलायम। कुठायं = (सं० कुस्थल) बुरे स्थान पर, भारी विपत्ति में। सुबन्धु = अच्छे भाई। सहाये = सहायक। ओड़ियहि = आड़ करता है। असनि = वज्र। घाये = चोट।

भावार्थ—तुम्हें मृदुल जानते हुए भी मैं कठोर बातें कहता हूं। हे तात! यह कुसमय के कारण कहना पड़ता है इस में मेरा अनौचित्य नहीं है। अच्छे भाई ही बुरे स्थान पर (बिपत्ति में फँस जाने पर) सहायक होते हैं। जैसे वज्र की चोट में हाथ ही आड़ करता है। (अर्थात् जैसे साधारण चोट और बज्र की चोट दोनों के समय हाथ ही आड़ करता है दूसरा अंग नहीं, इसी प्रकार भले भाई भी सहायक होते हैं, चाहे उनका प्राण चला जाय पर वे सहायता अवश्य करेंगे।

दो०—सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकवि सराहहिं सोइ॥३०७॥

शब्दार्थ—कर = हाथ। पद = पैर। नयन = नेत्र। साहिबु = स्वामी।

भावार्थ—हाथ, पैर और नेत्र के समान सेवक हों, और मुख के समान स्वामी हो, तुलसी दास जी कहते हैं—ऐसी प्रीति की रीति सुन कर सुकवि उसी की सराहना करते हैं। (अर्थात् जिस प्रकार मुख सब योग्य पदार्थ स्वयं खा जाता है, पर जिस अंग के लिए जो चीज़ दरकार होती है उसी के अनुसार उस अंग को उसका रस देता है, तथा हाथ, पैर और आँख भी ऐसे अंग हैं कि कोई विपत्ति आने पर पहले ये ही सहायक होते हैं, ठीक इसी प्रकार सेवक और स्वामी भी होने चाहिए, तभी सब लोग उनकी प्रशंसा करेंगे, और सब कार्य ठीक होगा। (हे भरत! तुम राजा होकर इसी नीति को बर्तना।)

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम-पयोधि अमिअ जनु सानी॥
सिथिल समाजु सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥

शब्दार्थ—प्रेम-पयोधि = प्रेम सागर । अमिय = अमृत । सानी = सनी हुई। समाधी = मौन की मुद्रा । चुप साधी = चुप हो गयी ।

भावार्थ—सम्पूर्ण सभा राम जी की वाणी जो मानो प्रेम समुद्र के अमृत से सनी हुई थी, सुनकर शिथिल हो गयी और इस समाज ने तो मानों प्रेम की समाधि ही लगा ली। इस दशा को देख कर सरस्वती भी चुप हो गयी (अर्थात् किसी से कुछ कहते नहीं बनता)

भरतहिं भयेउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि विमुख दुख दोषू ॥
मुखु प्रसन्न मन मिटा विषादू। भा जनु गूंगेहि गिरा-प्रसादू ॥

शब्दार्थ—गूँगेहि = गूँगे को । गिरा-प्रसादू = वाणी की प्राप्ति ।

भावार्थ—भरत जी को यह सुन कर बड़ा संतोष हुआ। उन्हों ने देखा कि स्वामी हमारे अनुकूल हैं तथा हमारे दुख और दोष छूट गये हैं। उनका चेहरा आनन्दित हो गया मन से विषाद मिट गया, मानों गूँगे को वाणी प्राप्त हो गयी हो (और वह प्रसन्न हो)

कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी ॥
नाथ भयेउ सुख साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनम भए को ॥

शब्दार्थ—पानि = हाथ। पंकरुह = कमल। भए को = उत्पन्न होने का।

भावार्थ—भरत जी ने प्रेमपूर्वक पुनः प्रणाम किया और कर-कलम जोड़ कर बोले—हे नाथ ! मुझे आप के साथ जाने का सुख मिल गया और मैंने संसार में जन्म लेने का भी लाभ पा लिया ।

अब कृपालु जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई ॥
सो अवलंब देउ मोहिं देई। अवधि-पारु पावउँ जेहि सेई ॥

शब्दार्थ—आयसु = आज्ञा । अवलंब = सहारा । देई देउ = दे दीजिये । अवधि पारु पावउँ = अवधि को विता सकूं। सेई = सेवा करके ।

भावार्थ—हे कृपालु अब आपकी जो आज्ञा हो उसे मैं शिरोधार्य

करके आदरपूर्वक करूँ, तथा मुझे एक ऐसा आश्रय दे दीजिये जिसकी सेवा करके मैं अवधि (१४ वर्ष की) विता सकूं।

दो०—देव ! देव अभिषेक हित गुरु अनुसासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०८॥

शब्दार्थ—अभिषेक=तिलक। अनुशासन=आज्ञा।

भावार्थ—हे देव ! मैं आप के तिलक के लिये गुरु जी की आज्ञा से सम्पूर्ण तीर्थों का जल भी साथ लाया हूं, उसके लिए क्या आज्ञा होती है। (उसे क्या करूँ)

एकु मनोरथ वड़ मन माहीं। समय सकोच जात कहि नाहीं ॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। वोले वानि सनेह सुहाई ॥

शब्दार्थ—मनोरथ=अभिलाषा।

भावार्थ—मेरे मन में एक वड़ा मनोरथ है, पर भय और संकोच के कारण मुझसे कहते नहीं वनता। 'हे तात ! कहो' यह राम जी की आज्ञा पाकर भरत जी स्नेह से पूर्ण सुन्दर वाणी वोले।

चित्रकूट मुनिथल तीरथ वन। खग मृग सरि सर निर्झर गिरिगन।
प्रभु पद अंकित अवनि विसेखी। आयसु होइ त आवउँ देखी ॥

शब्दार्थ—खग=पक्षी। मृग=पशु। सरि=नदी। सर=तालाव। निर्झर=झरना। अवनि=पृथ्वी।

भावार्थ—चित्रकूट के मुनि-आश्रम, तीर्थ, वन, पशु, पक्षी, नदी, तालाव, झरने, पर्वत और विशेष कर आप के चरण चिन्हों से अंकित पृथ्वी को, यदि आज्ञा हो तो देख आऊँ।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात विगत भयकानन चरहू ॥
मुनि प्रसादु वन मंगलु दाता। पावन परम सुहावन भ्राता ॥

शब्दार्थ—विगत भय=निर्भय होकर। कानन=वन। चरहू=घूमो।

भावार्थ—राम जी ने कहा (मेरी नहीं) अत्रिमुनि जी की आज्ञा को अवश्य शिरोधार्य करो। हे भाई उन्हीं अत्रि मुनि की कृपा से वन मंगल देने वाला, पवित्र और अत्यंत सुहावना है।

रिपिनायकु जहँ आयसु देहीं। राखहु तीरथ जलु थलु तेहीं।
सुनि प्रभु वचन भरत सुखपावा। मुनि-पद-कमल मुदित सिरुनावा

शब्दार्थ—रिपिनायकु=मुनियों के सरदार, मुनि श्रेष्ठ।

भावार्थ—मुनि श्रेष्ठ अत्रि जहां आज्ञा दें उसी स्थान पर तीर्थ जल रखना। राम जी के वचन सुनकर भरत जी को सुख प्राप्त हुआ और वहां से जाकर प्रसन्न मन से अत्रि जी को प्रणाम किया।

दो०—भरत राम संवाद सुनि सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहिकुल वरषत सुरतरु फूल॥ ३०९॥

शब्दार्थ—संवाद=वार्तालाप। कुल=वंश। सुरतरु=कल्पवृक्ष।

भावार्थ—भरत जी और राम जी का सम्पूर्ण सुमंगलों का देनेवाला संवाद सुनकर स्वार्थी देवता सूर्यकुल की प्रशंसा करते हुए कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे।

(इति दूसरा दरवार)

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत वरिआईं॥
मुनि मिथिलेस सभा सवकाहू। भरत वचन सुनि भयेउ उछाहू॥

भावार्थ—भरत जी धन्य हैं और स्वामी राम जी की जय हो ऐसा कहकर देव लोग वरवश प्रसन्न होते हैं। वशिष्ठ जी, जनक जी तथा सम्पूर्ण सभा को भरत जी के वचन सुनतेही वड़ा आनन्द हुआ।

भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ विदेहू।
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अति पावन पावन॥

भावार्थ—भरत और राम जी के गुणों और प्रेम की प्रशंसा राजा

जनक गद्गद होकर कर रहे हैं—(जनक जी कहते हैं) भरत और राम में सेवक और स्वामी का बड़ा उत्तम भाव है। इन लोगों के नेम और प्रेम संसार की अत्यन्त पवित्र वस्तुओं को भी पवित्र करने वाला है (सब पवित्र वस्तुओं से बढ़कर पवित्र है)

मति अनुसार सराहन लागे। सचिउ सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम भरत संवादू। दुहुँ समाज हिय हरष विषादू॥

शब्दार्थ—सभासद=सभास्थित सज्जन।

भावार्थ—मंत्री और सभा के अन्य सज्जन प्रेमासक्त होकर बुद्धि के अनुसार राम और भरत जी की प्रशंसा करने लगे। राम और भरत जी का सम्बाद सुनकर दोनों राज समाजों के हृदय में हर्ष और विषाद हो रहा है।

(नोट)—देव माया वश जो उचाट हुआ था, उसके कारण घर लौट जाने का हर्ष है, १४ वर्ष तक राम दर्शन से बंचित रहने के कारण विपाद है।

राम मातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन दोष प्रबोधी रानी॥
एक करहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥

शब्दार्थ—प्रबोधी=समझाया।

भावार्थ—राम-माता कौशल्या ने दुख और सुख को सम जानकर इस फैसले के गुण और दोष कहकर रानियों को समझाया। कोई तो राम की बड़ाई करता है, और कोई भरत की भलाई की प्रशंसा करता है।

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।
राखिय तीरथ तोय तहँ पावन अमल अनूप॥ ३१०॥

शब्दार्थ—तोय=जल।

भावार्थ—तब अत्रि जी ने भरत जी से कहा कि (चित्रकूट) पर्वत के निकट एक सुन्दर कूप में तीर्थों का पवित्र, स्वक्ष और अनुपम जल रखवा दो।

भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिये चलाई॥

सानुज आप अत्रि मुनि साधू । सहित गए जहँ कूप अगाधू ॥

शब्दार्थ—अनुसासन=आज्ञा । भाजन=पात्र, वर्तन । चलाई दिये=देरे से उस स्थान की ओर भेजवा दिये ।

भावार्थ—भरत जी ने अत्रि जी की आज्ञा पाकर जल के सब पात्रों को उस स्थान की ओर भेजवाया और स्वयं अनुज शत्रुघ्न, अत्रि मुनि तथा साधुओं के साथ उस अगाध कूएँ के पास गये ।

पावन पाथ पुन्य थल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू । लोपेउ काल विदित नहिं केहू ॥

शब्दार्थ—पाथ=जल । भाखा=कहा । लोपेउ=लुप्त हो गया था ।

भावार्थ—उस पवित्र जल को पुण्य स्थल में रखा । तब प्रसन्न होकर अत्रि जी ने प्रेम पूर्वक इस प्रकार कहा—हे तात ! यह अनादि काल से सिद्ध स्थल है । किसी को यह ज्ञात नहीं है कि यह किस समय से लुप्त है ।

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा । कीन्ह सुजल हित कूप विशेखा ॥
विधि वस भयेउ विस्व उपकारू । सुगम अगम अति धरम विचारू ॥

शब्दार्थ—सरस=जलमय । कूप कीन्ह=कुआँ खुदवाया ।

भावार्थ—तब सेवकों ने देखा कि यह जलमय स्थान है (अर्थात् इस स्थान में नीचे जल है) अतएव उस तीर्थ जल के लिये उन्होंने उसे विशेष रूप से खुदवाया । दैवात् संसार का उपकार हो गया, अत्यन्त अगम्य धर्म का विचार भी इस कार्य से सुगम हो गया (अर्थात् अब लोगों को असंख्य तीर्थों का जल यहीं पर प्राप्त हो जाया करेगा)

भरत कूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ जल जोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी । होइहि विमल करम मन वानी ॥

शब्दार्थ—जोगा=संयोग से । निमज्जत=स्नान करते ही ।

भावार्थ—(अत्रि जी ने कहा) अब इसे सब लोग भरत कूप कहेंगे,

यह स्थान तीर्थ जल के संयोग से अत्यन्त पवित्र हो गया। प्रेम से नियम पूर्वक इसमें स्नान करते ही प्राणी कर्म, मन और वचन से निर्मल हो जायगा)

दो०—कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायेउ रघुबरहिं तीरथ पुन्य प्रभाउ॥ ३११॥

भावार्थ—उस कूप की महिमा कहते हुए सब लोग रामचन्द्र जी के पास गये। अत्रि जी ने रामजी को उस तीर्थ का पुन्य और प्रभाव सुनाया।

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयेउ भोर निसि सो सुख बीती॥
नित्य निवाहि भरतु दोउ भाई। राम अत्रि गुरु आयसु पाई॥
सहित समाज साज सब सादे। चले राम बन अटन पयादे॥

शब्दार्थ—भोर=सबेरा। निवाहि=निर्वाह करके। अटन=घूमने। पयादे=पैदल।

भावार्थ—प्रेमपूर्वक धार्मिक इतिहास कहते कहते वह रात सुख से बीत गयी, सवेरा हुआ। नित्य क्रिया (संध्या वंदनादि) कर के दोनो भाई भरत शत्रुघ्न राम जी, वशिष्ठ जी तथा अत्रि जी की आज्ञा पाकर सम्पूर्ण समाज सहित सादे साज से राम बन (चित्रकूट) में घूमने के लिए पैदल चले।

कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मनमनहीं॥
कुस कंटक काँकरी कुराई। कटुक कठोर कुबस्तु दुराई॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिविध सुख लीन्हे॥

शब्दार्थ—पनही=पादत्राण। कुस=कुशा। कंटक=काँटा। काँकरी=कंकड़ी। कुराई=गड्ढे (नदी के किनारे की मटियार भूमि में जो धूप से फट जाती है) जो गड्ढे हो जाते हैं उन्हें कुराई कहते हैं। कटुक=कष्ट दायक। दुराई=हटाकर।

भावार्थ—विना पादत्राण के भरत जी अपने कोमल पैरों से (जंगल की भूमि में) चल रहे हैं। भूमि इस कोमलता को देखकर मन ही मन सकुचकर मुलायम हो गयी। कुशा, काँटे, कंकड़ी, गड्ढे तथा और भी

कष्टदायक एवं कठोर वस्तुओं को हटा कर पृथ्वी ने बड़ा सुन्दर और मुलायम मार्ग बना दिया। सीतल, मंद और सुगंधित वायु भी सुखपूर्वक चल रही है।

सुमन बरषि सुर, घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि, तृन मृदुताहीं
मृग बिलोकि, खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी॥

शब्दार्थ—सुमन = पुष्प। घन = बादल। बिटप = वृक्ष।

भावार्थ—देवता-गण पुष्प बरसा कर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल और फल कर, तृण मृदुता से, पशु देखकर तथा पक्षी सुन्दर वाणी बोल कर सब भरत जी को राम-प्रिय समझ कर उनकी सेवा कर रहे हैं।

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहुँ, राम कहत जमुहात।
राम प्रान प्रिय भरत कहुँ, यह न होइ बड़ि बात॥३१२॥

शब्दार्थ—प्राकृत = साधारण मनुष्य। जमुहात = जमुहाते समय में (आलस में)

भावार्थ—जिन रामचन्द्र जी का नाम जमुहाते समय में भी कहने से सम्पूर्ण साधारण मनुष्यों को सब सिद्धियाँ सुलभ हैं, उन्हीं राम जी के प्राण-प्रिय भरत के लिए इस प्रकार की बातें होना कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है।

एहि बिधि फिरत भरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं॥
पुण्य जलासय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा॥
चारु बिचित्र पवित्र बिसेखी। बूझत भरत दिव्य सब देखी॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य-प्रभाऊ॥

शब्दार्थ—जलासय = तालाब, कुएँ, बावली इत्यादि।

भावार्थ—इस प्रकार भरत जी वन में घूम रहे हैं। उनका नेम और प्रेम देखकर मुनि लोग भी लज्जित होते हैं। (अर्थात् भरत जी के हृदय में इतना नेम प्रेम है कि मुनि भी इतना नहीं कर सकते) पुण्य सरोवर,

भूखण्ड पशु-पक्षी, वृक्ष, तृण, पर्वत, वन और बगीचे जो सुन्दर, विचित्र और विशेष पवित्र हैं उन दिव्य स्थानों को देख कर भरत जी पूछते हैं, उनका प्रश्न सुनकर ऋषिराज अत्रि जी प्रसन्न मुख से उनका हेतु, नाम, गुण, पुण्य और प्रभाव कहते हैं।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥

शब्दार्थ—निमज्जन = स्नान। दोउ भाई = राम, लक्ष्मण।

भावार्थ—कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मनको रुचने वाले स्थानों का दर्शन करते हैं। कहीं पर मुनि अत्रिजी की आज्ञा पाकर बैठते हैं और सीता सहित दोनों भाई (राम और लक्ष्मण) का स्मरण करते हैं।

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा॥
फिरहिं गए दिन पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई॥

शब्दार्थ—पहर = (प्रहर) ७॥ घड़ी का एक पहर होता है।

भावार्थ—भरत जी का स्वभाव, स्नेह और सेवा देखकर वनदेवता प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं। ढ़ाई पहर दिन बीत जानेपर लौटते हैं और आकर राम जी के चरण कमलों का दर्शन करते हैं।

दो०—देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु गयेउ दिवसु भइ साँझ॥३१३॥

शब्दार्थ—माँझ = में। हरि हर = विष्णु, महेश।

भावार्थ—भरत जी ने पाँच दिन में सम्पूर्ण स्थल और तीर्थ देख लिये, विष्णु महेश का सुन्दर यश कहते कहते (पाँचवाँ) दिन बीतगया संध्या हुई।

भोर न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुतिराजू॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं। रामु कृपालु कहत सकुचाहीं॥

शब्दार्थ—भोर = प्रातःकाल। जुरा = एकत्रित हुआ।

भावार्थ—(छठे दिन) प्रातःकाल स्नान करके सब समाज एकत्रित

हुआ। भरत जी, ब्राह्मणमंडली और राजा जनक भी आये। आज उत्तर ओर जाने का अच्छा दिन है यह मनमें जानते हुए भी कृपालु राम जी कहते सकुचाते हैं।

गुरु नृप भरतसभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनिबिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँन राम सम स्वामि सकोची॥

शब्दार्थ—अवनि = पृथ्वी।

भावार्थ—वशिष्ट जी, राजा जनक, भरत और सम्पूर्ण सभा को देख कर फिर सकुच कर रामजी पृथ्वी की ओर देखने लगे (कि इन लोगों से जाने के लिए कैसे कहूँ) राम जी के शील की सराहना करके सब सभा सोचने लगी कि राम जी के समान संकोची स्वामी और कहीं नहीं है।

(तीसरा दर्बार)

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी।
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी।

शब्दार्थ—दंडवत = प्रणाम। कर = हाथ।

भावार्थ—सुजान भरत जी राम जी का रुख देखकर प्रेम पूर्वक उठे और विशेष धैर्य धारण कर प्रणाम किया, तब हाथ जोड़कर कहने लगे—हे नाथ! आप ने मेरी सम्पूर्ण अभिलाषा पूर्ण की।

मोहि लगि सबहिं सहेउ संतापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू।
अब गोसाइँ मोहिं देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भरि जाई।

शब्दार्थ—संतापू = दुःख। रजाई = आज्ञा।

भावार्थ—मेरे लिए सब ने दुःख सहा। आपने भी बहुत तरह से दुःख पाया। हे स्वामी! अब मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं अवधि भर (१४ वर्ष तक) जाकर अयोध्या की सेवा करूँ।

दो०—जेहि उपाय पुनि पायँ जनु देखइ दीन दयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल।३१४।

शब्दार्थ—पायँ=पैर, पद। जनु=दास।

भावार्थ—हे कोशलपाल! आप वह उपाय बतलाइये जिससे यह दास अवधि तक (१४ वर्ष) जीवित रह कर आपके चरणों को पुनः देखै। हे कोशल पाल-कृपाल मुझे ऐसी ही शिक्षा दीजिये।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाईं।
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परमपद लाहू।

शब्दार्थ—सुचि=पवित्र। सरस=अति। सगाई=नाता। बादि=निहोरे, संबंध से।

भावार्थ—हे स्वामी! नगर निवासी और कुटुम्ब के लोग सब आप के सुन्दर प्रेम और नाते से पवित्र हैं, क्योंकि आपके निहोरे संसार का दुःख-दाह भी अच्छा है, और आप के बिना परम पद का लाभ (मोक्ष पाना) भी अच्छा नहीं है।

स्वामि सुजान जानि सबही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रनत पाल पालहिं सब काहू। देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू॥

शब्दार्थ—ओर निबाहू=अन्त तक निर्वाह करने वाले।

भावार्थ—हे स्वामी! आप सुजान हैं और सभी दासों के हृदय की रुचि, लालसा और स्थिति जानते हैं। हे नाथ! आप प्रनतपाल हैं, सबका पालन करते हैं। हे देव! दोनो ओर अन्त तक निर्वाह होना आप के हाथ है (अर्थात् इस लोक में सुयश दिलवाना और अन्त में मोक्ष देना आप ही के हाथ है)

असमोहिं सबबिधि भूरि भरोसो। किये विचार न सोचखरोसो।
आरति मोरि नाथकर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठ मोहू।

शब्दार्थ—भूरि=अत्यन्त। खरो सो=(खर=तृण) तृण सा भी, थोड़ा सा भी। आरति=दुःख। छोहू=प्रेम। हठि=जबरन्।

भावार्थ—मुझे इस प्रकार का सब तरह से बड़ा भरोसा है, बिचार

करने पर थोड़ा सा भी सोच नहीं है। मेरे दुःख और आप के प्रेम—दोनों ने मिलकर मुझे हठ करके धृष्ट बना दिया है।

यहवड़ दोष दूरिकरि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी।
भरत विनय सुनि सबहिं प्रसंसी। खीर-नीर विवरनगति हंसी।

शब्दार्थ—खीर = (सं० क्षीर) दूध। नीर = जल। विवरन = अलग करना। हंसी = हंसिनी।

भावार्थ—हे स्वामी ! यह बड़ाभारी दोष दूर करके और संकोच त्याग कर इस अनुगामी दास को शिक्षा दीजिये। भरत की विनय को सुनकर सबने उनकी प्रशंसा की और कहा कि इस विनय में दूध और जल को अलग कर देनेवाली हंसिनी की सी गति है (अर्थात् यह विनय गुण और दोष को अलग करनेवाली है)

(नोट)—भरत जी रामजी से राजनीति की शिक्षा चाहते हैं कि जिस प्रकार आप कह दें, मैं उसी प्रकार अयोध्या का राजकाज चलाऊं, क्योंकि मैं आप ही को राजा मानता हूं, मैं सेवक की भांति आज्ञानुसार ही काम करूंगा।

दो०—दीनबंधु सुनि बंधु के वचन दीन छल हीन।
देस काल अवसरु सरिस बोले रामु प्रबीन ॥३१५॥

शब्दार्थ—बंधु = भाई।

भावार्थ—दीनबन्धु प्रवीण रामचन्द्र जी भाई के छलहीन दीन वचन सुनकर देश, काल और अवसर के अनुकूल बोले—

तात तुम्हारि मोरि परिजनकी। चिन्ता गुरुहिं नृपहिं घर बनकी॥
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू। हमहिं तुम्हहिं सपनेहु न कलेसू॥

शब्दार्थ—माथे पर = ऊपर (देख भाल करनेवाले)

भावार्थ—हे तात ! तुम्हारी, मेरी और कुटुंब की तथा घर-बन की चिन्ता तो गुरु जी (वशिष्ठ जी) और राजा साहब (जनक) को है। गुरु

मुनि जी और मिथिलेश जी के ऊपर (सिरपरस्त) होते हुए, हमें तुम्हें स्वप्न में भी क्लेश नहीं है।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वरथु सुजस धरमु परमारथु॥
पितु आयसु पालिअ दुहुँभाई। लोक वेद भल भूप भलाई॥

शब्दार्थ—पुरुपारथु = जवांमर्दी, पुरुपवत् कर्तव्य।

भावार्थ—मेरा और तुम्हारा परम पुरुपार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि दोनों भाई पिता की आज्ञा का पालन करें। यह लोक में भी भला है और वेद में भी भला है और इसी में राजा साहब (दशरथ जी) की भी भलाई है।

गुरु पितु मातु स्वामिसिख पाले। चलेहु कुमग पग परहिं न खाले॥
अस विचारि सब सोच विहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥

शब्दार्थ—खाले = नीचे।

भावार्थ—गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा का पालन करने से कुमार्ग में चलने से भी पैर नीचे नहीं पड़ता। (अर्थात् इन लोगों की आज्ञा जो मानते हैं, यदि वे कोई बुरा काम भी भूलसे कर बैठे तो उससे बच जाते हैं) ऐसा विचार कर और सब सोच त्याग कर अवधि भर जाकर अयोध्या का पालन करो।

देसु कोसु पुरजन परिवारू। गुरु पद रजहिं लाग छरभारू॥
तुम मुनि मातु सचिव सिखमानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

शब्दार्थ—कोसु = खजाना। रज = धूल। छरभारू = उत्तरदायित्व। पुहुमि = पृथ्वी।

भावार्थ—देश, खजाना नगर निवासियों और कुटुंब की सम्पूर्ण ज़िम्मेदारी तो गुरु जी की चरण रज पर है (अर्थात् इनकी देखरेख तो वशिष्ठ जी के मत्थे है) तुम, मुनि जी, माता, और मंत्रियों की शिक्षा को मानकर पृथ्वी प्रजा और राजधानी (अयोध्या) का पालन करना।

दो०—मुखिया मुख सो चाहिये खान-पान को एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित विवेक ॥ ३१६ ॥

शब्दार्थ—मुखिश्रा = सरदार।

भावार्थ—सरदार (राजा) मुख के समान होना चाहिए जो खाने और पीने के लिए एक ही हो, पर विवेकपूर्वक सम्पूर्ण अंगों का पालन पोषण करे। (अर्थात् जैसे मुख सब वस्तु स्वयं खा जाता है, पर जिस अंग के लिए जो वस्तु आवश्यक होती है उस अंग को उसी वस्तु का रस पहुँचाता है, इसी प्रकार का राजा भी होना चाहिए, जो सब से राजकर आदि ले और फिर उचित स्थानों में उसे खर्च करे।

राज धरम सरवसु इतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई ॥
बन्धु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोष न साँती ॥

शब्दार्थ—इतनोई = इतना ही। गोई = छिपाना चाहिये। साँती = शान्ति।

भावार्थ—सम्पूर्ण राज धर्म इतना ही है। जैसे मनमें (बहुत से) मनोरथ छिपे रहते हैं (उसी प्रकार इस राजनीति को भी मनमें रखना चाहिये) राम जी ने भाई (भरत) को बहुत तरह से समझाया, पर बिना आश्रय के उनके मन को संतोष और शान्ति नहीं हुई।

भरत सीलु गुरु-सचिउ-समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥

शब्दार्थ—पाँवरी = खड़ाऊ (पावँ + ड़ी)

भावार्थ—भरत जी के शील के कारण, गुरु और मंत्रियों की समाज में रामचन्द्र जी स्नेह और संकोच के वश में हैं (उन्हें बड़ा संकोच हो रहा है) पर फिर भी रामजी ने कृपा करके भरत जी को अपनी खड़ाऊँ दीं। भरत जी ने आदरपूर्वक उन्हें शिरपर धारण करके ले लिया।

चरण-पीठ करुणा निधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के ॥
कुल कपाट, कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥

भरत मुदित अवलंब लहेतें। अस सुख जस सियराम रहेतें॥

शब्दार्थ—चरणपीठ = खड़ाऊँ। जामिक = पहरुआ। संपुट = रत्नादि रखने की डब्बी। आखर = अक्षर। कुल = वंश। कर = हाथ।

भावार्थ—करुणा निधान रामचन्द्र जी के खड़ाऊँ मानो प्रजाके प्राणों के (रक्षक) दो पहरुआ हैं। (अर्थात् इन्हीं खड़ाउओं से प्रजा की रक्षा होगी) या भरत जी के प्रेमरूपी रत्नके संपुट हैं। (अर्थात् इनके द्वारा भरत जी का प्रेम बराबर स्वच्छ रहेगा) या जीव-यत्न (मोक्ष प्राप्ति) के दो अक्षर (रा और म) हैं (अर्थात् इनके कारण मनुष्य मोक्ष प्राप्तकर सकता है) या ये कुल (सूर्यवंश) के रक्षक दो कपाट हैं (अर्थात् इनसे सूर्य-वंश की रक्षा होगी) या कर्म करने के कुशल (दो) हाथ हैं। (अर्थात् इनके द्वारा कर्मों का संचय हो सकता है) या सेवा और सुधर्म के स्वच्छ नेत्र हैं। (अर्थात् इनके द्वारा सेवा और सुधर्म भी खूब हो सकता है)। भरत जी इस अवलंब को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा सुख हुआ जैसा सीताराम के रहने से सुख होता।

(इति तीसरा दरबार)

दो०—माँगेउ बिदा प्रनाम करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसर पाइ॥३१७॥

शब्दार्थ—उचाटे = उच्चाटन किया। अमरपति = इन्द्र।

भावार्थ—भरत जी ने प्रणाम करके बिदा माँगी। रामजी ने उन्हें हृदयसे लगा लिया। कुटिल देवराज इन्द्र ने यह कुसमय देख कर लोगों का उच्चाटन किया।

सो कुचालि सबकहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवन जीकी॥
नतरु लषन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥

शब्दार्थ—जीवन जी की आस = जीने की आशा। नतरु = नहीं तो। हहरि = हाय करके।

भावार्थ—यह कुचाल सबके लिए अच्छी हुई (क्योंकि इसके कारण)

अवधि तक (१४ वर्ष तक) जीने की आशा हुई, नहीं तो लक्ष्मण सीता और रामके वियोग रूपी कुरोग (असाध्य रोग) से सब लोग हाय करके मर जाते।

राम कृपा अवरेब सुधारी। विबुधधारि भइ गुनद गोहारी॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरतसो। राम प्रेम-रसु कहि न परत सो॥

शब्दार्थ—अवरेब = उलझन। विबुध धारि = देव मंडली। गुनद = लाभ दायक। गोहारी = पुकार।

भावार्थ—राम जी की कृपा ने सब उलझन ठीक करदी। देवमंडली इस समय लाभ दायक पुकार हो गई (अर्थात् इसके कारण लोग बच गये) रामजी दोनों भुजाओं में भरकर भाई भरत को भेंट रहे हैं। वह राम प्रेम का रस (आनंद) मुझसे कहा नहीं जाता।

तन मन वचन उमँगि अनुरागा। धीरधुरंधर धीरज त्यागा॥
बारिज लोचन मोचत वारी। देखि दसा सुरसभा दुखारी॥

शब्दार्थ—बारिज = कमल। मोचत = गिराते हैं। वारी = जल।

भावार्थ—तन, मन और वचन में प्रेम उमड़ पड़ा। धीरधुरंधर रामजी ने धैर्य त्याग दिया। वे अपने कमल ऐसे नेत्रों से जल गिराने लगे (आँसू बह चले) यह दशा देखकर देवताओं की सभा दुखी हो गयी (कि कहीं प्रेमवश रामजी लौटने को तैयार न हो जायँ)

मुनिगन गुरु धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसे कनकसे॥
जो विरंचि निरलेप उपाये। पदुम पत्र जिमि जग जल जाये॥
दो०—तेउ विलोकि रघुवर-भरत प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन वचन सहित विराग विचार॥३१८॥

शब्दार्थ—धुर = धुरा। अनल = अग्नि। कनक = सोना। निरलेप = निर्लिप्त। जाये = उत्पन्न हुए।

भावार्थ—मुनि-गण, गुरु वशिष्ट जी और धैर्य के धुरा राजा जनक जी जो ज्ञान रूप अग्निमें अपने मन को सोने की तरह कस चुके (ता

चुके) थे, जिन्हें ब्रह्माने निर्लिप्त बनाया था, जो संसार रूपी जलमें कमल पत्रवत उत्पन्न हुए थे (अर्थात् जिनके ऊपर ममता, माया का जाल नहीं लग सकता था) वे भी रामजी और भरत जी की अनुपम और अपार प्रीति देखकर उसमें तन, मन, वचन से अपने वैराग्य और विवेक सहित मग्न हो गये (अर्थात् रामजी और भरत जी की प्रीति देखकर उनका वैराग्य आदि काफूर हो गया)

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी । प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥
बरनत रघुवर भरत वियोगू । सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू ॥

शब्दार्थ—गति = दशा । भोरी = पगली । प्राकृत = साधारण । खोरी = दोष ।

भावार्थ—जहां जनक जी और वशिष्ठ जी ऐसे लोगों की गति और मति पगला जाय उस प्रीति को साधारण (मनुष्योंकी) प्रीति कहना बड़ा भारी दोष है । रामजी और भरत जी का वियोग वर्णन करना सुनकर सब लोग मुझे कठोर कवि जानेंगे । (अतएव मैं इसे छोड़े देता हूं)

सो सकोच वस अकथ सुवानी । समउ सनेह सुमिरि सकुचानी ॥
भेंटि भरत रघुवर समुझाए । पुनि रिपु दवन हरषि हिय लाये ॥

शब्दार्थ—अकथ = नहीं कह सकती ।

भावार्थ—उस संकोच के कारण मेरी सुन्दरवाणी उसे नहीं कह सकती । उस समय और उस स्नेह को स्मरण करके सकुचा गयी है । रामजी ने भरत को भेंटकर उन्हें समझाया । फिर शत्रुघ्न को प्रसन्न होकर हृदय से लगाया (भेंटा)

सेवक सचिउ भरत रुख पाई । निज निज काज लगे सब जाई ॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा । लगे चलन के साजन साजा ॥

शब्दार्थ—रुख = रुचि । साजा साजन लगे = सामग्री ठीक करने लगे ।

भावार्थ—सेवक और मंत्री भरत जी का रुख पाकर सब जाकर अपने अपने काम में लग गये । चलने की बात सुनकर दोनों राज समाजों को बड़ा

दुःख हुआ। सब लोग चलने की सामग्री ठीक करने लगे।

प्रभु पद पदुम वंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥
मुनि तापस वनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

शब्दार्थ—वंदि = प्रणाम करके। रजाई = आज्ञा। निहोरी = विनय करके।

भावार्थ—रामजी के चरण कमलों को प्रणाम कर और उनकी आज्ञा मानकर दोनोंभाई चले। उन्होंने मुनियों, तपस्वियों, वनदेवों की विनय की और बारम्बार उनका सम्मान किया।

दो०—लषनहिं भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय-पग-धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि॥३१६॥

शब्दार्थ—पग = पैर। मूरि = मूल।

भावार्थ—लक्ष्मण जी से भेंट और प्रणाम करके तथा सीता जी के चरणों की धूलि शिरोधार्य करके तथा उनसे प्रेमपूर्वक सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की दायिनी असीश पाकर दोनो भाई चले।

सानुज राम नृपहिं सिरनाई। कीन्हि बहुत विधि विनय बड़ाई॥
देव दयावस बड़ दुख पायेउ। सहित समाज काननहिं आयेउ॥

शब्दार्थ—कानन = वन।

भावार्थ—अनुज सहित रामजी ने राजा जनक को प्रणाक किया और बहुत तरह से उनकी विनय तथा बड़ाई की। कहा—हे देव! आप दया वश समाज सहित वन में आये आप को हमारे कारण बड़ा कष्ट मिला।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीरधरि गवन महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किये हरि हर सम जाने॥

शब्दार्थ—पगु धारिअ = पधारिये। महीसा = राजा।

भावार्थ—आप मुझे आशीर्वाद देकर नगर को पधारें। तब राजा जनक भी धैर्य धारण करके चले। जनक जी (मार्ग में मंगल होने के लिए) मुनि, ब्राह्मण और साधुओं का सम्मान किया (उन्हें दान आदि दिया)

फिर उन्हें विदा किया, उन्हें अपने हृदय में विष्णु और महेश के समान समझा।

सासु समीप गये दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक *वामदेव जावाली*। परिजन पुरजन सचिउ सुचाली॥
जथाजोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

शब्दार्थ—आसिष=आशीर्वाद। कौसिक=विश्वामित्र। मध्य=मध्य श्रेणी के। बड़ेरे=बड़े। फेरे=लौटाये।

भावार्थ—दोनो भाई सास के पास गये। उनको प्रणामकर और आशीर्वाद पाकर लौटे। विश्वामित्र, वामदेव, जावालि, कुटुंब के लोग, नगर के लोग, सुचाल मंत्री, जो जैसा था रामजी ने अनुज (लक्ष्मण) सहित उसकी वैसीही विनय और प्रणाम करके विदा किया। स्त्री-पुरुष छोटे, बड़े, मध्य श्रेणी के सबका आदर करके कृपानिधि रामजी ने सबको लौटा दिया।

दो०—भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेह मिलि भेंट।
बिदा कीन्हि सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि॥३२०॥

शब्दार्थ—भरत मातु=कैकेयी। मेटि=मिटाकर।

भावार्थ—रामजी ने कैकेयी के चरणों में प्रणाम करके तथा पवित्र प्रेम से उससे भेंटकर पालकी सजाकर (उसमें बैठाकर) सम्पूर्ण सोच और संकोच को मिटा कर विदा किया।

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटी सब सासू। प्रीति कहत कवि हिय न हुलासू॥

शब्दार्थ—पुनीता=पवित्र। हुलासू=आनंद।

भावार्थ—अपने कुटुंब और माता-पिता से मिलकर प्राण सम प्रिय और पवित्र प्रेम करनेवाली सीता जी लौट आयीं। (कुटुंबियों के साथ गयी नहीं) सीता जी ने प्रणाम करके सब सासुओं को भेंटा। उस प्रीति के कहने के लिए कवि के हृदय में हुलास नहीं है।

---

* इनकी कथा परिशिष्ट में देखिये।

सुनि सिष अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहुँ प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाई॥

शब्दार्थ—पटुपालकी=ओहारदार पालकी।

भावार्थ—उनलोगों की शिक्षा और मनोवांछित आशीर्वाद पाकर सीता जी दोनो (मायके, सासुरे) की प्रीति में समागयीं। (अर्थात् उनके हृदय में बड़ा प्रेम उत्पन्न हुआ।) रामजी ने ओहारदार पालकियाँ मँगवाईं, और उन पर समझाकर, सब माताओं को चढ़ाया।

बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥

शब्दार्थ—हिलि मिलि=(मुहावरा) भेंट करके। बाजि=घोड़ा। दल=सेना। पयाना=(सं० प्रयाण) प्रस्थान।

भावार्थ—दोनो भाई माताओं से बारम्बार मिले। समान प्रेमसे सब माताओं को पहुँचाया (किसी के साथ भेद भाव नहीं रखा) घोड़े, हाथी, और बहुत प्रकार की सवारियाँ सजाकर राजा जनक और भरतजी की सेना ने प्रस्थान किया।

हृदय राम सिय लखन समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हियहारे। चले जाहिं परबस मनमारे॥

शब्दार्थ—अचेता=बेसुध। बसह=(सं० वृषभ) बैल।

भावार्थ—सब लोग हृदय में राम, लक्ष्मण और सीता जी का ध्यान करते हुए बेसुध चले जा रहे हैं। बैल, घोड़े और हाथी आदि पशु भी हृदय में बड़े दुखी हैं। वे परवश होने के कारण मलीन मन से चले जारहे हैं। (यदि परवश न होते तो शायद न जाते, यहीं रहते)

दो०—गुरु गुरुतिय पद बन्दिप्रभु सीता लषन समेत।
फिरे हरष बिसमउ सहित आए परन निकेत॥ ३२१॥

शब्दार्थ—बिसमउ=खेद। निकेत=घर। परन निकेत=पर्णशाला।

भावार्थ—रामजी ने सीता और लक्ष्मण सहित गुरु (वशिष्ठजी) और गुरुपत्नी (अरुंधती जी) के चरणों में प्रणाम किया। तब हर्ष और खेदयुक्त अपनी पर्णशाला में लौट आये।

(नोट,—हर्ष इस बात का कि पिता के वचन पालन करने का अबाध्य अवसर प्राप्त होगया और खेद पुरजन परिजन के बियोग का।

अलंकार—समुच्चय।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ विरह विषादू॥
कोल किरात भिल्ल बन-चारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी॥

शब्दार्थ—बनचारी=बनमें घूमनेवाले। जोहार=प्रणाम।

भावार्थ—निषाद राजको भी सम्मान पूर्वक बिदा किया। वह भी चला पर उसके हृदय में बड़ा विरह और दुःख था। कोल, किरात और भिल्ल आदि बनवासी भी (जो सबकी सेवा के लिये स्वयं उपस्थित हुए थे) राम जी को प्रणाम कर करके रामजी के लौटाने से अपने अपने घरोंको फिरगये।

प्रभु सिय लषन बैठि वट छाहीं। प्रिय-परिजन वियोग बिलखाहीं॥
भरत सनेह सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥

शब्दार्थ—वट=बरगद। बिलखाहीं=दुखीहोते हैं। प्रिया=पत्नी, सीताजी।

भावार्थ—राम, लक्ष्मण और सीताजी बरगद की छाया में बैठकर, प्रिय कुटुंब के बियोग में दुखी हो रहे हैं। रामजी, सीता और लक्ष्मण से भरत जी के स्नेह, स्वभाव और सुबाणी का बखान करते हैं।

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी।
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चरअचर मलीना॥

शब्दार्थ—करनी=कर्म। श्रीमुख=अपने मुख से। बरनी=कही। मलीना=मलीन हो गये।

भावार्थ—भरत जी की मन वचन और कर्म द्वारा प्रकटित प्रीति और प्रतीति को राम जी ने प्रेम वश अपने मुख से वर्णन किया। उस समय नभ-

गामी पक्षी भूमिगामी पशु और जलवासी मछलियाँ तथा चित्रकूट के सभी चर अचर (जड़चेतन) मलीन हो गये (राम जी के मुख से भरत जी की बड़ाई सुनकर और राम जी का दुःख देखकर वे बड़े दुःखी हुए)

विबुधविलोकि दसा रघुबरकी। बरषि सुमन कहि गति घरघरकी।
प्रभु प्रनाम करिदीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो।

शब्दार्थ—विबुध=देवता। खरो सो (थोड़ा भी) तिनके के बराबर।

भावार्थ—जब देवताओं ने रामचन्द्र जी की दशा देखी तो अपना अपराध क्षमा कराने को पुष्प-वृष्टि की, और अपने घर-घर की अवस्था बतलायी (कि महाराज आप दुखी हो रहे हैं, हम लोग कितना कष्ट भोग रहे हैं जरा इसे तो देखिये) राम जी ने उन्हें प्रणाम करके भरोसा दिया (घबड़ाओ मत, बहुत शीघ्र हम राक्षस-नाश करेंगे) तब देवतागण प्रसन्न होकर चले, अब उन्हें तिनके के बराबर भी डर नहीं रह गया।

दो०—सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यान वैराग्य जनु सोहत धरे सरीर॥ ३२२॥

शब्दार्थ—परन-कुटीर=पर्णशाला।

भावार्थ—अनुज (लक्ष्मण जी) और सीता जी सहित प्रभु (रामचन्द्रजी) पर्णशाला में शोभा पा रहे हैं, मानों भक्ति (सीता जी) ज्ञान (राम जी· वैराग्य (लक्ष्मण जी) शरीर धरे शोभा पारहे हैं। (अर्थात् सीता जी भक्ति-स्वरूपा हैं, वे राम जी से अधिक प्रेम करती हैं, भगवान् स्वयं ज्ञान हैं ही, लक्ष्मण जी ने संसार से वैराग्य कर लिया है)

मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू। रामबिरह सब साज बिहालू।
प्रभु गुन ग्राम गुनत मनमाहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं।

शब्दार्थ—महिसुर=ब्राह्मण। भुआलू=राजा (जनक जी) बिहालू= अस्त व्यस्त।

भावार्थ—मुनि, ब्राह्मण, गुरु वशिष्ठ जी, भरत और राजा जनक जी राम जी के विरह में अस्तव्यस्त साज से राम जी के गुणों का गान करते हुए

सब चुपचाप (शांत होकर) रास्ते में चले जा रहे हैं।

जमुना उतरि पार सब भयेऊ। सो वासरु बिनु भोजन गयेउ।
उतरि देवसरि दूसर बासू। राम सखा सब कीन्ह सुपासू।

शब्दार्थ=वासरु=दिन । देवसरि=गंगा। रामसखा=निषादराज, गुह। सुपासू=सुविधा।

भावार्थ—उस दिन सब लोग यमुना को उतर कर पार हो गये (और वहीं डेरा डाला) वह दिन लोगों को बिना भोजन के ही बीत गया (भोजनों का ठीक ठाक न हो सका) दूसरा वास इन लोगों ने गंगा उतर करके किया। वहां पर निषादराज ने सब प्रकार से सुबिधा की (सब प्रकार का सामान जुटाया)

सई उतरि गोमती नहाए। चौथे दिवस अवधपुर आए॥
जनक रहे पुर वासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥
सौंपि सचिउ गुरु भरतहिं राजू। तिरहुति चले साजिसब साजू।
नगर नारि नर गुरु सिखमानी। बसे सुखेन राम रजधानी।

शब्दार्थ—सई=एक नदी जो अवध प्रान्त में है। तिरहुति=, (सं० त्रैआहुति) राजा, जनक की राजधानी। सुखेन=सुख से। राम रजधानी=अयोध्या।

भावार्थ—सब लोगों ने सई पार करके गोमती में स्नान किया और चौथे दिन अयोध्या पहुँचे। जनक जी चार दिन नगर में रहे। सब राजकाज और साज-सामान को सँभाला। फिर मंत्री, वशिष्ठ जी तथा भरत को राज्य सौंपकर अपना सब सामान ठीक करके तिरहुत चले गये। अयोध्या के सब स्त्री-पुरुष गुरु वशिष्ठ जी की आज्ञा मानकर सुख से राम जी की राजधानी अयोध्या में बसे (अर्थात् राम जी के वियोग से इधर उधर नहीं गये)

दो०—राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जियत अवधि की आस।३२३।

शब्दार्थ—लगि = लिए। भोग = अच्छे भोजन, वा भोग्य पदार्थ।

भावार्थ—राम जी का (पुनः) दर्शन पाने के लिए सब लोग उपवास आदि का नेम करते हैं। भूषन और भोग के सुख को त्याग त्याग कर केवल अवधि (१४ वर्ष) की आशा से जी रहे हैं (कि १४ वर्ष बाद जब राम जी आवेंगे तब हमें उनका दर्शन होगा ही)

सचिउ सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे।
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघुभाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई।

शब्दार्थ—प्रबोधे = समझाया। ओधे = (सं० अवरुद्ध) लग गये। बोलि = बुलाकर।

भावार्थ—तब भरत जी ने मंत्रियों और सुसेवकों को समझाया, वे लोग शिक्षा पाकर अपने अपने काम में लग गये। फिर छोटे भाई (शत्रुघ्न) को बुलाकर शिक्षा दी। उन्हें सब माताओं की सेवा सौंप दी।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बर बिनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारज भल पोचू। आयसु देब न करब सँकोचू॥

शब्दार्थ—भूसुर = ब्राह्मण। निहोरे = एहसानमंद किया। पोचू = बुरा।

भावार्थ – भरत जी ने ब्राह्मणों को बुलाकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया तथा विनय करके उन्हें निहोरा और कहा कि ऊँचा नीचा, भला बुरा जो कुछ भी काम हो आज्ञा दीजियेगा, संकोच मत करियेगा। (अर्थात् आप जो आज्ञा करेंगे हम तैयार हैं)

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए॥
सानुज गे गुरु गेह बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥

शब्दार्थ—समाधानु = संतोष। सुबस = (स्ववश) स्वतंत्रता पूर्वक।

भावार्थ—तब भरत ने कुटुम्ब, नगरवासी और प्रजा को बुलाया। सब को संतोष देकर स्वतंत्र रूप से बसाया। फिर अनुज (शत्रुघ्न), सहित गुरु वशिष्ठ जी के घर गये और प्रणाम करके तथा हाथ जोड़कर कहा—

आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरमु सारु जगु होइहि सोई।

शब्दार्थ—सनेमा=नियम पूर्वक।

भावार्थ—यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं नियम पूर्वक रहूं। तब बशिष्ठ जी रोमांचित शरीर से प्रेम पूर्वक बोले—हे भरत! तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे या करोगे, वह इस संसार में धर्म का तत्व ही होगा (हम से आज्ञा लेने की आवश्यकता ही नहीं)

दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिन साधि।
सिंहासन प्रभु पादुका बैठारीं निरुपाधि॥ ३२४॥

शब्दार्थ—गनक=ज्योतिषी। दिन साधि=मुहूर्त शोधकर। पादुका=खड़ाऊँ। निरुपाधि=निरुपद्रव।

भावार्थ—इसे सुनकर तथा बशिष्ट जी की शिक्षा और बड़ा आशीर्वाद पाकर भरत जीने ज्योतिषी को बुलवाया और सायत विचरवाकर सिंहासन के ऊपर राम जी के खड़ाऊँ निरुपद्रव भाव से रखे। (अर्थात् किसी ने यह बाधा नहीं डाली कि हम इन्हें राजा मानने के कायल नहीं हैं)

राम मातु गुरु पद सिरनाई। प्रभु पदपीठ रजायसु पाई॥
नंदिग्राम करि परनकुटीरा। कीन्ह निवास धरम धुर धीरा॥

शब्दार्थ—पद-पीठ=खड़ाऊँ। नंदिगांव=नंदीग्राम। यह स्थान अयोध्या से दक्षिण ६,७ कोस पर है, अब इसे नँदगावँ कहते हैं।

भावार्थ—राम माता कौशल्या और गुरु बशिष्ठ जी के चरणों में प्रणाम करके तथा राम जी के खड़ाउओं से आज्ञा लेकर धर्म की धुरा को धारण करने वाले धैर्यवान भरतजी ने नंदीग्राम में पर्णशाला बनाकर निवास किया।

जटाजूट सिर मुनि पटधारी। महि खनि कुससाथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रतनेमा। करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा॥

शब्दार्थ—मुनिपट=वल्कल के वस्त्र। महि खनि=पृथ्वी को खोद कर। साथरी=चटाई। असन=भोजन। बसन=वस्त्र। बासन=पात्र।

भावार्थ—भरत जी ने सिर पर जटा बनायी और शरीर में वल्कल वस्त्र धारण किये। पृथ्वी खोदकर तब उसमें कुशों की चटाई बिछायी। इस प्रकार भोजन, वस्त्र और पात्रादि का व्रत-नियम करके भरतजी कठिन ऋषिधर्म का प्रेमपूर्वक पालन कर रहे हैं।

भूषन वसन भोग सुख भूरी। मन तन वचन तजे तिनु तूरी॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धन सुनि धनदु लजाई॥
तेहि पुर वसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

शब्दार्थ—भूषन=गहना। भूरी=बहुत। तिनु तूरी तजे= (मुहावरा) नाता तोड़ कर छोड़ दिये। सुरराजु=इन्द्र। धनदु=कुबेर। रागा=प्रेम। चंचरीक=भौंरा। बाग=बगीचा।

भावार्थ—गहने, वस्त्र, तथा सुख भोग की अन्य बहुत सी सामग्रियाँ भरतजी ने मन, वचन, कर्म से तिनके की तरह तोड़ कर त्याग दिया (अर्थात् उसका मूल्य कुछ नहीं समझा) अयोध्या के राज्य को इन्द्र भी सिहाता है। राजा दशरथ का धन सुन कर कुबेर भी लज्जित होता है (अर्थात् अयोध्या बड़ा सुन्दर और धनीराज्य था) इस नगर में भरतजी बिना अनुरक्ति के निवास करते हैं (इस सम्पत्ति से भरत को कोई प्रेम नहीं) वह उसी प्रकार जैसे भौंरा चंपा के बगीचे में निष्प्रेम होकर रहता है।

रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड़ भागी।
दो०—राम प्रेम-भाजन भरत बड़े न एहि करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेक बिबेक बिभूति॥ ३२५॥

शब्दार्थ—रमा बिलासु=लक्ष्मी का ऐश्वर्य। वमन=उल्टी। कै किया पदार्थ। भाजन=पात्र।

भावार्थ—राम के प्रेमी भाग्यवान दास लक्ष्मी के ऐश्वर्य को वमन के समान त्याग देते हैं। अतएव यदि रामजी के प्रेम-पात्र भरतजी ने उसे त्याग दिया तो इस कर्तव्य से उनका कोई बड़प्पन नहीं है, क्योंकि पपीहा और हंस की प्रशंसा उनके टेक और विचार से ही होती है (अर्थात् यदि

पपीहा स्वाती जल के पीने की टेक न करे और हंस में क्षीर-नीर विवेचनी बुद्धि न हो तो नतो उनकी सराहना होगी और न वे चातक या हंस कहलायेंगे, इसी प्रकार भरतजी का ऐसा करना स्वभाव सिद्ध है)

अलंकार—काव्यर्थापत्ति और यथासंख्य।

देह दिनहि दिन दूबरि होई। घट न तेज वल मुख छवि सोई॥
नित नव राम-प्रेम पनु पीना। वढ़त धरम बलु मन न मलीना॥
जिमि जल निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥

शब्दार्थ—दूवरि = दुर्वल। पीना = पुष्ट। निघटत (फरुखाबाद की बोली) घटता है। वेतस = आकाश। बनज = कमल।

भावार्थ—भरत जो का शरीर दिन दिन दुवला होता जाता है, पर उनका तेज और वल नहीं घटता, मुखकी कांति उसी तरह है। नित्य प्रति रामजी के प्रेम का प्रण नया और पुष्ट होता जाता है। उनमें धार्मिक वल वढ़ रहा है, मन उनका मलीन नहीं वरन् स्वच्छ है, जैसे शरद ऋतु के प्रकाश से (आनेसे) जल घट जाता है (और निर्मल हो जाता है) आकाश शोभित होता है और कमल विकसित होते हैं।

सम दम संजम नियम उपासा। नखत, भरत हिय विमल अकासा॥
ध्रुव विश्वास अवधि राकासी। स्वामि सुरति सुरवीथि बिकासी॥
राम-प्रेम-बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नितचोखा॥

शब्दार्थ—सम = शमन, मानसिक शान्ति। दम = दमन, इन्द्रियों को दवाना। संजम = (संयम) व्रतादि का नियम। नखत = (नक्षत्र) तारा। राका = पूर्णमासी। सुरति = स्मरण। सुरबीथि = आकाशगंगा।

भावार्थ—शम, दम, संयम, नियम और व्रत यही सव भरत के हृदय रूपी स्वच्छ आकाश के नक्षत्र हैं। (रामजी में) विश्वास ही ध्रुव (तारा) है। (१४ वर्ष की) अवधि ही पूर्णमासी के समान है। स्वामी की सूरत ही आकाशगंगा (देवमार्ग) के समान विकसित है। जहाँ पर रामजी का प्रेम रूपी निर्दोष चन्द्रमा अपने सम्पूर्ण समाज सहित स्थिर होकर शोभा पा रहा है, यह नित्य ही चोखा (अत्यंत प्रकाशमान) होता जाता है।

अलंकार—सांगरूपक (अधिक अभेद)

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति विरति गुन विमल विभूती॥
वरनत सकल सुकवि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥

शब्दार्थ—समुझनि = समझ, विचार। करतूती = काम। गिरा = सरस्वती।

भावार्थ—भरत जी के रहनि, विचार, कार्य, भक्ति, वैराग्य गुण और सुन्दर ऐश्वर्य का वर्णन करते सम्पूर्ण सुकवि सकुचते हैं। शेष नाग, गनेश जी और सरस्वती के लिए भी यह गम्य नहीं (अगम्य) है। (वसे मैं भला कैसे कह सकता हूं ?)

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति।

दो० नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत राजकाज बहु भाँति॥ ३२६॥

शब्दार्थ—पाँवरी = खड़ाऊँ।

भावार्थ—भरत जी नित्य प्रति राम जी की खड़ाउओं की पूजा करते हैं इनके हृदय में प्रीति समाती नहीं। वे इनसे आज्ञा माँग माँग कर बहुत प्रकार से राजका कार्य करते हैं।

पुलक गात, हिय सिय रघुवीरू। जीह नाम जप, लोचन नीरू॥
लषन राम सिय कानन वसहीं। भरतु भवन वसि तप तनु कसहीं॥

शब्दार्थ—जीह = (जिह्वा) जीभ।

भावार्थ—शरीर में रोमांच है, हृदय में सीता राम हैं। जिह्वासे नाम जपते हैं और नेत्रों से जल बहता है। लक्ष्मण राम और सीता तो वन में बसते हैं भरत जी घरमें रह कर भी अपने शरीर को कसते हैं (तपस्या करते हैं)

दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब विधि भरत सराहन जोगू॥
सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥

शब्दार्थ—दोउ दिसि=दोनो ओर।

भावार्थ—दोनों ओर (राम जी और भरत जी की ओर) देखकर सब लोग कहते हैं कि भरत सब प्रकार से प्रशंसा करने योग्य हैं। भरत का नेम और व्रत सुनकर बड़े बड़े साधु सकुचते हैं और भरत जीकी दशा देखकर मुनिराज भी लज्जित होते हैं।

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महा मोह निसि दलन दिनेसू॥
पाप-पुंज-कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥
जनरंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधा कर सारू॥

शब्दार्थ—आचरनू=चलन, कृत्य। मधुर=मीठा। कलुष=पाप। दिनेसू=सूर्य। कुंजर=हाथी। मृगराजू=सिंह। समन=नाशकरने वाला।

भावार्थ—भरत जी का आचरण परम पवित्र है, मीठा, सुन्दर, आनन्द दायक और मंगल कारक है। कलियुग के कठिन पापों और कष्टों को हरने वाला है। वह महा मोह रूपी रात्रि को नाश करने के लिए सूर्यवत् (प्रकाश मान) है (अर्थात् भरत जी का चरित्र सुनने या पढ़ने से मोह दूर हो जाता है) वह पाप रूपी हाथी को भगा देने के लिए सिंह के समान (बलवान) है। (अर्थात् भरत-चरित्र पाप-नाशक है) तथा सम्पूर्ण संतापों को नाश करनेवाला है। वह दासों को प्रसन्न करनेवाला और सांसारिक बाधा को भंजन करनेवाला है। वह रामजी के प्रेम रूपी अमृत का तत्व है। (अर्थात् भरत चरित्र से राम-प्रेमामृत प्राप्त हो सकता है)

अलंकार—परंपरितरूपक।

छन्द—सियराम प्रेम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरत को।
मुनिमन अगम जम नियम सम दम बिषमव्रत आचरतको॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्ह हठि राम सनमुख करत को॥

शब्दार्थ—पियूष=अमृत। आचरत को=कौन आचरण करता ? दंभ=दिखाऊ शान। मिस=बहाना। अपहरत=हरण करता।

भावार्थ—सीता और राम जी के प्रेम रूपी अमृत से परिपूर्ण भरत जी का यदि जन्म न होता तो मुनियों के मन के लिए भी अगम्य यम नियम शम दम और कठिन व्रतों का आचरण कौन करता ? (कोई नहीं) और दुःख की जलन, दारिद्र्य, दिखाऊशान, दोष आदि को अपने सुयश के बहाने कौन हरता ? (कोई नहीं) और इस कलिकाल में तुलसीदास जी ऐसे सठों को हठ करके (जबरन्) राम जी के संमुख कौन करता ? (कोई नहीं) (अर्थात् भरत जी ने जन्म लेकर उपर्युक्त कार्य किये। जो दूसरे के लिये करना कठिन है।

सो०—भरत चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव-रस बिरति ॥३२७॥

शब्दार्थ—नेम करि=नियम पूर्वक (नित्य) भव-रस=सांसारिक बिषय। विरति=वैराग्य।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि भरतजी का चरित्र जो नियमपूर्वक नित्य सुनते हैं। उनके हृदय में सीताराम जी के चरणों में प्रेम अवश्य पैदा होता है और सांसारिक बिषयों से वैराग्य भी अवश्य हो जाता है।

अलंकार—देहरी दीपक (होइ शब्द में)

इति श्री रामचरित मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने
द्वितीयः सोपानः समाप्तः

———

(परिशिष्ट)

अंध शाप ('तापस अंधसाप' सुधि आई)

(दशरथ जी ने कौशल्या से कहा) मैं एक बार शब्दवेधी शिकार खेलने सरजू किनारे वन में गया था। वर्षा ऋतु थी, अँधियाली में रात्रि के समय में इस ताक में बैठ गया। इतने ही में जल में कुछ शब्द हुआ। मैंने समझा हाथी पानी पीरहा है, वाण मारा। पर बाण लगते ही मनुष्य के कराहने की आवाज आयी। मैंने समीप जाकर देखा तो एक तपस्वी जल भर रहा था वह मारा गया। मैंने उससे क्षमा-याचना की। उसने कहा मेरे अन्धे माता-पिता प्यास से मर रहे हैं, उन्हें जाकर जल पिलाओ। मैंने वैसा ही किया और उन अन्धों से अपना वृत्तान्त सुनाया। वे सुनकर विह्वल हो उठे और अपने पुत्र के पास आये। उस लड़के का नाम श्रवण था। अन्धों ने प्राण त्याग दिये और वह पुत्र भी मर गया। मरते समय उन्होंने शाप दिया कि जाओ, तुम्हारी मृत्यु भी पुत्र शोक से ही होगी।

अम्बरीष (सुधिकर 'अम्बरीष' दुर्वासा)

ये राजा नाभाग के पुत्र और बड़े धर्मिष्ठ थे। ये अपना सब कुछ ईश्वर को अर्पण कर दिया करते थे। भगवान् ने प्रसन्न होकर इनकी रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर दिया था। ये एकादशी का व्रत करते थे। एकबार इनको दुर्वासा ने शाप देकर कृत्या से मार डालना चाहा था पर सुदर्शन ने इनकी रक्षा की थी (देखिये 'दुर्वासा')

अक्षयवट और मार्कण्डेय (दोहा नं० २८७)

मार्कण्डेय जी अंगिरा के वंशज हैं। ये चिरजीवी ऋषि हैं। इन्होंने एक बार भगवान् की तपस्या की और भगवान् से कहा महाराज हमें प्रलय देखने की इच्छा है। भगवान ने कहा 'अभी प्रलय करके संसार का नाश कराओगे ?' मार्कण्डेय जी ने हठ किया। भगवान हँसकर चले गये। एक दिन इन्हें दिखाई दिया कि समुद्र बढ़ रहा है। वह देखते देखते इतना बढ़ गया कि इनकी कुटिया भी डूब गयी और ये भी डूबने

लगी। अपने को डूबता हुआ देखकर ये तैरने लगे। तैरते तैरते ये इतने थक गये कि मारे थकावट के व्याकुल हो उठे। चारो ओर सिवाय समुद्र के कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। ये डूबने लगे। भगवान् से प्रार्थना की, तब इन्हें एक छोटा सा वृक्ष देख पड़ा। इन्होंने लपक कर उसको पकड़ा वह वट वृक्ष था। उसमें देखते हैं कि एक पत्ते पर एक नवजात बच्चा पड़ा है और अपना अँगूठा पी रहा है। बच्चा इन्हें देखकर हँसा और कहा—'प्रलय का दृश्य देखा ?' ऋषि बड़े आश्चर्यमें पड़े और उन्हें बालमुकुन्द भगवान समझ कर प्रार्थना की। उनके कहने से आँख मूँदते ही सारी माया लुप्त हो गयी।

अगस्त और विन्ध्याचल (बढ़त विन्धि जिमि घटज निवारा)

अगस्त जी मित्र और वरुण के वीर्य से घट द्वारा उत्पन्न हुए थे। इनका नाम घटज, कुम्भज आदि भी है (गोपद जल बूड़हिं 'घटयोनी') ये समुद्र को एक बार आचमन कर गये थे। विन्ध्याचल पर्वत इनका शिष्य था। सब पर्वतों से बढ़ जाने के विचार से विन्ध्याचल इतना ऊँचा उठा कि सूर्य और चन्द्र का मार्ग ही रोक लिया, संसार में हाहाकार मच गया। देवताओं ने अगस्त जी से प्रार्थना की, अगस्त जी विन्ध्याचल के पास गये, उसने गुरु को साष्टांग दंडवत की, आशीर्वाद देकर अगस्त जी ने कहा कि जब तक मैं दक्षिण से न लौटूं तुम इसी तरह पड़े रहो। ऐसा कह अगस्त जी दक्षिण चले गये और आज तक न लौटे। विन्ध्याचल गुरु के आज्ञानुसार ज्यों का त्यों पड़ा है।

अत्रि ('अत्रि' आदि मुनिवर बहु बसहीं)

अत्रि जी ब्रह्मा के उत्पन्न किये हुए दस प्रजापतियों में से एक हैं। इन्हें क्रुद्ध होकर महादेव जी ने भस्म कर डाला था पर ब्रह्मा ने इन्हें फिर उत्पन्न किया। इनका विवाह अनुसूया जी से हुआ था। दुर्वासा इन्हीं के पुत्रों में से हैं। इन्होंने 'अत्रिसंहिता' नामक स्मृति बनायी है। वेदों में भी इनका नाम है। ये सप्तऋषियों में से एक हैं।

अनुसूया ('अत्रिप्रिया' निज तप बल आनी)

अत्रि जी की स्त्री अनुसूया बड़ी पतिव्रता थीं। एक बार जब दश वर्ष

का अकाल पड़ा था तो इन्होंने अपनी तपस्या के बल अन्न उत्पन्न कर सबको जिलाया था। जब इनके पति बड़े वृद्ध हो गये तो उन्हें गंगा जी स्नान करने जाने में बड़ी तकलीफ़ होने लगी। तब ये अपने तप के बल से गंगाजी की एक धारा मंदाकिनी नाम की अपने आश्रम तक ले आयीं जिससे अत्रि जी का दूर जाने का कष्ट मिट गया। ये नाते में सीता जी की मौसी (मातृस्वसा) थीं।

इन्द्र (सहस बाहु 'सुरनाथ' त्रिशंकू)

एक बार राज्यमद के कारण इन्द्र ने सभा में आने पर गुरु बृहस्पति जी को प्रणाम नहीं किया और न कोई सत्कार ही किया। गुरुजी उठकर चुपचाप चले गये। पीछे से इन्द्र को ज्ञात हुआ कि हमसे अपराध हुआ। वह गुरुजी के घर गया पर वे वहां भी अदृश्य हो गये। यह समाचार जब दैत्यों को लगा तो उन्होंने चढ़ाई करके देवताओं को जीत लिया। तब इन्द्र ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्माने कहा यह गुरु अपमान का ही फल है। अन्तमें इन्द्रने विश्वरूप ऋषि को अपना गुरु मानकर तब दैत्यों को जीता। (इन्द्र के राजमद की बहुतसी कथाएँ हैं हमें यही उपयुक्त जान पड़ी)

कद्रू—विनता ('कद्रू विनतहिं' दीन्ह दुख)

कश्यप की स्त्रियों में दो स्त्रियों का नाम कद्रू और विनता था। कद्रू सर्पों की माता थीं और बिनता गरुड़ (वैनतेय) की। इन दोनो में सूर्य के घोड़े के रंग के विषय में विवाद चला। कद्रू ने कहा—सूर्य के घोड़े काले हैं, बिनता ने कहा स्वेत। विवाद बढ़ते २ यह शर्त ठहरी कि जिसकी बात सही निकले दूसरी उसकी दासी होजाय। दोनों ने इसे मानलिया। इधर कद्रू ने अपने पुत्र सर्पों से कहा कि जाकर तुम सूर्य के घोड़ों से लिपट जाओ। माता के आज्ञानुसार उन्होंने ऐसा ही किया, जिसके फलस्वरूप घोड़े काले देख पड़े। बस बिनता को कद्रू की दासी होना पड़ा। इसे देखकर विनता के पुत्र गरुड़ को बड़ा दुःख हुआ। वे अपने स्वामी बिष्णु जी की आज्ञा लेकर तभी से सर्पों का भक्षण करके माता का बदला लेने लगे।

खस (दोहा नं० १६५)

कथा अज्ञात है, हमें तो अभीतक नहीं मिली। खस वा खसिया नाम की एक नीच जाति काश्मीर में बसती है। अनुमान होता है कि इस जाति के किसी भक्त को रामजी ने बड़भागी किया होगा।

गया तीर्थ (मगह 'गयादिक तीरथ' जैसे)

बिहार प्रान्त में एक बड़ा तीर्थ गया है। यहां पर विष्णुपाद का चिह्न है। कहते हैं कि यहां असुरसेन नामक राक्षस हुआ था जिसे भगवान् ने मारा था और अपने चरणों से उसे दबा दिया था। उसी स्थान पर विष्णुपाद स्थान बना है। इस तीर्थ में पिंडदान, श्राद्धादि कर्म होते हैं।

गालव ('गालव 'नहुष नरेस)

यह विश्वामित्र का एक शिष्य था। गुरु से विद्या पढ़ लेने पर इसने गुरु से गुरुदक्षिणा लेने के लिये हठ की। विश्वामित्र ने चिढ़कर कहा ८०० श्यामकर्ण घोड़े लाओ। इसने कहा बहुत अच्छा। त्रिभुवन में केवल ६०० श्यामकर्ण घोड़े थे। इसने विष्णु की आराधना की। उन्होंने इसे जुगुत बतलायी। इसने उसी के अनुसार राजा ययाति से माधवी नाम की पुत्री ली, उस पुत्री को उसने तीन राजाओं से इस शर्त पर ब्याहा कि एक पुत्र होने के बाद लौटा देना। इसने अयोध्या के हर्यश्व, काशी के दिवोदास और भोज नगरी के उशीनर को यह कन्या ब्याही और प्रत्येक से २०० श्याम कर्ण घोड़े लिए जो उनके पास थे और उन घोड़ों सहित माधवी को लाकर विश्वामित्र को सौंप दिया कि २०० घोड़ों की कमी आप इससे पुत्र उत्पन्न करके पूरी करलें। विश्वामित्र जी ने ऐसा ही किया और कहा कि जाओ गुरु दक्षिणा मिल गयी। माधवी फिर ययाति को लौटा दी गयी। इस कृत्य में हठ के कारण गालव को बड़ा कष्ट सहना पड़ता था

चन्द्रमा ('ससि' गुरु तिय गामी)

चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा पर आसक्त होकर उसे छीन लिया और उसी तारा के द्वारा बुध नाम का एक पुत्र पैदा किया।

ब्रह्मा ने तारा बृहस्पति जी को दिलवा दी थी पर चन्द्रमा के वीर्य के कारण बुध उसीका पुत्र कहलाया। मारे मदान्धता के ही चन्द्रमा ने यह कुकर्म किया था।

त्रिशंकु (सहस बाहुसुर नाथ 'त्रिशंकू')

यह सूर्यबंशी राजा निबंधन का पुत्र था। यह छुटपन से ही बड़ी अनीति करता था इसी लिए इसका नाम त्रिशंकु पड़ गया था। जब यह राजगद्दी पर बैठा तो इसे सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा हुई। इसने अपने पुरोहित बशिष्ठ जी से कहा। उन्होंने इन्कार कर दिया। इसने उनके पुत्रों से कहा पुत्रों ने इसे समझाया, न मानने पर उन्होंने शाप दे दिया, जिससे यह चांडाल हो गया। तब यह विश्वामित्र के पास गया। विश्वामित्र और बशिष्ठ में खींचातानी थी ही। विश्वामित्र ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपने तप बल से इसे ऊपर तो भेज दिया पर इन्द्र ने वहां से ढकेल दिया। त्रिशंकु चिल्लाया। विश्वामित्र ने उसे अपने तेज से अधर में ही रोक दिया। अब तक कहा जाता है त्रिशंकु अधर में उल्टा लटका है, उसके मुख की ही लार से कर्मनाशा नदी की उत्पत्ति मानी जाती है।

दधीचि (सिवि 'दधीचि' हरिचंद कहानी)

महर्षि दधीचि अथर्वण ऋषि के तीन पुत्रों में से थे। ये बड़े दानी थे। जब इन्द्र और बृत्रासुर में संग्राम हो रहा था तो इन्द्र किसी भी उपाय से उसे न जीत सके। विष्णु भगवान् से प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा; यदि दधीचि की हड्डी का अस्त्र बने तो उससे यह मारा जा सकता है। इन्द्र ने देवताओं सहित दधीचि की प्रार्थना की और अपना दुःख सुनाया। दधीचि सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और कहा—दूसरे के दुःख में दुखी होना और हर्ष से हर्षित होना यही महानों का कार्य है। कहते हैं उन्होंने शरीर में क्षार लगवा कर अपना चमड़ा और मांस आदि गौ से चटवा दिया और हड्डियां देवताओं को दे दीं। उस हड्डी से वज्र बनाया गया जिससे बृत्रासुर मारा गया। यह भी सुना जाता है कि उसी हड्डी के अवशिष्टांश से शंकर का पिनाक और अर्जुन का गांडिव बना था।

दुर्वासा { यह महिमा जानहिं 'दुर्वासा'।
सुधि करि अम्बरीष 'दुर्वासा'॥

ये अत्रि जी के पुत्र थे। इन्होंने कंदली नामक कन्या से इस प्रतिज्ञापर विवाह किया था कि यदि यह सौ अपराध करेगी तब तक मैं इसे कोई दंड न दूँगा, पर इससे अधिक होते ही भस्म कर दूँगा। कंदली के १०१ अपराध करते ही इन्होंने उसे भस्म कर दिया। कंदली के पिता ने श्राप दिया कि तुम्हारा दर्प चूर्ण हो जायगा। एक बार अयोध्या के राजा अम्बरीष एकादशी का व्रत करके पारण करने को ही थे कि दुर्वासा जी अतिथि रूप में पहुंचे। राजा ने इन्हें निमंत्रण दिया। ये निमंत्रण स्वीकार कर स्नान करने गये। स्नान में इतनी देरी लगायी कि पारण का समय बीतने लगा। राजा ने सोच—विचार कर जल पी लिया, क्योंकि एकादशी का पारण यदि द्वादशी में न हो जाय तो १५ दिन तक निराहार रहने की धर्म शास्त्र की आज्ञा है। दुर्वासा जी ने लौट कर यह सुना और कुपित होकर राजा के नाश के लिये कृत्या प्रगट की। सुदर्शन चक्र ने उस कृत्या को नष्ट कर डाला और ऋषि की ओर लपका। ऋषि भागे ब्रह्मा, विष्णु, महेश कोई उन्हें न बचा सका तब ऋषि राजा की ही शरण में आये। अन्त में राजा ने प्रार्थना कर चक्र को शान्त किया।

दो बर दान ('दुइ बारदान' भूप सन थाती)

राजा दशरथ इन्द्र के सखा (ससुर'सुरेस सखा' रघुराऊ) थे अतएव देवासुर संग्राम में ये गये थे। कैकेयी भी इनके साथ थी। संयोग से लड़ते लड़ते रथ के एक पहिये की धुरी की कील निकल गयी। कैकेई ने इसे देखा और उस स्थान पर अपना हाथ लगा दिया। तकलीफ को भी गवारा कर गयी। राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए और कहा—जो चाहो बर मांगो। कैकेयी ने कहा इसे धरोहर रखिये जब आवश्यकता होगी मांग लूँगी। एक तो यह थाती थी। (दूसरा) लोग कहते हैं कि दशरथ जी की उँगली में कोई रोग हो गया था, इससे बड़ी जलन होती थी। उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यदि कैकेई के मुँह में उँगली रहे तो इसमें जलन न होगी। अतएव कैकेयी से कहा।

उसने स्वीकार कर लिया और मुख में उँगली डालने से सचमुच जलन मिट गयी। तब उन्होंने वरदान माँगने को कहा। इसे भी कैकेई ने धरोहर कर दिया, यह दूसरा वरदान है।

नहुष की कथा

ये चन्द्रवंशी राजा पुरूरवा के नाती थे। राजा नहुष बड़े विक्रमशाली और गुणवान थे। जब वृत्रासुर के मारने से ब्रह्महत्या के कारण इन्द्र को इन्द्रासन छोड़कर भागना पड़ा तब बृहस्पति जी ने इन्हें योग्य समझ कर इन्द्रासन पर कार्य संचालन के लिये बैठाया। राज कार्य बड़ी अच्छी भांति चलाया, पर कुछ दिन बाद इन्हें इन्द्राणी से भोग करनेकी इच्छा हुई। इन्होंने यह संदेश कहलवाया। इन्द्राणी बड़ी दुखी हुई, उसने इन्हें बार-म्बार बरजा पर हठ वश इन्होंने एक भी न मानी। अन्त में बृहस्पति जी से सम्मति लेकर इन्द्राणी ने कहला भेजा कि यदि तुम ब्राह्मणों को कहार बनाकर उस पालकी में बैठकर आओ तो मैं तुमसे ऐसा कर सकूँगी। राजा नहुष ने मारे राजमद के ऐसाही किया। बेचारे ब्राह्मण जो दूसरों के कन्धे पर चलते थे कहार बने। कामातुरता के कारण नहुष ने कहा "सर्प सर्प" (जल्दी चलो! जल्दी चलो) ब्राह्मणों ने इस अपमान से क्षुब्ध होकर श्राप दिया कि तू सर्प हो कर मर्त्यलोक में गिर जा। नहुष सर्प हो गये। अन्त में धर्मराज के दर्शन से द्वापर में इनका मोक्ष हुआ।

पामर कोल किरात (दोहा नं० १९५)

ये वेही कोल भील हैं जो चित्रकूट में राम जी की सेवा में लगे रहते थे। भगवान ने इन्हें भी पवित्र कर दिया था।

परशुराम ('परशुराम' पितु अग्या राखी)

ये यमदग्नि ऋषि की रेणुका नामक पत्नी से उत्पन्न पांच पुत्रों में से सब से छोटे थे। एक दिन रेणुका जी गंगास्नान करने गयी थीं। वहां राजा चित्ररथ को स्त्रियों सहित क्रीड़ा करते देखा। ये वह तमाशा देखने में लग गयीं। इससे विलम्ब हुआ। लौटने पर यमदग्नि बहुत बिगड़े और पुत्रों को आज्ञा दी कि माता को मार डालो। चार पुत्रों ने अस्वीकार

किया जिससे यमदग्नि ने इन्हें श्राप देकर पत्थर कर दिया । परशुराम ने इसे स्वीकार करके माता को मार डाला । पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा वरदान माँगो । परशुराम जी ने कहा कि हमारे मृत भाइयों और हमारी माता को जिला दीजिये । यमदग्नि जी ने ऐसा ही किया। परशुरामजी विष्णु का अवतार थे । इन्होंने २१ बार पृथ्वी क्षत्रिय—हीन करके ब्राह्मणों को दी थी । इन्होंने सहस्त्रबाहु को भी हराया था ।

प्रहलाद (नरहरि प्रगट किए 'प्रहलादा')

ये दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पुत्र थे । बचपन से ही स्वभावतः इनके हृदय में हरिभक्ति हो गयी थी । ये नित्य प्रत्येक समय भगवान का भजन किया करते थे । हिरण्यकशिपु ने जब यह सुना तो बहुत बिगड़ा और यह बानि छुड़ाने का उद्योग किया । न मानने पर उसने प्रहलाद को मार डालने की ठानी । इसके लिए उसने इन्हें समुद्र में डाला, पर्वत से गिराया, हाथी के पैर तले कुचलाया और अग्नि में जलवाया पर इनका बाल भी बाँका न हुआ । तब वह तलवार लेकर खड़ा हो गया और इनसे कहा—'ले अब अपना कुकृत्य त्याग नहीं तो मैं इसी तलवार से काट डालूँगा—बुला अपने भगवान को कहा है ?' प्रह्लाद ने निर्भय होकर कहा—'भगवान हम में तुममें, तलवार में और इस खम्भे में भी है' । हिरण्यकशिपु ने कुपित होकर खम्भे पर एक लात मारी । खम्भा फट गया, नृसिंह भगवान् निकल पड़े और हिरण्यकशिपु को मार प्रह्लाद की रक्षा की ।

बलि की कथा ।

बलि, प्रह्लाद के नाती थे । ये बड़े प्रतापी और दानी थे । इन्द्रासन के लोभ से इन्हों ने १०० यज्ञ करने की प्रतिज्ञा की, जब ९९ यज्ञ हो गये तब इन्द्र घबड़ाया । उसने भगवान से प्रार्थना की । भगवान ने बामन रूप धारण किया और जाकर बलि से ३॥ डग पृथ्वी माँगी । बलि ने इनका छोटा रूप देख कर देना स्वीकार कर लिया । तब बामन जी ने अपना विराट रूप धारण किया और एक एक डग में आकाश, पाताल और मृत्युलोक नाप लिया ! आधे डग के बदले बलि का शरीर नाप कर उसे

पाताल भेज दिया और वहाँ का राजा बनाया और कहा कि तुम आठवें मन्वंतर में इन्द्र होगे। राजा बलि चिरजीवियों में से एक हैं।

वाल्मीकि ('वालमीकि' आश्रम प्रभु आए)

वाल्मीकि ऋषि पहले ब्राह्मण थे उस समय लुटेरों के साथ रहने से ये भी लूट-मार करने लग गये थे। एक बार इन्हें सप्त ऋषि मिले। इन्होंने उन्हें भी लूटना चाहा। ऋषियों ने कहा—"तू यह पाप कर्म करके अपना कुटुम्ब पालता है तेरा कुटुम्ब खाने का ही साथी है या तू जो पाप करता है उसका भी साथी है ?" यह सुन वाल्मीकि जी ने अपने कुटुम्बियों से पूछा तो उन लोगों ने कहा—"हम केवल खाने के साथी हैं पाप के नहीं।" तब तो वाल्मीकि जी की आखें खुली इन्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ। कुटुम्बियों को छोड़ कर ऋषियों से धर्म विषय सुना और राम नाम को उलटा कर 'मरा मरा' जपने लगे। ये जप में इतने लीन हो गये कि इनके शरीर के ऊपर कितनी ही मिट्टी जम गई और उसमें बहुत सी बाँबियाँ हो गयीं। जब ये तपस्या करके उठे तो ऋषियों ने इनका नाम वाल्मीकि रखा। ये ब्रह्मर्षि हुए हैं और आदि कवि भी ये ही महात्मा हैं। रामजी इनके आश्रम में आये थे। सीता-वनवासोपरान्त सीता जी भी इन्हीं के आश्रम में रही थीं। लव-कुश इन्हीं के आश्रम में जन्मे थे। इनका स्थान प्रयाग से ८ कोस दक्षिण है।

वेनु (अधम को 'वेनु' समान)

ध्रुव के वंश में एक बड़े धर्मिष्ठ राजा अंग हुए। वेनु उन्हीं का पुत्र था। यह लड़कपन से ही बड़ा उत्पात करने लगा। जिससे दुखी हो राजा अंग वन में चले गये। ब्राह्मणों ने वेनु को राज्य का अधिकारी समझ उसे सिंहासन पर बैठाया। इसने सिंहासनासीन होते ही यह घोषणा करा दी कि मेरे अतिरिक्त बलि का अधिकारी कोई नहीं है बलि मुझे दी जानी चाहिये। ऋषियों ने मना किया पर उसने राजमद में नहीं माना। अन्त में वेनु मरवा डाला गया। राजा पृथु जिनके कारण भूमि पृथ्वी कहलायी इसी वेनु के पुत्र थे। उन्हीं को इसके पश्चात् राज्याधिकार प्राप्त हुआ।

भगीरथ (भूप 'भगीरथ' सुरसरि आनी)

ये राजा दिलीप के पुत्र थे। इनके पुरुषा राजा सगर के साठ हजार पुत्र समुद्र किनारे कपिल देव के क्रोध से जल गये थे क्योंकि उन लोगों ने अश्वमेध का घोड़ा बाँध लेने पर ऋषि को अप शब्द कहे थे। (घोड़ा बाँधने की बदमाशी इन्द्रासन चले जाने के भय से भयभीत इन्द्र ने की थी) अतएव भगीरथ ने गंगा जी के लाने का प्रयत्न किया, जिससे वे लोग तर जाँय। इनके पुरुषा भी इसी उद्योग में लगे रहे थे। भगीरथ ने पहले तो रूणीं तीर्थ में ब्रह्मा की उपासना की फिर जलधारा धारण करने के लिये महादेव जी की उपासना की और अन्त में गंगा जी को धरातल पर लाकर अपने पुरुषों को तारा। भगीरथ के ही नाम से अपत्यवाचक होकर गंगा जी का एक नाम भागीरथी भी है।

भरद्वाज ऋषि (तब प्रभु भरद्वाज पहँ आये)

भरद्वाज जी ब्रह्मर्षि थे। ये वृहस्पति जी के पुत्र थे। इन्ही के पुत्र द्रोणाचार्य द्वापर में हुए थे। ये अमर थे और सदेह स्वर्ग गये थे। ये वाल्मीकि जी के शिष्य थे और प्रयाग में रहते थे। यहाँ पर इनके कितने ही शिष्य भी इनसे विद्याध्ययन करते थे। इनकी तपस्या अपूर्व थी। इन्होने अपनी तपस्या से सम्पूर्ण सिद्धियाँ वश में कर ली थीं।

मंथरा (नाम 'मंथरा' मंदमति)

मंथरा पूर्व जन्म में एक गंधर्विनी थी। श्राप के कारण यह कुबड़ी के रूप में जन्मी। मंथरा कैकेयी के नैहर की धाय थी जो दासी के रूप में अयोध्या आयी थी। कैकेयी इसे बहुत चाहती थी। इसका शरीर तीन स्थानों से टेढ़ा था। इसी से इसे कुब्जा, कुबड़ी आदि भी कहते थे।

यमन (दोहा नं० १९५)

यह एक पापी म्लेच्छ था। यह अपनी वृद्धावस्था में एक दिन शौच के उपरान्त आबदस्त ले रहा था कि उसे एक शूकर ने जोर से ढकेल दिया। इस पर यह चिल्लाया कि मुझे 'हराम' ने मारा, (सुअर को मुसलमान 'हराम' कहते हैं) वृद्धावस्था की कमजोरी के कारण वह इस आघात से

मर गया। मरते समय 'हराम हराम' उच्चारण करने से भगवान ने उसे मुक्ति दे दी क्योंकि 'हराम' के साथ 'राम' का उच्चारण होना अनिवार्य है।

ययाति { सुरपुर तें जनु खसेउ 'ययाती'
तनय 'ययातिहिं' यौवन दयेऊ ॥

ये चन्द्रवंशी राजा नहुष के पुत्र थे। इनके दो स्त्रियाँ थीं एक देवयानी और दूसरी शर्मिष्ठा। इनके पाँच पुत्र थे। पुरु इनका बड़ा आज्ञाकारी पुत्र था। शुक्राचार्य जी के श्राप से ये युवावस्था में ही जराग्रस्त हो गये थे। पर सुपुत्र पुरु ने अपनी जवानी से इनका बुढ़ापा बदल लिया था। इसी कारण पुरु को ही गद्दी मिली थी। इस कारण पुत्र को कुछ अपयश नहीं हुआ वरन् संसार उनका यश गाता है। ययाति सदेह स्वर्ग गये थे पर निज-मुख से अपने पुण्यों का कथन करने से वे स्वर्ग से ढकेल दिये गये थे।

राजा रंतिदेव ('रंतिदेव' बलि भूप सुजाना)

ये चन्द्रवंशी राजा संकृति के दूसरे पुत्र थे। ये बड़े धनी और धर्मात्मा थे। इनका प्रण था कि जो नित्य मिले उसी से निर्वाह करना चाहिए। ये अपना सब धन लोगों को दे देते थे दूसरे दिन जो मिलता उसी से भोजन करते। इस प्रकार एक समय ऐसा मौका पड़ा कि ४८ दिन तक कुछ न मिला। ये बराबर उपवास करते रहे। ४९ वें दिन कुछ खाने को मिला ही था कि एक ब्राह्मण ने आकर भिक्षा मांगी। राजा ने उसे खिलाकर भोजन करने का विचार किया, इतने में ही एक दूसरा भूखा आ गया। राजा ने बचा खुचा अन्न उसे दे दिया। केवल जल रह गया। जल पीने के लिये उठाया ही था कि एक प्यासा आया, उसने वह जल भी मांग लिया। राजा यह देखकर विचलित न हुए। उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की हे भगवन्! मुझे राज्य या स्वर्ग नहीं चाहिये केवल आप यह शक्ति दें कि मैं दुखियों का दुःख दूर कर सकूँ। भगवान ने उन्हें ऐसाही आशीर्वाद दिया।

वशिष्ट जी की कथा (सोइ गोसाइँ 'विधिगति जेहि छेकी')

जब वैवस्वत मनु को बुढ़ापा आने तक कोई संतान न हुई तो उन्होंने

पुत्र कामेष्ठि यज्ञ कराया। पर उनकी स्त्री ने याज्ञिक के द्वारा आयोजन करके कन्या होने के मंत्र पढ़वाये। जिसके कारण कन्या उत्पन्न हुई। तब मनु ने बशिष्ठ से कहा महाराज! यह क्या? मैंने पुत्रेच्छा से यज्ञ कराया था पुत्री कैसी? बशिष्ठ जी ने सब वृत्तान्त बताया और कहा लो मैं इसे पुत्र किये देता हूं। बशिष्ट जी ने अपने तप बल से उसे पुत्र बना दिया और उसका नाम इल रखा। (इसके अतिरिक्त और भी कथाएँ बशिष्ठ जी के ब्रह्मा की गति छेरु लेने के बारे में हैं)

शवर (दोहा नं० १९५)

(शवर शवरी को ही समझना चाहिए) शवरी शवर जाति की थी। मतंग ऋषि की सेवा किया करती थी। जब ऋषि परम धाम को जाने लगे तो इसने भी साथ ले जाने का हठ किया। तब ऋषि ने कहा तू अभी यहीं रह। तुझे त्रेता में भगवान् के दर्शन मिलेंगे। जटायु को परम धाम देकर भगवान् शवरी के आश्रम गये (देखो अरण्यकाण्ड) वह 'राम राम' जप रही थी। भगवान् ने उसके जूठे बेर खाये और उसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया। शवरी राम जी को सुग्रीव की मित्रता का संकेत करके उनके चरणों का ध्यान धर कर योगाग्नि में देह जलाकर परम धाम को गयी।

शिवि ('शिवि' दधीचि बलि जो किछु भाखा)

शिवि सोमवंशी राजा उशीनर के जेठे पुत्र थे। उशीनर देश कंधार के समीप है। राजा शिवि बड़े दानी थे। इन्होंने सौ यज्ञ करने का ठान ठाना था। जब इनके ९२ यज्ञ हो गये तो इन्द्र का इन्द्रासन हिल गया। इन्द्र ने समझा कि ये सौ यज्ञ करके हमारा सिंहासन छीन लेंगे, इस लिये उसने अग्नि को कबूतर बनाया और स्वयं बाज बना। कबूतर भागता हुआ आकर राजा शिवि की गोद में छिप गया। बाज ने अपना आहार माँगा पर राजा ने कहा यह शरणागत है अतएव तुम इसके बराबर हमारा मांस ले लो। बाज राजी हो गया। शिवि तराजू पर उस कबूतर के बराबर अपना मांस तौलने लगे, पर सम्पूर्ण शरीर का मांस चढ़ा देने पर भी उसके बराबर न हुआ।

राजा ने अपना सिर काटने के लिए तलवार उठाई। इसी समय विष्णु भगवान ने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया और उन्हें स्वर्ग भेज दिया।

श्वपच (दोहा नं० १९५)

यह कृष्ण जी का गुप्त भक्त था। युधिष्ठिर के यज्ञ में कृष्ण ने इसका आदर करवाया था—अर्थात् इसे निमंत्रित करके बोलवाया और जब इसने भोजन कर लिये तब कहीं यज्ञ पूर्ण समझा गया।

सुमंत्र (जाहु 'सुमंत' जगावहु जाई)

सुमंत जी दशरथ जी के प्रधानामात्य थे। ये सबसे वृद्ध थे। राज का सम्पूर्ण कार्य दशरथ जी इन्हीं के बलपर करते थे। राजा दशरथ जी के आठ मंत्री और थे—

वशिष्ठो वामदेवश्च जाबालि रथ काश्यप।
कात्यायनः सुयज्ञश्च गौतमो विजय स्तथा॥

वामदेव और जाबालि का नाम इस कांड के अन्त में आया है—

कौसिक 'वामदेव' 'जावाली'। पुरजन परिजन सचिव सुचाली।

सौ सौतों की कथा (कहिसि कथा 'सतसवति' कै)

शूरसेन देश के राजा चित्रकेतु के सौ स्त्रियाँ थीं परन्तु किसी को एक भी संतति नहीं हुई थी। तब राजा ने अंगिरा ऋषि की बड़ी सेवा की। ऋषि जी ने इनका दुःख सुना, तो इनकी सबसे बड़ी रानी को यज्ञ का चरु दिया,-जिसके प्रभाव से उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ पर सब सौतो ने मिलकर उस लड़के को विष दे दिया जिससे वह मर गया।

सहस्राबाहु ('सहसबाहु' सुरनाथ त्रिशंकू)

यह चंद्रवंशी राजा कृतवीर्य का पुत्र था। इसके वंश का नाम हैहयवंश भी है। इसका नाम कार्तवीर्य, सहस्रार्जुन भी है। इसने दत्तात्रेय की कृपा से सहस्र हाथ पाये थे। एकबार यह यमदग्नि जी के आश्रम में गया

सो उन्होंने अपनी कामधेनु के बल पर इसका खूब आतिथ्य किः
यह देखते ही इसे कामधेनु ले लेने की इच्छा हुई। इसने यमदग्नि को म
कामधेनु छीन ली तब यमदग्नि के पुत्र परशुराम ने इसके ऊपर चढ़ाई क
के इसकी भुजाएँ काट लीं और क्षत्रियों के नाश की प्रतिज्ञा की। उन्हें
२१ बार क्षत्रियों को जीत कर पृथ्वी दान की थी।

हरिश्चन्द्र (सिवि दधीचि 'हरिचंद' कहानी)

ये सूर्यवंशी त्रिशंकु के पुत्र थे। ये बड़े दानी और सत्यवादी थे इ
दान से इन्द्र डर गया उसने विश्वामित्र जी को इनकी कड़ी परीक्ष
लिए भेजा। विश्वामित्र जीने ब्राह्मण के रूप में इनसे सम्पूर्ण पृथ्वी
ले ली, और दक्षिणा माँगी। दक्षिणा देने के लिये ये अपनी स्त्री
(तारामती) और रोहिताश्व सहित काशी आये। स्त्री को ५०० रुपये
एक ब्राह्मण के हाथ दासी कार्य करने के लिए बेच दिया। पुत्र माता
साथ चला गया। स्वयं आप ५०० में एक चांडाल के हाथ बिके। इ
मसान की रखवाली का और कफन लेने का काम मिला। अन्त
विश्वामित्र ने रोहिताश्व को सर्प दंश से मरवाडाला और शैव्या को मै
खाने वाली प्रसिद्ध करया शैव्या की गर्दन काटने के लिये चांडाल
सौंपा। चांडाल ने गर्दन काटने का कार्य इन्हें। इन्होंने अपनी स्त्री जानते
भी स्वामी की आज्ञा से उसे सहर्ष स्वीकार किया। ज्योंही तलवार उ
भगवान ने प्रकट होकर हाथ पकड़ लिया। इन्हें स्वर्ग दिया और रोहि
को राजा बनाया। रोहिताश्व भी चक्रवर्ती राजा हुआ।

हिरण्याक्ष (सोक 'कनक लोचन' मति-छोनी)

यह एक बड़ा भारी दैत्य था। यह सतयुग में था। हिरण्यकशिपु
का भाई था। एक बार यह ब्रह्मा से पृथ्वी छीन कर महासागर के
ले गया और मल मूत्रादि से उसे भ्रष्ट कर दिया। तब भगवान ने वा
अवतार धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया और उसे मार डाला।